प्रकाशकीय

महाश्रमण भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाणवर्ष के उपलक्ष मे चारो ओर विविध जैन सस्थाओ की ओर से विभिन्न योजनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। सबकी अपनी-अपनी दृष्टि, मति, गति और रुचि है। हम यह सोच रहे थे कि सन्मति ज्ञानपीठ की ओर से भगवान् महावीर के चरणो मे कौन-सी पुष्पाजलि चढाई जाय, जिससे हमारी श्रद्धा को भी सतुष्टि मिले और जनता को भी भगवान् महावीर के जीवनदर्शन का यथार्थ आलोकन करने का लाभ मिले। हमने ज्ञानपीठ के कार्यकर्त्ताओं की एक मीटिंग सेवानिष्ठ श्रीअखिलेशजी महाराज एव विद्वद्वर्य मुनिश्री नेमिचन्द्रजी महाराज के सान्निध्य मे रखी और उसमे विचार-विनिमय के पश्चात् हम इस निश्चय पर पहुँचे कि श्री अमरभारती (मासिक पत्रिका) का महावीर-निर्वाण-विशेषाक प्रकाशित किया जाए, जिससे महावीर के विचारो का भलीभाँति मथन हो सके। क्योकि विचार से ही आचार का निर्माण होता है। परन्तु एक ओर कागजो की दुर्लभता और महगाई एव छपाई की महर्घता ने एक बार तो हम सबको निराशा मे डाल दिया कि लगभग ३००-३५० पेज की साढे तीन-चार हजार प्रतियो के विशेषाक पर २५ हजार रु० से कम खर्च नही बैठेगा। परन्तु हमारे प्रेम इलेक्ट्रिक प्रेस के प्रोप्रा० श्री प्रेमबाबू ने तथा बाबू महावीरप्रसाद जी जैन एम० ए०, ला० प्रभुदयालजी, राजमुकुटजी एव प० चन्द्रभूषणजी, ला० कल्याणदासजी आदि सज्जनो ने हमे आश्वासन दिया कि इस अतिरिक्त व्यय की पूर्ति भगवान् महावीर के प्रति श्रद्धालु सज्जनो से श्रद्धाजलि के रूप मे हम इसमे विज्ञापन लेकर कर लेंगे। कार्य बहुत भगीरथ था। एक बार तो हम भी बहुत विचार मे पड गए कि यह नैया कैसे पार लगेगी। लेकिन प्रभु की कृपा से तथा श्रद्धेय पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी महाराज, राष्ट्रसत उपाध्याय श्रीअमरचन्दजी महाराज, राजगृह-विराजित प० विजयमुनिजी शास्त्री, मुनि समदर्शीजी, साध्वीरत्न सुमतिकु वरजी, विदुषी साध्वी चन्दनाजी आदि तथा अन्य दूरस्थ साधुसाध्वीमण्डल की उदार कृपादृष्टि से तथा धर्म-निष्ठ बहन श्रीप्रेमबाईजी एव कु० शोभना, विमल सेठ एव कु० निर्मला गाँधी एव श्रीप्रेमचन्दजी जैन, नन्हेबाबू आगरा व जयपुर के सुरेन्द्र गादिया, विजयसिंहजी सुजती, रामधनजी बी० ए० एल० टी०, प० चन्द्रभूषणजी त्रिपाठी व कलकत्ता के वाडीभाई, चदुभाई, उत्तमचदभाई, खडेरियाजी आदि के भगीरथ प्रयत्न से इस काम मे गति आई। इनके उदार सहयोग से कार्य सफलता के सोपान पर चढा। इधर लेखक महोदयो की सूची बनवाने मे तथा लेखो को व्यवस्थित व सपादित करने मे श्रीचन्दजी सुराना

और प्रतापचन्दजी जैन का उदार सहयोग मिला। अत हम इन सवके वहुत ही आभारी हैं। विशेपाक की रूपरेखा का प्रारूप तैयार करवा कर सभी लेखको को अपनी-अपनी रचनाएँ भेजने का अनुरोध किया गया। वहुत-से लेखो को, जो विलम्व से आए थे, इस विशेषाक के अनुरूप नही थे, या इसके स्तर के अनुरूप नही थे, हमे अलग छाटना पडा। हमने यह सावधानी रखी है कि किसी भी लेखक के साथ अन्याय न हो। जिन-जिन लेखको की रचनाओ को उपर्युक्त कारणवश हम इस विशेपाक मे स्थान नही दे पाए हैं, उनसे हम सविनय क्षमा चाहते हैं।

खासतौर से हम श्रीप्रेमचन्दजी जैन, प्रो० प्रेम इलेक्ट्रिक प्रेस के वहुत आभारी हैं, जिन्होंने अपने व्यवसाय के अमूल्य क्षणो मे से समय निकाल कर विज्ञापन-व्यवस्था सभाली और अपने प्रेस मे द्रुतगति से इतने वडे विशेषाक के मुद्रण की व्यवस्था भी की। यदि उन्होंने इस ओर ध्यान न दिया होता तो हम इतना शीघ्र इतना सुन्दर अक पाठको के हाथो मे नही पहुँचा सकते थे।

भगवान् महावीर के प्रति श्रद्धालु विज्ञापनदाताओ के प्रति भी हम कृतज्ञता प्रगट करते हैं, जिन्होने हमारे अतिरिक्त व्यय की पूर्ति करने मे हमे सहयोग दिया। भविप्य मे भी हम आशा करते है कि वे उदार हृदय से हमे सहयोग देते रहेगे।

अन्त मे, श्रीअमरभारती के समस्त सदस्यो व पाठको से हम नम्रतापूर्वक क्षमायाचना करते है कि उन्हे सितम्वर के अक के वाद इतनी प्रतीक्षा करनी पडी। वास्तव मे इस विशेपाक के प्रकाशन के पहले ही हमने यह निश्चय करके सूचित कर दिया था कि यह अक नवम्वर मे प्रकाशित होगा। और यही अक्टूवर, नवम्वर, दिसम्वर का सयुक्त अक होगा। अत अक्टूवर और दिसम्वर मे अलग से अक प्रकाशित नही होंगे।

श्री अमरभारती के इस विशेपाक के प्रकाशन की सफलता का सारा श्रेय तो सेवामूर्ति श्रीअखिलेशजी महाराज और विद्वद्वर्य मुनिश्री नेमिचन्द्रजी महाराज को है, जिनकी सक्रियता और कृपादृष्टि से हम इस अक को इतना सर्वागसुन्दर वना सके हैं।

फिर भी इस विशेपाक मे कुछ क्षतियाँ रह गई होगी। दयालु पाठक एवं हमारे सभी शुभचिन्तक उदार हृदय से हमे क्षमा करेंगे।

भगवान् महावीर के इस निर्वाण-विशेषाक से यदि पाठक लाभान्वित हुए और अपने जीवन को उनके उपदेशो के अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया तो हम अपना प्रयास सार्थक समझेंगे। सुज्ञेपु कि वहुना· ·· ·।

विनीत—

सोनाराम जैन

मन्त्री, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा।

आभार दर्शन



राष्ट्रसत उपाध्याय श्रीअमर मुनिजी कहा करते है—समाज एव राष्ट्र के कार्य जगन्नाथ का रथ है—हजारो हाथ मिल कर ही इसे खीचते हैं।

श्रीअमरभारती एव वीरायतन का साहित्य अधिकतर अपने प्रेस मे ही छपता है। आदरणीय पिताजी श्रीपदम-चन्द जैन की इस कार्य मे विशेष रुचि भी है, वे कविश्रीजी के एक निष्ठावान तथा वीरायतन-योजना के अनन्य सहयोगी भी हैं। उन्ही की पेरणा से मैं भी इन कार्यो मे विशेष रुचि रखू, यह स्वाभाविक है।

गत अगस्त मास मे जव भगवान् महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य मे श्री अमरभारती का निर्वाण विशेषाक प्रकाशित करने की योजना वनी तो श्रद्धेय श्री अखिलेशमुनिजी तथा लाला कल्याणदासजी जैन आदि के स्नेहभरे आग्रह के कारण मैंने सयोजक का दायित्व स्वीकार कर लिया। दायित्व बहुत वडा था और धार्मिक क्षेत्र मे मेरा यह पहला ही प्रयत्न था। किन्तु साथियो के सहयोग के विश्वास पर मैंने इस दायित्व को स्वीकार लिया। यह पत्रिका किस रूप मे प्रकाशित हुई है तथा कितनी आकर्षक है, इसका निर्णय पाठक करेंगे।

सप्रति समूचे राष्ट्र मे भगवान् श्री महावीर की २५ वी निर्वाणशताब्दी का समायोजन चल रहा है। क्षेत्रीय सस्थाएँ विभिन्न साहित्य व स्मारिका आदि के प्रकाशन मे व्यस्त हैं। इस कारण एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र का सहयोग अपेक्षाकृत कम ही मिल पाता है। किन्तु श्रीअमरभारती अखिल भारतीय स्तर की पत्रिका होने से तथा श्रद्धेय कविश्रीजीका राष्ट्रव्यापी प्रभाव होने के कारण श्री अमरभारती को पूरे राष्ट्र का सहयोग प्राप्त हुआ है। यह विशेष गौरव की वात है। विज्ञापनसग्रह मे श्री सुरेन्द्रसिंह गादिया, जयपुर; श्री रनजीतसिंह जैन, आगरा, श्री हरीसिंहजी सकलेचा, आगरा का

विशेष सहयोग रहा है। वीरायतन बालिका सघ ने कलकत्ता आदि क्षेत्रो से जो सहयोग प्राप्त किया है, वह आश्चर्यजनक है। नारीशक्ति क्या कर सकती है, और हमारी राष्ट्रीय समायोजनाओ मे उसका कितना महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है, इसकी कल्पना तब साकार हो जाती है, जब वीरायतन बालिका सघ की कार्यशील बहनो के प्रत्यक्ष कर्तव्य को देखते हैं।

मैं उन सबका हार्दिक आभार मानता हूँ, जिन्होने इस पत्रिका को प्रकाशित करने मे सहयोग किया है तथा विज्ञापनदाताओ का भी आभारी हूँ, जिनके सहयोग से इतना बडा कार्य सफल हो सका है।

—प्रेमचन्द जैन, आगरा

सम्पादक-मण्डल



मुख्य-सपादक—मुनि नेमिचन्द्रजी



मुनि समदर्शी 'प्रभाकर'

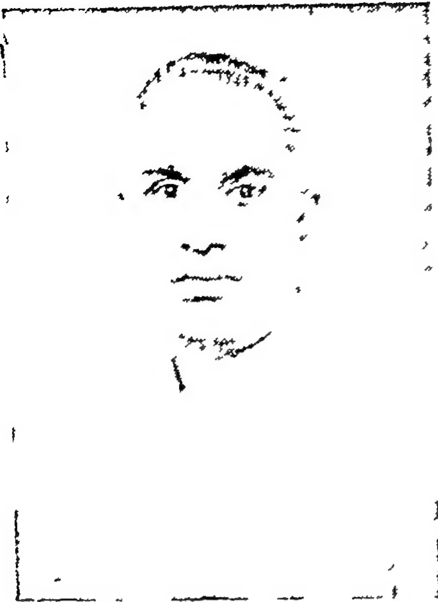


प० विजयमुनिजी शास्त्री



साध्वी चन्दनाजी

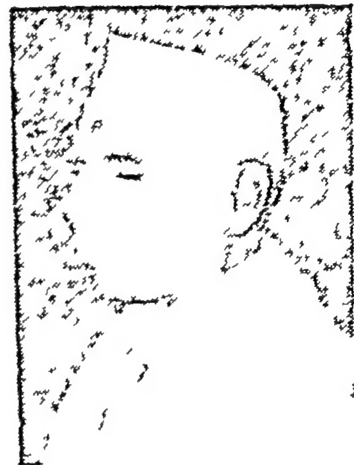
सम्पादक-मण्डल



श्रीचन्द सुराना—प्रबन्ध-सम्पादक



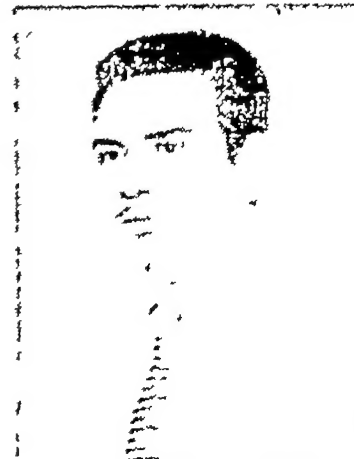
डॉ० चन्दनलाल पाराशर

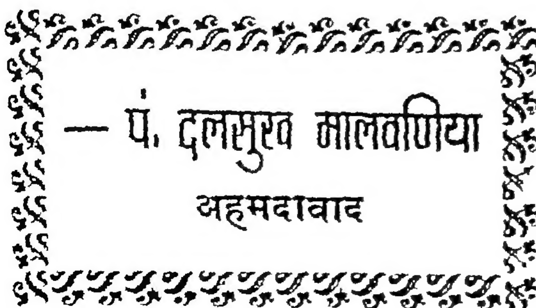


प० चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी



श्रीप्रतापचन्द जैन, आगरा





सम्पादकीय

सामान्यत मनुष्य जन्म पर उत्सव मनाता है और मृत्यु पर शोक ! पर तत्त्व-चिन्तको की कल्पना मे दोनो ही उत्सव हैं। जन्म कथा का प्रारम्भ है, मृत्यु उपसहार ! जिस प्रकार मन्दिर की शोभा का चरमरूप कलश मे अभिव्यक्त होता है, वैसे ही जीवन-मन्दिर की चरम शोभा मृत्युरूप कलश द्वारा प्रकट होती है। इसलिए मृत्यु, जीवनभर की कृतार्थताओ का एक लेखामात्र माना जा सकता है।

मृत्यु और निर्वाण समानार्थक शब्द नही हैं, दोनो की ध्वनि, सकेत और दृष्टियाँ बहुत भिन्न हैं। यद्यपि 'निर्वाण' का अर्थ 'दीपक' का विराम हो जाना मान लिया है, पर निर्वाण शब्द अपनी इस अर्थाभिव्यक्ति के लिए कसमसाने लगता है। मृत्यु सिर्फ पटाक्षेप है, वस्त्रपरिवर्तन है, किन्तु निर्वाण जन्मपरम्परा का समूल उच्छेद सूचित करता है। वासना और विकारो का सर्वथा क्षय, जन्म-जन्म से चले आ रहे रागात्मक सस्कारो का सम्पूर्ण-विलय 'निर्वाण' की ध्वनि है। और साथ ही इसमे परम ज्योति के अनावरण की सूचना भी है। 'निर्वाण' की यह सूचना बडी विचित्र है। पूर्व सस्कारो का सम्पूर्ण-निर्वाण (विलय) और चिन्मयज्योति का निरावरण रूप-निर्वाण-निर्वाणशब्द की ये दोनो अर्थाभिव्यक्तियाँ—इसके वैशिष्टय का दर्शन करा देती हैं। भगवान् महावीर का निर्वाणदर्शन या निर्वाणसाधना निर्वाण शब्द के इन दोनो अर्थों को जागृत करती है—उनकी साधना का सम्पूर्ण प्रयोजन भी इतना मात्र है—रागात्मक सस्कारो का सम्पूर्ण क्षय कर डालो, और अपने आपको, अपने ज्योतिर्मय रूप को निरावरण कर दो, प्रकट कर दो ! आवरण व्यर्थ है, निरावरण-धर्म है।

आज हम उस निर्वाणवादी परम पुरुष की २५वी निर्वाणशताब्दी मना रहे हैं। हमे गौरव है, हमारे इस समारोह मे सम्पूर्ण देश की जनता, विश्व का प्रबुद्ध जनमत श्रद्धा के साथ सहयोगी वन रहा है और आज समग्र मानवजाति के लिए महावीर के सदेशो की कल्याणकारिता सार्थक हो रही है।

निर्वाणशताब्दी की पावन स्मृति मे भारत के पूर्वांचल मे जहाँ महावीर का जन्म हुआ, महावीर जहाँ की मिट्टी मे खेले थे, जिन जगलो और नदीतटो पर महावीर ने साधना की थी, गगा के उस तटवर्ती प्रदेश मे जहाँ महावीर की पतित पावनी वचन-गगा प्रवाहित हुई थी, जिस विदेहभूमि मे—विदेहभाव की उत्कृष्ट साधना करते हुए अपने आपको निरावरण कर परमनिर्वाण प्राप्त कर स्वय के ज्योतिर्मय रूप को प्रकट किया था—उस ज्ञान-सूर्योदय वाले प्रदेश मे आज महावीर का सच्चा स्मारक बन रहा है, उनके आदर्शों और उपदेशो का एक जीता-जागता नगर बस रहा है—वीरायतन। वीरायतन—आने वाली शताब्दी मे महावीर की आत्मा का ज्योतिर्मान केन्द्र होगा। इस पुनीत निर्माण मे आज दत्तचित्त हैं—मनीषीप्रवर राष्ट्रसत उपाध्याय श्रीअमरमुनि।

'श्री अमर भारती' भगवान् महावीर की निर्वाणशताब्दी के प्रसग पर महावीर का निर्वाण-सदेश अपने पाठको के समक्ष प्रस्तुत कर रही है, वहाँ महावीर का ज्योतिर्मान

स्मारक वनाने के लिए देश के उदार-विचारको और कर्मशक्ति को आह्वान करती है 'वीरायतन' के लिए ।

प्रस्तुत विशेपाक—'निर्वाणविशेपाक के रूप मे पाठको के हाथो मे है । इस का हर पृष्ठ और हर पक्ति निर्वाण की भावना एव निर्वाण की ध्वनि लिए हो, यह हमारा प्रयत्न रहा है । सामग्री का चयन भी इसी दृष्टि से किया गया है कि पाठक इसमे सामयिकता के साथ-साथ शाश्वतता का भी आनन्द अनुभव करें ।

निर्वाणविशेषाक की कल्पना तो सहज ही थी, इसको प्राणवान वनाने का श्रेय है—उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी के एकनिष्ठ सेवाभावी सत श्री अखिलेशमुनिजी को । वे ही इस आयोजन के सच्चे प्राणदाता कहे जा सकते हैं । परिकल्पना, व्यवस्था और सामग्री-चयन तक उनका अनवरत सहयोग रहा है । श्रीअमरभारती-परिवार उनके उदात्त अध्यवसाय के प्रति कृतज्ञ है ।

हम अपने आदरणीय विद्वानो, मुनिवरो एव साथी लेखको का स्नेह एव सहयोग पा कर कृतार्थ हैं । आशा से अधिक, काफी अधिक सामग्री आई । लगभग दो विशेपाको की सामग्री तो सुरक्षित रख दी गई है । इसमे उपयोग उन्ही रचनाओ का हुआ है—जो मुख्यत निर्वाणसाधना की दृष्टि लिए हुए थी और जो समय पर प्राप्त हो गई । प्राप्त सामग्री को सूक्ष्मदृष्टि से देखना, व्यवस्थित करना और सवर्धन-परिवर्तन के साथ पत्रिका के स्तर के अनुरूप देना, यह सव श्रेय कर्मठ एव विचारक मुनिश्री नेमिचन्द्रजी को है । इस पत्रिका के वे प्राण-प्रतिष्ठापक हैं । लगभग तीन मास से वे १६-१८ घटा सतत श्रम करके इस विशेषाक के रूप को निखारने मे जुटे हैं । हम उनके प्रति शाब्दिक आचार प्रकट करें तो उनकी सतत कर्मयोग-साधना का एक मजाक हो जायेगा, उनका तो सव कुछ है ही । मुनि श्रीसमदर्शीजी, विद्वद्वर श्रीदलसुखभाई विचारो के धनी हैं । लेखनी के जादूगर हैं । हम तो इसी प्रकार उनके निरपेक्ष सहयोग की कामना करते हैं ।

हमारे सम्पादन-सहयोगी श्री प्रतापचन्दजी जैन, श्री महावीरप्रसादजी जैन, प० चन्द्रभूषणजी त्रिपाठी आदि हैं । गज्यो का वहुमूल्य मार्गदर्शन एव सेवाभाव युक्त सहयोग मिला है, जिसके लिए श्री अमरभारती-परिवार कृतज्ञ रहेगा ।

पत्रिका के लिए अर्थसाधन जुटाने मे विज्ञापनो का अपना महत्त्व है । आज की स्थिति मे विज्ञापन के विना पत्र-पत्रिकाएँ चल नही सकती—यह सच्चाई है । हम उन समस्त विज्ञापनदाताओ के प्रति आभार व्यक्त करते हैं । विज्ञापनसग्रह करने मे—वीरायतन वालिका सघ, राजगृह तथा श्रीयुत प्रेमचन्दजी जैन आगरा का जो आत्मीय सहयोग मिला है उसके लिए आभारदर्शन । पत्रिका को इतने कम समय मे इतनी सुन्दर छापने और सभी दृष्टियो से समर्थ वनाने मे श्रीप्रेमचन्दजी जैन (प्रेम इलैक्ट्रिक प्रेस) का अनुकरणीय सहयोग सदा मिलता रहा है, मिलता रहेगा, यह विश्वास है ।

अनेक कठिनाइयो, समस्याओ और समय की कमी के वावजूद हजारो श्रद्धालु-भक्तो के सहयोग से हम समस्याओ की वेतरणी को पार कर निर्वाण-साहित्य के नन्दन वन मे आ पहुँचे और अपने प्रिय पाठको को निर्वाण-विशेपाक का अमर फलसमर्पित कर रहे हैं ।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'



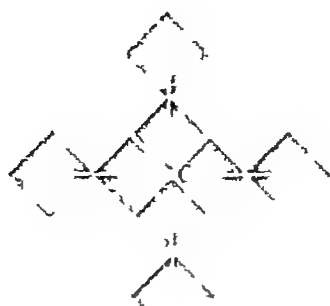
अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड—जीवनरेखा

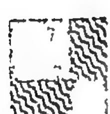
द्वितीय खण्ड—सिद्धान्त

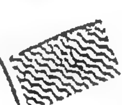
तृतीय खण्ड—उपदेश

चतुर्थ खण्ड—वीरायतन

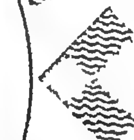


















संदेश



उपराष्ट्रपति, भारत
नई दिल्ली
Vice President
India
अक्तूबर २७, १६७४

प्रिय महोदय,

आपका पत्र दिनांक १४ अक्तूबर १६७४ का प्राप्त हुआ, धन्यवाद ! मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि आप श्री अमर भारती मासिक पत्रिका का भगवान् महावीर की २५वी निर्वाणशताब्दि के उपलक्ष मे एक विशेषाक प्रकाशित करने जा रहे हैं। मैं आपके इस विशेषांक की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभ कामनायें भेजता हूँ।

आपका
B D Jatti
(ब० दा० जत्ती)



No. 41/MA-1/74
सिंचाई व कृषि मन्त्री
भारत सरकार
नई दिल्ली

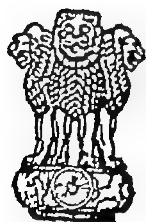
Minister of Agriculture
Government of India
New Delhi 110001

दिनांक 18 अक्टूबर 74

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा के तत्वावधान मे श्रीअमरभारती पत्रिका का महावीरजी के २५००वें निर्वाणदिवस के उपलक्ष मे एक निर्वाण-विशेषाक प्रकाशित किया जा रहा है, यह ज्ञात हुआ।

आशा है, विशेपाक मे महावीरजी के सिद्धान्तो एवम् उपदेशो का समुचित दिग्दर्शन होगा। विशेपाक उपयोगी सिद्ध हो।

—जगजीवनराम



नौवहन और परिवहनमन्त्री
नई दिल्ली
(भारत)

नवम्बर १३, १९७४

यह हर्ष की वात है कि 'श्री अमरभारती' का 'महावीर-निर्वाण-विशेपाक' भगवान् महावीर की २५वी निर्वाणशताब्दी के अवसर पर प्रकाशित हो रहा है। आशा है, इस शुभ अवसर पर पत्र भगवान् महावीर के सन्देश एव उपदेश को जन-जन तक पहुँचाने मे अपना सहयोग देगा। पत्र की सफलता हेतु मेरी हार्दिक शुभ-कामनाएँ हैं।

—कमलापति त्रिपाठी



H/68200/Cm
विधान भवन
लखनऊ
20 अक्टूबर, 1974

प्रिय श्री त्रिपाठी,

भगवान महावीर की 25वी निर्वाणशताब्दी के शुभ अवसर पर प्रकाशित होने वाले विशेषाक "महावीर-निर्वाणविशेषाक" के सफल प्रकाशन एव सम्पादन हेतु मेरी शुभ कामनायें हैं ।

आपका
हेमवतीनन्दन बहुगुणा

RAJ BHAVAN
MADRAS-22
28-16-1974

Message

I am glad to know that a special number of "Amar Bharti" will be published to mark the 2500th Nirvan Anniversary of 'MAHAVIR' "Ahimsa is the most important tenet of Jainism. Bhagwan Shri Mahavir's immortal message needs wide propagation specially at a time when violence is resorted to for the solution of problems

K K Shah
Governor of TAMILNADU

अर्जुनसिंह
शिक्षामन्त्री
मध्य प्रदेश

No 2248/ME/74
भोपाल
दिनांक 11-11-1974

मुझे यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता है कि भगवान् महावीर की 25वी निर्वाण शताब्दी के पुण्यावसर पर श्रमण-सस्कृति की प्रतिनिधि पत्रिका "श्रीअमरभारती" ने महावीर-निर्वाण-विशेषाक के प्रकाशन का निश्चय किया है। श्रीअमरभारती ने राष्ट्रसत कविरत्न श्रीअमरमुनि महाराज के उदात्त एव मानवीय विचारो के प्रचार-प्रसार मे उल्लेखनीय कार्य किया है। मुझे विश्वास है कि "महावीर-निर्वाण-विशेषाक मे भगवान् महावीर के व्यक्तित्व एव कृतित्व के अतिरिक्त उनके आध्यात्मिक विचारो मे सम्वन्धित सामग्री का मूल्यवान सकलन होगा। आज विश्व मे जब हिंसा, द्वेष, लोभ इत्यादि की आसुरी शक्तियाँ प्रवल हो उठी हैं, भगवान् महावीर के अहिंसा, करुणा, मैत्री और अपरिग्रह के मूलभूत सिद्धान्त मानवकल्याण के एकमात्र आधार हैं।

मुझे आशा है कि विशेषाक भगवान् महावीर के जीवनदर्शन को जन-जन तक पहुंचाने मे सहायक सिद्ध होगा।

—**अर्जुनसिंह**

राजमंगल पाण्डे
परिवहन, न्याय एव श्रम मत्री

विधान भवन
लखनऊ
दिनांक 5 नवम्बर, 1974

मुझे जान कर प्रसन्नता हुई सन्मति ज्ञानपीठ के तत्वाववान मे राष्ट्रसत कविरत्न उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी महाराज के मौलिक एव उदात्त विचारो का प्रचार-प्रसार करने हेतु आगरा से श्रीअमरभारती नाम की मासिक पत्रिका 12 वर्षों से प्रकाशित हो रही है और अपना विशेषाक—भगवान् महावीर की 25वी निर्वाण-शताव्दी के उपलक्ष मे महावीर-निर्वाण-विशेषाक प्रकाशित करने जा रही है।

आशा है कि इस विशेषाक द्वारा महावीरजी के आदर्शों एव उनकी शिक्षा का जन-जन मे प्रचार एव प्रसार होगा।

—**राजमंगल पाण्डे**

CHIEF MINISTER
Government of Himachal Pradesh
SIMLA-2

संदेश

मुझे यह जान कर अति हर्ष हो रहा है कि 'अमर भारती' महावीरजी की पच्चीसवी निर्वाण-शताब्दी के अवसर पर विशेषाक प्रकाशित करने जा रहा है।

महावीर अहिंसा और मानवता का सदेश प्रसारित कर जनकल्याण के कार्य को समर्पित रहे। मुझे विश्वास है कि अमर भारती मासिक उनके जीवन एव दर्शन पर प्रकाश डालकर उनके विचारो के व्यापक प्रचार-प्रसार मे योग देगा।

मैं विशेषांक की सफलता की कामना करता हूँ।

य० सिं० परमार
यशवन्तसिंह परमार
मुख्य-मन्त्री



श्री अमर भारती भगवान महावीर निर्वाण विशेषांक


महावीर



महावीर-वन्दना

(नंदी सूत्र-कृत मंगलाचरण)

जयइ जगजीवजोणी-वियाणओ जगगुरू जगाणदो।
जगणाहो जगबधू जयइ जगप्पियामहो भयवं ॥
जयइ सुयाणं पभवो, तित्थयराण अपच्छिमो जयइ।
जयइ गुरु लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ॥
भद्दं सव्वजगुज्जोयगस्स, भद्दं जिणस्स वीरस्स।
भद्दं सुरासुरनमंसियस्स, भद्दं धुयरयस्स ॥

सम्पूर्ण जगत् एव समस्त जीवयोनियो के (रहस्य के) विज्ञाता, जगद्गुरु, प्राणिमात्र को आनन्द देने वाले, चर-अचर प्राणियो के नाथ, विश्वबन्धु, एव जगत्-पितामह भगवान की जय हो। समग्र श्रुतज्ञान के मूलस्रोत, वर्तमान अवसर्पिणी काल के अन्तिम (चौवीसवे) तीर्थंकर, समस्त लोको के गुरु, महान् आत्मा (विश्वपूज्य), महावीर की जय हो।

समस्त विश्व को अपने ज्ञानालोक से प्रकाशित करने वाले, रागद्वेष के विजेता, महान् वीर, देवो और दानवो द्वारा अभिवन्दित, कर्ममल से रहित, परम पवित्र भगवान् महावीर हमारा भद्र करने वाले हैं, अर्थात् समस्त लोक का कल्याण करने वाले हैं।

●



वीर-स्तुति

से सव्वदंसी अभिभूय नाणी, निरामगंधे धिइमं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्वजगंसि विज्ज, गंथा अतीते अभए अणाऊ ॥

से भूइपण्णे अणिए अचारी, ओहंतरे धीरे अणंतचक्खू ।
अणुत्तरे तप्पइ सुरिए वा, वइरोयणिंदे व तम पगासे ॥

अणुत्तरे धम्ममिणं जिणाण, नेया मुणी कासव आसुपन्ने ।
इंदेव्व देवाण महाणुभावे, सहस्सणेता दिविणं विसिट्ठे ॥

से वीरिएणं पडिपुण्णवीरिए, सुदंसणे वा नगसव्वसेट्ठे ।
सुरालए वासिमुदागरे से, विरायए णेग—गुणोववेए ॥

अणुत्तरग्गं परम महेसी, असेसकम्म च विसोहइत्ता ।
सिद्धिगते साइमणंतपत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेण ॥

सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स, पवुच्चइ महतो पव्वयस्स ।
एतोवमे समणे नायपुत्ते, जाई-जसो-दंसण-णाण-सीले ॥

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ, चन्दोव्व ताराण महाणुभावे ।
गन्धेसु वा चन्दणमाहु सेट्ठं, एवं मुणीणं अपडिन्नमाहु ॥

जहा सयभू उदहीण सेट्ठे, नागेसु वा धरणिंदमाहु सेट्ठं ।
खोओदए वा रसवेजयंते, तवोवहाणे मुणिवेजयंते ॥

हत्थीसु एरावणमाहु णायं, सीहो मियाणं सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे, निव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ॥

जोहेसु णाए जह वीससेण, पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु ।
खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के, इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ॥

—सूत्रकृतांग सूत्र—'वीरस्तुति'

भगवान् महावीर सब पदार्थों के ज्ञाता एव द्रष्टा थे, काम, क्रोधादि अन्तरग शत्रुओ को जीत कर वे केवल ज्ञानी बने थे, वे निर्दोष चारित्र का पालन करते थे, अटल वीर पुरुष थे, अपने आत्मस्वरूप मे स्थिर थे, सारे जगत मे सर्वोत्कृष्ट अध्यात्मविद्या के पारगामी थे, समस्त परिग्रहो के त्यागी, निर्भय, मृत्युञ्जयी एव अजर-अमर थे।

उनकी प्रज्ञा विश्वमंगलकारी थी, वे अप्रतिबद्ध-विहारी थे, ससारसागर को पार करने वाले थे, उपसर्ग-परिषहो को सहने मे धीर, अनन्त पदार्थों के साक्षात् द्रष्टा, ज्ञाता, सूर्यसम उत्कृष्ट तेजस्वी, वैरोचन अग्नि के समान अज्ञानान्धकार नष्ट कर ज्ञान के प्रकाशक थे।

वे ऋषभदेव आदि प्रचीन तीर्थकरो द्वारा प्रचारित अहिंसादि धर्म के पुनरुद्धारक मुनि थे, काश्यपवश के तेजस्वी सूर्य और महाप्रभावशाली, विलक्षण ज्ञानी थे। देवलोक मे असख्य देवो पर नेतृत्व करने वाले इन्द्र के समान वीरप्रभु भी अपने युग के सर्वप्रधान धर्मनेता थे।

वे वीर्याचार मे प्रतिपूर्ण वीर्य (शक्ति) वान थे, सुमेरुपर्वत की तरह सर्वश्रेष्ठ थे। स्वर्गवासी देवो के लिए प्रमोद के धाम थे, सत्य, शील आदि अनेक गुणो से सुशोभित थे।

परम महर्षि महावीर ने समस्त कर्मों को सदा के लिए निर्मूल करके लोक के अग्रभाग मे स्थित, सर्वप्रधान, सादि, अनन्त, उत्तम सिद्धिगति को प्राप्त कर लिया। फलत. अपने ज्ञान, दर्शन एव शील के द्वारा कर्म-बन्धनो से मुक्ति प्राप्त कर ली।

ससारप्रसिद्ध पर्वतराज सुमेरु की तरह भ० महावीर भी तीन लोक मे महायशस्वी थे। धर्मसाधना मे अतीव उग्रश्रम करने वाले ज्ञात-पुत्र महावीर जाति, यश, दर्शन, ज्ञान और शील आदि सद्गुणो मे सर्वश्रेष्ठ थे।

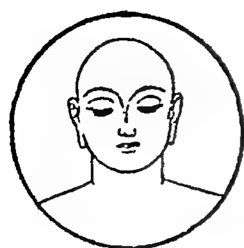
जिस प्रकार शब्दो मे मेघगर्जना का शब्द अनुपम है, तारामण्डल मे चन्द्र महाप्रभावशाली है, सुगन्धित पदार्थों मे बावना चदन श्रेष्ठ है, उसी प्रकार भूमडल के समस्त मुनियो मे इहलोक-परलोक की वासना से सर्वथा मुक्त भ० महावीर श्रेष्ठ थे।

जिस प्रकार सब समुद्रो मे स्वयभूरमण प्रधान है, नागकुमार जाति के भवनपति देवो मे धरणेन्द्र प्रधान है, सर्वरसो मे ईक्षुरस प्रधान है, उसी प्रकार तपश्चरण की साधना के क्षेत्र मे भ० महावीर सर्वप्रधान थे।

जिस प्रकार हाथियो मे इन्द्र का ऐरावत हाथी मुख्य है। पशुओ मे सिंह मुख्य है, नदियो मे गगानदी मुख्य है, पक्षियो मे वेणुदेव गरुडपक्षी मुख्य है, उसी प्रकार निर्वाणवादी उपदेशको मे ज्ञातपुत्र महावीर मुख्य थे।

जिस प्रकार वीर योद्धाओ मे वासुदेव महान् है, फूलो मे अरविन्द कमल महान् है, क्षत्रियो मे चक्रवर्ती महान् है, उसी प्रकार ऋषियो मे श्री वर्द्धमान भगवान् महावीर सबसे महान् थे।

—०—



भगवान महावीर

के

चरणों में

हे ज्योतिपुंज जय वीर! सत्य का ज्ञाता द्रष्टा तू।
हे महाप्राण! मूर्च्छित जनमन का जीवन-स्रष्टा तू॥
हे जिन! प्रभात तू सघन तमस् से घिरती संसृति का।
हे निर्विकार! परिशोधक मानवता की संस्कृति का॥



तू ने अपने अन्तर्तम का सोया देव जगाया।
तू ने नर से नारायण तक अपने को पहुँचाया॥
सीमित नरतन मे असीम की ज्ञानचेतना जागी।
जन्म-जन्म की धूमिल कलुषित मोह-चेतना भागी॥



तेरी वाणी जगकल्याणी, प्रखर सत्य की धारा।
खण्ड-खण्ड हो गई दम्भ की, अन्धाग्रह की कारा॥
'सत्य एक है', उस पर 'तेरे-मेरे' का क्या अंकन ?
विश्व-समन्वय कर देता है, तेरा यह उद्बोधन॥



तू उन अन्धो की आँख भटकते ठोकर खाते जो।
तू उन अवलो की लाठी, प्रताड़ित अश्रु बहाते जो॥
मानवता के महामन्त्र का दाता तू गुरुवर है।
अस्तंगत जो कभी न होगा, ऐसा तू दिनकर है॥



जाति-पथ-भेदो से ऊपर, तू सवका सब तेरे।
देश-काल वह कौन तुझे जो सीमाओ मे घेरे॥
तू अनन्त है, अजर अमर है तेरा जीवन-दर्शन।
अखिल विश्व का तव चरणो मे हो निर्वाणगामी वन्दन॥

—उपाध्याय अमरमुनि

वीर-वन्दना



सुप्रसिद्ध सगीतकार श्री प्यारे लाल 'सरस' जैनकाव्य की रसधारा के प्रमुख गायक हैं ।



ए वीर तेरी वन्दना ।
बर्बर था दानव था जगती का हर मनुष्य ।
अन्धकार मे विलीन हो चुका था भविष्य ।।
सम्मति का दीप जला दूर की विडम्बना

अनेकान्त की अमूल्य देन दी समष्टि को ।
अहिंसा सुपाठ पढा सुखी किया सृष्टि को ।।
जन-जन मन हर्षाया आई नव चेतना

स्वयं—जीत जैन है, न फक्त नामधारी ।
धर्म है विवेक ही, न रूढी दुखकारी ।।
भटकी मानवता को दी सुबोध सान्त्वना

धन्य मात त्रिशला है धन्य तात सिद्धारथ ।
धन्य नगर वैशाली धन्य भूमि भारत ।।
धन्य शिष्य गौतम हे धन्य सती चन्दना

रत्नत्रय—पालन से मानस की शुद्धि हो ।
तेरे सत्पन्थ चलूँ प्रभू यही बुद्धि हो ।।
'सरस' जन्म सार्थक हो तेरी कर अर्चना

—प्यारेलाल श्रीमाल 'सरस पंडित', उज्जैन

निर्वाणवादी महावीर की जन्मभूमि :

—प्रमोद मधुर, अम्बाला

इन दिनो भगवान् महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें धूमधाम से मना रही है। उनके जन्म के सम्वन्ध मे वहुत से विद्वानो के भिन्न-भिन्न विचार हैं। मगर इन तथ्यो के आधार पर हम कह सकते हैं कि महावीर का जन्म वैशालीराज्य के कुण्डग्राम मे हुआ था। महावीर अव मात्र पुराणो की गाथा न रह कर इतिहास की घटनाओो का क्रम प्रमाणित हो गये हैं।

डा० हीरालाल जैन ने लिखा है—प्राचीन वैशाली के समीप ही एक वासु-कुण्ड नामक ग्राम है, जहाँ के निवासी परम्परा से एक स्थल को महावीर की जन्म-भूमि मानते आये हैं और उसके प्रति पूजाभाव से उस पर कभी हल नही चलाया गया। समीप ही एक विशाल कुण्ड है, जो अब भर गया है और जोता-बोया जाता है। वैशाली की खुदाई मे ऐसी प्राचीन मुद्रा मिली है, जिसमे "वैशाली नाम कुण्डे" ऐसा उल्लेख है।

मगर किसी भूमि का एक अज्ञात अवधि से जोता-बोया नही जाना, कोई विशेप महत्व नही रखता। तव गाँवों मे गो-चरभूमियाँ रखने का प्रचलन था, जिस पर सामूहिक अविकार होता था। इन्हे जोता-बोया नही जाता था और ऐसे घास-फूस प्राकृतिक रूप मे उपजते रहते थे, जो पशुओ की उदर पूर्ति मे साधन बनते थे। आज भी गाँवो मे ऐसे चरागाह मिलेंगे।

महान इतिहासकार श्री विसेन्ट स्मिथ का "जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी (१९०२) पृष्ठ २८३ पर उल्लेख है कि "वाणिज्यगाम वाज द रेसीडेन्स आफ महावीर, द ग्रेट प्रोफेट आफ जैन्स" अर्थात् भगवान् महावीर का निवास-स्थान वाणिज्यग्राम था। यह ग्राम वैशाली से दो-अढ़ाई मील दूर स्थित है। मगर इसकी सत्यता पर विश्वास नही किया जा सकता। आगे चल कर श्री विसेन्ट स्मिथ "एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन्स एण्ड एथिक्स" जि०, १ पृष्ठ ५६८ पर लिखते

हैं—"आर्कियालाजिस्ट्स हैव नाट सार फार जैन रिमैन्स वाज द साइट एण्ड नथिंग इन देअर रिपोर्ट वुड लीड द रीडर टू सपोज देट द वसाढ (वैशाली) एरिया वाज द वर्थ प्लेस आफ जैनिज्म।"

डिक्शनरी आफ पाली प्रापरनेम्स, भाग १, पृष्ठ ६१६ पर लिखा है—नाटिका—ए लौकेलिटी इन वज्जि कन्ट्री द बिटवीन कोटिग्राम एण्ड वैशाली।

कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, जि० १, पृष्ठ १५ पर लिखा है—जस्ट आउट साइड वैशाली ले द सबर्ब कुडग्राम।

भगवती सूत्र मे निम्न वर्णन मिलता है—ब्राह्मणकुडग्राम की पश्चिम दिशा मे क्षत्रिय-कुंडग्राम था। (श० उ० ३३-८)

—:०—



धम्मो मंगलमुक्किट्ठ अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि त नमंसंति, जस्स धम्मे सयामणो॥

धर्म उत्कृष्ट मगल है, वह अहिंसा, सयम और तपरूप है। जिसका मन सदा धर्म मे लीन रहता है, उसे देव भी नमस्कार करते हैं।

सोही उज्जूयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ।
निव्वाणं परम जाइ, घयसित्तं व्व पावग॥

जो सरलात्मा होता है, उसी की आत्मशुद्धि होती है। शुद्ध आत्मा मे ही धर्म टिकता है। से घी जैसे सीची हुई अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है, वैसे ही धर्म से सिक्त आत्मा ही परम निर्वाण को प्राप्त करता है।

एकांकी नाटक

निर्वाणसाधना के गुणों से युक्त महावीर वर्धमान



डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉ० रामकुमार वर्मा जाने माने कथाशिल्पी और नाटककार हैं। उनकी शैली में सरसता और सजीवता है। महावीर वर्धमान नाटक में भ० महावीर में वाल्यकाल से ही अहिंसा, दया, समता आदि निर्वाणसाधना के बीजो के प्रवेश होने का रोचक घटनाक्रम है।

पात्र (प्रवेशानुसार)

१—विजय } महावीर वर्धमान के हमजोली सखा
२—सुमित्र }
३—महावीर वधमान—वैशालीनरेश सिद्धार्थ के कुमार
४—दो नागरिक—कुंडग्राम के निवासी

स्थान—वैशाली नगरी मे गडक नदी के तट पर क्षत्रियकुंडग्राम। उसके समीप एक उपवन। नाना प्रकार के वृक्षो और लताओ की शोभा। वसन्त के फूल और फल।

समय—प्रात काल का प्रथम प्रहर। पक्षियो का कूजन।

स्थिति—परदा उठने पर नैपथ्य की दाहिनी ओर से एक वाण आता है। साथ ही नेपथ्य मे 'साधु' शब्द गूंजता है। फिर वाई ओर से वाण आता है और फिर 'साधु' शब्द गूंजता है। कुछ ही क्षणो वाद दोनो दिशाओ से दो क्षत्रियकुमार आते हैं। एक का नाम विजय है, दूसरे का सुमित्र। दोनो के हाथो मे धनुप-वाण हैं। केश खुले हुए, अगो पर पीत वस्त्र, पैरो मे उपानह। वे दोनो आखेटक वेश मे है।

विजय—भाई सुमित्र ! तुमने मेरे बाणो की गति देखी ? लक्ष्य-वेध करने मे कितना आनन्द आता है। ऐसा लगता है, जैसे मेरा प्रत्येक बाण सूर्य की किरण है, जिसके छूटते ही क्षितिज के बादलो का रूप बिगड जाता है और पक्षियो का कलरव जय-गान करने लगता है।

सुमित्र—और मेरे बाण की शाति तो जैसे विद्युत् की शाति को भी लज्जित करती है। मैं जब लक्ष्य-वेध करता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि शत्रुओ के राज्यो की जो सीमाए सीधी थी, वे टेढी हो कर सकुचित हो गयी हैं और मेरे बाण शत्रुओ के हृदय मे आतक की आधी उठा रहे हैं।

विजय—यह तो ठीक है किन्तु अब कुमार वर्धमान ने लक्ष्य-वेध पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।

सुमित्र—क्षत्रियकुमार हो कर लक्ष्य-वेध पर प्रतिबन्ध ?

विजय—हाँ, क्षत्रियकुमार हो कर लक्ष्य-वेध पर प्रतिबन्ध ! वे कहते हैं कि लक्ष्य-वेध मे कुशलता अवश्य प्राप्त करो, किन्तु इस लक्ष्य-वेध से किसी प्रकार की हिंसा न हो।

सुमित्र—यदि लक्ष्य-वेध मे हिंसा-अहिंसा का ध्यान रखा जाय तो लक्ष्य-वेध का कौशल ही क्या रहा ! यह तो वैसा ही हुआ कि शत्रु को ललकारो, किन्तु कठ से ध्वनि न निकले।

विजय—यदि इस कु डग्राम के गणराज्य मे रहना है तो ऐसा ही करना पडेगा। अब यही देखो, उस पेड मे कितने मधुर फल लगे हुए हैं। इच्छा होती है कि अपने बाण से लक्ष्य ले कर सारे मीठे फल गिरा लें। सुगधित फूलो को झकझोर कर भूमि पर गिरा लें और माला बना कर अपनी प्रियतमा के कठ मे डाल दें। किन्तु-किन्तु कुमार वर्धमान ऐसा नही चाहते।

सुमित्र—क्यो ? क्यो नही चाहते ? फूलो और फलो के गिराने मे क्या हानि है ?

विजय—वे तो इसे हानि ही मानते हैं। कहते हैं कि वृक्षो मे चेतना है, जीवन है। वे फूलते हैं, फलते हैं। उन पर प्रहार करोगे तो हिंसा होगी। यदि लक्ष्य-वेध करना है तो जड पदार्थों पर करो, जिनमे चेतना नही है।

सुमित्र—जड पदार्थों मे तो पत्थर है, जिसमे चेतना नही है। वे वर्षों से एक ही दशा मे पडे रहते हैं, किन्तु पत्थरो पर बाण चलाओगे तो उनकी धार कु ठित नही होगी ? फिर लक्ष्य-वेध का क्या कौशल रहा ? सोचो समझो। उडते हुए पक्षी को बाण से न गिराओ, किसी हिंस्र पशु का भी लक्ष्य न लो। फिर तो धनुष-बाण हमारे शस्त्र नही रहे, हाथ के आभूषण हो गये।

विजय—एक वार तो वे वडे कौतुक की वात कह रहे थे।

सुमित्र—कैसे कौतुक की वात ?

विजय—कहते थे कि तुम्हारे सामने पाँच-पाँच लक्ष्य हैं, तुम इनमे से एक का भी वेध नही कर सकते ? उनका लक्ष्य लो।

सुमित्र—अच्छा पाँच-पाँच लक्ष्य हैं ? सुनूँ तो, वे पाँच लक्ष्य कौन से हैं ?

विजय—वे पाँच लक्ष्य सुनोगे ? वे है—अहिंसा एक, सत्य दो, अस्तेय तीन, अपरिग्रह चार और ब्रह्मचर्य पाच।

सुमित्र—(अट्टाहस कर) ये पाँच लक्ष्य हैं ? किन्तु इनका लक्ष्य लिया कैसे जाता है ? ये स्थूल रूप से तो कही दिखलायी नही देते। फिर इनका लक्ष्य कैसे लिया जाय ?

विजय—भाई, तुम समझे नही। स्थूल वस्तुओ का लक्ष्य-वेध तो कोई भी कर सकता। इस सूक्ष्म लक्ष्य-वेध के लिए दूसरे वाणो की आवश्यकता है।

सुमित्र—अच्छा सुनूँ। वे दूसरे वाण कौन से हैं ?

विजय—वे हैं—सयम, त्याग, क्षमा, प्रायश्चित और तप।

सुमित्र—ये वाण कहाँ मिलेंगे ? और ऐसा लक्ष्य-वेध किस धनुर्वेद मे है ? वन्धु ! यह धनुर्वेद नही है, ज्ञान का रूपक है। और यह किसी क्षत्रिय का गौरव नही है, किसी ब्राह्मण का भले ही हो।

विजय—यहाँ क्षत्रिय और ब्राह्मण की वात नही है, मित्र ! वात है पुरुषार्थ की।

सुमित्र—तो पुरुषार्थ असभव वातो मे नही होता, विजय ! यदि कुमार वर्धमान कहे कि इन्द्रधनुष के रंगो का लक्ष्य-वेध करो तो तुम इन पाँच वाणो से उन रगो का लक्ष्य-वेध कर सकोगे ?

विजय—मुझसे तो सभव नही है और यदि सभव हुआ भी तो पाँच रगो के लक्ष्य-वेध के वाद दो रंग तो शेष वच ही जावेंगे।

सुमित्र—(हँस कर) उनका लक्ष्य-वेध कुमार वर्धमान कर लेंगे। (नेपथ्य की ओर देख कर) अरे, कुमार वर्धमान इसी ओर आ रहे हैं।

विजय—अच्छा ? आ रहे हैं ? अव उनसे लक्ष्य-वेध का रहस्य पूछो।

(सुमित्र और विजय व्यवस्थित होकर सावधान हो जाते हैं। कुमार वर्धमान का प्रवेश। वे अत्यन्त सुन्दर हैं। आकर्षक वेश-भूषा। मुक्त केश, गैरिक उत्तरीय। अधोवस्त्र जैसे ब्रह्मचारी की भाँति कसा हुआ। रत्न-जटित उपानह। हाथो मे धनुष-वाण)।

विजय और सुमित्र—कुमार की जय !

वर्धमान—जय पार्श्वनाथ ! (क्रम से देख कर) विजय ! सुमित्र ! तुम दोनो ने लक्ष्य-वेध का अभ्यास किया ? कहाँ-कहाँ लक्ष्य-वेध किया ?

(दोनो नीचे देखते हुए मौन रहते हैं।)

वर्धमान—तुम दोनो मौन हो। मौन से भी लक्ष्य-वेध होता है। (टहलते हुए) जो अपशब्द कहता है, यदि उसके समक्ष तुम मौन रहे तो तुम्हारे शान्त हृदय का तीर अपशब्दो का चिह्न भी नही रहने देगा।

सुमित्र—जिस तीर का नाम आप ले रहे है, वह क्षत्रियो के धनुर्वेद मे नही है, कुमार !

वर्धमान—क्षत्रियो के धनुर्वेद मे ? सुमित्र ! वह क्षत्रियो के धनुर्वेद मे ही है। क्षत्रिय का अर्थ जानते हो, क्या है ? क्षत से—हिंसा से बचा सके। और जो हिंसा से—क्षत से बचा सके, रक्षा कर सके, वही क्षत्रिय है।

सुमित्र—तो आपने हिंसा के भय से इन स्थूल बाणो से लक्ष्य-वेध तो किया न होगा।

वर्धमान—अवश्य किया है। मैं स्थूल बाणो मे भी विश्वास रखता हूँ। और उनसे लक्ष्य-वेध करता हूँ। मिट्टी के शिखर बना कर उन्हें बाणो से वेधता हूँ। सूखे पेडो पर चिह्न बनाकर उन्हें धराशायी करता हूँ। यहाँ के पेड तो हरे-भरे हैं। कितने सजीव हैं। बढ़ते हैं, फूलते हैं, सुगन्धि देते हैं, फल देते हैं। कितनी सुरम्य चेतना है, उनमे। इन्हे बाणो का लक्ष्य बनाना हिंसा है—घोर हिंसा है इसीलिए मैं सूखे पेडो की खोज मे दूर चला गया था।

विजय—आप ससार की प्रत्येक वस्तु को बहुत गहरी दृष्टि से देखते हैं, कुमार ! (सहसा नेपथ्य मे भारी तुमुल होता है। घबराहट के स्वरो [illegible] से गहरी चीख सुनायी देती है

भागो भागो, रक्षा करो !
गजशाला से हाथी छूट गया है
हाय ! वह वृद्ध कुचल गया !
बचो बचो भागो भागो
मार्ग से हटो !
हाय ! रक्षा करो, रक्षा करो !



वर्धमान—(चौंक कर) रक्षा की यह पुकार ?—यही पास से आ रही है। मैं अभी देखता हूँ। (चलने को उद्यत)

विजय—(विह्वलता से) आप न जायें, कुमार ! हम लोग जाते है। ज्ञात होता है कि गजशाला से हाथी छूट गया है। वह लोगो को कुचलता हुआ आ रहा है। कही आप पर भी आक्रमण न कर दे।

वर्धमान—मुझ पर आक्रमण कर दे तो अच्छा है। अन्य व्यक्ति वच जायेंगे।

सुमित्र—नही, ऐसा नही होगा, कुमार ! हमारे हाथो मे धनुष-बाण हैं। आज हमारे हाथो उस हाथी के कुम्भ का ही लक्ष्य-वेध होगा।

विजय—इसके पहले कि वह हाथी लोगो को अपने पैरो से कुचले, मैं अपने वाणो से उसके पैरो की हड्डिया ही टुकडे-टुकडे कर दूँगा।

सुमित्र—विजय ! मैं दाहिनी ओर हूँ, तुम दायी ओर हो जाओ। हाथी के सामने आते ही हम दोनो एक साथ ही उस पर प्रहार करेंगे।

(दोनो ही मच के दाहिनें-बायें हो कर धनुष पर बाण साधते है।)

वर्धमान—(हाथ से वर्जित कर) नही, किसी जीव पर धनुष सधान करना ठीक नही होगा।

सुमित्र—किन्तु वह जीव पागल है, मतवाला है। उससे अन्य जीवो की हानि है।

विजय—और जब एक जीव से अनेक जीवो की हानि हो रही तो उस एक जीव को मारने मे कोई हानि नही है, कोई हिंसा नही है, कुमार !

वर्धमान—जीव अन्तत' जीव ही है। तुम लोग रुको। मैं स्वय अभी जा कर उस हाथी को देखता हूँ।

सुमित्र—हम लोग भी आपके साथ चलें ? आपका कोई अनिष्ट न हो।

वर्धमान—नही, तुम लोग यही रहो। तुम लोग क्रोध मे आकर कुछ अनिष्ट कर वैठोगे। मैं अकेला जाऊँगा।

विजय—कुमार ! आप रुकें। आप अकेले न जायें।

वर्धमान—नही, मैं अकेला ही जाऊँगा।

विजय—हाथी पागल हो गया है। वह आप पर भी आक्रमण कर देगा।

वर्धमान—आक्रमण करे तो कर दे। मैं अकेला ही जाऊँगा। तुम लोग यही रुको। मेरा आदेश मान्य हो।

(कुमार वर्धमान का शीघ्रता से प्रस्थान)

विजय—(कुमार के जाने की दिशा मे देखते हुए) कुमार अकेले ही चले गये। हम लोगो को आदेश दे दिया कि हम लोग यही रुकें। डर है, कही कोई अनिष्ट न हो।

सुमित्र—कुमार का यह साहस अनुचित है। पागल हाथी सामान्य व्यक्ति और

राजकुमार मे कोई अन्तर नही रखेगा। और कुमार उस हाथी को क्या देखेंगे ? जब उनके सामने जीवो पर लक्ष्य लेने की बात ही नही है।

विजय—कुमार ने व्यर्थ ही हमे रोक दिया, नहीं तो आज बाण चलाने मे मेरा कौशल देखते।

सुमित्र—मेरा लक्ष्य-वेध तो अचूक होता। आज तक मेरे बाणो ने लक्ष्य का केन्द्र ही देखा है, उसकी परिधि नही।

विजय—यह तो मैं जानता हूँ, किन्तु आश्चर्य है कि गजशाला से यह हाथी कैसे छूट गया ? क्या महावत उसे नही रोक सका ?

सुमित्र—महावत असावधान होगा, या प्रयत्न करने पर भी वह उसे नही रोक सका होगा। अब कुमार वर्धमान उसे जा कर रोकेंगे।

विजय—वे कैसे रोकेंगे ? धनुष-बाण का प्रयोग तो वे करेंगे नही।

सुमित्र—(हँस कर) धनुष-बाण का प्रयोग क्यो करेंगे ? वे तो कोई सूक्ष्म बाण चलायेंगे। स्थूल बाण से जीव की हत्या होगी और जीव की हत्या ससार की सबसे बडी हिंसा है।

विजय—(सोचते हुए) हिंसा हो या न हो। किन्तु उस हाथी ने क्रोध मे आ कर यदि कुमार पर आक्रमण कर दिया तो बडा अनर्थ होगा।

सुमित्र—(लापरवाही से) कुछ नही। क्या अनर्थ होगा। महाराज सिद्धार्थ हम दोनो को बन्दी-गृह मे डाल देंगे। हम लोग कुमार के साथ क्यो नही गये ? हम दोनो ने उनकी रक्षा क्यो नही की ! इसी अपराध पर वे हम लोगो को बन्दी-गृह मे अवश्य डाल देंगे।

विजय—क्यो डाल देंगे ? हम लोग तो कुमार के साथ जाने के लिए तैयार थे, कुमार ने ही हमे रोक दिया। इसमे हमारा क्या अपराध ?

सुमित्र—अपराध यही कि हम लोगो ने कुमार वर्धमान को हाथी का सामना करने के लिए जाने ही क्यो दिया ? उन्हे रोका क्यो नही।

विजय—मैंने तो उन्हें रोका था। वे रुके ? कहने लगे—हाथी यदि मुझ पर आक्रमण करे तो कर दे।

सुमित्र—जो भी हो। यह अच्छा नही हुआ। कुमार अकेले ही चले गये। वे हम लोगो के साथ जाने पर अनिष्ट की बात कह रहे थे पर हम लोग समझते हैं कि उनके अकेले जाने से ही अनिष्ट हो सकता है।

विजय—क्या कहा जाय। प्रभु पार्श्वनाथ रक्षा करें। कितना अच्छा होता यदि वे हम दोनो को अपने साथ ले जाते। यदि वह हाथी कुमार पर आक्रमण करता तो हमे उनकी रक्षा का अवसर मिल जाता।

सुमित्र—रक्षा तो हम लोग करते ही। फिर हमारे धनुष-बाण का कौशल भी जनता पर स्पष्ट हो जाता। ऐसे ही अवसर की बात है।

(नेपथ्य मे उल्लास की ध्वनि' धन्य है! धन्य है! धन्य है!
कुमार वर्धमान की जय!
कुमार वर्धमान की जय!
कुमार वर्धमान की जय!

विजय—यह जय-ध्वनि कैसी?

सुमित्र—कुमार वर्धमान की जय? वहाँ हाथी निरीह जनता को कुचल रहा होगा, यहाँ कुमार वर्धमान की जय बोली जा रही है?

विजय—(विवश होते हुए) कुछ समझ मे नही आ रहा है।

सुमित्र—चलो, हम लोग चल कर देखें कि बात क्या है।

विजय—कुछ अच्छी ही बात होगी। चलो, हम लोग भी जय-ध्वनि मे सम्मिलित हो।

(चलने को उद्यत होते हैं, तभी दो नागरिक शीघ्रता से आते है।)

एक नाग०—क्षत्रिय-कुमारो को प्रणाम। आप लोग कुमार वर्धमान के साथी हैं?

सुमित्र—हाँ, नागरिक! किन्तु कुमार वर्धमान कहाँ हैं?

दूसरा नाग०—धन्य है कुमार वर्धमान! साधु! साधु! वे जनता के बीच मे हैं? चारो ओर से उन पर पुष्प-वर्षा हो रही है।

विजय—(कुतूहल से) पुष्प-वर्षा! कैसे! किसलिए! और वह हाथी?

सुमित्र—वह पागल हाथी जो गजशाला से छूट कर लोगो को कुचलता हुआ आ रहा था?

पहला नाग०—उसी पागल हाथी को तो कुमार ने एक क्षण मे अपने वश मे कर लिया।

सुमित्र—वश मे कर लिया? कैसे? क्या उन्होने धनुप-बाण का प्रयोग किया?

दूसरा नाग०—नही श्रीमान्! वे धनुष-बाण अवश्य लिये हुए थे, किन्तु उन्होंने धनुष-बाण तो मुझे दे दिया और' हाथी के सामने निर्भयता से पहुँच गये।

विजय—निर्भयता से पहुँच गये? तब हाथी ने क्या किया?

सुमित्र—वह तो दौड़ता हुआ आ रहा होगा?

पहला नाग०—भयानक आंधी की तरह। जैसे एक गरजता हुआ काला बादल भूमि पर उतर आया है। उसके पैरो की धमक से पृथ्वी काप रही थी। वह पेडो को इस तरह उखाड देता था जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को अपनी ओर खीच लेता है और आँखें तो इस तरह लाल थी जैसे दो दहकते हुए अँगारे रखे हो।

विजय—ऐसे भयानक हाथी के सामने पहुँचना कितने साहस का काम था ?

दूसरा नाग०—ओह ! कुमार मे कितना साहस था ! और उनकी आँखो मे कितना आकर्षण था।

पहला नाग०—श्रीमान ! कुमार दोनो हाथ फैला कर उस हाथी के मार्ग में खडे हो गये। जैसे ही हाथी ने क्रोध से अपनी सूँड आगे बढ़ायी, वैसे ही कुमार ने उसे पकड कर अपने सामने कर लिया और उस ओर उस पर पैर रखकर वे विद्युतगति से उसके मस्तक पर बैठ गये। उन्होने न जाने किस तरह हाथी के कानो को सहलाया कि जो गजराज दो क्षण पहले क्रोध से पागल हो रहा था, वह कुमार को अपने मस्तक पर पा कर तुरन्त ही शान्त हो गया।

सुमित्र—(आश्चर्य से) शान्त हो गया ? आश्चर्य ! महान् आश्चर्य।

दूसरा नाग०—शान्त ही नही हो गया, वह अपनी सूँड उठा कर प्रणाम की मुद्रा मे खडा हो गया।

विजय—सचमुच ! कुमार वर्धमान मे अपार साहस और शक्ति है।

पहला नाग०—साहस और शक्ति ही नही, श्रीमान् ! लगता है, उनमे कोई दिव्य विभूति जगमगा रही है। उनको सामने देख कर बडे से बडा क्रोधी शान्त हो जाता है।

दूसरा नाग०—मुझे तो ऐसा लगता है कि कुमार वर्धमान को अपने मस्तक पर बिठलाने के लिए ही वह हाथी मतवाला हो गया था। कुमार जैसे ही उसके मस्तक पर बैठे कि वह शान्त हो गया।

सुमित्र—हम लोग तो बड़े चिन्तित हो रहे थे कि वह मतवाला हाथी कुमार पर भी कहीं आक्रमण न कर दे।

विजय—हम लोग भी कुमार की रक्षा के लिए उनके साथ जाना चाहते थे, किन्तु उन्होंने हमे रोक दिया और अकेले ही दौड पडे।

पहला नाग०—उन्हे किसी से रक्षा की आवश्यकता नही है। वे अकेले ही सैकडो हाथियो का सामना कर सकते हैं।

सुमित्र—वह हाथी अब कहाँ है ?

दूसरा नाग०—कुमार ने उसे फिर गजशाला मे भेज दिया। जैसे ही हाथी शान्त हुआ महावत पीछे से दौडता हुआ आया। कुमार वर्धमान ने उसे हाथी सौंप दिया और वे हाथी से उतर पडे। नगर की जनता जय-ध्वनि करते हुए उन पर पुष्प-वर्षा करने लगी।

पहला नाग०—और हाथी से उतरते ही उन्होने गणपाल को आज्ञा दी कि जो अभागे व्यक्ति हाथी के पैरो से कुचल गए हैं, उनका शीघ्र ही उपचार किया जाय।

विजय—वास्तव मे कुमार वर्धमान नर-रत्न हैं।

दूसरा नाग०—उन्होंने पुष्प-वर्षा रोक कर जनता से कहा कि वे जा कर घायल व्यक्तियो की देख-भाल करें। पुष्प-वर्षा करने की अपेक्षा क्षत-विक्षत व्यक्तियो की सेवा करना जनता का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए।

सुमित्र—तो इस समय कुमार कहाँ है ?

दूसरा नाग०—वे सब को विदा करके आते ही होंगे। उन्होने कहा था कि उनके साथी सुमित्र और विजय हमारी प्रतीक्षा कर रहे होगे। आप ही उनके साथी ज्ञात होते हैं।

विजय—हाँ, हम लोगो का यह सौभाग्य है। (सकेत कर) ये सुमित्र हैं और मैं विजय हूँ। इस शुभ सूचना के लिए अनेक धन्यवाद।

पहला नाग०—तो हम लोग चल रहे हैं। हमे घायलो की सेवा करनी है।

दूसरा नाग०—घायलो मे एक तो मेरा विरोधी रहा है। किन्तु जब वह हाथी के पैरो के नीचे आ गया तो कुमार वर्धमान ने मुझ से कहा कि मुझे उसकी सेवा करनी चाहिए।

पहला नाग०—तो फिर चलो।

दूसरा नाग०—हाँ, चलो। (विजय और सुमित्र) अब हमे आज्ञा दीजिए।

दोनो—जय वर्धमान। (प्रस्थान)

सुमित्र—इन लोगो ने अच्छी सूचना दी। पर यह विचित्र बात अवश्य है कि कुमार वर्धमान ने बिना किसी शस्त्र के उस मतवाले हाथी को वश मे कर लिया।

विजय—विचित्र अवश्य है। सामान्य व्यक्ति तो ऐसी स्थिति मे अपना धैर्य भी खो बैठता है। उन्होने एक क्षण मे हाथी का पागलपन दूर कर दिया। वे किसी अलौकिक शक्ति से विभूषित वीर पुरुष ज्ञात होते है।

सुमित्र—सचमुच वे वीर है। कुमार की इस वीरता की सूचना से महाराज सिद्धार्थ बडे प्रसन्न होगे।

विजय—तो चलो उन्हे सूचना दी जाय।

सुमित्र—इस समय तक तो उन्हे सूचना मिल गयी होगी। फिर भी चलो। हम लोग भी महाराज की प्रसन्नता के भागी बनें। (नेपथ्य की ओर देख कर) अरे, कुमार वर्धमान तो इसी ओर आ रहे हैं।

विजय—हम लोगो के पास पुष्प-वर्षा के लिए पुष्प तो हैं नही। केवल जय-ध्वनि ही कर सकते हैं।

(कुमार वर्धमान का गम्भीर शाति से प्रवेश)

सुमित्र—कुमार वर्धमान की जय!

विजय—कुमार वर्धमान की वीरता की जय!

वर्धमान—(गम्भीर स्वर मे) जय किस वात की? यह तो सामान्य वात है, विजय! पहले अपने आप को जीतना आवश्यक है। जो अपने को जीत लेता है, वह ससार की प्रत्येक वस्तु को जीत लेता है।

सुमित्र—निस्सन्देह आपने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया। अभी दो नागरिक आये थे। उन्होने अभी हमे यह सूचना दी कि आपने बिना अस्त्र-शस्त्र के उस पागल हाथी को अपने वश मे कर लिया। उन्होने कहा कि आपने उन्हे अपना धनुष-वाण देकर निःशस्त्र हो कर हाथी का सामना किया। आपको किसी प्रकार का भय नही हुआ?

वर्धमान—जिसे आत्म-विश्वास होता है उसे किसी प्रकार का भय नही होता। सुमित्र! जिसे भय होता है, वह अपनी शक्ति से अपरिचित रहता है।

विजय—तो आपने विना आक्रमण किये ही हाथी को वश मे कर लिया।

वर्धमान—विजय! मनुष्य यदि हिंसा-रहित है तो वह किसी को भी अपने वश मे कर सकता है। वात यह है कि संसार मे प्रत्येक को अपना जीवन प्रिय है। इसलिए जीवन को सुखी करने के लिए सभी कष्ट से दूर रहना चाहते हैं। जो व्यक्ति अपने कष्ट को समझता है, वह दूसरे के कष्ट का भी अनुभव कर सकता है। और जो दूसरो के कष्ट का अनुभव करता है, वही अपने कष्ट को समझ सकता है। इसीलिए उसे ही जीवित रहने का अधिकार है, जो दूसरो को कष्ट न पहुँचाये—दूसरो की हिंसा न करे। जो दूसरो के कष्ट हरने की योग्यता रखता है, वही वास्तव मे वीर है।

विजय—आप दूसरो के कष्ट समझते हैं, इसलिए आप सच्चे वीर हैं, कुमार!

सुमित्र—तो आज से कुमार वर्धमान का नाम 'वीर वर्धमान' होना चाहिए।

विजय—मैं तुमसे पूर्ण सहमत हूँ, सुमित्र! हमारे कुमार 'वीर वर्धमान' हैं।

सुमित्र—तो अव हम लोग चलें। महाराज सिद्धार्थ वीर वर्धमान की प्रतीक्षा कर रहे होगे। नागरिको ने उन्हें सूचना दे दी होगी कि किस तरह उन्होंने एक मतवाले हाथी को बिना किसी शस्त्र के अपने वश मे कर लिया। वे वास्तव मे वीर हैं।

विजय—अवश्य ! चलिए, कुमार वीर वर्धमान !

(सब चलने को उद्यत होते है किन्तु एक वृक्ष की ओर देख कर रुक जाता है।)

विजय—(चौंक कर) अरे, यह देखो।

सुमित्र—क्यो ? क्या है ?

विजय—अरे, उस पेड की जड की ओर देखो।

सुमित्र—ओह ! भयानक सर्प ! कितना वडा सर्प है ! हटो-हटो, पीछे हटो, विजय !

वर्धमान—(विजय से) पीछे क्यो हट रहे हो। देखो, वह सर्प कहाँ जाता है।

विजय—(डर कर) जायगा कहाँ ? वह हम लोगो को डसने के लिए आ रहा है।

सुमित्र—ओह ! उसने कितना भयानक फन फैला रक्खा है। कुमार वर्धमान क्षमा करे, इच्छा होती है कि इसके फन को अपने एक ही वाण से वेध दूँ।

विजय—और यदि लक्ष्य चूक गया तो वह इस तरह झपट पडेगा कि भागने का मार्ग भी नही मिलेगा।

सुमित्र—तुम जानते हो, विजय ! मेरे वाणो का लक्ष्य अचूक होता है। जो दूसरो के प्राण लेता है, उसे मारने मे हिंसा नही होगी। कुमार वर्धमान मुझे क्षमा करें। लक्ष्य लेता हूँ। (धनुष पर वाण सधान करता है।)

वर्धमान—सुमित्र ! उसे वाण मत मारो। विना वाण चलाये ही इससे तुम्हारी रक्षा हो जायगी। तुम व्यर्थ ही भय खाते हो। मैं ही उसे मार्ग से हटा देता हूँ।

(वर्धमान आगे वढ कर सर्प की पूँछ पकड कर उसे नेपथ्य मे दूर फेंक देते हैं।)

सुमित्र—(आगे वढ कर) अरे, अरे कुमार ! इसने आपको काटा तो नही।

विजय—हाय ! कही काट न लिया हो ! देखूँ ! (पास जाता है।)

वर्धमान—नही। वह मुझे क्यो काटेगा ? मेरे मन मे सर्प के लिए कोई बुरा भाव नही है। न क्रोध है, न भय है।

सुमित्र—वास्तव मे कुमार ! आपके हृदय मे अदम्य साहस है।

विजय—यह तो महावीरता है। सुमित्र ! पहले तुमने कुमार के लिए 'वीर वर्धमान' नाम कहा। अव मैं इन्हे 'महावीर वर्धमान' कहता हूँ। महावीर वर्धमान।

सुमित्र—सचमुच 'महावीर वर्धमान'।

विजय—तो हमे महावीर वर्धमान की जय वोलनी चाहिए।

दोनो—महावीर वर्धमान की जय ! जय ! जय !

दोनो महावीर वर्धमान को प्रणाम करते हैं।
महावीर वर्धमान शान्त मुद्रा मे खडे रहते हैं।
(परदा गिरता है।)

निर्वाणवादी महावीर के जीवन के

पांच विरल चित्र

रतिलाल मफाभाई शाह, मांडल

रतिलाल मफाभाई शाह स्व० स्वनामधन्य न्यायाचार्य मुनिश्री न्यायविजयजी के निकट सम्पर्क में रहने वाले मांडल (गुजरात) निवासी विद्वान् गृहस्थ अन्तेवासियो में से अन्यतम हैं। आपकी लेखनी में मधुरता और सरसता है। इसी कारण आप अनायास ही कथाशिल्पी बन सके हैं। आपने निम्नाकित ५ लघुकथाओ में निर्वाण-वादी महावीर में बाल्यकाल से ही निर्वाणसाधना के लिए आवश्यक गुण कैसे प्रगट हुए ? इस पर रोचक घटनाएँ दी हैं। इन घटनाओं को तथ्य की दृष्टि से नहीं, इनमें निहित सत्य की दृष्टि से परखना चाहिए। तभी महावीर जीवन में गर्भित सत्य की उपलब्धि होगी।

—संपादक

१—मै तो ऐसी नाक वाला शेर ही लूँगा !

हठीला बालक वर्द्धमान आज शेर के लिए मचल उठा। जिस दिन उसका हठ पूरा नही होता, उस दिन वह राजमहल मे कही छिप जाता या आसपास के गली-कूँचो मे भाग जाता। उसे ढूँढ़ते-ढूँढते दास-दासियो के नाक मे दम आ जाता। जब वह पकड लिया जाता, तब कह उठता—"माँ से कह दो—मुझे पछी नही चाहिए। मुझे तो सिंह चाहिए। शेर ला दोगे, तभी मैं माँ के पास आऊँगा।

एक दिन ऐसा ही हुआ। जब माता त्रिशला सिंह का खिलौना ले कर आई, तब बालक वर्द्धमान ने दौड कर सिंह का खिलौना माँ से ले लिया और उसकी गोद मे लिपट गया। कई दफा वर्द्धमान की अत्यन्त मस्ती और नटखटपन से माता-पिता घबरा उठते, परन्तु समुद्र के समान उसकी उछलकूद एव मस्ती भरी खिलखिलाहट हँसी के कारण उनके हृदय मे आनन्द का सागर हिलोरें लेने लगा। नटखट वर्द्धमान के नटखटपन को भडकाने के लिए कई बार दास-दासियाँ उसे चिढाती, जिससे वह खीज उठता था। एक दिन एक दासी ने उसे हाथी का खिलौना दिखाते हुए कहा—"कुमार ! तुम्हारा सिंह तो नकटा है, उसकी नाक इसके जैसी सुन्दर नही है।" वर्द्धमान बालक ही तो ठहरा। तुरन्त दौड कर माता के पास आया और कहने

लगा—"मुझे ऐसा नकटा सिंह नही चाहिए। उसके हाथी सरीखी नाक ही कहाँ है ?" माँ बोली—"बेटा ! सिंह की तो ऐसी ही नाक होती है।" माता ने बहुतेरा समझाया, परन्तु बालक टस से मस न हुआ। बालहठ तो ऐसा ही होता है। बस, अब एक ही धुन सवार हुई कि सिंह लूँगा तो ऐसी ही नाक वाला लूँगा। चौबीसो घटे एक ही रट। न वह खाता, न पीता और न नीद लेता ! पिताजी ने बहुत समझाया, पर वर्द्धमान ने अपना हठ नही छोडा। आखिर तग आकर पिता धमकाने लगे, मारने को उद्यत हुए, लेकिन वर्द्धमान और ज्यादा मचल पडा। खाये-पिये तीन दिन हो गये, घर के सभी लोग चिन्तित थे। अन्त मे राजा सिद्धार्थ ने अपने बुद्धिशाली मत्री सुमगल को बुला कर इस समस्या को हल करने और बालक को किसी तरह समझा बुझा कर शान्त करने को कहा। मन्त्रीजी ने आद्योपान्त सारी बात जान कर माता-पिता से कहा—'मैं इस बालक को क्या समझाऊँ ? समझना तो आपको है ? जब आपने देख लिया कि बालक के दिल-दिमाग मे ऐसे सिंह को लेने की भावना जागी है, और वह उस पर दृढ है तो अपने कारीगर से ऐसा खिलौना बनवाने की बात अब तक आपको क्यो नही सूझी ? बालक की भावना को न समझ कर उलटे आप उसे डाँट रहे हैं ! सच है, **"पुराने साँचे में ढले हुए दिमागों में नई बात सहसा प्रविष्ट नहीं हो सकती।"** यह जैसा शेर चाहता है, वैसा शिल्पकार से बनवा लिया होता तो क्या वह खिलौने का शेर आपसे लडने आता या शेरो का समाज अदालत मे आप पर दावा करता ?" मन्त्रीजी की बात सुन कर सब लोग झेंप गये।

फिर बालक वर्द्धमान को अपने पास बुला कर प्यार से पुचकारते हुए मत्रीजी ने कहा—"वत्स ! पहले तुम कुछ खा-पी लो। इतने मे मैं बडी नाक वाला शेर ले कर आता ही हूँ। वर्द्धमान आश्वासन पा कर शान्त हो गया, वह माँ त्रिशला की गोद मे बैठ कर मिठाई खाने लगा। यह देख कर माँ-बाप पश्चाताप करने लगे—"अरे ! नाहक ही हमने बच्चे को तीन दिन तक भूखे रख कर हैरान किया !" कुछ ही देर मे मन्त्रीजी बडी नाक वाला शेर ले कर आये और वर्द्धमान को देते हुए कहा—लो, अब तो तुम्हें मनचाहा खिलौना मिल गया न ? अब खूब खेलो इसके साथ !" वर्द्धमान भी मनचाहा खिलौना पा कर खुशी से उछल पडा। अपनी खुशी प्रकट करने के लिए वह सबको अपना मनचाहा सिंह बताने लगा। चिढाने वाली उस दासी को भी वर्द्धमान ने अपना सिंह बताते हुए कहा—'देख ! अब तो मेरा सिंह नकटा नहीं है न ?' वर्द्धमान को चिढ़ाने की अब कोई गुजाइश न देख कर दासी उसके दृढ़-संकल्प की सराहना करने लगी। वर्द्धमान के मन मे आज जो आनन्द समा नही रहा था, वह मनचाहा खिलौना मिलने का उतना नही था, जितना कि अपना मजबूत सकल्प पूरा होने का था।

□

२—वर्द्धमान का प्रबल पराक्रम

वर्द्धमान आज अपने हमजोली बच्चो के साथ 'घोडे' का खेल खेल रहे थे। सभी बालक अपनी-अपनी लकडी को घोडा मान कर उस पर सवार हो कर उसे कुदाते हुए नगर के उद्यान की ओर जाने को उद्यत थे। पर वर्द्धमान के पास लकडी नही थी। इधर-उधर ढूँढने पर भी जब कोई लकडी हाथ न आई तो वह सीधा न्यायालय मे पहुँचा और वहाँ पडा हुआ मोटा-सा राजदण्ड उठा ले आया। उसी को घोडा बना कर उस पर सवार होकर उद्यान की ओर चल पडा। सभी हमउम्र बच्चे मस्ती से उद्यान मे खेल रहे थे। तभी न्यायालय मे सोने-चाँदी से मढा हुआ राजदड नही मिला तो उसे ढूँढने के लिए चारो ओर लोगो की दौडधूप शुरू हो गई। राजा सिद्धार्थ और मन्त्रिगण भावी अमगल की आशका से अधीर हो रहे थे। माता त्रिशला के चेहरे पर भी आज उदासी छाई हुई थी। राजदड का कही पता नही लग रहा था। इस व्यग्रता मे सभी वर्द्धमान को भूल गये थे।

शाम को जब वर्द्धमान घर आया और चेहरे पर उदासी ला कर माता त्रिशला से कहने लगा—"मैया! घोडा कुदाते-कुदाते मेरी लकडी टूट गई। पिताजी से कह कर मुझे ऐसी ही लकडी मगवा दो।" माँ ने कहा—"मेरे लाल! आज तेरे पिताजी बहुत बेचैन हैं, उन्हे और हैरान मत करना। मैं तुझे अच्छी-सी लकडी दे दूँगी।" वर्द्धमान ने दरवाजे के बाहर रखे हुए लकडी के टुकडे ला कर माँ को दिखाते हुए कहा—"माताजी! ऐसी ही लकडी देना।" माता त्रिशला राजदड के टुकडे देख कर स्तब्ध हो गई। आश्चर्य, गौरव और जरा-सी घबराहट की त्रिवेणी मे डुबकियाँ लगाती हुई वह हर्षविभोर हो उठी। उसने राजा से जा कर कहा—"आप राजदड ढूँढते-ढूँढते हैरान हो गये। राजदड तो हमारा वर्द्धमान ले गया था, वह उसे तोड भी लाया है।" यह कहते-कहते माता त्रिशला का मुखमडल अपने पुत्र के शौर्य और पराक्रम को देख कर चमक उठा। राजा सिद्धार्थ भी अपने पुत्र के प्रबल पराक्रम की बात सुन कर हर्ष से पुलकित हो उठे। उन्होने दौड कर पुत्र को छाती से लगा कर गोद मे उठा लिया और वात्सल्यमय हाथ से उसका मुँह सहला कर उसकी तुतलाती बोली मे सारी बात सुनने को उत्सुक हुए।

डेढ मन वजन का राजदड बालक वर्द्धमान द्वारा उठा लेने और तोड डालने की बात से वे इतने प्रभावित हुए कि घर-घर जा कर उसके पराक्रम की गौरव-गाथा सुनाने लगे। घर के दास-दासी नौकर-चाकर बालक वर्द्धमान के द्वारा वजनदार डडा उठाने के गौरव से हर्षविह्वल हो कर अपनी गोद मे उठा कर उस पर वात्सल्य बरसाने लगे। □

३—करुणाशील बालक वर्द्धमान

बालक वर्द्धमान जैसा वीर और साहसी था, वैसा ही करुणाशील भी था। किसी भी मनुष्य या प्राणी को वह सकट या कष्ट मे देखता तो भेदभाव, जातपाँत,

कुलपरम्परा, पदप्रतिष्ठा आदि के सामाजिक बन्धनो की कतई परवाह न करके वह सहायता करने दौड पडता था।

एक बार वर्द्धमान के यहाँ बहुत से मेहमान आये हुए थे। इससे काम का बोझ बढना स्वाभाविक था। घर मे दासदासियाँ तो थी, पर वे अन्यान्य कार्यों मे जुटी हुई थी। रोहिणी नाम की दासी को अपने एक जरूरी काम से जल्दी घर जाना था। इसलिए उसने दूसरी दासियो से अपने जिम्मे का काम निपटा देने के लिए निवेदन किया। मगर दूसरी दासियाँ झल्ला कर उसे जली-कटी सुनाने लगी—"हाँ, हाँ ! हमे तो मानो कोई काम ही नही है ! तू ही बडी काम वाली आई है। और तू काम ही कौन-सा करती है ! जा, हम तेरा काम नही करेंगी, हमारा अपना काम भी तो बहुत-सा पडा है। इसलिए तुझे ही अपने जिम्मे का काम निपटाना होगा।"

घर जाने की जल्दी, काम का बोझ और ऊपर से यह झिडकी सुन कर रोहिणी आँखो से आंसू बहाती हुई बर्तन माँज रही थी। बालक वर्द्धमान ने रोहिणी को सिसकियाँ भरते हुए देखा तो वह करुणार्द्र हो कर एकदम दौड कर उसके पास पहुँचा। रोहिणी से अपनी तुतलाती बोली मे कहा—'बुआ ! रोती क्यो हो ? क्या आज काम करते-करते थक गई हो ? लो, मैं तुम्हारे काम मे हाथ बटाता हूँ। मुझे भी बर्तन माजना आता है।"

भोलेभाले निर्दोष एव वैभव मे पले हुए बालक की मिश्री-सी मीठी बोली मे सहानुभूति के स्वर सुन कर रोहिणी तो हर्षविभोर हो गई। उसका विषाद एकदम काफूर हो गया। उनका मनमयूर वर्द्धमान की सहानुभूतिपूर्ण वाणी से नाच उठा। उसने वर्द्धमान को अपनी गोद मे बिठाया और प्यार से उसके सिर पर हाथ फिराते हुए कहा—"वत्स ! तेरी बोली मे इतनी मिठास है कि मेरी सारी थकान दूर हो गई। ऐसा मन होता है, तेरी मधुर बोली सुनती ही रहूँ।"

"अरे ! यह क्या किया तूने ? हाथ क्यो बिगाड लिया मिट्टी से ! बर्तन माजने के लिए क्या मैं कम हूँ। ला, तेरे हाथ साफ कर दूँ।" यो कहती हुई रोहिणी अपनी साडी के अचल से वर्द्धमान का हाथ साफ करने जा रही थी, मगर वर्द्धमान बार-बार उसके बर्तन माजने मे यो कहता हुआ हाथ बटाता रहा—'बुआ ! मुझे भी बर्तन माँजना आता है।' रोहिणी ने उसका हाथ रोकते हुए कहा—"कुमार ! भले ही तुम्हे आता हो, लेकिन अभी तो तू मेरी गोद मे बैठा-बैठा बातें ही कर। इन बर्तनो को तो मैं अकेली ही शीघ्र साफ कर डालूँगी।"

रोहिणी की गोद मे बैठा हुआ बालक वर्द्धमान इतना सलौना लगता था कि वह उसका मुख देखने, उसकी मधुर-मधुर तुतलाती बोली सुनने और उसके वात्सल्यमय स्पर्श सुख मे इतनी भावविभोर हो गई कि वह अपने दिल मे जमे हुए विषाद और कटुता को बिलकुल भूल गई थी।

ऐसा था बालक वर्द्धमान !, जिसने अनेको के विषादमय रेगिस्तान मे स्नेह, सुख और आनन्द की मधुर सरिता बहा दी थी। ☐

४—पीड़ित पशुओं की सेवा

माता त्रिशला के द्वारा सींचे हुए स्नेह, करुणा और सेवा के बीज बालक वर्द्धमान मे अकुरित हो उठे थे। इसी कारण जब भी वह किसी मनुष्य को, या पशु-पक्षी आदि को पीडित और परेशान देखता तो सहायता के लिए दौड पडता था।

एक दिन वर्द्धमान एक घायल मोर को ले आया और उसकी सेवा मे जुट पडा। एक दिन नगर के वाहर एक जगह पडे हुए घोडे को देखा। उसकी पीठ पर घाव हो गया था, उसमे कीडे पड गये थे, उस पर मक्खियाँ भिनभिना रही थी। घाव से इतनी वदवू निकल रही थी कि नाक बंद किये बिना वहाँ से गुजरना भी मुश्किल था। उसके मालिक ने उसे कही छोड दिया था। वह जहाँ भी बैठता, लोग उस पर दया करने के वजाय उसे खदेड देते थे, अगर वह उठता नही था तो उसके पीछे कुत्ते लगा देते थे, जिससे वेचारे को दुम दबा कर भागना ही पडता। ऐसी असहाय हालत मे कोई उसे न तो चारा-दाना ही डालता और न पानी ही पिलाता। अस्थिपंजर बना हुआ वह दुर्बल घोडा लडखडाता हुआ चलता था। कई बार गिर भी पडता था। उस मूक प्राणी को ऐसी दयनीय एव पीडित दशा मे देख कर वर्द्धमान का हृदय करुणार्द्र हो गया, आँखें गीली हो गई। वर्द्धमान ने उसे प्यार से पुचकार कर अपने हाथ का सहारा दे कर उठाया और धीरे-धीरे उसे चला कर घर ले आया। बालक वर्द्धमान ने उसे अपना आत्मीय समझ कर अपने नन्हे-नन्हे हाथो से उसका घाव धोया, उस पर कोई जडी-बूटी लगा कर पट्टी बांधी और उसे खिलाया-पिलाया भी। इस कार्य मे माता त्रिशला भी मदद देती थी। वर्द्धमान के द्वारा की गई सतत सेवा के फलस्वरूप वह मरियल घोडा कुछ ही दिनो मे बिलकुल स्वस्थ हो गया। बाद मे तो वह इतना हृष्टपुष्ट और सुडौल हो गया कि वर्द्धमान जब कभी उस पर बैठ कर जाता तो बाजारो और चौराहो पर लोग इकट्ठे हो कर उस पशु रत्न और इस मानव-रत्न को देखते ही रह जाते। घोडा भी कुमार के द्वारा की गई सेवा से अब अत्यन्त वफादार, कृतज्ञ और आत्मीय अश्वरत्न बन गया था।

इस प्रकार जब भी मौका मिलता बालक वर्द्धमान ऐसे बीमार, अपाहिज, घायल और पीडित मूक प्राणियो को अपने घर ले आता और उनकी सेवा मे प्राणप्रण से जुट जाता। सेवा करने मे वर्द्धमान इतना तन्मय और आनन्दविभोर हो जाता कि उसे पता ही नही चलता कि कब, कितना समय निकल गया है? जब कोई बीमार या पीडित पशु या पक्षी चगा हो जाता तो वर्द्धमान खुशी के मारे उछल पडता। धीरे-धीरे ऐसे कई पशु-पक्षी वर्द्धमान के यहाँ इकट्ठे हो गये और होते जाते थे, मानो वहाँ एक 'प्राणि-सग्रहालय' हो। सचमुच, वर्द्धमान की अद्भुत सेवा और करुणा का परिणाम था यह ! ☐

५—मातृवात्सल्य देख कर भीष्म-प्रतिज्ञा

घर पर कोई भी साधु-सन्त आते तो भावुक वर्द्धमान उन्हे अपने हाथों से भिक्षा देने को उद्यत हो जाता। अगर कोई दूसरा भिक्षा देता तो उसे अखरता था और वह रोयासा हो कर मचल कर लोटने लगता था।

एक दिन घर पर एक वडे सन्त पधारे। सिद्धार्थ राजा के यहाँ ही राजमहल के विशाल चौक मे उनकी प्रवचनसभा का आयोजन किया जा रहा था। वालक वर्द्धमान को पता लगा तो झाड़ू ले कर वह अपने हमजोली वालको के साथ महल के विशाल प्रांगण को साफ करने मे जुट पडा। आज उसे अपने हाथो से जीवजन्तुओ की रक्षा करते हुए सफाई करने और कचरा, ककड आदि इकट्ठे करके दूर फेंकने मे वडा आनन्द आ रहा था। सफाई हो जाने के वाद सव वालको ने मिल कर वहाँ श्रोताओ के वैठने के लिए दरियाँ विछा दी। सन्त पधारे। उन्होंने धर्मभावना को प्रोत्साहित करने वाला सुन्दर रोचक प्रवचन दिया। सभी श्रोता प्रवचन के वाद चल दिये, तव राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला ने अपने परिवार का परिचय देते हुए वर्धमान मे सहज प्रस्फुटित उत्साह, साहस, वीरता, करुणा और सेवाभावना आदि गुणो की प्रशसा की। सत भी टकटकी लगा कर वर्द्धमान की ओर देखते रहे। फिर अन्तर मे डूव कर भविष्यवाणी करते हुए-से वोले—'राजन! तुम्हारा यह लडका भोगी नही वनेगा, मैं इसकी चमकभरी आँखो मे एक महायोगी के दर्शन कर रहा हूँ। जव यह धर्मतीर्थ की स्थापना करेगा, तव तक मैं सम्भव है, इस ससार से विदा हो चुकूँगा।' यो कह कर उस महासत ने वालक वर्द्धमान के सिर पर आशीर्वाद के रूप मे हाथ फिराया।

कुछ औपचारिक वातचीत के वाद सत वहाँ से विदा होने लगे। सन्त को विदा देने के लिए त्रिशलादेवी के सिवाय सारे पारिवारिक जन काफी दूर तक गए। भविष्यद्रष्टा सन्त की वात सुन कर माता त्रिशला को ऐसा धक्का लगा कि वह अपनी शय्या पर लेटी-लेटी सिसकियाँ भरती हुई मन ही मन कई तरह के विचार कर रही थी।

कुमार सत को विदा करके वापिस लौटा तो माता के कमरे से रोने की आवाज सुन कर तेजी से उस कमरे मे घुसा। वालक वर्द्धमान माता की हालत देख कर सिहर उठा। माता ने अपने लाल को देखा तो झपट कर उसे अपनी गोद मे विठा लिया। वालक वर्द्धमान ने पूछा—"माँ! आज अकारण ही यह रुदन क्यो? क्या आपकी तवियत ठीक नही है, माताजी! जो भी चिन्ता हो, मुझे वताओ, मैं उसे मिटाने का प्रयत्न करूँगा।"

माता अपने लाल को आँचल मे लपेटते हुए वोली—"वेटा! क्या तू अपनी माँ को छोड कर भाग जायगा? मैंने अपने मन मे कितनी आशाएँ संजो रखी थी,



१. मुनिदीक्षा के समय केशलोच.

पर आज मेरी आशाओ पर पाला पड गया है ।" "माताजी ! किसने कहा कि मैं तुम्हे छोड कर भाग जाऊगा ! आपकी कौनसी आशाओ पर पाला पड गया ?"

"क्या सत ने नही कहा था कि तू भोगी नही, महायोगी बनेगा ।"

"फिर क्या मैं भाग जाऊँगा ?"

"बेटा ! योगी कही घर मे रहता देखा-सुना है ? मेरे प्राण ! मेरे हृदय के टुकडे ! मेरे आनन्द की फुलवाडी ! क्या तू बुढापे मे हमे छोड कर अरण्यवास करेगा और मैं यहाँ राजमहल मे पडी तडफती रहूँगी ? तू सर्दी, गर्मी और बारिश के दिनो मे निराश्रित हो कर जगलो मे मारा-मारा फिरेगा। हाय ! मैं अपने लाल को ऐसी स्थिति मे कैसे देख सकूँगी ? अपने लाल के बिना कैसे जी सकूँगी ? प्रभो ! इससे तो यही अच्छा होगा कि मैं वह दिन देखने के लिए जिंदा न रहूँ ।" यो कहती हुई वात्सल्यविवश माता जोर-जोर से रोने लगी ।

माता की ऐसी करुणदशा देख कर वर्द्धमान भी फफक-फफक कर रोने लगा । माता के अपार वात्सल्य से वर्द्धमान को अन्त प्रेरणा हुई, जिससे मन ही मन भीष्म-प्रतिज्ञा की—"महासत का कथन चाहे यथार्थ हो, लेकिन माता-पिता जब तक विद्यमान रहेगे, तब तक मैं गृह-त्याग नही करूँगा ।" दूसरे ही क्षण हँस कर वर्द्धमान कहने लगा—"माँ ! आज तुम पगली हो रही हो क्या ? मुझ पर विश्वास रखो । मैं अन्तरात्मा की साक्षी से कहता हूँ—"आपको छोड कर कही नही जाऊँगा । आपकी सेवा मे सदा हाजिर रहूँगा । माता-पिता की सेवा करना ही तो मेरा प्रथम व्रत है, पहला धर्म है, यही मेरी प्रारम्भिक साधना है । वह कृतघ्न है, जो माँ-बाप को ठुकरा कर रुष्ट हो कर चला जाता है । आपकी प्रसन्नता मे ही मेरी प्रसन्नता है ।" पुत्र के आश्वासन भरे वचन सुन कर माता आशकामुक्त हो गई । उसे यह विश्वास हो गया कि अब मेरे रहते मेरा लाल कही भाग कर नही जायगा ।

— ०.—

गीत

जब हिंसा के अंधकार ने सारें जग को घेरा था

—हजारीलाल 'काका' सकरार (झांसी) उ० प्र०



पच्चीस-सौवी साल सफल हो महावीर भगवान की,
जनजीवन मे ज्योति जला दी जिनने आत्मोत्थान की,

(१)

जब हिंसा के अन्धकार ने सारे जग को घेरा था,
शिव मग भटक गया था मानव, छाया घोर अन्धेरा था।
धर्म समझ कर तब अधर्म से करता मानव प्यार था,
प्रतिदिन लाखो पशु यज्ञो मे झोंक रहा ससार था।
फिकर नही थी जरा किसी को वेगुनाह के जान की,
पच्चीस-सौवी साल सफल हो महावीर भगवान की॥

(२)

भ्रष्टाचार-पापमय थी तव सत्य अहिंसा की राहे,
दानवता खिलखिला रही थी मानवता भरती आहे।
करुणा करुणाभरे स्वरो मे सिसक रही थी जोरो से,
चीत्कार निर्बल जीवो की आती चारो ओरो से।
भारी खुशी मनाई जाती जीवों के वलिदान की,
पच्चीस-सौवी साल सफल हो महावीर भगवान की॥

(३)

सती नाम पर अवलाओ को पति के साथ जला देते,
उनके रोने चिल्लाने पर कोई ध्यान नही देते।
फिर पशुओ को कौन पूछते उन पर कौन रहम लाते,
जब नरमेघयज्ञ मे जिन्दा मानव झोक दिये जाते।
पशु जैसी विक्री होती वाजारो मे इन्सान की,
पच्चीस-सौवी साल सफल हो महावीर भगवान की॥

(४)

कुण्डलपुर मे जन्म हुआ तब महावीर भगवान का,
दीन-दुखी जीवों को मानो दिन आया वरदान का।
तरुणाई आते ही देखी यहाँ धर्म की परिभाषा,
जीव मार कर मुक्ती पाने की रखता नर अभिलाषा।
राज त्याग चल पडा वीर तब ज्योति जलाने ज्ञान की,
पच्चीस-सौवी साल सफल हो महावीर भगवान की ॥

(५)

सही धूप शर्दी की बाधा शूल चुभे कई पॉव मे,
वनवासी बन गया पला जो राजमहल की छॉव मे।
ज्ञानज्योति प्रकटी अन्तर मे बेपीरो का पीर बना,
सन्मति बन जीता कर्मो को पुन वीर महावीर बना,
'सच्चा धर्म अहिंसा है, थी वाणी दयानिधान की,
पच्चीस-सौवी साल सफल हो महावीर भगवान की ॥

(६)

जिओ और जीने दो सबको प्राण सभी को प्यारा है,
नही सताओ किसी जीव को ये ही धर्म तुम्हारा है।
चोरी झूठ कुशील आदि की पास न फटकें बाधाएँ,
अगर मोक्ष की इच्छा है तो रोको अपनी इच्छाएँ।
सतत साधना से गति मिलती 'काका' सिद्धिस्थान की,
पच्चीस-सौवी साल सफल हो महावीर भगवान की ॥

—o—



महावीर के बाल्यकाल में निर्वाण के बीज



मुनि समदर्शी 'प्रभाकर'

निर्वाण, मुक्ति अथवा मोक्ष का मूल सम्यक्-दर्शन है, इसे ही सम्यक्-श्रद्धा एव निष्ठा कहते हैं। स्व के द्वारा स्व पर श्रद्धा करना और स्व से स्व-स्वरूप का वोध एवं परिज्ञान करना ही वस्तुत सम्यक्-दर्शन और सम्यक्-ज्ञान है। वही व्यक्ति स्व के द्वारा परिज्ञात स्व मे स्थित होता है। अथवा उसी की परिणति स्व-स्वरूप मे स्थिर होती है। यही निश्चयदृष्टि से सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार रत्नत्रय की समन्वित साधना ही मोक्ष-मार्ग या निर्वाण-पथ है। अथवा यो भी कहा जा सकता है कि अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तचारित्र का प्रकट हो जाना ही निर्वाण है। इसका प्रथम सोपान है—भेद-विज्ञान के द्वारा स्व और पर के भेद से स्व-स्वरूप को भलीभांति जान कर उसमे श्रद्धा-निष्ठ होना।

मोह के कारण व्यक्ति स्व और पर के यथार्थ स्वरूप को और उनके भेद को समझ नही सकता। वह पर को ही स्व समझ कर उसमे आसक्त वना रहता है। पर मे स्वतत्ववुद्धि रखना ही अज्ञान है और यही मिथ्यात्व है। इसी के कारण अनुकूल पदार्थों का वियोग होने पर और प्रतिकूल पदार्थो का सयोग होने पर व्यक्ति को पीडा, वेदना तथा दु ख की अनुभूति होती है। और अनुकूल तथा प्रतिकूल के सयोग एव वियोग का निमित्त मिलने पर वह भय से सत्रस्त हो जाता है। सयोग और वियोग की कल्पना अथवा विकल्प ही उसे भयभीत वनाए रखते हैं। परन्तु

---

१ आचाराग सूत्र

दर्शनमोह के क्षय या क्षयोपशम से स्व-स्वरूप का ज्ञाता एव द्रष्टा अनुकूल और प्रतिकूल अथवा सयोग और वियोग दोनो परिस्थितियो मे ज्ञाता एव द्रष्टा बन कर रहता है। अपने से सम्बद्ध पदार्थों पर प्रहार होने पर भी वह भयभीत नही होता। उसे किसी भी समय कैसी भी परिस्थिति मे भय नही रहता। वह सदा-सर्वदा भयमुक्त रहता है। यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी सामने आ कर उपस्थित हो जाए, तब भी वह निर्भय एव निर्द्वन्द्वभाव से अपने स्वभाव मे स्थित बना रहता है। वह जानता है, कि जो मेरा अपना है, वह कभी नष्ट नही होता, और जो नष्ट होता है, वह अपना नही है। जब वह अपना है ही नही, फिर उसकी चिन्ता करना, उसके लिए विलाप करना, और भयभीत होना ही अज्ञान है। इसलिए निर्भयता और निर्द्वन्द्वता सम्यक्-दर्शन की सबसे बडी पहचान है। अत वास्तव मे भय से मुक्त व्यक्ति ही ससार से, दु:खो से और जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो सकता है। सचमुच मे भय-मुक्ति ही मुक्ति है और भयो से मुक्त व्यक्ति ही निर्वाण के परम आनन्द को पा सकता है।

श्रमण भगवान् महावीर के जीवनविकास की यह भूमिका प्रारम्भ से ही परिलक्षित होती है। आगम मे बताया गया है कि जब वे महारानी त्रिशला के गर्भ मे आए, तब विशिष्ट ज्ञान से यह जान कर कि मेरे हलन-चलन की क्रिया से माता को वेदना एव पीडा होती होगी। मेरे द्वारा माता को किसी प्रकार का कष्ट न हो, यह अनुकम्पा की भावना मन मे उद्बुद्ध हुई और वे निष्कप हो गए। माता के मन पर इसका विपरीत प्रभाव पडा। गर्भ का स्पन्दन बन्द हो जाने से उसने समझ लिया कि मेरा गर्भ मर गया है या गिर गया है। इससे वह शोक मे डूब गई। माता की इस वेदना को जान कर बालक ने अपना हलन-चलन प्रारम्भ कर दिया। कितनी बडी बात है कि अभी न तो अगो का पूरा विकास हो पाया था और न उनमे कार्य करने की पूरी क्षमता थी तथा न फैलने एव सिकुडने के लिए खुला स्थान था, फिर भी उस बालक ने अपने शरीर को स्थिर रख ही लिया है। निर्भय और निर्द्वन्द्व व्यक्ति ही स्व और पर-हित के लिए अपने आप पर पूरा नियन्त्रण रख सकता है।

वर्द्धमान के बाल्य-काल की भी कुछ घटनाएँ हैं, जिनमे उनकी निर्भयता, अनुकम्पा, करुणा एव सद्भावना का स्पष्ट दर्शन होता है। एक बार वह राजभवन के उद्यान मे अपने साथियो के साथ एक खेल खेल रहे थे, कि अचानक एक विशालकाय विषधर निकल आया। उसे देखते ही सब बालक इतस्तत भाग खडे हुए, पर वर्द्धमान डर कर भागा नही। वह साप के निकट गया, और उसे धीरे से अपने सुकोमल हाथो से उठा कर दूर छोड आया। जिससे उसे कोई चोट न पहुँचा सके, और न वह अन्य को भयभीत कर सके या चोट पहुँचा सके।

इसी प्रकार एक बार खेल के समय उनके धैर्य और निडरता की परीक्षा लेने की भावना से एक देव बालक के रूप मे आ कर उनके साथ खेलने लगा। और वर्द्ध-

मान के माथ खेलते ममय वह जानवूझ कर हार गया। हारने वाले को उस खेल मे विजेता को कुछ दूरी तक अपनी पीठ पर चढा कर ले जाना पडता था। खेल की परम्परा के अनुसार वर्द्धमान उसकी पीठ पर चढा। कुछ दूरी तय करते ही देव ने उसे भयभीत करने के लिए अपना विराट् और विकराल रूप वना लिया और उसे ले कर आकाश की ओर उडने लगा। यह देख कर सव वालक भय से संत्रस्त हो कर रोने-चिल्लाने लगे, पर वर्द्धमान के मन पर इमका कोई प्रभाव नही पडा। वह शान्तभाव से उस पिशाच के कधे पर वैठा रहा, मानो विशालकाय हाथी की पीठ पर सवार हो कर घूमने जा रहा हो, और अपने स्नेहभरे व्यवहार से उसे अपने अनुकूल वनाकर उसके साथ राजमहल मे आ गया। वह देव राजमहल मे सिद्धार्थ के सामने उपस्थित होने मे डर रहा था। पर महावीर ने उसे अभय का वचन दे कर सहमत कर लिया। राजकुमार ने कहा कि मेरे मन मे तुम्हारे प्रति जरा भी द्वेप नही है। मैं तुमको अपना शत्रु नही, मित्र ही समझता हूं। फिर मेरे घर चलने मे डर कैसा? तुम निश्चित और निर्भय रहो, तुम्हारा वहाँ कोई वाल वाका नही होगा।

यह हैं, उनके वाल्य-काल की कुछ घटनाएँ, जिनके अनुशीलन-परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है, कि उन्हे अपने स्वरूप का पूर्णरूपेण वोव था, और वे अपने आप मे जागृत थे।

इसका एक ही कारण था, कि उन्होने अपने अनन्त-ज्योतिर्मय स्वरूप को जान लिया था और उसे अनावृत करने मे प्रयत्नशील थे। उनकी दृष्टि एव चिन्तन अपने देह मे रहते हुए उस महाज्योति का घ्यान देह-शरीर मे नहीं था। उनकी दृष्टि आप मे केन्द्रित थी। देहातीत थी। उनको देह पर भाव नही था। इसीलिए वे प्रारम्भ से ही निर्भय और निर्द्वन्द्व रहे। प्रत्येक परिस्थिति मे वे अपने आप मे स्थित रहे। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रमण भगवान् महावीर के जीवन मे वाल्य-काल मे ही निर्वाण और सिद्धान्त के वीज अकुरित हो चुके थे, जो साधना-काल मे पल्लवित-पुष्पित होते-होते कैवल्य प्राप्ति के वाद आयु-कर्म के क्षय के साथ अन्तिम क्षण मे फलित हुए।





निर्वाणवादी भगवान् महावीर की अद्भुत क्षमा

—भूरचन्द जैन



विश्व को सत्य और अहिंसा का मार्ग बताने वाले विश्व की महान् विभूति भगवान् महावीर स्वामी ने अपने कर्म-बन्धनो से मुक्ति पाने के लिये ससार के सभी सुखो का मोह तज कर वैराग्य-जीवन अगीकार किया। आपने अपने कर्म-बन्धनो से मुक्त होने के लिए यातनाएँ, पीडाएँ, लोक-अवहेलनाए एव तिरस्कार का सामना करते हुए गम्भीरता, सहनशीलता, दया और करुणा बताई। भगवान् महावीर स्वामी ने अपने को कष्ट, पीडा एव यातना देने वालो के प्रति कभी बदले की भावना तक नही रखी, अपितु उनके कल्याण एव उद्धार के लिए मार्ग बताया। सयमी जीवन के पश्चात् महावीर प्रभु को लगातार बारह वर्षों तक अति घोर उपसर्गों का सामना करना पडा। ग्वाले की मार, तापसो द्वारा तिरस्कार, शूलपाणि यक्ष की वेदना, कठपूतना राक्षसी का शीतप्रकोप, चण्डकौशिक नाग का विषवमन, सुदष्ट्र नागकुमार के द्वारा महावीर को डुबोने की हरकते, अनार्यदेश मे शिकारी कुत्तो द्वारा कटवाना, मारना-पीटना एव फासी के तख्ते पर चढाने के अतिरिक्त, सगमदेव द्वारा प्रभु को भीषण १८ यातनाओ से पीडित करने का प्रयास किया गया। लेकिन प्रभु अधिकाश ध्यान-मग्न रहकर अपने कर्मो को काटते रहे। यहाँ तक कि उनके कानो मे ग्वाले द्वारा कीलें ठोकने पर भी वे क्रुद्ध नही हुए।

क्षमामूर्ति भगवान महावीर स्वामी ने जब ससार से वैराग्य जीवन स्वीकार किया तब इनके सुगन्धित एव कोमल शरीर पर कीट-पतगो-भौरो ने महावीर के शरीर को काटना शुरू किया, लेकिन महावीर इन पीडाओ से कदापि विचलित नही हुए। प्रभु के रूप, लावण्य एव शारीरिक सुन्दरता से कई ललनाओ ने अपनी काम-वासना पूर्ण करने का प्रयास किया, लेकिन वैरागी तो वैरागी ही रहे। कामुकता के आवेश मे बावली ललनाओ ने इन पर नाना प्रकार के घोर उपसर्ग भी किये। कई पुरुषो ने प्रभु को उनके तपो-मार्ग से हटाने का भरसक प्रयास किया, लेकिन वे सफल

नही हुए। महावीर को इन विपदाओ एव कठिनाइयो से मुक्त करने के लिये इन्द्रदेव ने सहायता लेने की प्रार्थना की, लेकिन प्रभु ने अपने कर्मो को काटने के लिये इन्द्र की प्रार्थना भी सुनी-अनसुनी कर दी।

कुमारग्राम के एक खेत मे जब महावीर कायोत्सर्ग मे खडे तपस्या कर रहे थे कि छह मास की बीमारी से ठीक हुआ ग्वाला जब अपने खेत मे आया तो देखता है कि एक सिर मु डा व्यक्ति खेत मे खडा है। इसने अपशकुन समझ कर उन्हे हल से मारने का प्रयास किया लेकिन इन्द्रदेव की अनुकम्पा एव बीचबिचाव से वह महावीर का बाल बाका भी नही कर सका।

महावीर प्रभु को यह प्रारम्भिक यातना ही थी। प्रभू जगह-जगह विहार कर अपनी तपस्या मे लीन रहने लगे। मोराक गाँव मे महावीर के पिता सिद्धार्थ के मित्र दुईज्जतक जाति के तापस रहते थे। उन्होने महावीर को आश्रम मे तपस्या करने की स्वीकृति दी। महावीर एक घास की झोंपडी मे कायोत्सर्गमुद्रा मे तपस्या करने लगे। उन दिनो वर्षा के अभाव मे सभी ओर सूखा पडा हुआ था। पानी के अभाव मे घास की कमी स्वत. ही उत्पन्न हो गई। कई गायें घास न मिलने के कारण तपस्वियो के आश्रम मे बनी झोपडियो के घास को खाने लगी। अन्य तपस्वियो ने पशुओं को भगाने हेतु कार्यवाही की; लेकिन महावीर कायोत्सर्गमुद्रा मे लीन रहे, जिसकी वजह से इनकी झोपडी की रक्षा न हो सकी। अन्य तपस्वी महावीर के इस आचरण पर क्रोधित हुए और महावीर को भलाबुरा कहने लगे। महावीर अप्रीति देख कर पाँच प्रतिज्ञाएँ ग्रहण कर यहाँ से चातुर्मास मे ही अन्यत्र विहार कर गये।

महावीर मोराक गाँव से विहार कर अस्थिक गाँव मे आये। यहाँ वे गाँव के बाहर शूलपाणि यक्ष के सूनसान मन्दिर मे ठहरने लगे कि गाँव के लोगो ने यक्ष के उपद्रवो की चर्चा करते हुए प्रभु को मना किया। लेकिन निर्भय महावीर ने रात वही गुजारने का निश्चय किया। रात मे शूलपाणि ने महावीर को कई शारीरिक यातनाएँ दी। भीषण अट्टहास्य से डराने का प्रयास, विशाल हाथी के रूप मे हटाने, भयंकर देह वाले पिशाच के रूप मे भयभीत करने, सर्प के आक्रमण एव जकड के प्रयास से प्रभु को रातभर यातनाएँ दी जाती रही। महावीर के शरीर के कोमल भाग, सिर, आँखें, मूत्राशय, नासिका, दाँत, पीठ, नाक पर ऐसी वेदना उत्पन्न की कई कि साधारण व्यक्ति इस वेदना से कभी का कालग्रस्त हो जाता, लेकिन महावीर ने इन वेदनाओ को गम्भीरता एव सहनशीलता के साथ सहा। आखिर यक्ष ने अपने कुकृत्यो के लिये महावीर से क्षमा चाही और अपने आत्मकल्याण मे लग गया। महावीर पर रातभर यक्ष के भीषण उपसर्गो के कारण प्रात नीद-सी स्थिति हो गई। इस अवस्था मे प्रभु ने अपने कल्याणमार्ग के दस स्वप्न देखे।


चण्डकौशिक सर्प
को प्रतिबोध.

सर्दी हो या गर्मी, वर्षा हो या आंधी, महावीर जगह-जगह बिहार करते हुए शालिशीर्ष गांव मे पहुंचे। भयंकर सर्दी के कारण लोग आग जला कर आराम पा रहे थे। इस स्थिति मे महावीर खुले मैदान मे जंगल में नदी के किनारे कायोत्सर्गमुद्रा मे अपने कर्मबन्धनो को काट रहे थे कि पूर्वभव मे वासुदेव द्वारा अपमानित रानी कठपूतना राक्षसी ने अपना बदला लेने के लिये उपसर्ग करना आरम्भ किया। नदी के अत्यन्त ही ठडे जल को राक्षसी अपने बालो मे भर कर महावीर के शरीर पर जोरो की बौछारो से बरसाने लगी। लेकिन महावीर ने बदले की कोई कार्यवाही नही की और अटल चट्टान की भांति इसे सहन करते रहे।

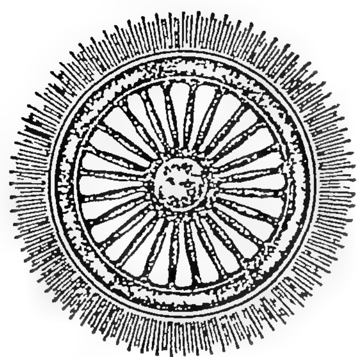
एक से एक भीषण उपसर्गों से पीडित होने पर भी महावीर ने अपनी निर्वाण-साधना का मार्ग नही छोडा और वे श्वेताम्बी नगरी के मार्ग मे आये कनखल तापसो के आश्रम की ओर बढ़े। इस आश्रम मे चडकौशिक नामक दृष्टिविष सर्प का भीषण प्रकोप था। कोई इस रास्ते से गुजरता नही था। सर्प के देखने मात्र से ही जन-मानस कालग्रस्त हो जाते थे। महावीर को इस मार्ग से जाने के लिये रोका गया, लेकिन जगदुद्धारक महावीर इस ओर निर्भीकता से बढ़े। सर्प ने उन्हे देखा और दृष्टिविष फेंका, लेकिन महावीर पर कोई असर नही हुआ। सर्प ने महावीर के पैर मे काटा, लेकिन रक्त की बूंद के स्थान पर सफेद दूध-सी बूंदें देखी। गुस्से से ग्रस्त सर्प ने पूरे जोर के साथ पुन. महावीर के पैरो को काटा और अपने शरीर मे रहा सम्पूर्ण विष छोड दिया। काटने वाले स्थान से दो धाराएं बही। एक मे रक्त के स्थान पर दूध-सा सफेद पदार्थ था और दूसरी धारा नीली थी, जो सर्प का जहर था। चडकौशिक को महावीर ने उपदेश दिया और उसे जातिस्मरणज्ञान होने पर वह अपने आत्मकल्याण मे लीन हो गया।

सुरभिपुर जाने के लिए महावीर गंगा पार करने हेतु सिद्धदत की नौका पर बैठे। सुदष्ट्र नागकुमार ने बदले की भावना से नाव डुबाने का प्रयास किया, लेकिन कवल सबल नामक देवो ने रक्षा की। जगह-जगह बिहार करते-करते महावीर चौराक एव कूपिक गांवो मे गये, जहाँ इन्हें चोर समझ कर सिपाहियो ने पकड कर कुओ मे डुबाने और बाहर निकालने का प्रयत्न किया। इन यातनाओ मे श्री पार्श्वनाथ-स्वामी के शासन की साध्वियो ने इन्हे मुक्त करवाया। इसी प्रकार हरिद गांव के हरिद्रवृक्ष के नीचे तपस्यामुद्रा मे महावीर खडे थे कि सर्दी जोरो की थी। कुछ लोग रात्रि मे अग्नि से तप रहे थे और प्रातः होने पर चले गये लेकिन आग बुझाना भूल गये। आग महावीर के चरणो तक फैल गई, जिससे उनके पैर झुलसने लगे, मगर प्रभु अपने स्थान से विचलित नही हुए। बहुशाल गांव के शालवन मे व्यतरी ने अनेको उपसर्ग महावीर पर किये, लेकिन महावीर अपने कर्मों को काटने हेतु इन उपसर्गों को बडी ही सहनशीलता से सहते रहे।

म्लेच्छो की उद्दण्डता, अज्ञानता एवं अधर्मों को मिटाने हेतु महावीर ने अनार्य-देश मे निर्भय हो कर विहार किया। यहाँ महावीर को मलेच्छो ने कई प्रकार की यातनाएँ दी। शिकारी कुत्ते महावीर के शरीर को काटने हेतु छोडे, लाठियो से बुरी मार दी और फासी के तख्ते पर चढाने तक नही हिचकिचाए। जब महावीर की घोर तपस्या की प्रशसा इन्द्र ने की तो सगमदेव इसे सहन नही कर सका और प्रभु महावीर को यातनाएँ देने एव तपस्या से विचलित करने के लिये प्रतिज्ञावद्ध हो गया। सगमदेव ने महावीर पर एक ही रात मे १८ प्रकार के भीषण भयंकर विनाशकारी उपसर्ग किये। धूल की भीषण आँधी से डगमगाना, सुई की-सी तीक्ष्ण मुख वाली चीटियो, शरीर पर काट कर चिपकने वाली चीटियो-विच्छुओ-न्योलो-सर्पो से कटवाना, चूहो से कटवाना एव उस पर पेशाव करना, हाथी और हथिनी की भीषण गर्जना एव प्रहार, भयकर पिशाच, बाघ आदि जगली पशुओ की गर्जना से डरवाना, चडास खाने वाले पशु इन पर छोडना, पैरो पर खीर पकाना, महावीर के माता-पिता को लाना, कालचक्र से दवाना आदि कई प्रकार के उपसर्ग किये, लेकिन महावीर इन उपसर्गों से नाममात्र को भी विचलित नही हुए और वडी गम्भीरता से इन्हे सहन किया। सगम असफल रहा तो भी उसने छह मास तक प्रभु पर हर प्रकार से भीषण से भीषण उपसर्ग किये। इन उपसर्गों के कारण महावीर को छह मास तक विना आहार के रहना पडा। अंत मे जव सगमदेव हार कर जाने लगा तो प्रभु की आँखें डबडवा आई, क्योकि सगमदेव ने अपने कर्म-वन्धन कर लिए थे। प्रभु ने उन्हे हर प्रकार से क्षमा किया।

सगमदेव के उपसर्गों का सिलसिला समाप्त ही नही हुआ था कि महावीर स्वामी विहार कर षणमानिक गाँव पधारे। यहाँ आप कायोत्सर्गमुद्रा मे खडे थे कि एक ग्वाला अपने वैलो को आपके पास निगरानी हेतु छोड गया। ग्वाले के वापस आने पर वैल नही मिले। पूछताछ पर महावीर का जवाव नही मिलने पर गुस्से मे आकर उनके कानो मे कीले ठोक दिये। भीषण पीडा पाते हुए भी प्रभु के मुख से उफ तक नही निकला।

कर्मों को काटने वाले महावीर स्वामी परीक्षा मे सफल रहे। केवल ज्ञान प्राप्त होने पर आपने जगत् को सत्य, अहिंसा अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अचौर्य का मार्ग वताया। जिससे वे महान् वन गये। महावीर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। वे भगवान् महावीर स्वामी के नाम से जैन जगत् के २४ वें तीर्थंकर कहलाए। आपकी सहन-शीलता, गम्भीरता के कारण आज भी सारा विश्व आपको क्षमामूर्ति भगवान् महा-वीर स्वामी के रूप मे पूजता और मानता है।



तीर्थंकर महावीर : धर्मचक्र-प्रवर्तन से परिनिर्वाण तक

—डॉ० भागचन्द्र जैन भास्कर



तीर्थंकर महावीर के अप्रतिम व्यक्तित्व ने अपनी सम्यक् साधना के वल पर स्वपरप्रकाशकरूप केवल ज्ञान को प्राप्त किया। केवल ज्ञानी हो जाने पर सर्वज्ञ महावीर अर्हन्त बन गये। उन्होने स्वय के अनुभूतिमय जीवन-दर्शन को ससरण से सतप्त जनसाधारण तक पहुँचाने का लक्ष्य बनाया, ताकि वह भी यथाशक्ति आध्यात्मिक साधना कर ससार के इस जन्म-मरण के दुश्चक्र से दूर हो सके। इस दृष्टि से उन्होने अपना धर्मप्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। प्रथम देशनाकाल मे जनसमूह उनके गम्भीर उपदेश को ग्रहण नही कर सका। इसलिए भ महावीर ने सर्वप्रथम अपनी वात कुछ विद्वानो के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्णय किया। बुद्ध ने भी अपना प्रथम धर्मोपदेश पचवर्गीय भिक्षुओ को दिया था।

विद्वान शिष्यो की खोज मे महावीर जृम्भिकाग्राम से मध्यमपावा पहुँचे। वहाँ आर्य सोमिल ने विराट्यज्ञ का समायोजन किया था, जिसमे अनेक स्थानो से प्रकाण्ड पण्डित उपस्थित हुए थे। इस समय महावीर भी बहुजन-परिचित हो चुके थे। पावा पहुँचते ही उनके भक्तशिष्यो ने एक सुन्दर और सुव्यवस्थित विशाल-मण्डप बनाया, जिसे शास्त्रीय परिभाषा मे 'समवसरण' कहा गया है। वहाँ बिना किसी भेदभाव के सभी को समानरूप से वैठने का अवसर दिया गया। तात्कालिक सामाजिक विपम परिस्थिति मे यह एक विशेष आकर्षक घटना थी। महावीर भगवान् ने वहाँ वैठ कर अपना दिव्य उपदेश दिया।

प्राकृत—अभिव्यक्ति का माध्यम

भगवान् महावीर के उपदेश की भाषा जनसाधारण की भाषा थी, जिसे अर्धमागधी अथवा प्राकृत कहा गया है। सस्कृत तो आभिजात्यवर्ग की भापा थी, जो विशेष शिक्षित अथवा उच्चवर्गों और उच्चवर्णो तक सीमित थी। यह वर्ग सख्या मे न्यूनतर था। इसलिए लोकभापा सस्कृत न होकर प्राकृत थी। प्राकृत ही सर्वसाधारण व्यक्ति की अभिव्यक्ति का साधन था।

गणधर

भगवान् महावीर का व्यक्तित्व वहुत अधिक लोकप्रिय हो चुका था। वे विद्वानो और मनीषियो मे अप्रतिम थे। उनके उपदेश सर्वसाधारण के भी अन्त.स्तल तक पहुँचने लगे थे। इसलिए वे जनसमुदाय के आकर्षण के केन्द्रविन्दु वन गये थे। इस स्थिति मे यह आवश्यक था कि भगवान् महावीर अपने धर्मप्रचार के लिए कतिपय विशिष्ट विद्वानो को शिष्य वनायें, जो उनके सिद्धान्तो को समुचितरूप से समझ कर जनसाधारण के समक्ष प्रस्तुत कर सकें। इन्ही को शास्त्रीय परिभाषा मे गणधर कहा गया है।

श्वेताम्वर-जैनागमो मे महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर वताये गये हैं—इंद्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डिक, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचल-भ्राता, मेतार्य और प्रभास। ये सभी विद्वान् महावीर के व्यक्तित्व से प्रभावित हो कर उनके पास आये और अपने प्रश्नो का समाधान पाकर उनके परमशिष्य वन गये। दिगम्वरपरम्परा[1] मे निम्नलिखित ग्यारह गणधरो के नाम मिलते हैं—इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्मा, मौर्य, मौन्द्र, पुत्र, मैत्रेय, अकम्पन, अन्धवेल या अन्वचेल और प्रभास। इन गणधरो मे से वहाँ मात्र इन्द्रभूति के विषय मे थोडी वहुत जानकारी मिलती है। श्वेताम्वर-साहित्य मे अवश्य उनके विषय मे कही अधिक सूचनाएँ उपलब्ध हैं।

१ इन्द्रभूति

मगधवर्ती गौवंर ग्राम मे वसुभूति नामक एक ब्राह्मण विद्वान् रहता था। उसके तीन पुत्र थे—इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति। ये तीनो पुत्र भी वैदिक साहित्य और क्रियाकाण्ड के कुशल और प्रतिभाशाली; पर अहमन्य पण्डित थे। वे अपने समक्ष और किसी दूमरे की विद्वत्ता को स्वीकार नही करते थे। उस समय यज्ञ-क्रियाकर्म अधिक लोकप्रिय था। मध्यम पावा मे इन्द्रभूति अपने शिष्यो सहित आर्य सोमिल के विराट् यज्ञ का आयोजन करा रहे थे। भगवान् महावीर भी जृम्भिकाराम से वहाँ पहुँचे और वाह्य उद्यान मे ध्यानस्थ हो गये।

आश्चय की वात थी कि जनसमुदाय याज्ञिक उत्सव की अपेक्षा महावीर के दर्शन करने मे अधिक उत्साह दिखा रहा था। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक क्रियाकाण्ड की जडें हिल चुकी थी, समाज सही मार्गदर्शन पाने के लिए आतुर था।

इन्द्रभूति को भगवान् महावीर की लोकप्रियता ईर्ष्या का कारण वन गई। इतने मे ही एक वृद्ध विद्वान व्यक्ति उससे निम्नलिखित श्लोक का अर्थ पूछने आया—

---

१ उत्तरपुराण, २४, ३७३-३७४।

पचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाया महव्वया पच ।
अट्ठ य पवयणमादा सहेउओ बंध-मोक्खो य ॥[1]

इन्द्रभूति के लिए अत्थिकाय छज्जीवणिकाय, महव्वय, अट्ठपवयणमादा आदि पारिभाषिक शब्द बिलकुल नये थे। इसलिए विवश होकर उन्हे उससे यह कहना पडा कि मैं इस गाथा का अर्थ तुम्हारे गुरु के समक्ष ही बताऊँगा।

यह वृद्ध विद्वान आगमानुसार तो इन्द्र था, पर अपने आपको तीर्थंकर या विद्वान् मानने वालो की परीक्षा करने वाला कोई विशिष्ट व्यक्तित्व रहा होगा। अथवा यह भी सम्भव है कि महावीर की देशना कहाँ तक तथ्यसगत है, यह ज्ञात करने के लिए वह पण्डितमन्य इन्द्रभूति के पास पहुँचा हो।

महावीर के पास पहुँचते ही इन्द्रभूति गौतम स्वत हृतप्रभ-सा होने लगा। महावीर ने स्वय उसके हृदयाकित प्रश्नो को उसके समक्ष रखा। इन्द्रभूति को आत्मा के अस्तित्व के सन्दर्भ मे विशेष शका थी। उसका पक्ष था कि आत्मा घटादि पदार्थों के समान प्रत्यक्ष नही है। वह अनुमानगम्य भी नही कहा जा सकता, क्योकि अनुमान भी प्रत्यक्षपूर्वक होता है। आत्मा आगमगम्य भी नही है, क्योकि अनुमान के बिना आगम की सिद्धि नही होती। अदृष्टार्थ-विषयक नरक, स्वर्ग आदि की सिद्धि का भी अनुमान ही मूल कारण है तथा तीर्थिको के सभी आगम परस्पर विरोधी हैं, अतएव आत्मा के अस्तित्व के विषय मे सशय ही उत्पन्न होता है।

भगवान् महावीर ने गौतम इन्द्रभूति के उक्त सदेह को दूर करते हुए कहा कि आत्मा प्रत्यक्ष है, क्योकि स्वसवेदनसिद्ध जो सशयादिविज्ञान तुम्हारे हृदय मे प्रस्फुटित हो रहा है, वही आत्मा है। और जो प्रत्यक्ष है, वह प्रमाणान्तर द्वारा साध्य नही। जैसे स्वशरीर मे ही सुखदुःखादिक आत्मसवेदन सिद्ध है। तथा जानता हूँ, करता हूँ, बोलता हूँ, इत्यादि प्रकार से जो यह त्रैकालिक कार्य-व्यपदेश है, उसमे रहने वाले अहप्रत्यय से भी आत्मा सिद्ध होती है। जिसे आत्मा निश्चय का सशय होगा, वह कर्मबन्ध, मोक्षादिक के विषय मे भी सशयालु रहेगा। स्मृति, जिज्ञासा, चिकीर्षा आदि गुणो का स्वसवेदन प्रत्यक्ष होने से घट की तरह आत्मा गुणी भी प्रत्यक्ष सिद्ध होता है। यदि गुणो से गुणी को अनर्थान्तरभूत माना जाय तो उसके ग्रहण होने पर आत्मा का ग्रहण हो ही जायगा। यदि गुणो से गुणी को अर्थान्तरभूत माना जाय तो घटादिक गुणी प्रत्यक्ष नही होगे। अत· द्रव्य से विरहित कोई गुण नही होता।[2]

इन्द्रभूति गौतम महावीर भगवान् से अपने प्रश्न का समुचित समाधान पा कर प्रसन्न हुआ और उनका शिष्यत्व भी स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि इन्द्रभूति

---

१ षट्खण्डागम, ९, पृ० १२९।
२. विशेषावश्यक भाष्य, १५४०-६०।

का निमित्त पा कर भगवान् महावीर ने केवलज्ञानप्राप्ति के छयासठ दिन वाद श्रावणकृष्णा प्रतिपदा के दिन राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर धर्मोपदेश दिया।[१] जैन साहित्य मे इन्द्रभूति को प्रथम गणधर कहा गया है। भगवान् महावीर के उपदेशो का विश्लेपण, प्रचारण, और प्रसारण का समूचा उत्तरदायित्व और श्रेय इन्द्रभूति गौतम को ही है। महावीर के उपदेश की भाषा तत्कालीन लोकभाषा थी, जिसे प्राकृत अथवा अर्धमागधी कहा गया है। गौतम भी इसी भाषा मे जनसमुदाय के लिए भगवान् महावीर के उपदेशो का विश्लेपण करते थे।

२ अग्निभूति

इन्द्रभूति के वाद शेप दश प्रमुख विद्वान् भी क्रमश महावीर के शिष्य वन गये। द्वितीय विद्वान् अग्निभूति का सन्देह था कि कर्म है या नही ? महावीर ने कहा कि कर्म का अस्तित्व निश्चितरूप से है। वह प्रत्यक्षतः नही पर अनुमानत अवश्य दिखाई देता है। सुखदु खादि की अनुभूति का कारण कर्म ही है। तुल्य साधन होने पर सुखदु खादि के अनुभवन मे जो तारतम्य देखा जाता है, उसका मूल कारण कर्म है। वाल शरीर का पूर्ववर्ती जो शरीरान्तर है वह कर्म है। वही कर्म कार्माणशरीर है।[२] अपने प्रश्न का उत्तर पा कर अग्निभूति भी महावीर का शिष्य वन गया।

३ वायुभूति

वायुभूति का मन्तव्य था कि चैतन्य भूतो का धर्म है तथा शरीर और आत्मा अभिन्न हैं। महावीर ने कहा कि भूत की प्रत्येक अवस्था मे चेतना का अभाव होने पर सामुदायिक रूप मे चेतना की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? रेणु-समुदाय मे भी तेल कैसे उत्पन्न हो सकता है ? भूतो के प्रत्येक अग मे चेतन की न्यूनमात्रता मानी जाय और उसके सामुदायिक रूप से चेतना की उत्पत्ति मानी जाय तो भी ठीक नही। क्योकि जिस प्रकार मद्यागो मे न्यूनाधिक मात्रा मे मदशक्ति रहती है, उसी प्रकार प्रत्येक भूत मे चैतन्यशक्ति दिखाई नही देती। मद्य के प्रत्येक अग मे मदशक्ति मानना अनावश्यक नही कहा जा सकता, अन्यथा कोई भी वस्तु मद का कारण हो जायगा। अत चैतन्य भूतो का धर्म नही माना जा सकता और न शरीर और आत्मा अभिन्न कहे जा सकते हैं।[३] वायुभूति भी अपने प्रश्न का समाधान पा कर महावीर का शिष्य हो गया।

---

१ तिलोय पण्णत्ति, १६८, हरिवंशपुराण, २, ६१-६६; धवला, भाग १।
२ विशेपावश्यक भाष्य, १६१०-१४।
३ वही, १६५०-१६५४।

४ व्यक्त

विद्वान् व्यक्ति अथवा शुचिदत्त का सन्देह था कि भूतो का कोई अस्तित्व नही। वे मात्र स्वप्नोपम हैं। महावीर ने कहा—यदि ससार मे भूतो का अस्तित्व ही न हो तो उनके विषय मे आकाशकुसुम के समान सन्देह ही उत्पन्न नही होगा। विद्यमान वस्तु मे ही सन्देह उत्पन्न होता है। आगे चलकर यही सिद्धान्त शून्यवाद के रूप मे साहित्य और दर्शन मे प्रस्फुटित हुआ। विशेषावश्यकभाष्य मे तो इसे शून्यवाददर्शन ही कहा गया है।[1]

५. सुधर्मा

सुधर्मा "इहभव के समान ही परभव मे गति मिलती है," यह मानते थे। महावीर ने कहा—यह सोचना भ्रममूलक है। कार्य कारण के समान होता है। यह नियम एकान्तिक नही। श्रृङ्ग से शर नामक वनस्पति होती है। उसमे सर्षप लगा देने पर भूतृण उत्पन्न होता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न कर्मो का फल भिन्न-भिन्न होता है। उनके अनुसार ही परलोक मे जन्म मिलता है।[2]

६ माण्डिक (मण्डित)

"जीव का कर्म के साथ सयोग होता है।" इसमे माण्डिक को सन्देह था। भगवान् महावीर ने कहा—बीजाकुर के समान देह और कर्म अनादि हैं हेतुहेतुमद्भाव होने से। घट का कर्ता कुम्भकार है। उसी के समान जीव कर्म का कर्ता है और उसी प्रकार कारण होने से कर्म देह का कारण है। अनादि होने पर भी जीव और कर्म का सयोग तप द्वारा नष्ट हो सकता है। इस प्रकार बन्ध-मोक्ष की व्यवस्था स्पष्ट हो जाती है।[3]

७ मौर्य

मौर्य को देवो के अस्तित्व मे सन्देह था। महावीर ने कहा—देवो का अस्तित्व है। यह जातिस्मरण आदि से सिद्ध है। देवता के न होने पर स्वर्गीय फल निष्फल हो जायगा और वेदवाक्य निरर्थक हो जायेंगे।[4]

८ अकम्पित

अकम्पित का मत था कि प्रत्यक्ष और अनुमान से उपलब्ध न होने के कारण नारकियो का अस्तित्व नही है। महावीर ने कहा—नारकियो का अस्तित्व है, क्योकि

---

१. वही, १६९०-१७६८।
२. वही, १७७०-१८०९।
३ वही, १८०३-१८६०।
४ वही, १८६७-१८८३।

उसे सर्वज्ञ ने देखा है। इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष तो उपचारतः रहता है। इन्द्रियाँ अमूर्त होने से उपलब्धि करने मे असमर्थ हैं, समर्थ तो है ज्ञान। पाँच खिडकियो से देखने वाले एक व्यक्ति के समान जीव इन्द्रियो से भिन्न है। इन्द्रियरूप आच्छादनरहित जीव अधिक वस्तुओ को जानता है। अत नरकसिद्धि मे प्रत्यक्ष और अनुमान दोनो कारण सिद्ध हो जाते हैं। प्रकृष्ट पुण्यभागी देव हैं तो प्रकृष्ट पापभागी नारकी भी होगे।[1]

९ अचलभ्राता

अचलभ्राता के मन मे पुण्य-पाप के सम्बन्ध मे पाँच विकल्प थे—(1) केवल पुण्य है, (ii) केवल पाप है, (iii) दोनो अपृथक् है, (iv) दोनो पृथक् हैं, तथा (v) स्वभाव ही सब कुछ है। महावीर ने उत्तर दिया कि पथ्याहारी के समान पुण्य की उत्कर्षता और अपकर्षता देखी जाती है। इसी प्रकार अपथ्याहार से दु.ख देखा जाता है। अत पुण्य-पाप दोनो हैं और वे सयुक्त हैं। परस्पर उत्कर्ष-अपकर्ष मे उन्हे तदनुसार नाम दे देते हैं। दोनो पृथक् हैं और सुख-दुख. से उनका अस्तित्व माना जाता है। स्वभाव ही सब कुछ नही है।[2]

१० मेतार्य

मेतार्य को सन्देह था कि परलोक है या नही ? महावीर ने इसका समाधान किया और कहा कि जातिस्मरण आदि के कारण यह सिद्ध है कि भूतो के व्यतिरिक्त आत्मा है। वायुभूति के प्रश्न के सन्दर्भ मे इस प्रश्न का समाधान किया जा चुका है।

११ प्रभास

प्रभास का मत था—दीप के नाश की तरह जीव का निर्वाण जीव का नाश है। अथवा अनादि होने से आकाश की तरह जीव-कर्म का सम्बन्ध-विच्छेद नही होगा। नारकादि पर्यायो के नष्ट हो जाने पर जीव का नाश हो जाता है। फिर मोक्ष कहाँ ? महावीर ने इसका उत्तर दिया कि नारकादि पर्यायो के नष्ट हो जाने पर जीव का नाश नही होता। जीवत्व कर्मकृत नही। कर्मनाश होने पर ससार का नाश अवश्य होता है। विकारधर्म वाला न होने से जीव विनाशी सिद्ध नही होता। मुक्त हो जाने से जीव और कर्म का सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है।[2] यहाँ भगवान् महावीर ने पदार्थ के स्वरूप का भी विश्लेषण किया कि वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक है। निश्चयनय ध्रौव्यात्मक तत्व का प्रतीक है और व्यवहारनय उत्पाद-व्यय-तत्वो का।

---

१ वही, १८८८-१८९०।
२ वही, १९०८-१९४७।

इस प्रकार इन्द्रभूति गौतम और उसके दशो प्रधान विद्वान् साथी शिष्य महावीर स्वामी की प्रकाण्ड विद्वत्ता और सर्वज्ञता के समक्ष सविनय नतमस्तक हुए और अपने चौदह हजार शिष्यपरिवार-सहित उनके शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया। महावीर स्वामी के ये ही ग्यारह प्रधान शिष्य हुए, जिन्हें जैनशास्त्रो मे गणधर कहा गया है। इन ग्यारह गणधरो मे प्रधान गणधर थे—इन्द्रभूति गौतम।

दिगम्बर और श्वेताम्बर, दोनो परम्पराओ मे गणधरो की संख्या मे तो कोई मतभेद नही, पर उनके नामों मे मतभेद अवश्य है। इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, सुधर्मा, मौर्यपुत्र, अकम्पित, और प्रभास तो दोनो परम्पराओ को मान्य है, पर व्यक्त मण्डित, अचलभ्राता और मेतार्य को दिगम्बरपरम्परा स्वीकार नही करती। उनके स्थान पर वह मौन्द्र, पुत्र, मैत्रेय और अन्धवेल का नाम प्रस्तावित करती है। यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि श्वेताम्बराम्नाय मौर्यपुत्र को एक ही गणधर मानती है, पर दिगम्बराम्नाय उसे मौर्य और पुत्र नाम के दो गणधर बताती है।

चतुर्विध संघ की स्थापना

ग्यारह गणधरो के शिष्य बन जाने पर महावीर भगवान् की लोकप्रियता और विश्रुति और अधिक बढ़ गई। साथ ही उनके अनुयायियो की सख्या मे भी वृद्धि होना प्रारम्भ हो गया। यह देख कर भगवान् ने सात अथवा नव गणो की स्थापना की और उनका उत्तरदायित्व पूर्वोक्त गणधरो को सौंप दिया।

इसके उपरान्त उन्होने अपने अनुयायियो को भी चार श्रेणियो मे विभाजित कर दिया—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। साध्वियो का नेतृत्व आर्या चन्दनबाला को सौंपा गया।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन चतुर्विध तीर्थ की स्थापना की और वे स्वय तीर्थंकर की कोटि मे पहुँच गये। बौद्ध साहित्य मे सघी, गणी, गणाचरिय, तित्थकर, सव्वञ्ञू आदि सम्माननीय शब्दो से उनका अनेक बार स्मरण किया गया है।

धर्मप्रचार और वर्षावास

चतुर्विध सघ की स्थापना के उपरान्त भगवान् महावीर ने सर्वजनहिताय और सर्वजनसुखाय धर्मप्रचार करना प्रारम्भ किया, ताकि सासारिक प्राणी भौतिकता से दूर हट कर आत्म-कल्याण कर सकें। जनकल्याणकारिता के कारण ही उन्हें अर्हन्त जिन कहा गया है और पचपरमेष्ठियो मे प्रथमपरमेष्ठी के अन्तर्गत उनका नाम रखा गया है।

केवलज्ञान-प्राप्ति के बाद की भी जीवन-घटनाओ का विवरण दिगम्बर साहित्य मे समुचित और सुसम्बद्ध नही मिलता, जबकि श्वेताम्बरसाहित्य मे उसे

किसी सीमा तक क्रमवद्ध कर दिया गया है। दोनो परम्पराओ के आधार पर भगवान् महावीर के धर्मप्रचार और वर्षावास के प्रमुख स्थल निम्नप्रकार से निश्चित किये जा सकते हैं—

१ मध्यमपावा, राजगृह (वर्षावास)।
२ ब्राह्मणकुण्ड, क्षत्रियकुण्ड, वैशाली (वर्षावास)।
३ कौशम्वी, श्रावस्ती, वाणिज्यग्राम, (वर्षावास)।
४ राजगृह (वर्षावास)।
५ चम्पा, वीतभय, वाणिज्यग्राम (वर्षावास)।
६ वाराणसी, आलंभिया, राजगृह (वर्षावास)।
७ राजगृह (वर्षावास)।
८ कौशाम्वी, आलभिया, वैशाली (वर्षावास)।
९ मिथिला, काकन्दी, पोलासपुर, वाणिज्यग्राम, वैशाली (वर्षावास)।
१० राजगृह (वर्षावास)।
११ कयगला, श्रावस्ती, वाणिज्यग्राम (वर्षावास)।
१२ वाह्मणकुण्ड, कौशाम्बी, राजगृह (वर्षावास)।
१३ चम्पा (वर्षावास)।
१४ काकन्दी, मिथिला, (वर्षावास)।
१५ श्रावस्ती, मिथिला (वर्षावास)।
१६ हस्तिनापुर, मोकानगरी, वाणिज्यग्राम (वर्षावास)।
१७ राजगृह (वर्षावास)।
१८ चम्पा, दशार्णपुर, वाणिज्यग्राम (वर्षावास)।
१९ काम्पिल्यपुर, वैशाली (वर्षावास)।
२० वैशाली (वर्षावास)।
२१ राजगृह, चम्पा, राजगृह (वर्षावास)।
२२ राजगृह, नालन्दा (वर्षावास)।
२३ वाणिज्यग्राम, वैशाली (वर्षावास)।
२४ साकेत, वैशाली (वर्षावास)।
२५ राजगृह (वर्षावास)।
२६ नालन्दा (वर्षावास)।

२७ मिथिला (वर्षावास)।
२८ मिथिला (वर्षावास)।
२९ राजगृह (वर्षावास)।
३० अपापुरी मध्यमपावा (वर्षावास)—परिनिर्वाणस्थल।

भगवान महावीर ने अपने तीसवर्षीय धर्मप्रचारकाल मे जैनधर्म को भारत वर्ष के कोने-कोने मे फैला दिया। उनका भ्रमण विशेषतः उत्तर, पूर्व, पश्चिम और मध्यभारत मे अधिक हुआ। बडे-बडे राजे-महाराजे भी उनके अनुयायी भक्त थे। श्रावस्ती का नरेश प्रसेनजित्, अगदेश का नरेश कुणिक, चम्पा का नरेश दधिवाहन, कौशाम्बी का नरेश शतानीक, कलिंग का नरेश जितशत्रु आदि जैसे प्रतापी महाराजा भगवान के भक्त और उपासक थे।

दक्षिणापथ मे भी भगवान् का विहार हुआ। उस समय यह भाग हेमागद के नाम से विश्रुत था। महाराजा सत्यन्धर के सुपुत्र जीवधर उस समय वहाँ के राजा थे। राजपुर उसकी राजधानी थी। जैनधर्म का प्रचार यद्यपि उस प्रदेश मे पहले से ही था, पर महावीर के भ्रमण से उसमे एक नया उत्साह और नयी प्रेरणा जागृत हुई। आज भी दक्षिण मे जैनधर्म, साहित्य और कला के प्रमाण प्रचुरमात्रा मे उपलब्ध होते हैं। श्रीलका आदि दक्षिणवर्ती देशो मे उस समय जैनधर्म पहुँच गया था। पालि-साहित्य, विशेषत महावश, इसका विश्वसनीय प्रमाण है।

इसी प्रकार महावीर का परिभ्रमण मगध (राजगृह), अग (चम्पा), बग (ताम्रलिप्ति), कलिंग (काचनपुर), काशी (वाराणसी), कौशल (साकेत), कुरु (हस्तिनापुर), पाचाल (काम्पिल्य), जागल (अहिच्छत्र), सौराष्ट्र (द्वारावती), विदेह (मिथिला), वत्स (कौशाम्बी), शाण्डिल्य (नन्दिपुर), मलय (भद्दिलपुर), मत्स्य (वैराट), अत्स्य (वरुणा), दशार्ण (मृत्तिकावती), चेदि (शुक्तिमती), सिन्धु-सौवीर (वीतभय), शूरसेन (मथुरा), भगी (पावा), वर्त्त (मासपुरी), कुषाल (श्रावस्ती), लाढ (कोटिवर्ष), केकय (श्वेताम्बिका), अवन्ति (उज्जैन) आदि देशो मे हुआ और वहाँ उन्होंने अपने धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

हरिवशपुराण[1] के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भगवान् महावीर ने बाल्हीक (बैक्ट्रिया), यवन (यूनान), गाधार (अफगानिस्तान), कम्बोज, वज्रभूमि, (वीरभूमि) स्वर्णभूमि, (सुमात्रा), ढढ़भूमि आदि देशो मे भी भ्रमण किया था। उस समय ये देश भारत की सीमा मे आते होंगे।

---

१ हरिवशपुराण, ३, ५।

संघ प्रमाण

तीर्थंकर महावीर का व्रती सघ इस प्रकार था[1]—

१	गणधर	११
२	गण	७ अथवा ९
३	केवली	७००
४.	मन.पर्यायज्ञानी	५००
५	अवधिज्ञानी	१३००
६	चौदह पूर्वधारी	३००
७	वादी	४००
८	वैक्रियकलब्धिधारी	७००
९	अनुत्तरोपपातिक मुनि	८००
१०	साधु	१४०००
११	साध्वियां	३६०००
१२	श्रावक	१५९०००
१३	श्रविकाएँ	३१८०००
		५३११७१८

इसमे साधारण श्रावक-श्राविकाओ की गणना सम्मिलित नही है। मात्र व्रतधारियो की ही यहाँ गणना की गई है। सम्भव है, यहाँ व्रती सघ के अन्तर्गत उन्ही को रखा गया हो, जो ग्याहरवी प्रतिमा तक पहुँच चुके हो। यदि ऐसा माना जाय तो यह सख्या अनगाररूप से प्रव्रजित साधुओ की ही होगी। उद्दिष्टत्यागी को भी श्रावक कहा गया है। साधारण श्रावक-श्राविकाओ की गणना यहाँ नही होगी।

परिनिर्वाण

राजगृह मे ४१वाँ वर्षावास कर तीर्थंकर महावीर धर्मप्रचार करते हुए मल्लो की राजधानी अपापुरी (पावापुरी) पहुँचे। वहाँ के राजा हस्तिपाल ने उनका भावभीना स्वागत किया। धर्मोपदेश देते हुए पावापुरी मे वर्षाकाल के तीन माह व्यतीत हो चुके थे। चौथे माह की कार्तिक कृष्णा अमावस्या का प्रात.काल भगवान् महावीर का अन्तिम समय था। वे अनवरत धर्मदेशना दे रहे थे। उनकी सभा मे काशी, कौशल के नौ मल्ल और नौ लिच्छवी, ये अठारह गणराजा भी उपस्थित थे। अन्त मे उन्होने 'अघातिया कर्मों का भी क्षय कर परम निर्वाणपद प्राप्त किया।[2]

---

१ कल्पसूत्र, १२६, उत्तरपुराण।

२ कल्पसूत्र, १३३-१४४, ७४, ३७३-३७९

भगवान् महावीर ने तीस वर्ष की आयु मे महाभिनिष्क्रमण किया, एव छद्मस्थकाल के बारह और केवलीचर्या के तीस, कुल बयालीस चातुर्मास किये। इस प्रकार कुल मिला कर महावीर की आयु बहत्तर वर्ष की मानी गई है।

इस निर्वाणप्राप्ति के उपलक्ष्य मे लिच्छवि, मल्ल राजा, महाराजाओ ने दीप जला कर निर्वाण महोत्सव मनाया। आज भी दीपावली के रूप मे उसे धूम-धाम से मनाया जाता है।

परिनिर्वाण-काल

यद्यपि भगवान् महावीर का परिनिर्वाणकाल विवादग्रस्त है, तथापि परम्परानुसार महावीर का निर्वाण ५२७ ई० पू० कहा जा सकता है।

कुछ विद्वानो ने ४६८ और ४८२ तथा ५२७ और ५४६ ई० पूर्व के बीच निर्वाणकाल माना है।

हेमचन्द्राचार्य ने त्रिषष्टी-शलाका-चरित्र मे लिखा है कि महावीरनिर्वाण से १६६९ वर्ष बाद कुमारपाल का जन्म हुआ है। यानी ई० सन् ११४२ मे हुआ। अत. महावीर का निर्वाणकाल १६६९-१११८=५२७ ई० पूर्व है।

निर्वाण-स्थल

भगवान् महावीर का निर्वाणस्थल भी एक विवाद का विषय बना हुआ है। वह गगा के दक्षिणवर्ती प्रदेश मे स्थित पावा है अथवा उत्तरवर्ती प्रदेश मे स्थित पावा है ? गंगा का उत्तरवर्ती पावा प्राचीनकाल मे पपहुर और अपापुरी के नाम से प्रचलित था। वहाँ राजा हस्तिपाल की राजधानी भी थी। वर्तमान मे वह गोरखपुर जिले के अन्तर्गत आता है। गगा का दक्षिणवर्ती पावा राजगृह के समीप स्थित है, जिसे परम्परा से भगवान् महावीर का निर्वाणस्थल स्वीकारा गया है।

प्रश्न यह है कि वह कौन-सी पावा है, जिसे महावीर के निर्वाण-स्थल बनने का सौभाग्य मिला है ? निर्वाण के प्रसंग मे हम पालि-साहित्य मे प्राप्त उद्धरणो का उल्लेख कर आये हैं। उनसे यह स्पष्ट है कि महावीर का निर्वाण मल्लो की राजधानी नगरी पावा मे हुआ।[1]

इतिहास मे मल्ल राजा दो भागो मे विभाजित थे। एक पावा के मल्ल और दूसरे कुसीनारा के मल्ल। पावा के मल्लो की राजधानी मे ही महावीर का निर्वाण हुआ। उत्तर मे वज्जियो और मल्लो का राज्य था, तथा दक्षिण मे मगध मे लिच्छवियो

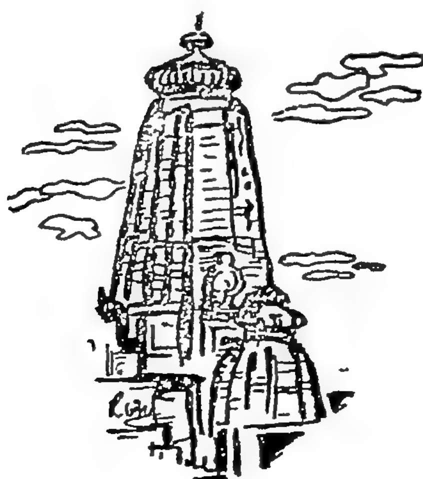
---

१. पावा नाम मल्लानं नगर तदवसरि । तेन खोपनसमयेन निगण्ठो नातपुत्तो पावाय अधुना कालङ्कतो होति।—दीघनिकाय पथिकवग्ग, सगीतिसुत्त।

और ज्ञातृकुलो का राज्य था। उत्तर मे बुद्ध का प्रभाव अधिक था और दक्षिण मे महावीर का। परन्तु दोनो प्रदेशो मे बुद्ध और महावीर समानरूप से विहार करते रहे और समानरूप से समादर पाते हुए धर्मदेशना देते रहे। मल्लो और लिच्छवियो के बीच सम्बन्ध अच्छे नही थे, फिर भी वे इन दोनो महापुरुषो के भक्त थे।

भगवान् महावीर के निर्वाण के समय नौ मल्लकी तथा नौ लिच्छवी अठारह गणराजा उपस्थित थे।[1] महावीर का जिस समय पावा मे निर्वाण हुआ, उस समय बुद्ध कुसीनारा मे थे और उसका परम शिष्य चुन्द पावा मे ही वर्षावास कर रहा था। महावीर का परिनिर्वाण होते ही वह बुद्ध के पास सूचना देने स्वय पहुँच गया। यह सम्भव तभी हो सकता है, जब पावा और कुसीनारा समीप हो। दीघनिकाय अट्ठकथा मे कहा है कि पावा से कुसीनारा की दूरी तीन गव्यूति (कोस) है—**पावा नगरतो तीणि गावुतानि कुसीनारा नगरं**। महावीर यही अन्तिम वर्षावास करने राजगृह से आये थे। सम्भव है, उनका यह कार्य मल्लो और लिच्छवियो के बीच एकता स्थापित करने के लिए रहा हो।

इन तथ्यो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परम्परागत दक्षिण पावा को महावीर भगवान् का निर्वाणस्थल नही कहा जा सकता। यह पुनीत स्थल गगा के उत्तरवर्ती प्रदेश मे स्थित पावा ही होना चाहिए। यही उनका अन्तिम वर्षावास हुआ होगा।



---

१ कल्पसूत्र, १२८।

श्री दिगम्बरदासजी एडवोकेट इतिहास के अच्छे विद्वान हैं। दीपावली पर्व का श्रीगणेश कब से हुआ ? इस सम्बन्ध में आपने शोधपूर्ण युक्तिसगत एवं प्रमाणपुरःसर लेख प्रस्तुत किया है। दीपावली महावीरनिर्वाण से अधिक सम्बन्धित क्यो हैं ? इसके कारणो की भी सुन्दर मीमांसा की है।—सम्पादक



महावीर-निर्वाण एवं दीपावली का प्रारम्भ

श्री दिगम्बरदास जैन एडवोकेट, सहारनपुर



इसमे किसी को कोई सन्देह नही है कि दीपावली एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पर्व है, परन्तु यह कब और क्यो प्रारम्भ हुआ ? इसका कारण कुछ विद्वान, महर्षि स्वामी दयानन्द का स्वर्गवास, कुछ स्वामी रामतीर्थ का गंगा मे समाधि लगा कर शरीर त्यागना, कुछ छठे गुरु हरगोविन्दसिंह का मुगल सम्राट् जहाँगीर के बन्दीखाने ग्वालियर किले से मुक्त होना और कुछ श्री रामचन्द्रजी का लकाधीश रावण पर विजय प्राप्त करके अयोघ्या लौटना बताते हैं।

महर्षि दयानन्द का स्वर्गवास, स्वामी रामतीर्थ का शरीर त्यागना तथा सिक्ख-गुरु श्री हरगोविन्दसिंह का बन्दीखाने से मुक्त होना तो अधिक से अधिक तीन सौ-चार सौ वर्षों की घटना है और दीपावली उसके बहुत पहले से प्रचलित है। यह सत्य है कि यह घटनाएँ दीपावली-पर्व पर हुई, परन्तु दीपावली पर्व के श्रीगणेश से इनका कोई सम्बन्ध नही है।

कहा जाता है कि आषाढ सुदी दशमी को राम ने रावण पर विजय प्राप्त की, इसीलिए दशहरा पर्व प्रचलित हुआ और कार्तिक वदी चतुर्दशी को वे अयोघ्या लौटे, इस उपलक्ष मे दीपावली मनाई जाती है। यदि ऐसा होता तो महर्षि बाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास अपनी बनाई हुई रामकथा मे इन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओ का उल्लेख अवश्य करते। किन्तु इसके विपरीत गोस्वामीजी अपने 'रामचरितमानस के 'लकाकाण्ड' मे लिखते हैं :—

लड़े बहत्तर दिन सग्रामा,
वानर-राक्षस बिन विश्रामा।

वसु दस दिन लडि सो महि धारा
भूता मधुसित रावण मारा
चैत सुदी चौदह जब आई।
मरो दशानन जग-दुखदाई ।

—गोस्वामी तुलसीदास की रामायण का लकाकाण्ड अर्थात् वानरो और राक्षसो का युद्ध विना विश्राम किये निरन्तर ७२ दिन तक होता रहा और राम ने १८ दिन लडकर चैत्र सुदी १४ को रावण को मारा।

इस प्रकार तुलसीदास के अनुसार रावण चैत्र मास के शुक्लपक्ष मे चतुर्दशी के दिन मारा गया था, आश्विन मास के शुक्लपक्ष की दशमी को नही।

वास्तव मे प्राचीन समय मे आजकल के समान न पक्की सड़कें थी और न विमानो द्वारा युद्ध होता था। वर्षाऋतु के कारण घोडो, खच्चरो एवं रथो का चलना दुर्लभ होता था। आषाढ सुदी नवमी तक वर्षाऋतु समाप्त हो कर आने-जाने का मार्ग साफ हो जाता था। इसीलिए प्राचीन समय के योद्धा अपनी विजययात्रा आसोज सुदी दशमी को प्रारम्भ करते थे। इसके कारण यह दिन विजय-दशमी कहलाता था। कालान्तर मे लोगों ने इस विजय-दशमी का अर्थ यह लगा लिया कि इस दिन राम ने रावण पर विजय प्राप्त की। सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रेमचन्द शास्त्री ने हिन्दी दैनिक "नवभारत टाइम्स' १७ अक्टूबर १९७१ मे बताया कि जब रावण आसोज सुदी दशमी को मारा गया तो विमान द्वारा अयोध्या लौटने मे २० दिन क्यो कर लगते? यह सत्य है कि विभीषण ने राम से उस समय लका मे ठहरने के लिए आग्रह किया था, परन्तु ऋषि वाल्मीकि के शब्दो मे राम नही माने और कहा—

उपस्थापय मे शीघ्रं
विमानं राक्षसेश्वर !
कृतकार्यस्य मे वास.
कथस्विद्धि सम्मत. ?

अर्थात्-हे राक्षसराज विभीषण! मेरे जाने के लिये शीघ्र ही विमान मँगाओ। मेरा कार्य पूरा हो चुका है। अब मेरा यहाँ रहना कैसे सम्मत हो सकता है?

महर्षि वाल्मीकि ने अपनी रामायण मे यह भी स्पष्ट कर दिया—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पंचम्यां लक्ष्मणाग्रज. ।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य प्राहिणोदवध हनुम् ॥

अर्थात् वनवास के चौदह वर्ष पूर्ण हो जाने पर राम लंका से लौटते हुए वैशाख मास की कृष्णा पचमी को भारद्वाज मुनि के आश्रम मे पहुँचे। और वहाँ से अपने भ्राता भरत को अपने आने की सूचना देने के लिए श्रीराम ने हनुमानजी को अयोध्या भेजा। ऋषि वाल्मीकि ने अपनी रामायण मे यह भी कहा है—

सहसीत. ससौमित्रिः स त्वा कुशलमब्रवीत् ।
पचमीमथ रजनीमुषिता वचनान्मुनेः ॥

अर्थात्-श्रीराम सीताजी और लक्ष्मण सहित ने अपनी कुशलता का समाचार आपको दिया है कि आज पचमी की रात्रि मे भारद्वाज मुनि की आज्ञा से वही ठहरेंगे ।

इससे सिद्ध होता है कि रामचन्द्रजी चैत्र चतुर्दशी को रावण पर विजय प्राप्त करके उसकी अन्त्येष्टि करवा कर और विभीषण को राज्य दे कर एक सप्ताह मे ही अयोध्या के अतिनिकट-स्थित भारद्वाज मुनि के आश्रम मे पहुँच गये । अगले दिन अयोध्या मे श्रीराम का स्वागत और राजतिलक हुआ । राम का कार्तिक वदी अमावस्या को अयोध्या लौटना किसी प्राचीन प्रामाणिक पुराण, रामायण या इतिहास से सिद्ध नही होता । इसीलिए यह कहना उचित है कि दीपावली का आरम्भ भगवान् राम के अयोध्या लौटने के कारण प्रचलित नही हुआ । पजाब के प्रसिद्ध साहित्यकार "हरवसलाल चौपडा" उर्दू दैनिक "प्रताप' दिनाक १४-११-१९५८ मे पृष्ठ ५ पर इसकी पुष्टि करते हुए लिखते हैं कि दशहरा और दीपावली मे २० दिन का अन्तर है। रावण के मारे जाने पर विभीषण ने राम से दो-चार दिन ठहरने के लिये कहा, परन्तु राम ने स्वीकार नही किया और कहा 'यदि मैं शीघ्र अयोध्या नही लौटा तो भरतजी अपने प्राण खो देंगे ।' दीपावली के दिन रामचन्द्रजी का अयोध्या लौटना उनकी भी दृष्टि से सत्य नही है । यदि ऐसा होता तो दीपावली के अवसर पर उनके अयोध्या-प्रवेश से सम्बन्धित कुछ न कुछ क्रिया अवश्य होती । प० कैलाशचन्द्र शास्त्री के अनुसार इतिहास रामायण तथा हिन्दू पुराण मे इस सम्बन्ध मे कोई उल्लेख नही है ।

श्वेताम्बरग्रन्थ कल्पसूत्र, जिसको मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त (३१७—२९८ ई० पू०) के गुरु जैन-आचार्य अन्तिम श्रुतकेवली 'भद्रबाहु' की रचना कहा जाता है, मे SBE भाग २२ पृष्ठ २६६ पर दीपावली का मनाया जाना भगवान् महावीर के निर्वाण के उपलक्ष मे लिच्छिवि आदि राजाओ द्वारा प्रचलित होने का उल्लेख है । मार्गरेट-स्टीवेन्सन ने भी इस सत्य की पुष्टि "इन्साईक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स" भाग ५ पृष्ठ ८७५ से—८७८ मे दीपावली का आरम्भ वीरनिर्वाण से वताया है। प्रोफेसर परशुराम कृष्ण गोडे, क्यूरेटर भाण्डारकर ओरिएन्ट रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना मे महावीरस्मृति-ग्रन्थ भाग Ist (आगरा) मे भी दीपावली को भगवान महावीर का निर्वाण-उत्सव १८ लिच्छवि—मल्लकि एव अन्य राजाओ द्वारा दीपावली के रूप मे प्रचलित होना स्वीकार करते हैं ।

दीपावली के अवसर पर होने वाले कार्यक्रम स्वय इस ऐतिहासिक सत्यता को सिद्ध करते हैं—

१　कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्या के बीच की रात मे भगवान् महावीर ने समस्त कर्ममल नष्ट करके सिद्धपद पाया। कर्म-मल के स्थान पर उस रात मे घर का कूडा-करकट (मल) बाहर फेंका जाता है।

२　दीपावली पाप-दोषो को साफ करके हृदय की शुद्धता का पवित्र उत्सव है। जिसके स्थान पर आज उस अवसर पर लिपाई-पुताई रग-रोगन करके घरो की शुद्धता, स्वच्छता सफाई की जाती है। अर्थात् अन्तरग-शुद्धि की जगह वहिरग शुद्धि ने ले ली।

३　अमावस्या के अन्धकार को दूर करने के लिए उस समय के लिच्छवि मल्लि आदि १८ राजाओ ने वीर-निर्वाण के उपलक्ष मे दीपक जला कर प्रकाश किया। उसकी ही स्मृति मे उस समय से आज तक इस शुभ रात्रि मे दीपक जलाये जाने की प्रथा प्रचलित हुई।

४　भगवान् महावीर के समवशरण मे १२ प्रकार की परिषद् होती थी। मनुष्यो के अतिरिक्त पशु-पक्षी तक उनकी अमृतवाणी सुनने के लिए वहाँ आते थे। आज भूमि और दीवार को लीप-पोत कर शुद्ध करके लकीर बनाना और उनमे मनुष्य, पशु, तिर्यंच आदि के चित्र और खिलौने रखना वीर-समवशरण तथा उसकी १२ परिषदो का द्योतक है।

५　समवशरण मे भ० महावीर गन्ध-कुटी मे विराजमान होते थे, जो चारो ओर से खुली होती थी और जहाँ भगवान् का मुख चारो ओर दिखाई देता प्रतीत होता था आज उसके स्थान पर खिलौने के साथ हाडी अवश्य रखी जाती है, जो चारो ओर से खुली होती है। उसमे मनुष्य के आकार का चारो ओर चित्र या मूर्ति गन्धकुटी की स्मृति मे स्थापित की जाती है।

६　उसी रात मे भ० महावीर के मुख्य गन्धर्व (गणेशजी) इन्द्रभूति गौतम ने केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त की थी। जिसकी पूजा उस समय के लोगो ने की थी। जिसकी स्मृति मे इस शुभ अवसर पर गणेशजी तथा चचल लक्ष्मी की पूजा की जाती है।[1]

७　इस रात्रि मे भ० महावीर का सदैव के लिए शरीर त्याग हुआ था, इसीलिए उस रात्रि को काल (मृत्यु) रात्रि कहा जाता है।

1　As regards worship of Lakshmi and Ghaneshji', the Jain's have a convincing tradition that Inder Bhuti attained omniscience a few hours later than the liberation of Mahavira The people in honour to his befiting memory, omniscience the greatest wealth and Ghanesha was Gotma Indra Bhuti himself as he was head of cleven Gandharas of Mahavira

८ भ० महावीर की निर्वाण-स्मृति मे उस समय के राजाओ, सेठो और व्यापारियो ने सर्वप्रथम नया संवत् प्रचलित किया था, जो आज तक वीर-निर्वाण सवत् के नाम से प्रचलित है।

९ उस समय दीपावली पर पुण्य-पाप का चिट्ठा बांध कर शुभकार्य किये जाते थे, उसके स्थान पर आज पिछले वर्ष की आमदनी-खर्च का चिट्ठा बांध कर नये वीर सवत् से नई रोकडबही व हिसाब-किताब रखा जाने लगा।

१० वीरनिर्वाण के उपलक्ष मे स्वर्ग के देवो ने रग-बिरगे बहुमूल्य रत्न बरसाये। राजाओ ने मिष्ठान्न बांटा, आज खील, बताशे, रग-बिरगी बरफियां और मिठाइयाँ उस अवसर पर मित्रो एव सम्बन्धियो मे बांटा जाना उसका द्योतक है।

११ वीर-निर्वाण की उस समय के राजाओ और जनता ने भक्तिपूर्वक पूजा की। उसकी स्मृति मे दीपावली के दिन वीर-निर्वाण-पूजा होती हैं और वीर-निर्वाण का लड्डू चढ़ाया जाता है।

इन समस्त कार्यों पर ध्यानपूर्वक विचार करने से नि सन्देहरूप से स्पष्ट हो जाता है कि दीपावली वीर-निर्वाण की स्मृति का पर्व है। जैसा कि दिगम्बर जैन आचार्य जिनसेन ने अपनी ७८३ ई० की रचना हरिवश-पुराण सर्ग ६६ श्लोक १५-१६-१७-१८-१९-२० में, दिगम्बर जैन-आचाय गुणभद्र ने, जो राष्ट्रकूटवशी सम्राट् अमोघवर्ष के पुत्र तथा उत्तराधिकारी कृष्णराज II के गुरु थे, उनके राज्य काल मे उत्तरपुराण की रचना की, जिसमे सर्ग १६ मे तथा आचार्य सोमदेवसूरि ने राष्ट्रकूट-सम्राट् कृष्णराज III के शासनकाल ९५९ ई० की रचित यशस्तिलक चम्पू मे, मुस्लिम लेखक मुलतानवासी अब्दुल रहमान ने अपने अपभ्र श भाषा के ग्रन्थ "सदेशरासक" (११०० ई०) मे, अकबर के नौवें रत्न अब्दुल फजल ने आईने-अकवरी (१५९० ई०) मे, परिपूर्णानन्द वर्मा ने वीर १-९-७२ के पृष्ठ २ पर तथा डा० एल एन L L D. ने Voice of Ahnisa १९५६ पृष्ठ ३२८ पर दीपावली का उल्लेख किया है। मासिक 'जैन प्रचारक, अक्टूबर १९४० ने पृष्ठ १३ के अनुसार लोकमान्य वाल गगाधर तिलक व ससार के सुप्रसिद्ध कवि "डा० रवीन्द्रनाथ टैगोर" भी दीपावली को वीर-निर्वाण के उपलक्ष मे मनाना स्वीकार करते है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रोफेसर पृथ्वीराज का कहना सत्य है कि दीपावली वीरनिर्वाण-उपलक्ष मे कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी ५२७ ई० पू० से मनाया जाना सर्व-प्रथम प्रचलित हुआ है।[2]

---

2. The night in which Lord Mahavira attained nirvan was lighted by descending and accending Gods and 18 confederate kings institute an illumination to celeberate Moksha of the Lord, since then the people make illumination and this in fact is Origin OF DEPAWALI—Prof Pirthvi Raj' Voa VOL I, Part VI, p 9

लघु शब्द-बोध

निर्वाण के समय भ० महावीर की मनःस्थिति

—सुरेश 'सरल', जबलपुर



सोचता हूँ मनःस्थिति क्या रही होगी भगवान की, निर्वाण के समय? निर्वाण के क्षण उपस्थित गणधर या तब से अब तक के आचार्यगण, विचारक-चिंतक भ० महावीर की मन स्थिति का चित्रण स्वप्रणीत ही करते रहे है, मैं भी बात स्वक्षेत्र से कहना चाहता हूँ।

तपस्या-काल व्यतीत कर देने के बाद निर्वाण के समय तक का तपस्वी-महावीर मोक्ष नही चाहता था। उस समय तो उसका मन ही नही था, उसके पास। मन—जो इच्छाओ का सृजक तो भावनाओ का संचालक है। बिना मन के महावीर की मन स्थिति तब क्या हो सकती थी?

मन का राजा महावीर तब तक मन को दासत्व की ओर ढकेल चुका था, फिर कैसी मन स्थिति? वह तो मन स्थिति के आगे की परिधि मे प्रवेश कर चुका। यह परिधि "उसकी अपनी स्थिति" की परिधि थी। निर्वाण के समय के क्षणाश पूर्व तक महावीर की भावना का सतत सचालन जिस क्राति की ओर था, वह थी प्राणिमात्र के कल्याण की क्रान्ति या विश्व-शान्ति की बीजक-क्रान्ति। यही महावीर की प्रथम और अन्तिम भावना, मनोकामना या प्रेरणा कही जा सकती है। क्योकि निर्वाण के समय की चेतना सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्र-प्रणीत चेतना थी।

उसी क्षण महावीर की मन स्थिति प्रकृत्याकार हो गई थी और प्रकृति उनकी मन स्थिति मे समाहित हो ली थी।

भ० महावीर के निर्वाण से पूर्व के २७ भवों के
विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से

कर्मविजेता महावीर

—सुभाष मुनि "सुमन"



ईसा पूर्व छठी शताब्दी मे कई देशो मे आध्यात्मिक व्यग्रता और बौद्धिक विक्षोभ दिखायी दिया। इस दृष्टि से यह शताब्दी उल्लेखनीय है। चीन मे लाओत्जे और कनफ्युशियस हुए, यूनान मे परमेडीज और ऐम्पेडोक्लीज, फारस मे जरथुस्त, इजरायल मे पैगम्बरो और भारत मे भगवान् महावीर तथा बुद्ध का आविर्भाव हुआ।

उस काल मे बहुत से चिन्तको और द्रष्टाओ ने अपने पूर्वजो से प्राप्त ज्ञान की बिरासत को आगे बढाया और अपनी ओर से नयी विचारधाराएँ प्रदान की।

परामनोविज्ञान के दिशादर्शन के लिये कितनी सामग्री भगवान महावीर के जन्म के अथ से आगे तक प्राप्त हो सकती है ? यह विषय जगमगाता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है।

उनका जन्म जबकि जालन्धर-गोत्रीया ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ से होना था, तब कुछ समय बाद स्वय देवराज इन्द्र को यह ध्यान आता है कि यह कुल तीर्थंकर के पदार्पण के लिये माध्यम बनने योग्य नही है। उन्हें तो ऐसे दरिद्र ब्राह्मण आदि कुलो मे जन्म लेने की अपेक्षा विशुद्ध क्षत्रिय हरिवश जैसे जाति-कुल-वशो मे ही उत्पन्न होने की अपनी परम्परा का निर्वाह करना चाहिए था।

विज्ञजन इस घटना को साश्चर्य देखते हैं, किन्तु उनके पास एक उत्तर है, इसके समाधान का कि उत्सर्पिणी काल व्यतीत हो जाने पर तीर्थंकर के लिये भी ऐसी अनहोनी बात सम्भव है, परन्तु क्या इस सम्पूर्ण रहस्य के पीछे कर्म एव इसी प्रकार की विभिन्न परिस्थितियाँ उत्तरदायी नही कही जा सकती ?

साथ ही नीच एव उच्च कुलो की परिभाषा समय तथा परिस्थितियो के अनुमार बदलती रहती है। ऊँचे या नीचे कुल इस विश्व मे हैं ही कहाँ और यदि हैं तो वे सम्पूर्ण समाज के स्तर मे तुलनात्मक स्थिति मे ही कहे जा सकते हैं और इसी

दृष्टिकोण से भगवान् महावीर ने उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी की सन्धि मे पदार्पण करने का समय लिया।

तीर्थंकर नामकर्म का सम्मान करते हुए भी कर्मों से ऊपर होते हैं। वे विश्वहितार्थ कुछ परम्पराओ का भले ही निर्वाह करें, किन्तु परम्पराएँ उनके चरणो से प्रारम्भ होती हैं।

और इसी दृष्टि से भगवान महावीर ने इस कुल या उस कुल मे जन्म लेने के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान की होगी ? फिर भगवान् महावीर तो महावीर ही हैं। प्रशसा सबकी की जा सकती है, किन्तु तुलना-रहित प्रशसा ही अपने आप मे महान् आत्माओ के प्रति यथार्थस्थिति का दर्शन कराने मे श्रद्धा का परिमार्जन कर सकती है। अत जो स्थितियाँ पिछले २३ तीर्थंकरो के समय मे दृष्टिगोचर नही हो सकी, वे इन जिन प्रभु के समय देखी जा सकती हैं।

इसीलिए कतिपय विद्वान उन्हे २३ तीर्थंकरो की तुलना मे विशेप बतलाते हैं। एक विचार यह भी है कि पूर्वबद्ध नीचगोत्रकर्म के उदय से तीर्थंकर भी नहीं बच सकते और इसी कारण भगवान् वर्द्धमान को देवानन्दा की कोख मे पदार्पण करना पडा। ठीक इसी के बाद महारानी त्रिशला के पूर्वबद्ध उच्चगोत्रकर्म के उदय का समय आ जाता है, जिससे उसकी कोख के लिये भगवान् के सहरण की स्थिति सम्भव हो सकी।

कितने सरल से क्रम मे यह कर्मसिद्धान्त प्रतिपादित होता है कि लघु से महत् तक किसी भी व्यक्ति को कर्म नही छोडता। उसका सचित, प्रारब्ध एव क्रियमाण अपने आप मे उस व्यक्ति की दिशा का बोध कराता रहता है।

तीर्थंकर ऋषभदेवजी के समय से ही भगवान् महावीर तीर्थंकरत्व की स्थिति को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील थे।

यह बात भगवान् ऋषभदेवजी, जिनके सामने भूत, वर्तमान, भविष्य सहज रूप मे खुला हुआ था, से कैसे छिपी रह सकती थी ?

उन्होने विनीता नगरी के बाहर समवसरण के समय भविष्यवाणी करते हुए प्रकट किया था कि यही एक ऐसी भव्य आत्मा है, जो चरम तीर्थंकर महावीर है और वह है—चक्रवर्ती भरत ! तुम्हारा पुत्र 'मरीचि'।

कर्म के थपेडो को सहते हुए एव स्थिति के अनुसार आदर्श क्रियमाण कर्मों का अकन करते हुए यही मरीचि आगे २७ भव पश्चात् भगवान् महावीर बन कर तीर्थंकरत्व को प्राप्त करने मे सफल हुआ।

इसलिए जागतिक दृष्टि मे समय काफी लगा, किन्तु स्पष्ट है कि—

Time and space limit has no value in the way of evolution and the evolution itself loses its importance so far as the universe is concerned Mahaveer surpassed the optimum point of an ordinarily expected evolution

भगवान महावीर ने दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ ही क्यो; अपितु २७ भवो के इन असीमित वर्षों तक ऐसी स्थितियो का सामना किया, उनसे पार पाया और कर्मविपाक के पश्चात् वैशाली मे पधार कर विश्व को महान् दिशादर्शन का पाठ नये शब्दो मे तव की स्थिति मे ग्रहण करने की पात्रता अर्जित किये हुए जगत् को प्रदान करने की कृपा की।

भगवान् महावीर ने विश्वभर को अपनी वाणी से जिन उच्च भावो एव विचारो का पाठ पढाया, वह असाधारण है।

उन्होने एक ऐसा मार्ग सुलभ कराया है, जिस पर चल कर सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी विकसित होकर महान् बन सकता है। वे ऐसी स्थिति मे उस चक्रवर्ती सम्राट् के समान सुशोभित होते है, जो कि बडी से बडी नदी को पार करने के लिए एक ऐसा पुल बांध देता है, जिस पर से हो कर छोटी से छोटी चीटी भी अनायास ही दूसरे पार पहुँच सकती है। तुलसी के शब्दो मे—

अति अपार जे सरितवर, जौ नृप सेतु कराही।
चढि पिपलिकउ परम लघु बिनु श्रम पार हि जाही॥

उनके चरणचिह्नो एव मार्गदर्शन पर अग्रसर हो कर हम सब पिपीलिकउ-तुल्य मानव आगे बढ सकें, यही भावना है।





'समिक्ख पंडिए तम्हा पासजाइपहे बहु।
अप्पणा सच्चमेसेज्जा मेत्तिं भूएसु कप्पए॥

विद्वान् पुरुष ससार-परिभ्रमण के कारणो को भलीभाति समझ कर अपने आप सत्य की खोज करे और सब जीवो पर मैत्रीभाव रखे।



परिनिर्वाण और पारिपार्श्विक वातावरण

अणुव्रत परामर्शक मुनिश्री नगराजजी डी. लिट्



अन्तिम वर्षावास

राजगृह से विहार कर महावीर अपापा (पावापुरी[1]) आये। समवशरण लगा। भगवान् ने अपनी देशना मे बताया—

"तीर्थंकरो की विद्यमानता मे यह भारतवर्ष धन-धान्य से परिपूर्ण, गाँवो और नगरो से व्याप्त स्वर्ग-सदृश होता है। उस समय गाँव नगर जैसे, नगर देवलोक जैसे, कौटुम्बिक राजा जैसे और राजा कुवेर जैसे समृद्ध होते हैं। उस समय आचार्य इन्द्र समान, माता-पिता देवसमान, सास माता के समान और श्वसुर पिता के समान होते हैं। जनता धर्माधर्म के विवेक से युक्त, विनीत, सत्य-सम्पन्न, देव और गुरु के प्रति समर्पित और सदाचार-युक्त होती है। विज्ञजनो का आदर होता है। कुल, शील तथा विद्या का अकन होता है। ईति, उपद्रव आदि नही होते। राजा जिनधर्मी होते हैं।"

"अव जव तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि अतीत हो जायेंगे, केवल्य और मन.पर्यवज्ञान का भी विलोप हो जायेगा, तव भारतवर्ष की स्थिति क्रमशः प्रतिकूल ही होती जायेगी। मनुष्य मे क्रोध आदि वढेंगे, विवेक घटेगा, मर्यादाएँ छिन्न-भिन्न होंगी, स्वैराचार वढ़ेगा, धर्म घटेगा, अधर्म वढेंगे। गाँव श्मशान जैसे, नगर प्रेत-लोक जैसे, सज्जन दास जैसे व दुर्जन राजा जैसे होने लगेंगे। मत्स्य-न्याय से सवल दुर्वल को सताता रहेगा। भारतवर्ष विना पतवार की नाव के समान डावाडोल स्थिति मे होगा। चोर अधिक चोरी करेंगे, राजा अधिक कर लेगा व न्यायाधीश[1] अधिक रिश्वत लेंगे। मनुष्य धन-धान्य मे अधिक आसक्त होगा।"

---

१ यह कौन सी पावा थी, कहाँ थी, आदि वर्णन के लिए देखिये—"आगम और त्रिपिटक · एक अनुशीलन" पृ० ५४।

"गुरुकुलवास की मर्यादा मिट जायेगी। गुरु शिष्य को शास्त्र-ज्ञान नही देंगे। शिष्य गुरुजनो की सेवा नही करेंगे। पृथ्वी पर क्षुद्र जीव-जन्तुओ का विस्तार होगा। देवता पृथ्वी से अगोचर होते जायेंगे। पुत्र माता-पिता की सेवा नही करेंगे, कुल-वधुएँ आचार-हीन होगी। दान, शील, तप और भावना की हानि होगी। भिक्षु-भिक्षुणियो मे पारस्परिक कलह होगे। झूठे तोल-माप का प्रचलन होगा। मत्र, तत्र, औपधि, मणि, पुष्प, फल, रस, रूप, आयुष्य, ऋद्धि, आकृति, ऊँचाई, इन सब उत्तम बातो मे ह्रास होगा।"

"आगे चल कर दु पम-दुपमा नामक छठे आरे मे तो इन सबकी अत्यन्त हानि होगी। पचम दु पमा आरे के अन्त मे दु प्रसह नामक आचार्य होगे, फल्गुश्री साध्वी होगी, नागिल श्रावक होगा, सत्यश्री श्राविका होगी। इन चार मनुष्यो का ही चतुर्विध सघ होगा। विमलवाहन और सुमक नामक क्रमश राजा और मत्री होगे। उस समय मनुष्य का शरीर दो हाथ परिमाण और आयुष्य बीस वर्ष का होगा। उस पचम आरे के अन्तिम दिन प्रात काल चारित्र-धर्म, मध्याह्न मे राज-धर्म और अपराह्ण मे अग्नि का विच्छेद होगा।"

"२१००० वर्ष के पचम दु षम आरे के व्यतीत होने पर इतने ही वर्षों का छठा दु षमा-दु पमा आरा आयेगा। उसमे धर्म, समाज, राज-व्यवस्था आदि समाप्त हो जायेंगे। पिता-पुत्र के व्यवहार भी लुप्तप्राय होगे। इस काल के आरम्भ मे प्रचण्ड वायु चलेगी तथा प्रलयकारी मेघ[२] वरसेंगे। इससे मानव और पशु बीज-मात्र ही शेष रह जायेंगे। वे गगा और सिन्धु[३] के तट-विवरो मे निवास करेंगे। मास और मछलियो के आधार पर वे अपना जीवन-निर्वाह करेंगे।"

"इस छठे आरे के पश्चात् उत्सर्पिणी काल-चक्रार्ध का प्रथम आरा आयेगा। यह ठीक वैसा ही होगा, जैसा अवसर्पिणी काल-चक्रार्ध का छठा आरा था। इसका दूसरा आरा उसके पचम आरे के समान होगा। इसमे शुभ का प्रारम्भ होगा। इसके आरम्भ मे पुष्कर-सवर्तक-मेघ बरसेगा, जिससे भूमि की ऊष्मा दूर होगी। फिर क्षीर-मेघ वरसेगा, जिससे धान्य का उद्भव होगा। तीसरा घृत-मेघ बरसेगा, जो पदार्थों मे स्निग्वता पैदा करेगा। चौथा अमृत-मेघ वरसेगा, इससे नानागुणोपेत औपधियाँ उत्पन्न होगी। पाँचवा रस-मेघ वरसेगा, जिससे पृथ्वी मे सरसता बढ़ेगी। वे पाँचो ही मेघ सात-सात दिन तक निरन्तर बरसते रहेगे।[४]

---

२. भगवतीसूत्र, शतक ७, उद्देशक ६ मे इन मेघो को अरसमेघ, विरसमेघ, क्षारमेघ, खट्टमेघ, अग्निमेघ, अशनिमेघ आदि नामो से बताया है।

३ उस समय गगा और सिन्धु का प्रवाह रथ-मार्ग जितना ही विस्तृत रह जायेगा। —भगवतीसूत्र, शतक ७, उद्देश० ६।

४ क्रमश दो मेघो के बाद सात दिनो का 'उघाड' होगा। इस प्रकार तीसरे और चौथे मेघ के पश्चात् फिर सात दिनो का 'उघाड' होगा। कुल मिला कर पाँचो मेघो का यह ४९ दिनो का क्रम होगा।

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र, वक्ष २, काल-अधिकार।

"वातावरण फिर अनुकूल बनेगा। मनुष्यजाति उन तट-विवरो से निकल कर मैदानो मे वसने लगेगी। उनमे क्रमश रूप, वुद्धि, आयुष्य आदि की वृद्धि होगी। दु पम-सुपमा नामक तृतीय आरे मे ग्राम, नगर आदि की रचना होगी। एक-एक कर के तीर्थ कर होने लगेंगे। इस उत्सर्पिणी-काल के चौथे आरे मे यौगलिक-धर्म का उदय हो जायेगा। मनुष्य युगलरूप मे पैदा होंगे, युगलरूप मे मरगे। उनके वडे-वडे शरीर और वडे-वडे आयुष्य होगे। कल्पवृक्ष उनकी आशापूर्ति करेंगे। आयुष्य और अवगाहना से वढता हुआ पाँचवाँ और छठा आरा आयेगा। इस प्रकार यह उत्सर्पिणी काल समाप्त होगा। एक अवसर्पिणी और एक उत्सर्पिणी काल का एक काल-चक्र होगा। ऐसे काल-चक्र अतीत मे होते रहे हैं और अनागत मे होते रहेंगे। जो मनुष्य धर्म की वास्तविक आराधना करते हैं, वे इस काल-चक्र को तोड कर मोक्ष प्राप्त करते हैं, आत्म-स्वरूप मे लीन होते हैं।"[५]

भगवान् महावीर ने अपना यह अन्तिम वर्पावास भी पावापुरी मे ही किया। वहाँ हस्तिपाल नामक राजा था। उसकी रज्जुक सभा[६] (लेखशाला) मे वे स्थिरवास से रहे। कार्तिक अमावस्या का दिन निकट आया। अन्तिम देशना के लिए अन्तिम समवशरण की रचना हुई। शक्र ने खडे हो कर भगवान् की स्तुति की। तदनन्तर राजा हस्तिपाल ने खडे होकर स्तुति की।

अन्तिम देशना व निर्माण .

भगवान् ने अपनी अन्तिम देशना प्रारम्भ की। उस देशना मे ५५ अध्ययन पुण्य-फलविपाक के और ५५ अध्ययन पाप-फलविपाक के कहे,[७] वर्तमान मे जो सुख-विपाक और दु ख-विपाक नाम से आगमरूप हैं। ३६ अध्ययन अपृष्टव्याकरण मे कहे,[८] जो वर्तमान मे 'उत्तराध्ययन' आगम कहा जाता है। प्रवान नामक मरुदेवी माता का अध्ययन कहते-कहते भगवान् पर्यंकासन (पद्मासन) मे स्थिर हुए।[९] तव भगवान् ने क्रमश वादर काय-योग मे स्थित रह, वादर मनो-योग और वचन-योग को रोका। सूक्ष्म काय-योग मे स्थित रह वादर काय-योग को रोका, वाणी और

---

५. नेमिचन्द्र सूरि कृत **महावीर चरियं** के आधार से।

६ इसका अर्थ शुल्क-शाला भी किया जाता है।

७ समवायांगसूत्र, सम० ५५, कल्पसूत्र, सू० १४७/४८।

८. कल्पसूत्र सू० १४७, उत्तराध्ययन चूर्णि, पत्र २८३। उत्तराध्ययन के अन्तिम अध्ययन की अन्तिम गाथा भी इस वात को स्पष्ट करती है—

इइ पाउकरे वुद्धे, नायए परिनिव्वुए।
छत्तीस उत्तरज्झाए, भवसिद्धीयसम्मए॥

यह विशेप उल्लेखनीय है कि यहाँ महावीर को 'वुद्धे' भी कहा गया है।

९ सपलियकनिसण्णे—सम्यक् पद्मासनेनोपविष्ट.।

—कल्पसूत्र, कल्पार्थवोधिनी, पत्र १२३।

मन के सूक्ष्म योग को रोका। इस प्रकार शुक्ल-ध्यान का 'सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति' नामक तृतीय चरण प्राप्त किया। तदनन्तर सूक्ष्म काय-योग को रोक कर 'समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति' नामक शुक्ल-ध्यान का चतुर्थ चरण प्राप्त किया। फिर अ, इ, उ, ऋ, लृ के उच्चारण-काल जितनी शैलेशी-अवस्था को पार कर और चतुर्विध अघाती कर्म-दल का क्षय कर भगवान् महावीर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त अवस्था को प्राप्त हुए।[१०]

वह वर्षाऋतु का चतुर्थ मास था, कृष्ण पक्ष था, पन्द्रहवाँ दिवस था, पक्ष की चरम रात्रि अमावस्या थी। एक युग के पाँच सवत्सर होते हैं, 'चन्द्र' नामक वह दूसरा सवत्सर था। एक वर्ष के बारह मास होते है, उनमे वह 'प्रीतिवर्द्धन' नाम का चौथा मास था। एक मास मे दो पक्ष होते हैं, वह 'नन्दीवर्धन' नाम का पक्ष था। एक पक्ष मे पन्द्रह दिन होते हैं, उनमे 'अग्निवेश्म' नामक वह पन्द्रहवाँ दिन था, जो 'उपशम' नाम से भी कहा जाता है। पक्ष मे पन्द्रह रातें होती है, वह 'देवानन्दा' नामक पन्द्रहवी रात थी, जो 'निरति' नाम से भी कही जाती है। उस समय अर्च नाम का लव था, मुहूर्त नाम का प्राण था, सिद्ध नाम का स्तोक था,[११] नाग नाम का करण था।[१२] एक अहोरात्र मे तीस मुहूर्त होते हैं, वह सर्वार्थसिद्ध नामक उनतीसवाँ मुहूर्त था।[१३] उस समय स्वाति नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग था।

---

१० तेण कालेण तेण समएण बावत्तरिं वासाइ सव्वाउय पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते, इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहु वीइक्कताए, तिर्हि वासेर्हि अद्धनवमेहि य मासेर्हि सेसएर्हि पावाए मज्झिमाए हत्थिपालगस्स रन्नो रज्जुगसभाए एगे अबीए छट्ठेण भत्तेण अपाणएण, साइणा नक्खत्तेण जोगमुवागएण पच्चूसकालसमयसि, सपलियकनिसन्ने, पणपन्न अज्झयणाइ कल्लाणफलविवागाइ वागरित्ता पणपन्न अज्झयणाइ पावफलविवागाइ छत्तीस च अपुट्ठवागरणाइ वागरित्ता पधाण नाम अज्झयण विभावेमाणे विभावेमाणे कालगए वितिक्कते समुज्जाए छिन्न-जाइ-मरण-बधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अतकडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे। —कल्पसूत्र, सू० १४७।

११ ७ प्राण = १ स्तोक
७ स्तोक = १ लव
३७ लव = १ मुहूर्त —भगवतीसूत्र, शतक ६, उद्दे० ७।

१२ शकुन्यादिकरणचतुष्के तृतीयमिदम् अमावस्योत्तरार्द्धेऽवश्य भवत्येतद्।
—कल्पार्थबोधिनी, पत्र ११२।

१३ सवत्सर, मास, पक्ष, दिन, रात्रि, मुहूर्त इनके समग्र नामो के लिए देखिए—कल्पसूत्र, कल्पार्थबोधिनी, पत्र ११३। टीकाकार ने इन समग्र नामो को जैन-शैली कह कर अभिहित किया है।

प्रश्न चर्चाएँ :

भगवान् महावीर की यह अन्तिम देशना सोलह प्रकार की थी।[१४] भगवान् छट्ठ-भक्त से उपोसित थे।[१५] देशना के अन्तर्गत अनेक प्रश्न-चर्चाएँ हुईं। राजा पुण्यपाल ने अपने ८ स्वप्नों का फल पूछा। उत्तर सुन कर ससार से विरक्त हुआ और दीक्षित हुआ।[१६] हस्तिपाल राजा भी प्रतिबोध पा कर दीक्षित हुआ।

इन्द्रभूति गौतम ने पूछा—भगवन्! आपके परिनिर्वाण के पश्चात् पांचवा आरा कब लगेगा? भगवान् ने उत्तर दिया—"तीन वर्ष साढे आठ मास बीतने पर।" गौतम के प्रश्न पर आगामी उत्सर्पिणी-काल मे होने वाले तीर्थंकर, वासुदेव, बलदेव, कुलकर आदि का भी नाम-ग्राह परिचय भगवान् ने दिया।

गणधर सुधर्मा ने पूछा—"भगवन्! कैवल्य-रूप सूर्य कब तक अस्तगत होगा?" भगवान् ने कहा—"मेरे से बारह वर्ष पश्चात् गौतम सिद्ध-गति को प्राप्त होगा, मेरे से बीस वर्ष पश्चात् तुम सिद्ध-गति प्राप्त करोगे, मेरे से चौसठ वर्ष पश्चात् तुम्हारा शिष्य जम्बू अनगार सिद्धगति को प्राप्त करेगा। वही अन्तिम केवली होगा। जम्बू के पश्चात् क्रमश प्रभव, शय्यम्भव, यशोभद्र, सभूतिविजय, भद्रबाहु, स्थूलभद्र, चतुर्दश पूर्वधर होंगे। इनमे शय्यम्भव पूर्व-ज्ञान के आधार पर दशवैकालिक आगम की रचना करेगा।[१७]

शक्र द्वारा आयु-वृद्धि की प्रार्थना :

जब महावीर के परिनिर्वाण का अन्तिम समय निकट आया, इन्द्र का आसन प्रकम्पित हुआ। देवों के परिवार सहित वह वहाँ आया। उसने अश्रु पूरित नेत्रो से महावीर से निवेदन किया—"भगवन्! आपके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान मे हस्तोत्तरा नक्षत्र था। इस समय उसके भस्म-ग्रह सक्रान्त होने वाला है। आपके जन्म-नक्षत्र मे आ कर वह ग्रह दो सहस्र वर्षों तक आपके सघीय प्रभाव के उत्तरोत्तर विकास मे बहुत बाधक होगा। दो सहस्र वर्षो के पश्चात् जब वह आपके जन्म-नक्षत्र से पृथक् होगा, तब श्रमणो का, निग्रन्थो का उत्तरोत्तर पूजा-सत्कार बढ़ेगा। अतः जब तक वह आपके जन्म-नक्षत्र मे सक्रमण कर रहा है, तब तक आप अपने आयुष्य-

---

१४ (क) षोडश प्रहरान् यावद् देशना दत्तवान्।
सौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथासंग्रह, पत्र १००।
(ख) सोलह पहराइ देसण करेइ। विविधतीर्थकल्प, पृ० ३६।

१५ कल्पसूत्र, सू १४७, नेमिचन्द्र कृत महावीरचरित्र, पत्र ६६।

१६ सौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथासग्रह, पत्र १००-१०२।

१७ सौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथासग्रह, पत्र १०६। इस ग्रन्थ के रचयिता ने महावीर की इस भविष्यवाणी को क्रमश हेमचन्द्राचार्य तक पहुँचा दिया है।

वल को स्थित रखें। आपके साक्षात् प्रभाव से वह सर्वथा निष्फल हो जायेगा।" इस अनुरोध पर भगवान् ने कहा—"शक्र ! आयुष्य कभी बढाया नही जा सकता। ऐसा न कभी हुआ है, न कभी होगा। दु.षमा-काल के प्रभाव से मेरे शासन मे बाधा तो होगी ही।"[१८]

गौतम का कैवल्य :

उसी दिन भगवान् महावीर ने अपने गणधर इन्द्रभूति गौतम को देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए अन्यत्र भेज दिया। अपने चिर अन्तेवासी शिष्य को दूर भेजने का कारण यह था कि मृत्यु के समय वह अधिक स्नेह-विह्वल न हो। इन्द्रभूति ने देवशर्मा को प्रतिबोध दिया। उन्हे भगवान् के परिनिर्वाण का सवाद मिला। इन्द्रभूति के श्रद्धा-विभोर हृदय पर वज्राघात-सा लगा। अपने आप बोलने लगे—"भगवन् ! यह क्या किया ? इस अवसर पर मुझे दूर किया ! क्या मैं बालक की तरह आपका अचल पकड कर आपको मोक्ष जाने से रोकता ? क्या मेरे स्नेह को आपने कृत्रिम माना ? मैं साथ हो जाता, तो क्या सिद्ध-शिला पर सकीर्णता हो जाती ? क्या मैं आपके लिए भार हो जाता ? मैं अब किसके चरण-कमलो मे प्रणाम करूगा ? किससे अपने जगत् और मोक्षविषयक प्रश्न करूँगा ? किसे मैं 'भदन्त' कहूंगा ? मुझे अब कौन 'गौतम ! गौतम !' कहेगा ?"

इस भाव-विह्वलता मे बहते-बहते इन्द्रभूति ने अपने आपको सम्भाला। सोचने लगे—"अरे ! यह मेरा कैसा मोह ? वीतरागो से स्नेह कैसा ? यह सब मेरा एक-पाक्षिक मोहमात्र है। बस ! अब मैं इसे छोडता हूं। मैं तो स्वय एक हूं। न मैं किसी का हूं। न मेरा यहां कुछ भी है। राग और द्वेप विकार-मात्र हैं। समता ही आत्मा का आलम्बन है।" इस प्रकार आत्म-रमण करते हुए इन्द्रभूति ने तत्काल कैवल्य प्राप्त किया।[१९]

जिस रात को भगवान् महावीर का परिनिर्वाण हुआ, उस रात को नौ मल्लकी, नौ लिच्छवी, अठारह काशी-कौशल के गणराजा पौपध-व्रत मे थे।[२०]

---

१८ जिनेश ! तव जन्मर्क्ष गन्ता भस्मकदुर्ग्रह ।
बाधिष्यते स वर्षाणा, सहस्रौ द्वौ तु शासनम् ॥
तस्य सक्रामण यावद्विलम्वस्व तत प्रभो ।
भवत्प्रभाप्रभावेण स यथा विफलो भवेत् ॥
स्वाम्यूचे शक्र ! केनाऽपि नायु सन्धीयते क्वचित् ।
दु षमाभावतो बाधा, भाविनी मम शासने ॥
—कल्पसूत्र, कल्पार्थवोधिनी पत्र, १२१

१९. कल्पसूत्र, कल्पार्थबोधिनी, पत्र ११४।

२० ज रयणि च णं समणे भगव कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, त रयणि च ण नव मल्लई नव लिच्छई कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो अमावासाए पाराभोय पोसहोववास पट्ठवइंसु। —कल्पसूत्र, सू० १२७

निर्वाण-कल्याणक

भगवान् की अन्त्येष्टि के लिए सूरो और असुरो के सभी इन्द्र अपने-अपने परिवार से वहाँ पहुँचे। सबकी आँखो मे आँसू थे। उनको लगता था—हम अनाथ हो गये है। शक्र के आदेश से देवता नन्दन-वन आदि से गोशीर्ष चन्दन लाये। क्षीर-सागर से जल लाये। इन्द्र ने भगवान् के शरीर को क्षीरोदक से स्नान कराया, विलेपन आदि किये, दिव्य वस्त्र ओढाये। तदन्तर भगवान् के शरीर को दिव्य शिविका मे रखा।

इन्द्रो ने वह शिविका उठाई। देवो ने जय-जय ध्वनि के साथ पुष्प-वृष्टि की। मार्ग मे कुछ देवागनाए और देव नृत्य करते चलते थे, कुछ देव मणिरत्न आदि से भगवान् की अर्चना कर रहे थे। श्रावक-श्राविकाए भी शोक-विह्वल हो कर साथ-साथ चल रहे थे। यथास्थान पहुँच कर शिविका नीचे रखी गई। भगवान् के शरीर को गोशीर्ष चन्दन की चिता पर रखा गया। अग्निकुमार देवो ने अग्नि प्रकट की। वायुकुमार देवो ने वायु प्रचालित की। अन्य देवो ने घृत और मधु के घट चिता पर उडेले। जब प्रभु का शरीर भस्मसात् हो गया, तो मेघकुमार देवो ने क्षीरसागर के जल से चिता शान्त की। शक्रेन्द्र तथा ईशानेन्द्र ने ऊपर की दाई और बाई दाढा का सग्रह किया। चमरेन्द्र और बलीन्द्र ने नीचे की दाढो का सग्रह किया। अन्य देवो ने अन्य दात और अस्थिखण्डो का सग्रह किया। मनुष्यो ने भस्म लेकर सन्तोष माना। अन्त मे चिता-स्थान पर देवताओ ने रत्नमय स्तूप की सघटना की।[२१]

दीपमालोत्सव

जिस दिन भगवान् का परिनिर्वाण हुआ, देव और देवियो के गमनागमन से भू-मण्डल आलोकित हुआ।[२२] मनुष्यो ने भी दीप सजोये। इस प्रकार दीपमाला पर्व का प्रचलन हुआ।[२३]

जिस रात को भगवान् का परिनिर्वाण हुआ, उस रात को सूक्ष्म कुथु जाति का उद्भव हुआ। यह इस बात का सकेत था कि भविष्य मे सूक्ष्म जीव-जन्तु बढते जायेंगे और सयम दुराराध्य होता जायेगा। अनेक भिक्षु-भिक्षुणियो ने इस स्थिति को समझ कर उस समय आमरण अनशन किया।[२४]

---

२१ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, पर्व १०, सर्ग १३ के आधार से।
२२ कल्पसूत्र, सू० १२७।
२३ सौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथासंग्रह, पत्र १००-११०।
२४ कल्पसूत्र सू० १३१-३२।

वैशाली के विभु : वर्द्धमान

डॉ० महेन्द्रसागर प्रचंडिया, अलीगढ
(एम. ए, पी-एच. डी,) साहित्यालकार

आज से छब्बीस सौ वर्ष पूर्व देश की दशा दयनीय थी। चारो ओर हिंसा, मृषा, शोषण तथा अनाचार का बोलवाला था। मनुष्यता कराह उठी। इस प्रकार के दयनीय वातावरण में विश्रुत वैशाली में राजकीय व्यवस्था थी—गणतन्त्रात्मक और इसके राजा थे चेटक। आपकी कन्या का नाम था त्रिशला। कुडपुर के ज्ञातृवंशीय शासक महाराज सिद्धार्थ के साथ त्रिशला का विवाह हुआ। बोल, व्यवहार मे प्रियता होने से त्रिशला रानी का नाम प्रिय कारिणी प्रसिद्ध हो गया।

प्रत्यूप काल मे स्वप्न देखना प्रायः सत्य का सूचक होता है। आपाढ शुक्ला पष्ठी की रात्रि के अन्तिम प्रहर मे प्रियकारिणी ने सोलह स्वप्नो का अभिदर्शन किया। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सन् ५९९ ई०पू० को महारानी प्रियकारिणी ने वर्द्धमान को जन्म दिया। गौरवर्ण निर्मल देहदीप्ति से वैशाली थिरक उठी। माता त्रिशला निहाल हुई और राजा सिद्धार्थ धन्य हो गये। तीर्थङ्कर महावीर का अभिपेक हुआ और उन्हे राजकीय वस्त्राभरण पहिनाये गये। तीर्थङ्कर महावीर के दायें पग मे सिह का चिह्न देख उनकी सिहवृत्ति का बोध हुआ। कालान्तर मे सिह ही उनका चिह्न बन गया।

महावीर की महिमा दिन दूनी रात चौगुनी बढती गयी। आठ वर्षीय बालक का चित्त व्याप्त सामाजिक शोपण के प्रति विद्रोह कर उठा। वे ऐसे समाज की परिकल्पना करने लगे, जहाँ सभी सामाजिक समान हो, प्राणीमात्र को जीने की समान स्वतन्त्रता हो। बालक महावीर मे मुखरित नाना गुणो के आधार पर वर्द्धमान, सन्मति, वीर, महावीर तथा अतिवीर नामक श्रीसज्ञाओ से उन्हे सम्बोधित किया जाने लगा। शनै शनै राजकुमार के जीवन का लक्ष्य आत्म-बोध की ओर उन्मुख हो उठा। वे अनुभव करने लगे कि पारिवारिक सम्बन्ध परिग्रह है और परिग्रह लक्ष्य की पूर्ति मे बाधक होते हैं। राजकुमार वर्द्धमान की राजसी भोगो से विरक्ति और आध्यात्मिक अनुरक्ति को देखकर महाराज सिद्धार्थ को विश्वास हो गया कि निश्चय ही यह बालक ज्ञातृवश के लिए ही नही, अपितु अखिल विश्व के कल्याणार्थ अवतरित हुआ है।

तीसवर्षीय वर्द्धमान साधनापथ पर अग्रसर हुए और मगसिर कृष्णा दशमी सन् ५६९ ई० को वर्द्धमान ने कठोर तप साधना मे प्रवृत्त हो बारह वर्ष पाँच माह और पन्द्रह दिन सत्यान्वेपण मे सहर्ष लगा दिये। दीक्षाकाल मे नगर-नगर मे पदयात्रा कर उन्होने सत्य, अहिसा, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य जैसे धर्मों के मार्मिक रहस्यो का उद्घाटन किया। उनके तपश्चरण से समूचा वन-प्रदेश तपोवन मे बदल गया जहाँ सारे विरोध अनुरोध मे बदलने लगे।

इस प्रकार तीर्थङ्कर महावीर ने अपनी साधना पूर्ण कर वैशाखी शुक्ला दशमी सन् ५५७ ई० पूर्व को कैवल्यज्ञान प्राप्त किया। इतिहास के पृष्ठ कहते हैं कि पावा नामक पवित्र भूमि पर वर्द्धमान महावीर ने कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन निर्वाणपद को प्राप्त किया। इस समय आपकी आयु केवल इकहत्तर वर्ष चार माह और पच्चीस दिन की थी।

●



निर्वाण के समय महावीर का पारिपार्श्विक वातावरण

—'संतबाल'



वर्तमान युग मे सत विनोबाजी सामाजिक साधना के सन्दर्भ मे तीन शब्दो का प्रयोग करते हैं—(१) हृदय-परिवर्तन, (२) विचार-परिवर्तन और (३) परिस्थिति-परिवर्तन। हृदय-परिवर्तन प्रायः मनुष्यो का होता है, परन्तु वह होता है—व्यक्तिगत ही, जबकि विचार-परिवर्तन समस्त मानवो का होता है, और इसमे समाजगत साधना की बात आती है। परन्तु परिस्थिति-परिवर्तन तो खासतौर से समाजगत साधना से सम्बन्धित है। उसमे सिर्फ मनुष्यो का ही नही बल्कि जीवमात्र का अथवा प्राणिमात्र का समावेश होता है।

समाजगत साधना का युग

महात्मा गाँधीजी जैसे विश्ववन्द्य विभूतिमान व्यक्ति भारत के माध्यम से जगत् की व्यासपीठ पर आए, तब से समाजगत साधना पर भलीभाँति जोर दिया जा रहा है। देश-विदेशो मे विज्ञान, साहित्य, कला, स्थापत्य आदि क्षेत्रो मे जिस प्रकार का विकास हुआ, और विश्व की राजनीति ने भी निकटता का ऐसा वातावरण पैदा किया कि मानव-मानव तो परस्पर नजदीक आ ही रहे हैं, किन्तु इससे भी बढ़ कर मानव द्वारा किये गये भौतिक एव आध्यात्मिक प्रयोग विश्व के प्राणिमात्र पर प्रभाव डाल रहे हैं। इस दृष्टि से देखें तो यह युग वास्तव मे सत्युग जैसा सुन्दर युग है।

जैनधर्म-साधना का झुकाव

जैनधर्म मे स्वपर-कल्याणसाधना के सतुलन पर भलीभाँति जोर दिया गया है। जैन तीर्थंकर स्वय तरते हैं और अन्य भव्यजीवो को भी तारते है। इस दृष्टि से अब इस दीपावली के वाद भगवान् महावीर की २५ वी निर्वाण शताब्दी का उत्सव देश-विदेश मे सर्वत्र पूरे वर्षभर मनाया जायगा और यह वर्ष अहिंसा का पर्ववर्ष माना जायगा, तब 'श्रीअमरभारती' जैसी मासिक पत्रिका महावीर निर्वाण-विशेषाक प्रकाशित कर रही हैं, यह वास्तव मे अभिनन्दनीय है। इस विशेषाक

वैशाली के विभु : वर्द्धमान

डॉ० महेन्द्रसागर प्रचंडिया, अलीगढ
(एम ए, पी-एच. डी,) साहित्यालकार

आज से छब्बीस सौ वर्ष पूर्व देश की दशा दयनीय थी। चारो ओर हिंसा, मृषा, शोषण तथा अनाचार का बोलबाला था। मनुष्यता कराह उठी। इस प्रकार के दयनीय वातावरण मे विश्रुत वैशाली मे राजकीय व्यवस्था थी—गणतत्रात्मक और इसके राजा थे चेटक। आपकी कन्या का नाम था त्रिशला। कु डपुर के ज्ञातृवंशीय शासक महाराज सिद्धाथ के साथ त्रिशला का विवाह हुआ। बोल, व्यवहार मे प्रियता होने से त्रिशला रानी का नाम प्रिय कारिणी प्रसिद्ध हो गया।

प्रत्यूप काल मे स्वप्न देखना प्राय॰ सत्य का सूचक होता है। आपाढ शुक्ला षष्ठी की रात्रि के अन्तिम प्रहर मे प्रियकारिणी ने सोलह स्वप्नो का अभिदर्शन किया। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सन् ५९९ ई०पू० को महारानी प्रियकारिणी ने वर्द्धमान को जन्म दिया। गौरवर्ण निर्मल देहदीप्ति से वैशाली थिरक उठी। माता त्रिशला निहाल हुई और राजा सिद्धार्थ धन्य हो गये। तीर्थङ्कर महावीर का अभिषेक हुआ और उन्हे राजकीय वस्त्राभरण पहिनाये गये। तीर्थङ्कर महावीर के दायें पग मे सिंह का चिह्न देख उनकी सिंहवृत्ति का बोध हुआ। कालान्तर मे सिंह ही उनका चिह्न बन गया।

महावीर की महिमा दिन दूनी रात चौगुनी बढती गयी। आठ वर्षीय बालक का चित्त व्याप्त सामाजिक शोषण के प्रति विद्रोह कर उठा। वे ऐसे समाज की परिकल्पना करने लगे, जहाँ सभी सामाजिक समान हो, प्राणीमात्र को जीने की समान स्वतन्त्रता हो। बालक महावीर मे मुखरित नाना गुणो के आधार पर वर्द्धमान, सन्मति, वीर, महावीर तथा अतिवीर नामक श्रीसज्ञाओ से उन्हे सम्बोधित किया जाने लगा। शनै शनै राजकुमार के जीवन का लक्ष्य आत्म-बोध की ओर उन्मुख हो उठा। वे अनुभव करने लगे कि पारिवारिक सम्बन्ध परिग्रह है और परिग्रह लक्ष्य की पूर्ति मे बाधक होते है। राजकुमार वर्द्धमान की राजसी भोगो से विरक्ति और आध्यात्मिक अनुरक्ति को देखकर महाराज सिद्धार्थ को विश्वास हो गया कि निश्चय ही यह बालक ज्ञातृवश के लिए ही नही, अपितु अखिल विश्व के कल्याणार्थ अवतरित हुआ है।

तीसवर्षीय वर्द्धमान साधनापथ पर अग्रसर हुए और मगसिर कृष्णा दशमी सन् ५६९ ई० को वर्द्धमान ने कठोर तप साधना मे प्रवृत्त हो बारह वर्ष पाँच माह और पन्द्रह दिन सत्यान्वेषण मे सहर्ष लगा दिये। दीक्षाकाल मे नगर-नगर मे पदयात्रा कर उन्होंने सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य जैसे धर्मो के मार्मिक रहस्यो का उदघाटन किया। उनके तपश्चरण से समूचा वन-प्रदेश तपोवन मे बदल गया जहाँ सारे विरोध अनुरोध मे बदलने लगे।

इस प्रकार तीर्थङ्कर महावीर ने अपनी साधना पूर्ण कर वैशाखी शुक्ला दशमी सन् ५५७ ई० पूर्व को कैवल्यज्ञान प्राप्त किया। इतिहास के पृष्ठ कहते हैं कि पावा नामक पवित्र भूमि पर वर्द्धमान महावीर ने कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन निर्वाणपद को प्राप्त किया। इस समय आपकी आयु केवल इकहत्तर वर्ष चार माह और पच्चीस दिन की थी।

●

निर्वाण के समय महावीर का पारिपार्श्विक वातावरण



—'सतबाल'



वर्तमान युग मे सत विनोवाजी सामाजिक साधना के सन्दर्भ मे तीन शब्दो का प्रयोग करते हैं—(१) हृदय-परिवर्तन, (२) विचार-परिवर्तन और (३) परिस्थिति-परिवर्तन। हृदय-परिवर्तन प्राय: मनुष्यो का होता है, परन्तु वह होता है—व्यक्तिगत ही, जबकि विचार-परिवर्तन समस्त मानवो का होता है, और इसमे समाजगत साधना की बात आती है। परन्तु परिस्थिति-परिवर्तन तो खासतौर से समाजगत साधना से सम्बन्धित है। उसमे सिर्फ मनुष्यो का ही नही बल्कि जीवमात्र का अथवा प्राणिमात्र का समावेश होता है।

समाजगत साधना का युग

महात्मा गाँधीजी जैसे विश्ववन्द्य विभूतिमान व्यक्ति भारत के माध्यम से जगत् की व्यासपीठ पर आए, तव से समाजगत साधना पर भलीभाँति जोर दिया जा रहा है। देश-विदेशो मे विज्ञान, साहित्य, कला, स्थापत्य आदि क्षेत्रो मे जिस प्रकार का विकास हुआ, और विश्व की राजनीति ने भी निकटता का ऐसा वातावरण पैदा किया कि मानव-मानव तो परस्पर नजदीक आ ही रहे हैं, किन्तु इससे भी बढ़ कर मानव द्वारा किये गये भौतिक एव आध्यात्मिक प्रयोग विश्व के प्राणिमात्र पर प्रभाव डाल रहे हैं। इस दृष्टि से देखें तो यह युग वास्तव मे सत्युग जैसा सुन्दर युग है।

जैनधर्म-साधना का झुकाव

जैनधर्म मे स्वपर-कल्याणसाधना के सतुलन पर भलीभाँति जोर दिया गया है। जैन तीर्थंकर स्वय तरते हैं और अन्य भव्यजीवो को भी तारते हैं। इस दृष्टि से अब इस दीपावली के बाद भगवान् महावीर की २५ वी निर्वाण शताब्दी का उत्सव देश-विदेश मे सर्वत्र पूरे वर्षभर मनाया जायगा और यह वर्ष अहिंसा का पर्ववर्ष माना जायगा, तब 'श्रीअमरभारती' जैसी मासिक पत्रिका महावीर निर्वाण-विशेषाक प्रकाशित कर रही हैं, यह वास्तव मे अभिनन्दनीय है। इस विशेषाक

के, निर्धारित चार खडो मे से प्रथम खण्ड के नौवें विषयबिन्दु—**निर्वाण के समय महावीर का पारिपार्श्विक वातावरण'** पर मैंने कुछ मौलिक बातें लिखने का सोचा है। चूंकि जैनधर्म का निचोड —स्वयं तरना और दूसरो के तरने के लिए मार्ग प्रशस्त करना है। इसी कारण जैनधर्म के इस क्षेत्र के चरम यानी अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर हुए, उस समय के उनके निर्वाण के पीछे पारिपार्श्विक वातावरण कैसा था, उसे सक्षेप मे समझ लेने से आज २५०० वर्ष बाद जो वातावरण है, उसमे कौन-सी दिशा लेनी चाहिये ? इसे भली-भाँति हृदयगम किया जा सकेगा। इस कारण यह स्वाभाविक है कि वह विषय अत्यन्त रोचक और अनिवार्य बने।

महावीर निर्वाण का पारिपार्श्विक वातावरण

महात्मा गाँधीजी का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि मानव प्राणिमात्र का संरक्षक है। अगर वह सही मार्ग पर स्थिर रहे या चले तो उसके कारण प्राणिमात्र को सर्वत्र सुख ही सुख प्राप्त हो जाय। इसी कारण भगवान् महावीर ने अनेक उपसर्ग और परिषह सह कर पहले तो सारे ही मानव-समाज को (जो कि असगठित था) संगठित किया और मानवजीवन के जो मूलभूत सामाजिक और नैतिक मूल्य थे, उन्हे व्यवस्थित ढग से स्थापित किये। उदाहरण के तौर पर, उस युग का मानव, संतो, साधुओ या साधको आदि को प्रायः घृणा की दृष्टि से देखता था। सतो की साधना मे विघ्न डाल कर उन्हें कष्ट देता था उसके बदले सुसाधना की ओर मानव को आदरदृष्टिसम्पन्न बनाया। नारी मानो गाजर-मूली की तरह या इससे भी बढकर भेड-बकरी की तरह बाजार मे बेची जाने वाली चीज थी। इसके बदले चन्दनबाला के निमित्त से भगीरथ अभिग्रह (सकल्प) करके उन्होने यह सिद्ध कर दिखाया कि नारी धर्म की धुरा पकड कर स्वय तर कर जगत् के तरने का मार्ग प्रशस्त करने वाली महाशक्ति है। मैतार्य और हरिकेशी जैसे चाडाल-जाति मे पैदा हुए व्यक्तियो को भी महातपस्वी और मोक्ष के मुक्ताफल सरीखे महामुनि बना कर जगत् को बता दिया कि मानवजाति (जन्मगत वर्ण आदि) से न तो ऊँचा है और न नीचा ही है। वह सत्कर्मों या सद्‌गुणो से ही उच्च और असत्कर्मों या दुर्गुणो से ही नीच बन सकता है। तथाकथित नीच-जाति मे पैदा होने पर भी पूर्वोक्ति मुनि स्वय भी तर गये और अनेक भव्यजीवो के तारक महापुरुष भी बन गये। इन्होंने यह भी बता दिया कि प्राणिमात्र मे तरने की योग्यता पडी है। और मानव तो स्वय भी तर सकता है और अन्य प्राणियो के तारने मे महानिमित्त भी बन सकता है। इस तरीके से मेढक के रूप मे बने हुए नन्दनमणिहार का भी उद्धार हुआ और चडकौशिक विषधर का भी उद्धार हुआ। अर्जुनमाली सरीखे महापापी का भी उद्धार हुआ और अनार्यभूमि मे भी आर्यत्व के बीज बोये गये। इस प्रकार भगवान् महावीर जैसे समर्थ पुरुष को हुए केवलज्ञान और उसके निमित्त से चारो ओर फैला हुआ हृदय-परिवर्तन, विचार-परिवर्तन और परिस्थिति-परिवर्तन का त्रिविध महकता हुआ वाता-

वरण सारी मानवजाति को जगाने मे उपयुक्त हुआ और प्राणिमात्र को आनन्द के सरोवर मे डुबकी लगाने का कारण बना। कहाँ तो भगवान् महावीर के जन्म के समय की जगत् की भूमिका और कहाँ वर्धमान के रूप मे महावीर के आने के बाद स्थूलजगत् और सूक्ष्मजगत्, दोनो प्रकार के जगत् मे सुख, शुद्धि, और शान्ति की त्रिवेणी प्रवाहित हो चली। तत्पश्चात् भगवान महावीर की दीक्षा, तपस्या, कष्ट-सहिष्णुता, तितिक्षा, और समता ने समष्टि के परिवर्तनो मे जिस प्रकार क्रमश. प्रगति की ओर कराई, उसे देखते हुए तुरन्त ख्याल आ जाता है। यो देखा जाय तो स्वनिर्माण का मार्ग स्वाश्रयी होता है, इसीलिये तो देवेन्द्र खुद सहायता देने आए तो भी महावीर ने किसी का भी आश्रय लिये बिना अपनी सिद्धि प्राप्त की, केवल-ज्ञान प्राप्त किया, परन्तु सारी समष्टि मे अमुक वातावरण पैदा न हो जाय, वहाँ तक व्यक्तिगत मोक्ष या व्यक्तिगत निर्वाण भी सम्भव नही है, यह बात भी साथ ही साथ फलित होती प्रतीत होती है।

देखो न, जम्बूस्वामी के बाद!

देखो न! जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद इस क्षेत्र मे निर्वाण के द्वार बन्द हो गए। इतना ही नही, क्षायिक सम्यक्त्व जैसी उत्कृष्ट शक्तियो का भी लोप (विच्छेद) हो गया! हमारे अहोभाग्य से भ० महावीर के निर्वाण के २००० वर्ष के बाद धर्म-प्राण लोकाशाह जैसे महान् धर्मक्रान्तिकारी हुए, जिन्होने फिर देश मे और दुनिया मे चारो ओर अभिनव धर्मक्रान्ति जगा दी। उसके बाद तो देश और विश्व मे भी धर्म-क्रान्ति की एक लहर फैल गई।

धर्मप्राण लोकाशाह के बाद

फिर इस युग मे श्रीमद् राजचन्द्र सरीखे आध्यात्मनिष्ठ महापुरुष की प्रेरणा से महात्मा गाँधीजी तैयार हुए। इन्होंने राजनीति को भी धर्म का स्पर्श करा कर भारत द्वारा जगत् मे राजनैतिक क्षेत्र मे शाश्वत मूल्य स्थापित किये। जिससे प० जवाहरलालजी, शास्त्रीजी और अब श्री इन्दिरा बहन उन शाश्वत मूल्यो के कारण भारत द्वारा जगत् के राजनैतिक क्षेत्र मे शान्ति एव पचशील का सन्देश देते आ रहे हैं।

जैन साधु-साध्वी एवं संन्यासी

भ० महावीर से ले कर महात्मा गाँधीजी के इन्ही प्रयोगो के सिलसिले मे भालनलकाठा-प्रदेश मे जो धर्ममय (अहिंसक) समाजरचना का प्रयोग गुजरात से शुरू हुआ है, उसी सन्दर्भ मे यदि पैदल विचरण करने वाले एव निसर्ग-निर्भर भिक्षा-चरी पर जीने वाले जैन साधुसाध्वी गाँवो मे नीतिलक्षी जनसगठन एव ग्रामलक्षी व्रतबद्ध जनसेवको के सगठन बनाने मे जुट जाय और इसमे सम्यायोजन तथा सत्री-

गौण दृष्टि वाले गांधी-विनोवा के रचनात्मक कार्यकर्ता भाई-वहन हाथ-पैर के रूप मे काम करने लग जाँय तो भारत के जरिये विश्वभर मे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एव नैतिक क्रान्ति की अहिसक भूमिका तैयार हो जाय। अर्थात् आज जैनसंघ की जो ये दो मुख्य वुनियादें—मानवता और मार्गानुसारिता डगमगा गई हैं, वे भी पुन: प्रतिष्ठित की जा सकती हैं। यही कारण है कि आज धर्म के वदले धन का वोलवाला चारो ओर हो गया है। नीतिन्यायमय आजीविका दूरातिदूर होती जा रही है, वह पुन. ताजी हो जाय और जैनसंघ, जोकि सम्यक्त्व की वुनियाद पर खडा है, वह सघ की इमारत अच्छी तरह मजवूत हो जाय।

सौभाग्य से !

सद्भाग्य से संत विनोवाजी के कार्यकर्ता मानवमुनि मुनिश्री जनकविजयजी को इदौर चातुर्मासकाल मे मिले हैं। और उन्होंने यह कार्य भलीभाति उठा लिया है। अव जरूरत है, जैन साधुसाध्वियो का मुख गाँवो की ओर मोडने की। मुझे आशा है, नेमिमुनि और जनकमुनि सरीखे तेजस्वी मुनियो के निमित्त से हृदय-परिवर्तन विचार-परिवर्तन और परिस्थिति-परिवर्तन का भ० महावीर की परम्परा से प्राप्त यह त्रिविध कार्यक्रम भलीभाँति खिल उठेगा और भ० महावीर निर्वाण की पच्चीसवी निर्वाणशताब्दी के उत्सव का जय-जयकार होने लगेगा।



निर्वाणवादी महावीर के प्रति

—कन्हैयालाल सेठिया



तुम विराट् हो वाध न पाते
मेर वामन छन्द।
जो अगीत है उसको कैसे
कोई गीत वनाये ?
स्वय पुण्य जो उसे परस कर
कौन पुनीत वनाये ?
अकथ रही अनुभूति, निरर्थक—
नाटक कथा निवन्ध।
समझ नही पाया क्यो अव तक
भव भव हुये व्यतीत,

ध्वनित नही कर सकती वीणा
अनहद का संगीत,
लिखित नही अलिखित भी रहते
कितने ही अनुवन्ध!
बूंद नही है करुणा जिसका
कूल कही दिख जाये,
नयन नही है व्योम कि जिसमे
ध्रुवतारा आ जाये,
प्रतिविम्वित होता पुतली मे
वस इतना सम्वन्ध!

—:o:—



एक विहगावलोकन

निर्वाण के बाद २५०० वर्ष में

पं० कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री



भगवान् महावीर के निर्वाण को २५०० वर्ष हुए। इस लम्बे समय मे हमने खोया क्या और पाया क्या ? इस पर एक दृष्टि डालना अनुचित न होगा।

भगवान् महावीर के समय मे छह शास्ता अन्य भी थे। उनमे से महावीर, और बुद्ध को छोड कर आज किसी का न कोई नामलेवा है और न कोई पानीदेवा। सम्राट् अशोक के बौद्धधर्म अगीकार करने के पश्चात् बौद्धधर्म का देश और विदेशो मे वहुत विस्तार हुआ। किन्तु धीरे-धीरे हाडी मे आये उफान की तरह वह शान्त होता होता इतना शान्त हुआ कि इस देश से बौद्धधर्म लुप्त जैसा हो गया, यद्यपि विदेशो मे वह वना रहा।

भगवान् महावीर का धर्म, जो आज एकमात्र जैनधर्म के नाम से ख्यात है, न तो हाडी के उफान की तरह उवला ही और न एकदम शान्त ही हुआ। गगा की पवित्र धारा की तरह वह अपने उतार-चढ़ाव को लिये एकमात्र मन्थरगति से प्रवाहित होता आता है। जिस आधी ने बौद्धधर्म को इस देश से भगाया, उस आधी ने जैनधर्म को भी भगाना चाहा, किन्तु वह उसे नही भगा सकी। फिर भी इतना तो हुआ ही कि मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त के साथ श्रुतकेवली भद्रवाहु की दक्षिणयात्रा के पश्चात् भगवान महावीर की जन्मभूमि से उनका धर्म निष्कासित जैसा हो गया, और उसमे फूट पड गई। वह दो सम्प्रदायो मे विभाजित हो गया। कालक्रम से एक सम्प्रदाय ने अपने पैर दक्षिणभारत मे जमाये तो दूसरे ने सौराष्ट्र को अपनी क्रियाभूमि वनाया। दोनो सम्प्रदायो मे वडे वडे आचार्यों और ग्रन्थकार हुए, जिन्होने अपनी रचनाओ से भारतीय वाड्मय के भण्डार को समृद्ध वनाया। यद्यपि जैन आगमो की भाषा अर्धमागधी थी। उसी मे भगवान् महावीर ने अपनी धर्मदेशना की थी। इसलिये जहाँ भद्रवाहु, कुन्दकुन्द आदि ने प्राकृत मे ग्रन्थ-रचना की। वहाँ उमास्वाति ने सस्कृत की सूत्रशैली मे जैन वाड्मय को निवद्ध करके सस्कृत-भाषा मे साहित्यरचना का श्रीगणेश किया। फिर तो समन्तभद्र,

सिद्धसेन, अकलक, हरिभद्र जैसे प्रखर दार्शनिको ने भगवान् महावीर के अनेकान्त-दर्शन को ले कर सस्कृत की वह सरिता वहाई कि उसका प्रवाह वेगपूर्णगति से प्रवाहित होता रहा।

महावीर के सघ मे भेद अवश्य हुआ; किन्तु वह भेद साधुओ के वाह्य आचार, मुख्यरूप से वस्त्र, पात्र तक या स्त्रीमुक्ति तक ही सीमित रहा। वौद्धदर्शन के ज्ञानाद्वैतवाद और शून्यवाद की तरह जैन दार्शनिको ने कोई नया वाद खडा नही किया। सव ने मिल कर अपनी अपनी शैली से अनेकान्तवाद के ही पोपण मे अपनी शक्ति लगाई। हाँ, उत्तरकाल मे दर्शनशास्त्र के व्याख्याग्रन्थो मे कुछ टीकाकारो ने वस्त्रपात्रवाद, स्त्रीमुक्ति और केवलिमुक्ति का विरोध या समर्थन अवश्य किया। किन्तु चर्चा मे अतिरेक नही हुआ और अहिसा की मर्यादा का उल्लघन प्राय नही हुआ। जो हुआ, वह नगण्य था। एक संप्रदाय ने द्वादशाग के नाम पर अपना साहित्य सकलित किया तो दूसरे सम्प्रदाय ने न उसे मान्य किया और न उसका विरोध ही किया। इसे हम कम सहिष्णुता नही कह सकते। पच्चीस सौ वर्षों मे दोनो सम्प्रदायो मे द्वन्द्व होने के कोई प्राचीन उल्लेख नही मिलते। प्रत्युत ककाली टीले से प्राप्त मूर्तियाँ वतलाती हैं कि नग्न होते हुए भी उन मूर्तियो पर जो लेख है, वह कल्पसूत्र की स्थविरावली के अनुसार हैं। इसे हम अनेकान्तदृष्टि और अहिसा की भावना का ही चमत्कार कह सकते हैं कि हम अलग हो कर भी दूसरो की तरह नही लडे, और हमने भगवान् महावीर के अनेकान्त और अहिसा-दर्शन को भ्रष्ट करने की चेष्टा नही की।

किन्तु कालक्रम से हमारे मे ज्ञान की कमी होती गई, पुराने आचार्यों जैसे ज्ञानी होना कम होते गये। फलतः उन जैसी सहनशीलता भी नही रही। दक्षिण के गग राजवश और होय्सल-वशो को जैनाचार्यों का आर्शीवाद प्राप्त था, तो गुजरात के सोलकी राजवश भी जैनाचार्यों से प्रभावित थे। आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात् जैन परम्परा मे कोई ऐसा प्रभावशाली साधु नही हुआ।

धार्मिक द्वेप तो भारतवर्प मे भी चलता रहा है। किन्तु यहाँ के राजन्यवर्ग प्राय. मध्यमवृत्ति के रहे और जैनो का अपना प्रभाव भी रहा। इससे जैनो को प्राय. धर्मद्वेप का शिकार कम होना पडा।

भगवान् महावीर के उदार सिद्धान्तो के प्रभाव ने भी उनकी रक्षा की है। जैनगुरुओ की निरीह वृत्ति, उदात्त जीवन तथा जैन श्रावको की उदारता, नैतिकता और सदाचारता ने उन्हे सामान्य लोगो का विश्वासभाजन और स्नेहभाजन वनाया है। मेवाड के स्वातन्त्र्य युद्ध मे राणा प्रताप के चरणो मे अपना सर्वस्व होम देने वाले भामाशाह के त्याग का क्या जनजीवन पर कम प्रभाव पड़ा होगा? देशप्रेम का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

जैनधर्म की जन्मभूमि सदा भारत-देश रहा है। अतः जैनो की देशभक्ति का एकमात्र आधार भारत-देश है। न वे कही बाहर से आये हैं और न बाहर के प्रति उनका कोई आकर्षण है। भारत के स्वातन्त्र्य-युद्ध मे जैनो ने अपने अनुपात से अधिक ही कुर्बानी की है।

यह सब कुछ है, किन्तु समय के प्रवाह ने आज श्रावको को भी उसी पलडे मे ला रखा है, जिसमे दूसरे हैं। आज का जैन श्रावक पुराने श्रावको जैसा निष्ठावान और सदाचारी नही रहा है। माया-मोह ने उसे भी कालाबाजारी, मुनाफाखोर, और कर चोर बना दिया है। जैनसमाज की कल्याण-भावना भी उनमे पहले जैसी नही रही है। वह अणुव्रतो के प्रचार के लिये धन दे सकता है, किन्तु स्वय अणुव्रत धारण नही कर सकता। वह चाहता है कि विश्व मे जैनधर्म का प्रचार हो, किन्तु स्वयं अपने परिवार मे जैनधर्म का प्रचार नही करना चाहता।

साधु-समुदाय मे भी अपने रूढिग्रस्त आचार के प्रति तो निष्ठा है, किन्तु ज्ञानाचार के प्रति निष्ठा नही है। और यदि कहा जाये कि श्रावक से आज का साधु अधिक साम्प्रदायिक है, तो इस कथन मे अत्युक्ति नही है। आज भी समाज पर साधुओ के प्रभाव मे कोई कमी नही है। उनकी बात समाज सुनती है। यदि भगवान् महावीर को अपना धर्मगुरु मानने वाले सब गुरुजन अपनी अपनी वासनाएँ त्याग कर परस्पर मे मिलें और सघबद्ध हो कर, समाज का सचालन साम्प्रदायिकता की दृष्टि से नही किन्तु लोकोपकार और भगवान् महावीर के उदात्त सिद्धान्तो के विस्तार के लिये करें तो जैन-समाज मे आज भी ऐसी शक्ति है कि वह लोक का अनुवर्तन कर सकता है।

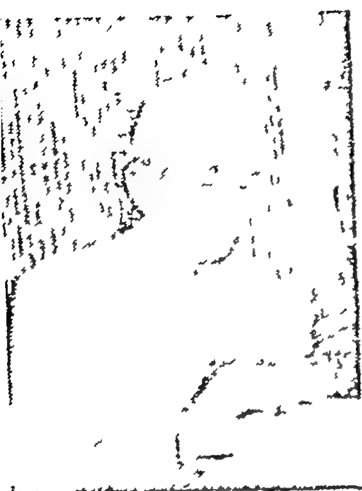
पच्चीस सौ वर्षों मे यद्यपि जैनसमाज मे प्रत्येक दृष्टि से कमी आई हैं, किन्तु आज भी वह एक जीवित समाज है और वह एकदम गया बीता नही है।

उसके जैसा उदार व दानी समाज कम है, किन्तु दान का उपयोग ठीक दिशा मे नही है। नई पौद का भविष्य अनिश्चित है। उसकी ओर किसी का लक्ष्य भी नही है और बागडोर उसी के हाथ मे आने वाली है। वह कहा तक अहिंसक रहेगी, यह भी अभी अनिश्चित है।

यह अढाई हजार वर्ष तो हमने निकाल दिये। उन पर गर्व भले ही न कर सकें, किन्तु अफसोस करने लायक जैसा भी कुछ नही है। हम जीवित हैं, एक असगठित सगठन के रूप मे, यह क्या कोई कम सन्तोष की बात है।

भगवान् महावीर के पच्चीस सौवें निर्वाण दिवस के अवसर पर हम प्रतिज्ञा करें कि जहा हम हैं, वहाँ से नीचे नही जायेंगे और एक दिन महावीर के पदचिह्नो पर चल कर उन्ही की तरह निर्वाण प्राप्त करेंगे।





महावीर ने किया

महामानवता का आह्वान

—कल्याण कुमार जैन 'शशि'



बिछा हुआ पग-पग पर, शापो षड्यन्त्रो का जाल,
पड़ी पाण्डुलिपि मानवता की, कटी फटी बेहाल।
हिंसा हत्या छल प्रपञ्च का बिछा हुआ है जाल,
मानवता को निगल गई है, दानवता विकराल ॥

रामराज्य मे पनप रहा, रावणता का व्यवधान।
महावीर ने किया महामानवता का आह्वान ॥

धर्मोपार्जन की आस्थाएँ दिखती डाँवाडोल,
लज्जा निर्वसना है, उच्छृंखलता की जय बोल।
भटक गया आत्मिकता से, मानव-जीवन अनमोल,
कोई अमृत-घट न बचा है, जहाँ न विष का घोल ॥

मानवता की अमराई, होती जाती वीरान।
महावीर ने किया महामानवता का आह्वान ॥

बगुले तथा हंस का दिखता, जब समानान्तर वेश,
विश्व-शिखरसम्मेलन मे, गर्भित है युद्ध-प्रवेश।
रिक्त नही इन अभिशापो से, कोई देश-विदेश,
करुणा, समता, आध्यात्मिकता का, कही नही लवलेश ॥

दया अहिंसा को झिझोडता चेत रहा विज्ञान।
महावीर ने किया महामानवता का आह्वान॥

क्रूर अपहरण, छीनाझपटी, पनपी चारो ओर।
कंसवाद अंगड़ाई लेता, हो आनन्द-विभोर।
सब के मन मे शकाओ का, घुस बैठा है चोर,
दृश्यमान है हृदयहीनता, निर्मम ऐंठ मरोर॥

दुराचरण को सिद्धान्तो का, पहिनाया परिधान।
महावीर ने दिया महामानवता का वरदान॥



पुकार

—हेमन्तकुमार श्रीमाल मधु, उज्जैन



महावीर स्वामी तुम्ही हो तुम्हारे
तुम्हारे सिवा अब किसे हम पुकारे

लहर के थपेडे चले आरहे हैं
भंवर की दिशा मे लिये जारहे है
बडी दूर लगते नजर से किनारे।

सबेरा सुखो का नजर फेर बैठा
अन्धेरा दुखो का हमे घेर बैठा
यहाँ निर्बलो के तुम्ही हो सहारे।

पवन औ फिजाँ मे जहर आज फैला
चमन को खिजाँ ने किया है विषैला
कहो जिन्दगी 'मधु' कहाँ पर गुजारे।

—o—



निर्वाणदृष्टि के सन्दर्भ में

भ० महावीर का जीवन-दर्शन

डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, नीमच



आज से लगभग २५७२ वर्षों के पूर्व भारतवर्ष के पूर्वीय अचल मे मगधप्रदेश मे वैशाली के कुण्डपुर के राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला से चैत सुदी तेरस के दिन महावीर का जन्म हुआ था। महावीर का जन्म का नाम वर्द्धमान था। ये कश्यपगोत्रीय ज्ञातृक क्षत्रियकुल के थे। ज्ञातृक वज्जिसघ के अष्टकुलो मे प्रमुख गिना जाता था। वैशाली उन दिनो गणतन्त्रात्मक प्रजा-सत्ता से सम्पन्न थी। वैशाली गणतन्त्र के नायक राजा चेटक अपनी शासन-व्यवस्था के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। तत्कालीन भारतवर्ष के कई विशिष्ट राजाओ से केवल राजकीय ही नही, इनके कौटुम्बिक सम्बन्ध भी थे। सिन्धुसौवीर के राजा उदायन, अवन्ती के राजा प्रद्योत, कौशाम्बी के राजा शतानीक, चम्पा के राजा दधिवाहन और मगध के राजा विम्वसार इनके दामाद थे। महावीर की माता त्रिशला चेटकराजा की वहन थी। वैशाली के राजा चेटक हैहय वश के थे। वैशाली विदेह की राजधानी थी, जो गडक नदी के तट पर अवस्थित थी। वैशाली एक विशाल नगरी थी, जो कई मार्गों मे तथा मुहल्लो मे विभक्त थी। उनमे कुण्डग्राम और वाणिज्यग्राम अत्यन्त प्रसिद्ध मुहल्ले थे। इसके उत्तर के भाग मे क्षत्रिय रहते थे और दक्षिण के भाग मे ब्राह्मण। वैशाली नगरी मे उन दिनो एक लाख साठ हजार क्षत्रिय निवास करते थे। नगरी सभी प्रकार से शोभा-सम्पन्न थी। इसके नगर-प्राकार को तीन वार विशाल वनाने के कारण इसका नाम वैशाली प्रचलित हुआ। वर्तमान मे यह विहार-प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले मे वसाढ गाँव मानी जाती है। यह गडक नदी के पूर्व मे अवस्थित है। वैशाली प्रजातन्त्र की न्याय-व्यवस्था कितनी सुन्दर थी, इसकी कुछ झलक हमे दीर्घनिकाय की अट्ठकथा मे मिलती है। ब्राह्मणकुण्डपुर का दक्षिण विभाग 'ब्रह्मपुरी' के नाम से प्रसिद्ध था। क्षत्रियकुण्डपुर के उत्तर विभाग मे लगभग ५०० घर ज्ञातृक्षत्रियो के थे। ब्राह्मण-कुण्डपुर और क्षत्रियकुण्डपुर क्रमश एक दूसरे के पूर्व और पश्चिम मे थे। इन दोनो के वीच मे एक उद्यान था जो 'वहुसाल चैत्य' के नाम से प्रख्यात था। उत्तर-क्षत्रियकुण्डपुर के नायक का नाम सिद्धार्थ था। इन्ही सिद्धार्थ के लाडले महावीर का जन्म ई० पू० ५९९ मे चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को हुआ था।

महावीर का शैशव सभी प्रकार से राजकुमारोचित बाल-क्रीडाओ से युक्त था। किन्तु समय-समय पर उन्होने जिस बुद्धि-वैभव और निर्भयता का परिचय दिया, उससे उनका नाम ही 'महावीर' प्रसिद्ध हो गया। वे न तो विकराल सर्प की फुकार से ही रचमात्र भयभीत हुए और न साप को उठा कर फेंकने मे ही किसी प्रकार की हिचकिचाहट प्रदर्शित की। उस समय महावीर की अवस्था आठ वर्ष से भी कुछ कम थी। वे अपने इस प्रकार के साहस और सामर्थ्य का परिचय कई बार कई तरह से दे चुके थे। लगभग तीस वर्षों तक वे सामाजिक जीवन मे रहे। इस बीच कई प्रकार महत्वपूर्ण कार्यों मे सामाजिक जीवन मे रहे। इस बीच कई प्रकार के महत्वपूर्ण कार्णों मे वे संलग्न रहे। जिस प्रकार के ऐश्वर्य-भोगो से सम्पन्न परिवार में उनका जन्म हुआ था, उससे उनका मन उदासीन होने लगा था। इस उदासीनता के कई कारण थे। ससार के दुःख-द्वन्द्वो को देख कर उनका कोमल मन सवेदनशीलता और करुणा से भर गया। प्रथम बार महावीर को समाज मे अनुभूति हुई कि निरीह, दीन-दरिद्र, नि सहाय और सामर्थ्यहीन प्राणियो की यह दशा पशु-पक्षियो से भी वदतर है। वे उनके उस जीवन की दशा को देख कर रो पड़े। उन्होने निश्चय किया कि जिस समाज मे धन और धनिको की पूजा होती है, उसे बदल डालना चाहिए। क्योकि यह प्रत्यक्ष मे ही मानवता का अपमान है। एक ओर सम्पत्ति का घोर सग्रह कर वडी-वडी अट्टालिकाओ मे रहने वाले धनी-मानी लोग अपनी व्यवस्था और कानूनो से निरीह प्राणियो पर शासन कर रहे हैं और दूसरी ओर वे दीन-हीन मानव बडे लोगो की अनुज्ञा मे चलते हुए भी दिनोदिन अन्याय और अत्याचारो मे पिसते जा रहे हैं। महावीर के सामने जीवन एक बहुत वडे प्रश्नवाचक चिह्न के रूप मे समुपस्थित था—क्या बडे लोगो को शासन करने के लिए ही बनाया गया है? प्रजातन्त्र है तो क्या सारी सत्ता आज भी राजाओ के हाथो मे केन्द्रित है, वे जिस प्रकार से चाहते हैं राजा के रूप मे चुन लिए जाते हैं? गणतन्त्र के रूप मे अधिनायकवाद की सत्ता के ही दर्शन महावीर ने किये और सच्चे प्रजातन्त्र के लिए एक सहानुभूति की भावना सदा-सदा के लिए उनके मन मे घर कर गई। महावीर ने अपने जीवन के चारो ओर जो कुछ व्याप्त देखा, वह उनके लिए नया नही था। शत-शताब्दियो से चले आ रहे धर्म और अहिंसा के नाम पर भयंकर रक्तपात और निरीह मूक प्राणियो का बलिदान तथा हिंसा की विकराल लीला से समाज मे घोर आडम्बर और कर्मकाण्ड बढ चुका था। मानव-मानव के वीच विरोध की ऊँची दीवारें खडी हो चुकी थी। सामन्तवर्ग के आधिपत्य मे एक सम्पूर्ण वर्ग ही समाज का नेतृत्व कर रहा था, जिसके अनुसार जातिप्रथा अपने उस चरम उत्कर्ष को पहुँच चुकी थी, जिसमे धर्म और पवित्र सामाजिक कार्य करने का अधिकार केवल पुरोहितवर्ग को ही था। समाज की इस विश्रृंखल और आततायी दशा को देख कर महावीर का अन्तरात्मा रुदन करने लगा। रूढियाँ और ऐसी रूढियाँ, जो अन्धे की भाँति केवल चलने को कहे, देखने के लिए नही। वह भी इतिहास का एक पृष्ठ था,

जिसके अक्षर-अक्षर को महावीर ने पढ लिया था और अपनी क्रान्तिदर्शी प्रतिभा से सम्पूर्ण भारतीय समाज को परिवर्तित करने के लिए अपनी आध्यात्मिक साधना के कुछ नये मन्त्र प्रदान किये।

महावीर ने केवल पुरुषो के सामाजिक जीवन पर ध्यान दे कर उन्हे सभी प्रकार के जन्मसिद्ध अधिकार पाने के लिए सवल और सचेष्ट ही नही किया, वरन् उनके साथ ही नारी को धार्मिक क्षेत्र मे पुरुष के समान अधिकार प्रदान कर चतुर्विध सघ की स्थापना की। सामाजिक जीवन मे उन्होने धर्म और समता पर अधिक वल दिया। उनका स्पष्ट कथन है—

'लोक मे कर्म के अधीन जीवो को मेधा हो चाहे न हो, ज्ञान की प्राप्ति के लिए उद्यम कभी नही छोडना चाहिए। कस कर काम करने का नाम ही तप है। तप से रहित ज्ञान और ज्ञान से रहित तप व्यर्थ है। इसलिए आत्मा को तपाओ, सुकुमारता छोडो, कामना को दूर करो, निश्चित रूप से दुःख दूर होगा। द्वेष का नाश करो, रागभाव को दूर करो, इस प्रकार की प्रवृत्ति करने से संसार मे सुखी वन जाओगे।'

जव महावीर का युवक मन सामाजिक अत्याचार और उत्पीडन से भर उठा तो उन्होने सवसे पहले राजमहल छोड कर एक सामान्य से सामान्य व्यक्ति का जीवन वस्त्राभूषणो से रहित हो कर सयम, तप और समता के सिद्धान्तो पर विताना आरम्भ किया। पशु से भी वदतर जीवन विताने वाले क्रीत दास, दासियो और समाज से वहिष्कृत नीच समझे जाने वाले शूद्रो और मनुष्योचित अधिकारो से वचित अपना सवस्व समर्पण करने वाली नारियो को वाणी प्रदान करने वाले महावीर इतिहास के ऐसे महापुरुष थे, जिन्होने समाज मे विभिन्न क्रान्तिकारी परिवर्तन कर जाति-भेद के सिद्धान्तो को गुण और कर्मानुसार विवेचित किया। उनके अनुसार—

'देह वदनीय नही होता, कुल और जाति भी वदनीय नही होते, न गुणहीन श्रमण ही वदनीय होता है और न श्रावक। फिर मैं किस गुणहीन की वन्दना करूँ? केवल सिर मुडा लेने से कोई श्रमण नही होता। ओम् का जप करने मात्र से कोई ब्राह्मण नही होता। केवल अरण्य मे रहने से कोई मुनि नही होता और कुश का चीवर पहनने मात्र से कोई तापस नही होता। समभाव की साधना करने से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य के पालन से ब्राह्मण होता है, ज्ञान की आराधना करने से मुनि होता है और तप का आचरण करने से तापस होता है। मनुष्य कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है।'

इस प्रकार महावीर ने सामाजिक और आध्यात्मिक दोनो ही क्षेत्रो मे उत्क्रान्ति कर वास्तविक जीवन-दर्शन का उद्घोष किया। आज की जिन्दगी मे उनके जीवन-दर्शन का वही महत्व है, जो ढाई हजार वर्षों के पहले था। आज की सामाजिक विषमता, धन, सम्पत्ति और वैभव का घोर सग्रह तथा प्रदर्शन, निर्वल और दीन-हीनो का शोषण, शक्ति की विस्तारवादी नीतियाँ और शक्ति-सन्तुलन के आधार पर एक-दूसरे देशो के वीच हस्तक्षेप करना आदि ऐसी विषमताएँ हैं, जिनका वर्णन 'हिंसा' और 'परिग्रह' पाप के अन्तर्गत किया गया है।

—०—

महावीर की याद



—फूलचन्द 'मानव'



सत्ता का अभिशाप
स्वय शैतानी आगे
झुक जाता है
मर्दन करने गर्व चण्डकौशिक का—
जब जब नर
कृत-हृत सा, अकुलाता है
सकुचाता है
बल-पौरुष भी थर्राता है

सृष्टि के सपनो से तब, साकार
वर्धमान का बोध संत बन कर आता है
एक निशस्त्रीकरण
शस्त्र तलवार ही नही
हर मन का प्रहार
वार अस्तित्व मात्र पर
कहाँ अहिंसा ?

आलोक . अभय का दान
मनुज आत्मविजयी हो
या फिर जीत हृदयपरिवर्तन से
बेहतर है, सत्ता सूनी . .

महावीर की याद
धर्म की फौलादी बुनियाद ।

—o—

जिसके अक्षर-अक्षर को महावीर ने पढ लिया था और अपनी क्रान्तिदर्शी प्रतिभा से सम्पूर्ण भारतीय समाज को परिवर्तित करने के लिए अपनी आध्यात्मिक साधना के कुछ नये मन्त्र प्रदान किये।

महावीर ने केवल पुरुषो के सामाजिक जीवन पर ध्यान दे कर उन्हें सभी प्रकार के जन्मसिद्ध अधिकार पाने के लिए सवल और सचेष्ट ही नही किया, वरन् उनके साथ ही नारी को धार्मिक क्षेत्र मे पुरुष के समान अधिकार प्रदान कर चतुर्विध सघ की स्थापना की। सामाजिक जीवन मे उन्होने धर्म और समता पर अधिक वल दिया। उनका स्पष्ट कथन है—

'लोक मे कर्म के अधीन जीवो को मेधा हो चाहे न हो, ज्ञान की प्राप्ति के लिए उद्यम कभी नही छोडना चाहिए। कस कर काम करने का नाम ही तप है। तप से रहित ज्ञान और ज्ञान से रहित तप व्यर्थ हैं। इसलिए आत्मा को तपाओ, सुकुमारता छोडो, कामना को दूर करो, निश्चित रूप से दु ख दूर होगा। द्वेष का नाश करो, रागभाव को दूर करो, इस प्रकार की प्रवृत्ति करने से ससार मे सुखी वन जाओगे।'

जव महावीर का युवक मन सामाजिक अत्याचार और उत्पीडन से भर उठा तो उन्होंने सवसे पहले राजमहल छोड कर एक सामान्य से सामान्य व्यक्ति का जीवन वस्त्राभूपणो से रहित हो कर सयम, तप और समता के सिद्धान्तो पर विताना आरम्भ किया। पशु से भी वदतर जीवन विताने वाले क्रीत दास, दासियो और समाज से वहिष्कृत नीच समझे जाने वाले शूद्रो और मनुष्योचित अधिकारो से वचित अपना सवस्व समर्पण करने वाली नारियो को वाणी प्रदान करने वाले महावीर इतिहास के ऐसे महापुरुष थे, जिन्होंने समाज मे विभिन्न क्रान्तिकारी परिवर्तन कर जाति-भेद के सिद्धान्तो को गुण और कर्मानुसार विवेचित किया। उनके अनुसार—

'देह वदनीय नही होता, कुल और जाति भी वदनीय नही होते ; न गुणहीन श्रमण ही वदनीय होता है और न श्रावक। फिर मैं किस गुणहीन की वन्दना करूँ ? केवल सिर मु डा लेने से कोई श्रमण नही होता। ओम् का जप करने मात्र से कोई ब्राह्मण नही होता। केवल अरण्य मे रहने से कोई मुनि नही होता और कुश का चीवर पहनने मात्र से कोई तापस नही होता। समभाव की साधना करने से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य के पालन से ब्राह्मण होता है, ज्ञान की आराधना करने से मुनि होता है और तप का आचरण करने से तापस होता है। मनुष्य कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है।'

इस प्रकार महावीर ने सामाजिक और आध्यात्मिक दोनो ही क्षेत्रो मे उत्क्रान्ति कर वास्तविक जीवन-दर्शन का उद्घोप किया। आज की जिन्दगी मे उनके जीवन-दर्शन का वही महत्व है, जो ढाई हजार वर्षों के पहले था। आज की सामाजिक विपमता, धन, सम्पत्ति और वैभव का घोर सग्रह तथा प्रदर्शन, निर्वल और दीन-हीनो का शोषण, शक्ति की विस्तारवादी नीतियाँ और शक्ति-सन्तुलन के आधार पर एक-दूसरे देशो के वीच हस्तक्षेप करना आदि ऐसी विपमताएँ हैं, जिनका वर्णन 'हिंसा' और 'परिग्रह' पाप के अन्तर्गत किया गया है।

—o—

महावीर की याद

—फूलचन्द 'मानव'





सत्ता का अभिशाप
स्वय शैतानी आगे
झुक जाता है
मर्दन करने गर्व चण्डकौशिक का—
जब जब नर
क्षत-हत सा, अकुलाता है
सकुचाता है
बल-पौरुष भी थर्राता है
सृष्टि के सपनो से तब, साकार
वर्धमान का बोध संत बन कर आता है
एक निशस्त्रीकरण
शस्त्र तलवार ही नही
हर मन का प्रहार
वार अस्तित्व मात्र पर
कहाँ अहिंसा ?
आलोक अभय का दान
मनुज आत्मविजयी हो
या फिर जीत हृदयपरिवर्तन से
बेहतर है, सत्ता सूनी.
महावीर की याद
धर्म की फौलादी बुनियाद ।

—o—

ओ विद्रोही ! ओ तीर्थंकर !! तेरा वह धर्मचक्र-वर्तन !!!

—वीरेन्द्रकुमार जैन

ले कर अनंग-मोहन यौवन, अधरों पर बंकिम धनु तानें।
मनसिज की पुष्प-धनुष-डोरी, तुम तोड़ चले ओ मस्ताने !!
नन्दन-कानन मे अप्सरियाँ बन कमल बिछी तेरे पथ में।
पद-रज की उनको दे पराग, तू लौट चढा पावक-रथ मे !

वह तीस वर्ष का अरुण तरुण, रति की शैया भी थी प्यासी।
त्रैलोक्य-काम्य रमणीय के परिणय को निकले तुम संन्यासी !!
वाला-जोवन, भोली सूरत, भौंहो मे सत्-सन्धान लिये।
चितवन मे देश-काल पर शासन करने का अभिमान लिये ॥

अधरो पर वीतराग-समता की अनासक्त मुस्कान लिये।
उन अवहेलित-सी अलको मे शाश्वत यौवन का मान लिये ॥
चिर मोह-रात्रि भव की अभेद्य, भेदन करने चल पड़े वीर।
भीषण जड़-चेतन युद्धो मे, तुम जूझ चले जेता सुधीर ॥

हिंसक पशु-संकुल बीहड वन, दुर्गम-गभीर गिरि-पाटी मे।
तुम निर्भय विचरे हिंसा, भय, साक्षात् मृत्यु की घाटी मे !!
निर्वसन, दिगम्बर, प्रकृत, नग्न, प्रकृति-जेता ओ क्षात्र-जात !
पृथ्वी ससागरा लिपटी थी, तव चरणो पर होने सनाथ !!

झाड़ी-झखाड़, वनस्पतियाँ, वल्लरियाँ भरती परिरम्भण।
विषधर विभोर हो लिपट रहे, नग्ना जाँघो पर दे चुम्बन !!
नाना विधि जीव-जन्तु कीड़े, चीटी दीमक सब निर्भयतम।
पृथ्वी, जल, अम्बर, तेज, वायु सब त्रस-थावर जड़ औ' जंगम !!

तेरी समाधि की समता के उस वीतराग आलिङ्गन मे—!
सब मिल कर एकाकार हुए, निर्बन्धन, तेरे बन्धन मे !!
कैवल्य-ज्योति! आदित्य पुरुष ! ओ तपो-हिमाचल शुभ्र धवल !
तेरे चरणो से बह निकली, समता की गगा ऋजु निश्छल !!

इस निखिल सृष्टि के अणु-अणु के संघर्ष, विषमता औ' विरोध !
कल्याण-सरित मे डूब चले, हो गया वैर आमूल शोध !!
तेरे पद-नख के निर्झर-तट, सब सिंह, मेमने, मृगशावक !
पीते थे पानी एक साथ, तेरी छाया मे ओ रक्षक !!

जिन-चक्रवर्ति ! सातो तत्त्वो पर हुआ तुम्हारा तब शासन !
तीनो कालो, तीनो लोको पर बिछा तुम्हारा सिंहासन !!
वह विषम रात्रि इतिहासो की, संघर्ष-त्रस्त भटके भव-जन !
था जीवन, जीवन का शोषक, था जीव-जीव मे सघर्षण !!

जीवन जीवन का भक्षण कर, जीने का था प्रचलित विधान !
हिंसा से क्रन्दन-कातर था, इस निखिल लोक का आसमान !!
सत्ता के लोहे के नीचे, वे प्राणि-हवन के आयोजन !
निर्दोष, मूक, पशु-बलियो से था त्रस्त मनुज का अन्तरतम !!

उन क्रूर विषमता-शूलो मे जन्मे समता के पैगम्बर !
ब्रह्माण्डो मे भूचाल हुआ, जब तू उतरा इस धरती पर !!
ओ सिंह दिगम्बर ! सत्ता की तलवारो की नोको पर चल !
वह चिरसुख का कल्याण-मार्ग, तू बना चला उन पर अविचल !!

दुर्वृत्त भंग कर हिंसा का, तू प्रकृति का क्रम उलट चला !
थी निखिल लोक मे हुई क्रान्ति, अणु-अणु का अन्तर पलट चला !!
कर मर्यादा का उल्लंघन ! सब मूढ रूढ़ियां तोड चला !
ओ तू विप्लव के झझानिल ! मिथ्यात्व-वज्र-गिरि फोड चला !!

वह जीव-जीव के शोपण का उत्पीड़न तब हो चला अन्त !
जागा विवेक, जागा चेतन, जागा कर्मावृत ज्ञान, हन्त !!
था हुआ 'अहिंसा परम धर्म' का निखिल लोक मे दिव्य घोप !
तेरे चरणो पर पिघल बहा चक्राधीशो का भृकुटि-रोष !!

ओ विद्रोही ! ओ तीर्थंकर !! तेरा वह वह धर्म-चक्र-वर्तन !
जिससे तू भेद गया अर्हत् ! चिर जन्म-मरण के गठ-बन्धन !!
कृष्णा चौदस की निशा शेष, आकुल फटने को था प्रभात।
आठो जजीरे तोड़ मुक्त, निर्वाण हो चले, सिद्ध-नाथ !!

पावापुर की वे सर लहरें गाती है अब भी मुक्ति-गान।
प्रकटा उषा मे ज्योति-पुरुष ! वह झाँका तीर्थंकर महान ॥
अनवरत चल रहा काल-चक्र फिर आई कैवल-ज्योति रात।
हिंसाकुल मानव, भीत, त्रस्त, घायल, शोणित से भरे गात !!

दीन आँखो की अजुलियो मे, आँसू दीपक जले नाथ।
दीपोत्सव कैसे मने आज, निर्वाण-आरती ! कँपे हाथ ॥
ओ युग-धाता, ओ जग-त्राता, ओ तीर्थ-देव, ज्योति-दान।
इस जडीभूत, संघर्ष-क्षुब्ध, मानव को कर आत्मा प्रदान ॥

जागे विवेक, जागे चेतन, जागे जीवन-कल्याण-मत्र।
सब राज-नीति औ' भेद-नीति से कर मानव को फिर स्वतन्त्र ॥
इस मुक्तिरात्रि मे ! लो, वन्दी के अश्रु-सजल शत-शत प्रणाम।
ओ मुक्त ! लोक के सुख-दुख से क्या कभी ले सके तुम विराम !

त्रैलोक्य-काल के रमण-देव ! है लोक न तुम से परे नाथ।
तुम वीतराग ! तुम पूर्ण राग !! बन्धन-निर्बन्धन एक साथ !!!
जागो जागो कैवल्य-ज्योति ! हा करो त्राण, हम आर्त-प्राण।
कर भेद अहं-तम मानव का, सत-सज्ञा उसको करो दान ॥

वेबस आँसू में जन-जन के, प्रभु ज्योतित कर दो आत्म-ज्ञान।
अपना स्वामी, स्रष्टा बन कर, वह करे मागलिक नवविधान ॥

□□

गोविन्द निवास,
सरोजिनी रोड,
विले पारले (पश्चिम)
बम्बई-५६

—वीर निर्वाण विचार-सेवा,
इन्दौर के सौजन्य से



श्री अमर भारती : भगवान महावीर निर्वाण विशेषांक



निर्वाणवादी महावीर की दृष्टि मे—

सत्य की प्रतीति के दो रूप

उपाध्याय अमरमुनि



सत्य की प्रतीति के दो रूप हैं। एक है श्रुत और दूसरा है दृष्ट। श्रुत का अर्थ है—सुना हुआ। किसी गुरु से शास्त्रवचनो के द्वारा जो सत्य की उपलब्धि होती है, वह श्रुत सत्य है। इसे परोक्ष सत्य भी कहा जाता है। इस प्रकार का सत्य सत्य का एक सकेत मात्र है। शब्दो के माध्यम से हम वस्तुस्थिति का एक धुँधला-सा अर्थबोध कर लेते हैं, उसका स्पष्टतया साक्षात्कार नही। और जब तक सत्य का स्पष्ट साक्षात्कार, जिसे दर्शन की भाषा मे दृष्ट एव अनुभूत सत्य कहा जाता है—न हो, तब तक सत्य का यथार्थ बोध अपनी निश्चित मजिल पर नही पहुँच सकता। सत्य के यथार्थ बोध की जिज्ञासा श्रुत सत्य से शान्त नही होती, वह होती है—स्वय के द्वारा साक्षात् दृष्ट एव अनुभूत सत्य से।

एक अनजान व्यक्ति मिश्री के रस के सम्बन्ध मे पूछता है कि "मिश्री का रस कैसा होता है ?" प्रश्नकर्ता ने मिश्री का केवल नाम सुना है, न उसे देखा है, न चखा है। उत्तरदाता कहता है—"मिश्री बहुत मीठी होती है।" प्रश्न का उत्तर तो मिल गया और प्रश्नकर्त्ता को मिश्री के रस के सम्बन्ध मे परिवोध भी हो गया कि वह मधुर होती है। परन्तु मिश्री के उक्त मधुर रस का परिवोध कितना अधूरा है, अस्पष्ट है, परोक्ष है, यह हर कोई विदग्धजन जान सकता है। "मीठी तो है, पर कैसी मीठी है मिश्री ?"—यह प्रश्न बरावर मन के सागर मे उत्तरगित होता रहता है। और जिसने कभी किसी भी रूप मे 'मधुर रस' का कोई अनुभव ही न किया हो, उसके लिए तो 'मिश्री मीठी होती है'—यह शाब्दिक समाधान कुछ भी समाधान नही रखता।

सर्वथा अनुभवहीन व्यक्ति के लिए तो कभी-कभी शाब्दिक समाधान बिल्कुल ही उल्टी गंगा बहा देता है। प्रयत्न किया जाता है, उसे वस्तुतत्त्व के एक वास्तविक अर्थ बोध के प्रकाश मे लाने का, और वह पहुँच जाता है वस्तुतत्त्व के सर्वथा विपरीत एव विरुद्ध एक भ्रान्त परिकल्पना के सघन अन्धकार मे। इस सम्बन्ध मे एक लोककथा है। गाँव के लघुवयस्क भद्र बालक कही बैठे खीर खाने की चर्चा कर रहे थे। वही पास मे एक जन्मदरिद्र, साथ ही जन्म का अन्धा भिखारी भी बैठा हुआ विश्रान्ति ले रहा था। उसने कभी खीर खाई नही थी। उस दरिद्र अंधे को यह भी पता नही था कि खीर कैसी होती है? उसकी खीर के प्रति जिज्ञासा हुई, फलत उसने बडी विनम्रता से बच्चो से पूछा—"क्या होती है भैय्या खीर?"

एक उत्साही बालक ने बताया—"दूध की होती है।"

अन्धे भिखारी को दूध का भी कुछ पता नही था। जन्म का दरिद्र और जन्म का अन्धा। उसने न कभी दूध देखा, न पीया। पूछा—"दूध कैसा होता है?"

बालक ने कहा—"सफेद होता है दूध। तुझे पता नही।"

"सफेद कैसा होता है भाई?—अंधे ने जीवन मे कुछ देखा तो था नही। उसे क्या पता, सफेद क्या होता है?

एक बालक ने समझाया—"बगुले को जानते हो? जैसा बगुला सफेद होता है, ऐसा ही दूध भी सफेद होता है।"

अन्धे भिखारी का बगुला से भी क्या समाधान। उस बेचारे ने बगुला भी तो कभी नही देखा था। पूछ बैठा—"भैया, बगुला कैसा होता है?"

अब तो बच्चे चक्कर मे। अन्धे को कैसे कुछ बताएँ? खीर से चली चर्चा चलते-चलते बगुले पर पहुँच गयी। फिर भी प्रश्नोत्तर की समस्या ज्यो की त्यो। किनारा ही नही मिल रहा था जिज्ञासा को, जिज्ञासा के प्रश्न को और प्रश्न के उत्तर को।

बालमण्डली मे एक बालक अपने को कुछ अधिक चतुर और समझदार समझता था। वह बोला बच्चो से—"बेवकूफो, कुछ आता भी है तुम्हे? इतनी देर हो गई, बेचारे अन्धे को कुछ भी नही समझा पाए। हटो जरा, मैं समझाता हूं।"

चतुर बालक ने दावे के साथ अन्धे को समझाना शुरू किया। उसने अपने एक हाथ को टेढा-मेढ़ासा कर बगुले की आकृति दी और अन्धे भिखारी का हाथ पकड कर अपने हाथ पर फिराते हुए बोला—"देखो, बगुला ऐसा होता है।"

अन्धा भिखारी बगुले के इस अर्थबोध से झट खीर के अर्थबोध पर पहुँचा और बोला—"भैय्या, ऐसी टेढ़ी खीर खाते कैसे हो?"

प्रश्न है, अन्धे भिखारी को शब्दो के माध्यम से खीर का क्या अर्थबोध हुआ ? बडी विचित्र स्थिति हो जाती है कभी-कभी। चलते हैं हिमालय की ओर, पहुँच जाते हैं सागर पर। **'हिमवद् गन्तुकामस्य, गमन सागरं प्रति।'** बनाने लगे थे गणेशजी और बना बैठे हनुमानजी, अर्थात् बन्दर—**विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्'।**

मिश्री हो, खीर हो, दूध हो, कुछ भी हो, सब का सही-सही पता प्रयोग करने पर ही लग सकता है। मिश्री जीभ पर रखिएगा, तभी मिश्री के अपने विशिष्ट अन्य विलक्षण माधुर्य का पता लगेगा। यह मिश्री के रस का अनुभूत सत्य होगा, जो रस की जिज्ञासा को काफी हद तक किनारा दे सकेगा। अन्धे भिखारी को खीर का अर्थबोध भी खीर चखा कर या खीर दिखा कर भी कराया जा सकता है। दूसरी "कोई गति नही है।"

बाह्यजगत् की अपेक्षा अन्तर्जगत् के तत्त्वबोध तो शब्द के जाल मे और अधिक उलझ जाते हैं। अन्दर का वह जगत् इतना अधिक सूक्ष्म है, रहस्यमय है कि वहाँ शब्द की स्थिति तो क्या, गति भी नही है। वैदिक महर्षि उस के सम्बन्ध मे कहते हैं—**"यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह।"** अर्थात् वहाँ से मन और वाणी, बिना कुछ पाए, बिना कुछ अता-पता लगाए, असफल ही लौट आते हैं। तीर्थंकर महावीर ने भी कहा था—**"सव्वे सरा नियट्टंति।"** वहाँ से सारे स्वर लौट आते हैं। **"तक्का तत्थ न विज्जइ।"**—तर्क की पहुँच भी वहाँ नही है। **"उवमाण विज्जए।"**—वहाँ के लिए उपमा भी तो कोई नही है। **"अरूवी सत्ता।"**—वह एक अरूप सत्ता है।**"अपयस्स पयं णत्थि।"**—अपद का कोई पद नही होता, दृश्य चिह्न नही होता। उक्त कथन से स्पष्ट है कि उस अनिर्वचनीय परमतत्त्वरूप परम चैतन्य का द्वार खोलने मे शब्दो के धक्के कितने अधिक दुर्बल हैं, अर्थहीन हैं।

महाश्रमण महावीर के पास पूर्वजन्म से ही समागत 'श्रुतज्ञान' कितना विशिष्ट एव निर्मल था। अत श्रुत के लिए उन्हे किसी गुरु की अपेक्षा नही थी। इसीलिए उन्होंने अपना कोई दीक्षागुरु नही बनाया। दीक्षागुरु से जो श्रुत मिलता, वह या उससे भी कही अधिक विराट् श्रुत उनके पास पहले से ही था। इसलिए वह श्रुत से आगे का रहस्य खोजने के लिए अकेले ज्ञानयात्रा पर चले। उनकी दीक्षा-साधना का अर्थ है—'स्वय सत्य की खोज करना।' किसी गुरु से, किसी शास्त्र से, किसी मत या पथ की मान्यता से सत्य की खोज, एक अलग बात है। और स्वय अपनी साक्षात्कृत अनुभूतियो के मूलाधार पर सत्य की यथार्थ खोज, अपने मे एक अलग ही बात है। दोनो मे आकाश-पाताल जितना अन्तर है, दिन-रात जैसा भेद है। सत्य दिया लिया नही जाता, खोजा जाता है। खोजना भी स्वय खोजना है, किसी अन्य से खोज करवाना नही। स्वयं तलाश करना है, किसी दूसरे से तलाश करवाना नही। इसीलिये महावीर ने स्वय सत्य की उपलब्धि करने के बाद कहा था—**"अप्पणा सच्चमेसेज्जा।"**—स्वय अपने से अपने चिन्तन से अनुभूति से सत्य

की खोज करो। जीवन की राह मे मिला मार्ग का ज्ञाता गुरु कुछ दूर तक ही साथ चल सकता है, आगे का पथ तो स्वय जाँचना होता है, और जांच कर स्वयं उस पर चलना होता है। "**मार्गज्ञ सह याति किम् ?**"

महावीर का दर्शन है—जब तक श्रुतज्ञान है, और उस शाब्दिक श्रुतज्ञान के आधार पर चर्चा है, तब तक कैवल्यरूप पूर्ण प्रत्यक्षज्ञान नही होता। अद्भुत है यह सिद्धान्त। सत्य की मिश्री के सम्बन्ध मे सुना तो बहुत है, पर सुनने से माधुर्यानुभूति किसे हुई है? माधुर्यानुभूति अर्थात् आनन्दानुभूति। कैवल्य के लिए श्रुत से आगे दृष्ट की यात्रा करनी होगी। परोक्ष से प्रत्यक्ष मे उतरना होगा। शब्द के जंगल को पार करना होगा, सत्य की नगरी तक पहुँचने के लिए। इसीलिए आचार्य शकर ने कहा था—"**शब्दजाल महारण्य, चित्त-भ्रमणकारणम्।**"—चित्त को भ्रान्त बना कर इधर उधर भटकाने वाला यह शब्दजाल बडा भयानक जगल है। वस्तुत आवश्यकता से अधिक गहराती जाती शास्त्रवासना सत्य का यथार्थ परिबोध नही होने देती। शास्त्रप्रतिबद्धता मत, पथ या सम्प्रदाय आदि के द्वारा आरोपित सत्यों का बोध करा सकती है, परन्तु मत-पथो से परे के मूल सत्य का परिबोध नही करा सकती। कैवल्यरूप प्रत्यक्षबोध श्रुतपरोक्षज्ञान से इतनी दूर है, जिस दूरी के बोध के लिए स्वय शास्त्रो को अनन्त के सिवा कोई दूसरा शब्द नही मिला। इस पर से समझ सकते हैं—परोक्ष और प्रत्यक्ष मे कितना अन्तर है। महावीर के दर्शन मे प्रत्यक्ष स्व-सापेक्ष है, और परोक्ष पर-सापेक्ष। स्वसापेक्ष का अर्थ है—'मन और इन्द्रिय आदि बाह्य साधनो से निरपेक्ष सर्वथा स्वतन्त्र स्वसवेदन। महावीर का महाभिनिष्क्रमण इसी परनिरपेक्ष स्वसवेदन के लिए था। साढे बारह वर्ष की सुदीर्घ साधना के फलस्वरूप वे परोक्षश्रुत की निम्नस्तरीय सीमा से आगे बढ़ कर सर्वात्मना प्रत्यक्ष स्वसंवेदन की, कैवल्य की सर्वोच्च भूमिका पर पहुंच गए, जन से जिन बन गए। 'जिन' होने का यही एक पथ है, जिस पर महावीर चले थे।

आज धर्म के नाम पर चल रहे धर्म-संप्रदायो के जो द्वन्द्व हैं, सघर्ष हैं, उनका यही एक मात्र कारण है कि भद्र जनता को शास्त्रो के नाम पर मूर्ख बनाया जा रहा है। वेदों के नाम पर चिर अतीत से ब्राह्मण-परम्परा जन-मन को भ्रान्त करती आ रही है, और आगमो के नाम पर श्रमण-परम्परा। जिस गुरु के जो भी मन मे आता है, उसे सिद्ध करने के लिए शास्त्रो की दुहाई देने लगता है। वे ही शास्त्र हैं, उनमे मूर्तिपूजा का विधान भी है, निषेध भी है। स्त्रीजाति का अपमान भी है, सम्मान भी है। दो श्रावण होने पर दूसरे श्रावण का पर्युषण पर्व भी है, भादवे का भी है। दो भाद्रपद होने पर प्रथम भादवे का पर्युषण भी है, दूसरे भादवे का भी है। उदयकाल की पचमी आदि पर्वतिथि भी है, और अस्तकाल की भी हैं। किसी दीन हीन की दानादि मे सेवा करने मे पुण्य भी है, और इसी सेवा मे पाप भी है। किसी मरते प्राणी की रक्षा मे पुण्य है, धर्म है, और इसी रक्षा मे पाप तथा अधर्म भी है।

एक सप्रदाय की दृष्टि मे अपना अमुक क्रियाकाण्ड शास्त्र के अनुसार श्रेष्ठ है, विहित है, तो वही क्रियाकाण्ड दूसरी सप्रदाय की दृष्टि मे उसी शास्त्र के अनुसार निकृष्ट है, निषिद्ध है। शास्त्र क्या हुए भानमती के पिटारे बना दिये गए। जो भी चाहिये, शास्त्रो मे मिल सकता है। टीकाओ की आख से तो एक ही वाक्य के कुछ के कुछ अर्थ लगाए जा सकते हैं। इसी का परिणाम है कि मूल मे एक ही वैदिक परम्परा के अनुयायी अपने शास्त्रो के अनुसार परस्परविरुद्ध आस्तिक भी हैं, नास्तिक भी हैं। शैव, वैष्णव आदि मे परस्पर इतना कलह एव विग्रह है कि कुछ पूछो नही। जैन परम्परा का भी बुरा हाल कर रखा है शास्त्रमोह ने। भगवान् महावीर की वाणी की दुहाई देते हुए दिगम्बर श्वेताम्बरो को जैन नही मानते, और श्वेताम्बर दिगम्बरो को। स्थानकवासी तेरापथी भी इसी धरातल पर खडे हैं। ये अपने सिवा अन्य किसी को भी जैन मानने के लिए तैयार नही हैं। अपने सिवा अन्य सब जैन नही, जैनाभास हैं, अपने मान्य शास्त्रो के अनुसार इन सबकी दृष्टि मे। इस प्रकार आज जनगणना के आकडो मे एक भी तो कोई जैन नही है, स्वय जैनो की दृष्टि मे। श्वेताम्बर, स्थानकवासी और तेरापथी के तो शास्त्र भी एक ही हैं। पर उन्ही एक शास्त्रो के आधार पर परस्पर एक दूसरे को मिथ्यादृष्टि घोषित कर रहे हैं। आजकल युग दृष्टि से वाध्य हो कर जो एकत्व का नारा लग रहा है धर्मगुरुओ का, उसका अधिकाश केवल मच पर के प्रदर्शन का नारा है। इन नारो के नीचे वहुत बडी मात्रा मे असत्य एव दभ छिपा हुआ है। वात जरा कडवी है, पर वह कितनी सत्य है, यह एकान्त मे किसी साम्प्रदायिक कक्ष मे उनके अपने हो कर मालूम कर सकते हैं। महावीर और महावीर के तत्त्वबोध को समझने के लिए इस दभ को तोडना ही होगा। और यह टूटेगा तब, जब गुरु का शास्त्रज्ञता के नाम पर सर्वज्ञता का दावा टूटेगा। आज हर गुरु के पास, लगता है, महावीर की सीधी वाणी पहुँचती है। शास्त्र के माध्यम से महावीर का सत्य केवल उसे ही सुनाई देता है, अन्य किसी को नही। धर्मगुरुओ ने शास्त्रो के नाम पर सत्य के मूल रहस्य को जितना उलझाया है, उतना सुलझाया नही है। एक ही धर्म के परस्पर विरोधी संप्रदाय और उपसप्रदाय इसी उलझाव के ही तो प्रत्यक्षसिद्ध प्रमाण हैं।

श्रमणपरम्परा के महान् अनुभवी सत कवीर के पास काशी के पण्डित विचारचर्चा के लिए गए तो अपने साथ शास्त्रो-ग्रन्थो से भरी अनेक गाडियां भी ले कर गए। कवीर ने देखा तो पूछा—"भई, यह क्या है ?" पण्डितो ने कहा—"ये शास्त्र हैं, चर्चा मे प्रमाण बताने के लिए लाये है।" कवीर हसे, वोले—'भई, मेरा अनुभव का मार्ग तो इतना सूक्ष्म है कि उसमे मान्यताओ की सरसो का एक दाना भी तो नही ठहर सकता है। भला वहाँ ये इतने लम्बे चौडे भारीभरकम शास्त्र-शकट कैसे खडे होगे ? पण्डित तेरी-मेरी कैसे बनेगी ? **"तू कहता कागज की लेखी, मैं कहता आँखन की देखी।"** पण्डितो के पास उत्तर था इसका कोई ? उनको जाने दीजिए, आज के शास्त्र पण्डितो के पास उत्तर है इसका ? तीर्थंकर महावीर ने

की खोज करो। जीवन की राह में मिला मार्ग का ज्ञाता गुरु कुछ दूर तक ही साथ चल सकता है, आगे का पथ तो स्वयं जाँचना होता है, और जाँच कर स्वयं उस पर चलना होता है। "मार्गज्ञ सह याति किम्?"

महावीर का दर्शन है—जब तक श्रुतज्ञान है, और उस शाब्दिक श्रुतज्ञान के आधार पर चर्चा है, तब तक कैवल्यरूप पूर्ण प्रत्यक्षज्ञान नहीं होता। अद्भुत है यह सिद्धान्त। सत्य की मिश्री के सम्बन्ध में सुना तो बहुत है, पर सुनने से माधुर्यानुभूति किसे हुई है? माधुर्यानुभूति अर्थात् आनन्दानुभूति। कैवल्य के लिए श्रुत से आगे दृष्ट की यात्रा करनी होगी। परोक्ष से प्रत्यक्ष में उतरना होगा। शब्द के गगन को पार करना होगा, सत्य की नगरी तक पहुँचने के लिए। इसीलिए आचार्य शंकर ने कहा था—"शब्दजाल महारण्य, चित्त-भ्रमणकारणम्।"—चित्त को भ्रान्त बना कर इधर उधर भटकाने वाला यह शब्दजाल बड़ा भयानक जंगल है। वस्तुतः आवश्यकता से अधिक गहराती जाती शास्त्रवासना सत्य का यथार्थ परिबोध नहीं होने देती। शास्त्रप्रतिबद्धता मत, पथ या सम्प्रदाय आदि के द्वारा आरोपित सत्यों का बोध करा सकती है, परन्तु मत-पथों से परे के मूल सत्य का परिबोध नहीं करा सकती। कैवल्यरूप प्रत्यक्षबोध श्रुतपरोक्षज्ञान से इतनी दूर है, जिस दूरी के बोध के लिए स्वयं शास्त्रों को अनन्त के सिवा कोई दूसरा शब्द नहीं मिला। इस पर से समझ सकते हैं—परोक्ष और प्रत्यक्ष में कितना अन्तर है। महावीर के दर्शन में प्रत्यक्ष स्व-सापेक्ष है, और परोक्ष पर-सापेक्ष। स्वसापेक्ष का अर्थ है—'मन और इन्द्रिय आदि बाह्य साधनों से निरपेक्ष सर्वथा स्वतन्त्र स्वसंवेदन। महावीर का महाभिनिष्क्रमण इसी परनिरपेक्ष स्वसंवेदन के लिए था। साढे बारह वर्ष की सुदीर्घ साधना के फलस्वरूप वे परोक्षश्रुत की निम्नस्तरीय सीमा से आगे बढ कर सर्वात्मना प्रत्यक्ष स्वसंवेदन की, कैवल्य की सर्वोच्च भूमिका पर पहुँच गए, जन से जिन बन गए। 'जिन' होने का यही एक पथ है, जिस पर महावीर चले थे।

आज धर्म के नाम पर चल रहे धर्म-सम्प्रदायों के जो द्वन्द्व हैं, संघर्ष हैं, उनका यही एक मात्र कारण है कि भद्र जनता को शास्त्रों के नाम पर मूर्ख बनाया जा रहा है। वेदों के नाम पर चिर अतीत से ब्राह्मण-परम्परा जन-मन को भ्रान्त करती आ रही है, और आगमों के नाम पर श्रमण-परम्परा। जिस गुरु के जो भी मन में आता है, उसे सिद्ध करने के लिए शास्त्रों की दुहाई देने लगता है। वे ही शास्त्र हैं, उनमें मूर्तिपूजा का विधान भी है, निषेध भी है। स्त्रीजाति का अपमान भी है, सम्मान भी है। दो श्रावण होने पर दूसरे श्रावण का पर्युषण पर्व भी है, भादवे का भी है। दो भाद्रपद होने पर प्रथम भादवे का पर्युषण भी है, दूसरे भादवे का भी है। उदयात की पक्खी आदि पर्वतिथि भी है, और अस्तकाल की भी है। किसी दीन दुःखी की दानादि से सेवा करने में पुण्य भी है, और इसी सेवा में पाप भी है। किसी मरते प्राणी की रक्षा में पुण्य है, धर्म है, और इसी रक्षा में पाप तथा अधर्म भी है।

भ० महावीर की दृष्टि मे—



निर्वाण की व्याख्या

—मुनि नेमिचन्द्र



विविध दार्शनिक ग्रन्थो एव शास्त्रो मे निर्वाण का ही मुक्ति, मोक्ष, निर्याण, सिद्धि, सिद्धगतिप्राप्ति, परमात्मलीनता, अनन्त की प्राप्ति, अहशून्यता आदि विविध नामो से निर्देश किया गया है।

इसलिए हम क्रमश इनमे निहित अर्थों पर विचार करेंगे।

यद्यपि निर्वाण का शब्दश. अर्थ होता है—'जिसमे से वात (हवा) निकल जाय। दीए का बुझ जाना, दीए का निर्वाण है। वैसे ही आत्मा के विकारो का बुझ जाना, आत्मा का निर्वाण है। दिए को कोई फूंक कर बुझा देता है, तो उसकी ज्योति कहाँ चली जाती है? वह मिट तो नही सकती है, ज्योति विराट् से आई थी, विराट् मे ही खो जाती है। बौद्धदर्शन मे कहा है—[2] दीपक के बुझ जाने पर उसकी लौ (ज्योति) न तो जमीन की ओर आती है और न आकाश की ओर उठती है, न किसी दिशा या विदिशा मे फैलती है। तेल के समाप्त होते ही दीपक केवल शान्त हो जाता है, वैसे ही जीव जब निर्वृति (निर्वाण) प्राप्त करता है, तो वह भी पृथ्वी, आकाश या किसी दिशा या विदिशा की ओर नही जाता, अपितु क्लेशक्षय

---

१ निर्गतो वात यस्मात् तन्निर्वाणिम् अथवा निर्वृतिमित-प्राप्तम् निर्वाणम्।

२ दीपो यथा निर्वृतिमभ्युतेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिश न काचिद्विदिश न काचित्, स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम्॥
जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिश न काचिद् विदिश न काचित् क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम्॥

उत्तर दिया था—"सत्य शब्दो मे नही, अनुभव मे है। परन्तु खेद है—महावीर के इस उत्तर को दूसरे तो क्या, आज के स्वय जैन भी कहाँ और कितना समझ पाए हैं।

मेरा यह मतलव नही है कि शास्त्र का प्रयोजन नही है, उपयोग नही है। प्रारम्भिक भूमिका के लिए उसकी महत्त्वपूर्ण अपेक्षा है। परन्तु वही तक अटके रहना या अटकाये रखना उपयुक्त नही है। गुरु कुछ दूर तक भले ही अन्धे शिष्य को शास्त्रो की वात सुनाता चले, पथ वताता चले, परन्तु सदा के लिए तो वह ऐसा न करे। जीवनभर शिष्य को अन्धा वनाए रखना और उसका हाथ पकड़े घूमना, यह गुरु का कौन-सा गुरुत्व है? गुरु वह है, जो शब्द नही, अपितु आख देता है। **नमोत्थुणं** सूत्र मे इसीलिये तीर्थंकरो को '**चक्खुदयाणं**' कहा है, अर्थात् आँख के देने वाले। गुरु शिष्य को आंख देता है, उसकी अन्दर की आँख पर का जाला उतार देता है और फिर कहता है कि अव तू जो कुछ भी है, अपनी स्वय की आंख से देख, अपने स्वय के विवेक से निर्णय कर कि क्या सत्य है, क्या असत्य है, क्या हित है, क्या अहित है, क्या मार्ग हैं, क्या अपमार्ग है। जव तक तू स्वय अपनी आंख से नही देखेगा, अपने स्वय के विवेक से निर्णय नही करेगा, तव तक तेरी भ्रान्ति मिटेगी नही, समस्याओ का समाधान होगा नही। शास्त्र के नाम पर हजारो उल्टे-सीधे शास्त्र हैं। हर परम्परा के पास शास्त्रो के ढेर लगे हैं, जो परस्पर एक दूसरे से टकराते हे, उनके शास्त्रत्व का यथोचित निर्णय भी तो तुझे अपने स्वयं के विवेक से ही करना होगा। ऐसा तो नही कि पशु को डडे से जिधर हाँक दिया, उधर ही चल पडा। और फिर ये हाकने वाले भी तो दो चार नही, हजारो हैं, लाखो हैं। किस-किस के डडो की मार खाए वेचारा साधक।

शास्त्रो का कुछ अश ही त्रैकालिक सत्य होता है। अधिक अश तो देश, काल और तत्कालीन व्यक्ति एव समाज की परिस्थितियो के आधार पर उपदिष्ट होता है। वह एक प्रकार का व्यवहार-सत्य होता है, अतः देश कालानुसार परिवर्तित होता रहता है। आध्यात्मिक भाव वीतरागत्व है, समत्व है, यही शास्त्रो का नवनीत है। अत. भूगोल, खगोल तथा साम्प्रदायिक स्थूल क्रियाकाण्ड आदि पर शास्त्रीय सत्यता का आग्रह न रख कर वीतरागभाव, समभाव पर ही लक्ष्य रखना चाहिए। यह एक ऐसा लक्ष्य है, जिस पर किसी विवाद एव विग्रह को कोई अवकाश नही है। इसी आधार पर विभिन्न रूपो मे विखरी हुई धर्मपरम्पराओ मे एकत्व स्थापित हो सकता है। ध्यान रखिए, यह वीतरागत्व एव समत्व भी शास्त्रीय शब्दो मे ही न रह जाएँ, उन्हे अनुभूति मे उतरना चाहिए। अनुभूति की गहराई मे उतरे विना वे केवल जिह्वा पर के तोता रटन्त होंगे, और कुछ नही, जिसके लिए कहा जाता है—
"लाख तोते को पढाया, फिर भी हैवा ही रहा।"

——o——



निर्वाण की व्याख्या

—मुनि नेमिचन्द्र



विविध दार्शनिक ग्रन्थो एव शास्त्रो मे निर्वाण का ही मुक्ति, मोक्ष, निर्याण, सिद्धि, सिद्धगतिप्राप्ति, परमात्मलीनता, अनन्त की प्राप्ति, अहृशून्यता आदि विविध नामो से निर्देश किया गया है।

इसलिए हम क्रमश इनमे निहित अर्थों पर विचार करेंगे।

यद्यपि निर्वाण का शब्दश अर्थ होता है—[1]जिसमे से वात (हवा) निकल जाय। दीए का बुझ जाना, दीए का निर्वाण है। वैसे ही आत्मा के विकारो का बुझ जाना, आत्मा का निर्वाण है। दिए को कोई फूँक कर बुझा देता है, तो उसकी ज्योति कहाँ चली जाती है? वह मिट तो नही सकती है, ज्योति विराट् से आई थी, विराट् मे ही खो जाती है। बौद्धदर्शन मे कहा है—[2] दीपक के बुझ जाने पर उसकी लौ (ज्योति) न तो जमीन की ओर आती है और न आकाश की ओर उठती है, न किसी दिशा या विदिशा मे फैलती है। तेल के समाप्त होते ही दीपक केवल शान्त हो जाता है, वैसे ही जीव जब निर्वृति (निर्वाण) प्राप्त करता है, तो वह भी पृथ्वी, आकाश या किसी दिशा या विदिशा की ओर नही जाता, अपितु क्लेशक्षय

---

१ निर्गतो वात यस्मात् तन्निर्वाणिम् अथवा निर्वृतिमित-प्राप्तम् निर्वाणम्।

२ दीपो यथा निर्वृतिमभ्युतेतो, नैवावर्नि गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिश न काचिद्विदिश न काचित्, स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम्॥
जीवस्तथा निर्वृत्तिमभ्युपेतो, नैवावर्नि गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिश न काचिद् विदिश न काचित् क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम्॥

होने से बिलकुल शान्त हो जाता है। जैनदर्शन का कहना है—[1] दीपक का बुझ जाना उसकी ज्योति का मिट जाना नही है, रूपान्तर या परिणामान्तर हो जाना है, क्योकि जो है, वह मिट नही सकता। इसी प्रकार जीव का निर्वाण भी, शान्त हो जाना भी उसका मिट जाना—अस्तित्वहीन हो जाना नही है, अपितु अव्याबाध परिणाम—स्वभावपरिणति को प्राप्त हो जाना है। वैदिक-परिभाषा मे इसे यो कहा जा सकता है—आत्मा का अपने अहत्व, ममत्व, देह, गेह आदि सबको खो कर महाविराट् मे—परमात्मा मे मिल जाना ही उसका निर्वाण है।

[2]जहाँ व्यक्ति विराट् मे विलीन हो जाता है, वहाँ उसके जीवन मे अहत्व, ममत्व, मोह, स्वार्थ, कपाय, राग-द्वेप आदि कुछ भी नही रह जाता। ऐसे लय को नाश नही कहा जा सकता, वह तो आत्मा का अपने विराट्—शुद्ध स्वरूप मे लीन हो जाना है। इन्द्रियाँ, मन, अहकार, बुद्धि, चित्त आदि जो अनात्मभूत वस्तुएँ हैं, उनका लय (लिंगव्यय) हो कर आत्मभूत वस्तु (आत्मा और आत्मा के निखालिस गुणो मे) लीन हो जाना ही निर्वाण है। आचारागसूत्र की चूर्णि मे निर्वाण का अर्थ—[3] 'अपने स्वरूप मे स्थित होना' बताया है।

अपने स्वरूप मे स्थित होने के लिए साधक को आत्मा पर लगे हुए विकारो, आवरणो एव उपाधियो से रहित होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी दृष्टि से जैनदर्शन मे निर्वाण का अर्थ किया गया है—[4] समस्त कर्मकृत विकारो से रहित होना, [5]सकल सन्तापो से रहित हो कर आत्यन्तिक सुख पाना, समस्त द्वन्द्वो से[6] उपरत होना। क्योकि जब तक आत्मा मे काम, क्रोध, लोभ, मोह मद, अहकार, माया, राग-द्वेप आदि विकार रहेंगे, तब तक निर्वाण नही हो सकेगा। निर्वाण के लिए जैनदर्शन की पहली शर्त है—[7] 'समस्त कर्मों का क्षय होना।' और रागद्वेपादि उक्त विकारो से कर्मबन्ध होते हैं। दोनो मे कार्य-कारणभाव सम्बन्ध है। रागद्वेपादि का नाश होते ही कर्मों का क्षय हो जाता है। समस्त कर्मों के क्षय होने पर[8] आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप मे अवस्थित हो कर[9] परमशान्ति को प्राप्त होती है।

---

१ जह दीवो निव्वाणो परिणामतरमिओ तहा जीवो।
भणइ परिणिव्वाणो पत्तोऽणावाहपरिणाम।

२ 'परमात्मनि जीवात्मलय सेति त्रिदण्डिनः।
लयो लिगव्ययो, जीवनाशश्च नेष्यते॥'

३ 'निर्वाण आत्मस्वास्थ्ये'—आ० चूर्णि० अ० ४

४ 'निर्वाण कर्मकृतविकाररहितत्वे' आ० चूर्णि ४ अ०

५ 'सकलसतापरहितत्वे'।

६ 'सर्वद्वन्द्वोपरतिभावे, सूत्र० १ श्रु० १ अ० १३

७. 'कृत्स्नकमक्षयो मोक्ष तत्वार्थसूत्र।

८ 'पु स· स्वरूपावस्थान सेति साख्या· प्रचक्षते'

९ 'निर्वाण शान्ति परमाम्'—गीता





सिद्ध शिला

४. निर्वाण कल्याणक,
सिद्धत्व-प्राप्ति

तो वाहर होती हैं। यहाँ विलकुल निर्वातता हो जाती है, दिये के बुझ जाने पर जैसे शान्ति हो जाती है, वैसी ही निर्वाण-अवस्था मे शान्ति हो जाती है। वहाँ केवल (सिर्फ) ज्ञान मात्र ही शेष रहता है,[१७] निष्केवल ज्ञान। न वहाँ ज्ञाता वचता है, न ज्ञेय पदार्थ, सिर्फ ज्ञान (जानना) ही वच जाता है। वह अनन्तज्ञान ही दर्शन और चारित्र को अपने मे समाविष्ट कर लेता है। निर्वाणप्राप्त व्यक्ति सर्वज्ञ और नि सशय तो पहले से ही हो जाता है। [१८]फिर वहाँ केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसौख्य और केवल-वीर्य (शक्ति) ही विद्यमान रहते हैं, जिन्हे अनन्तचतुष्टय कहते हैं। वाकी के अस्तित्व, अमूर्तत्व, और सप्रदेशत्व आदि जो गुण हैं, वे तो आत्मा के निजी गुण हैं। इसी वात को [१९]धम्मपद मे वताया गया है।

ऐसे निर्वाण मे आत्मा की स्थिति कैसी होती है ? इसका पूर्णतया विवरण तो अनन्तज्ञानी पुरुष ही प्रस्तुत कर सकते हैं। किन्तु साधारण साधक तो उन ज्ञानी पुरुषो के वचनो के आधार पर ही निर्वाणजन्य अपरिमित आनन्द, स्वरूपावस्थान की मस्ती का वर्णन कर सकता है। गूगे के लिए गुड की मिठास का वर्णन करने जैसा ही प्राय: यह वर्णन है। इसी कारण जैनदर्शन मे मोक्ष मे आत्मा की स्थिति [२०]अव्यावाध वताई है। तात्पर्य यह है कि निर्वाण हो जाने पर समस्त वाधाओ के अभाव के कारण आत्मा के निजगुण वहाँ पूर्णरूप से प्रकट हो जाते है। निर्वाण आत्मा की परिपूर्ण विकासदशा है।

परन्तु उसका कथन[२१] शब्दो से पूर्णतया नही हो सकता,[२३] न किसी इन्द्रिय के द्वारा उसे ग्रहण किया जा सकता है। इसीलिए उसे विविध दर्शन अनिर्वचनीय,[२२] अव्या-कृत, अव्याख्य और अमूर्त होने के कारण अग्राह्य कहते हैं।

१७　'निष्केवलं ज्ञानम्'—निर्वाणोपनिषद्

१८　विज्जदि केवलणाण केवलसोक्ख, च केवलवीरिय।
　　केवलवोहि अमुत्त अत्थित्त सप्पदेसत्त॥ नियमसार १८१

१९　'निव्वाण परम सुख'—धम्मपद

२०　अव्वाबाह अवट्ठाण अव्यावाध व्यावाधावर्जितमवस्थान जीवस्यासौ मोक्ष.।
　　—अभि० रा० खड ६ १-४३१।

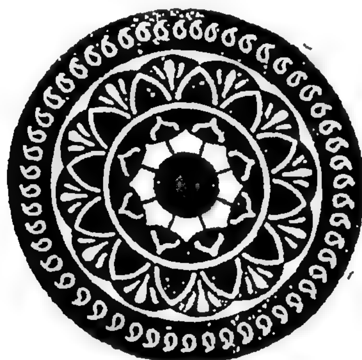
२१　'सव्वे सरा नियट्टति, तक्का तत्थ न विज्जइ, मइ तत्थ न गाहिया,
　　उवमा न विज्जए, अरूवी सत्ता, अपयस्स पय णत्थि।' आचा० १।५।६।१७१

२२　'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'—तैत्तरीय २।६

२३　नचक्षुपा गृह्यते, नाऽपि वाचा।-मुण्डकोपनिषद्

निर्वाण होने पर जो स्थान आत्मा के स्वाभाविकतया ऊर्ध्वगमन के कारण [24]आत्मा को प्राप्त होता है, उसे जैनशास्त्रो मे सिद्धशिला, गीता मे परमधाम, मोक्ष मुक्तिस्थान आदि विविध नामो से पुकारा जाता है।

वास्तव मे निर्वाण आत्मा के परिपूर्ण विकास का धाम है। इसमे कोई सन्देह नही। इसी कारण साधक के लिए जीवन का अन्तिम लक्ष्य अन्तिम ईष्ट और चरम प्राप्तव्य कोई हो सकता है तो निर्वाण ही। जहाँ उसे इतने अनन्त ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है, वहाँ उसे [25]सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाशकारक पदार्थों की जरूरत नही रहती, [26]न पृथ्वी, पानी, हवा आदि की ही जरूरत रहती है, क्योकि वहाँ सिर्फ ज्योतिर्मय चैतन्य है, आत्मद्रव्य है, शरीर नही है।



---

२४ तया लोगमत्थयत्थो सिद्धो हवइ सासओ—दशवै० अ० ४

२५ न तद् भासयते सूर्यो न शशाको न पावक.।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परम मम ॥—गीता १५।६

२६ यत्थ आपो न पठवी, तेजो वायो न गाधति।
न तत्थ सुक्का जोवति आदिच्चो न प्पकासति।
न तत्थ चदिमा भाति, तमो तत्थ न विज्जति। उदान० १।१०

यही आत्यन्तिक सुख की स्थिति होगी।[10] फिर न तो कर्मों के कारण प्राप्त होने वाला शरीर होगा, न नाम, रूप, आकार तथा शरीरजनित सुख-दुःख, मोह, अहंकार, जन्म-मरण, जरा, व्याधि, इन्द्रियजनित विषय, क्षुधा, तृषा, निद्रा, उपसर्ग, सर्दी, गर्मी आदि होंगे। यही निर्वाण की वास्तविक स्थिति होगी।

[11]जब शरीर ही सदा के लिए मिट जाता है, तब शरीर के कारण होने वाले [12]मैं, मेरापन, राग, द्वेष आदि विकार तो स्वतः मिट ही जाते हैं। सभी उपाधियाँ शरीर के 'मैं' के आसपास इकट्ठी होती हैं। अतः जो सर्वथा मिट जाता है, वह सभी उपाधियों से मुक्त हो जाता है। [13]जब जन्ममरण नहीं होगा तो आवागमन समाप्त हो ही जायगा। इसलिए जो परमहंस वीतराग पुरुष अपने आपे को खो कर परमात्मतत्त्व की उपलब्धि कर लेते हैं, वे [14]निर्वाण होते ही सिद्धिगति नामक स्थान में अपने आत्म-स्वरूप में सदा के लिए स्थित हो जाते हैं, जहाँ से लौट कर वापिस नहीं आना होता, वहाँ की स्थिति [15]शिव (निरुपद्रव), अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, और अपुनरावृत्ति है। निरुपद्रव इसलिए है कि शरीर के कारण सारे उपद्रव खड़े होते हैं, शरीर वहाँ है ही नहीं तो उपद्रव कैसा? अचल-अवस्था मौन और शान्ति की सूचक है। जहाँ शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि होते हैं, वहीं हलचल होती है, द्वन्द्व होता है, संघर्ष होता है, जहाँ ये सब मूर्त पदार्थ नहीं होते, वहाँ सर्वथा शून्य, मौनभाव और प्रगाढ़ शान्ति होगी, किसी भी प्रकार के विकल्प मन में नहीं उठेंगे। वह अपने आप में परिपूर्ण और स्थिर होगा। इसी निष्कम्प अवस्था को जैनदर्शन ने [16]शैलेशी अवस्था बताई है, इस अवस्था में भीतर सन्नाटा छा जाता है, जितनी भी हलचलें होती हैं, वे

---

१० राग-द्वेष-मद-मोह-जन्म-जरा-रोगादिदुःखक्षयरूपा।
सतो विद्यमानस्य जीवस्य विशिष्टा, काचिदवस्था निर्वाणम्॥'

११ णवि दुक्खं, णवि सुक्खं, णवि पीडा णेव विज्जदे बाहा।
णवि मरणं, णवि जणणं, तत्थेव य होई णिव्वाणं॥
णवि इंदिय-उवसग्गा, णवि मोहो, विम्हिओ य णिद्दा य।
णय तिण्हा णेव छुहा, तत्थेव हवदि णिव्वाणं॥—नियमसार १७८।१७९

१२ निर्जितमदमदनाना वाक्कायमनोविकाररहितानाम्।
विनिवृत्तपराशानामिहैव मोक्षः सुविहितानाम्॥

१३ यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।—गीता

१४ 'अमतं सति निव्वाणं पदमच्चुतं'—सुत्तनिपात पारायणवग्ग

१५ "सिवमयलमरुअमणतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धिगई-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं"—'नमोत्थुणं (शक्रस्तव)' पाठ

१६ जया जोगे निरुंभित्ता सेलेसिं पडिवज्जइ।
तया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं गच्छइ नीरओ॥

तो बाहर होती है। यहाँ बिलकुल निर्वातता हो जाती है, दिये के बुझ जाने पर जैसे शान्ति हो जाती है, वैसी ही निर्वाण-अवस्था मे शान्ति हो जाती है। वहाँ केवल (सिर्फ) ज्ञान मात्र ही शेष रहता है,[१७] निष्केवल ज्ञान। न वहाँ ज्ञाता बचता है, न ज्ञेय पदार्थ, सिर्फ ज्ञान (जानना) ही बच जाता है। वह अनन्तज्ञान ही दर्शन और चारित्र को अपने मे समाविष्ट कर लेता है। निर्वाणप्राप्त व्यक्ति सर्वज्ञ और नि सशय तो पहले से ही हो जाता है। [१८]फिर वहाँ केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसौख्य और केवल-वीर्य (शक्ति) ही विद्यमान रहते हैं, जिन्हे अनन्तचतुष्टय कहते हैं। बाकी के अस्तित्व, अमूर्तत्व, और सप्रदेशत्व आदि जो गुण हैं, वे तो आत्मा के निजी गुण हैं। इसी बात को [१९]धम्मपद मे बताया गया है।

ऐसे निर्वाण मे आत्मा की स्थिति कैसी होती है? इसका पूर्णतया विवरण तो अनन्तज्ञानी पुरुष ही प्रस्तुत कर सकते हैं। किन्तु साधारण साधक तो उन ज्ञानी पुरुषो के वचनो के आधार पर ही निर्वाणजन्य अपरिमित आनन्द, स्वरूपावस्थान की मस्ती का वणन कर सकता है। गू गे के लिए गुड की मिठास का वर्णन करने जैसा ही प्रायः यह वर्णन है। इसी कारण जैनदर्शन मे मोक्ष मे आत्मा की स्थिति [२०]अव्याबाध बताई है। तात्पर्य यह है कि निर्वाण हो जाने पर समस्त बाधाओ के अभाव के कारण आत्मा के निजगुण वहाँ पूर्णरूप से प्रकट हो जाते हैं। निर्वाण आत्मा की परिपूर्ण विकासदशा है।

परन्तु उसका कथन[२१] शब्दो से पूर्णतया नही हो सकता,[२३] न किसी इन्द्रिय के द्वारा उसे ग्रहण किया जा सकता है। इसीलिए उसे विविध दर्शन अनिर्वचनीय,[२२] अव्या-कृत, अव्याख्य और अमूर्त होने के कारण अग्राह्य कहते हैं।

१७　'निष्केवलं ज्ञानम्'—निर्वाणोपनिषद्

१८　विज्जदि केवलणाणं केवलसोक्खं च केवलवीरियं।
केवलदिट्ठि अमुत्तं अत्थित्तं सप्पदेसत्तं॥ नियमसार १८१

१९　'निब्बाण परम सुख'—धम्मपद

२०　अव्वाबाह अवट्ठाण अव्याबाध व्याबाधावर्जितमवस्थानं जीवस्यासौ मोक्ष।
—अभि० रा० खड ६ १-४३१।

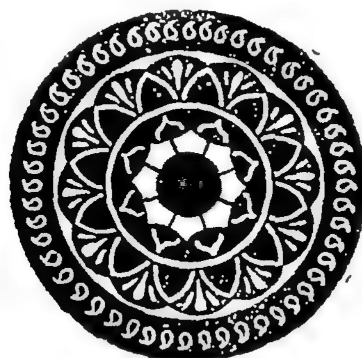
२१.　'सव्वे सरा नियट्टंति, तक्का तत्थ न विज्जइ, मइ तत्थ न गाहिया,
उवमा न विज्जए, अरूवी सत्ता, अपयस्स पय णत्थि।' आचा० १।५।६।१७१

२२　'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'—तैत्तरीय २।९

२३　नचक्षुषा गृह्यते, नाऽपि वाचा।-मुंडकोपनिषद्

निर्वाण होने पर जो स्थान आत्मा के स्वाभाविकतया ऊर्ध्वगमन के कारण [२४]आत्मा को प्राप्त होता है, उसे जैनशास्त्रो मे सिद्धशिला, गीता मे परमधाम, मोक्ष मुक्तिस्थान आदि विविध नामो से पुकारा जाता है।

वास्तव मे निर्वाण आत्मा के परिपूर्ण विकास का धाम है। इसमे कोई सन्देह नही। इसी कारण साधक के लिए जीवन का अन्तिम लक्ष्य अन्तिम ईष्ट और चरम प्राप्तव्य कोई हो सकता है तो निर्वाण ही। जहाँ उसे इतने अनन्त ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है, वहाँ उसे [२५]सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाशकारक पदार्थों की जरूरत नही रहती, [२६]न पृथ्वी, पानी, हवा आदि की ही जरूरत रहती है, क्योकि वहाँ सिर्फ ज्योतिर्मय चैतन्य है, आत्मद्रव्य है, शरीर नही है।

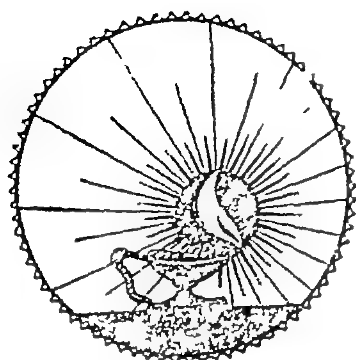


---

२४ तया लोगमत्थयत्थो सिद्धो हवइ सासओ—दशवै० अ० ४

२५ न तद् भासयते सूर्यो न शशाको न पावक॰।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परम मम ॥—गीता १५।६

२६ यत्थ आपो न पठवी, तेजो वायो न गाधति।
न तत्थ सुक्का जोवति आदिच्चो न प्पकासति।
न तत्थ चदिमा भाति, तमो तत्थ न विज्जति। उदान० १।१०



भारतीय दर्शनों में निर्वाण-मीमांसा

मुनि रमेश (सा रत्न) जालना



'निर्वाण' आर्यसस्कृति की अनूठी अनुपम खोज है। भारत के महामनस्वियो ने साधना-आराधना का चरमविन्दु निर्वाण (मुक्ति) के रूप मे अभिव्यक्त किया है।

जहाँ लोक के अग्रभाग पर एक ऐसा ध्रुवस्थान है। वह जरा, मृत्यु, आधि-व्याधि और वेदना से रहित है। उसे निर्वाण, अव्यावाध, सिद्ध, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनावाध के नामो से पुकारा जाता है, जिसकी महर्षिगण साधना करते हैं।[1]

वह मोक्षस्थान शाश्वत निवास वाला है। जिसे पा कर भव्यात्माएँ सदा-सदा के लिए शोकचिन्ता से मुक्त हो जाती हैं।"[2]

उस परम स्थान को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है न चन्द्रमा एव न अग्नि ही। जहाँ पहुँचने के पश्चात् पुन. ससार मे जन्म-मरण धारण करना नही पडता है। वही मेरा परमधाम है।[3]

जैन वौद्ध एव वैदिक दार्शनिको ने निर्वाण के अस्तित्व को खुले दिल-दिमाग से स्वीकार किया है। किन्तु व्याख्या विश्लेपण की दृष्टि से उपर्युक्त धाराओ मे कुछ अन्तर अवश्य जान पडता है।

---

१ अत्थि एग धुव गण, लोगग्गम्मि दुरारुह ।
नत्थि जत्थ जरा मच्चू, वाहिणो वेयणा तहा ॥
निव्वाणति अवाहति, सिद्धी लोगग्गमेव य ।
खेमं सिव अणावाह, ज चरति महेसिणो ॥
उत्तरा०—२३।८१-८३

२ त ठाण सासय वास, जे सपत्ता न सोयति ॥
उत्तरा०—२३।८४

३ न तद् भासयते सूर्यो, न शशाको न पावक. ।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते, तत् धाम परम मम ॥
गीता—१५।६

गीता के माध्यम से वैदिकधारा का कहना है कि हे अर्जुन ! जब-जब भारत मे धर्म का ह्रास होने लगता है और अधर्म-अत्याचार सीमा लाघ जाते हैं। तब मैं पुनर्जन्म धारण करता हूँ। दुष्ट जनो का सहार करके सज्जन आत्माओ की रक्षार्थ मैं युग-युग मे प्रगट होता हूँ।[1]

बौद्धग्रन्थो मे लिखा है कि जब धर्म-तीर्थ की प्रभावना मद पड जाती है। तब परमपद निर्वाणको प्राप्त हुई आत्मा पुनर्जन्म ग्रहण कर सघरूपी तीर्थ मे परिव्याप्त विकृति को दूर करती है।[2]

पुनर्जन्म धारण करने का अभिप्राय यह हुआ कि उस धर्मप्रवर्तक की मनोकामना अभी तक ससार के परिभ्रमण से मुक्त नही हुई है, भले ही उस भावना मे परोपकार निहित हो। किन्तु पुनर्जन्म का मतलब यह हुआ कि—अभी उस आत्मा के गमनागमनरूप कार्य-कारण का अभाव नही हुआ है। कर्मरूपी शत्रु परास्त नही हुए हैं। अभी उनमे राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि मलिन पर्यायो का सद्भाव है। जैसा कि 'यत्र-यत्र कषायस्तत्र-तत्र ससारसद्भाव वर्तते, इसके अनुसार ससार-परिभ्रमण जिनका बद नही हुआ है। वह आत्मा निर्वाण को नही पहुँची, ऐसा स्वय सिद्ध है।

जैनधारा उपरिवर्णित मान्यताओ से सर्वथा भिन्न प्रतिपादित करती है। जैनदर्शन की यह अटूट मान्यता रही है कि कोई भी किसी भी जाति-परिवार का पुरुष अथवा स्त्री क्यो न हो, जिसने रत्नत्रय की सम्यक् साधना के साथ-साथ, सब प्रकार के आरम्भ और परिग्रह का त्याग किया हो, सब प्राणियो के प्रति समता और जो चित्त की एकाग्रतारूप समाधि मे रमण करता हो मोक्ष को प्राप्त करता है।[3] गत काल मे उसी मार्ग का अनुसरण किया और भविष्य मे अनन्त आत्माएँ करेंगी।

---

१ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म सस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे॥

गीता ४।७।८

२ ज्ञानिनो धर्म तीर्थस्य, कर्तार परम पदम्।
गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि, भव तीर्थनिकारत॥

(बौद्धग्रन्थ)

३ नाण-किरियाहिं मोक्खो।

(विशेषावश्यक भाष्य गाथा ३)

जिन्होने कर्मों का समूल क्षय किया है। जन्म-मरण की एक चिरपरम्परा का अन्त किया है; उन शुद्धात्माओ के लिए पुन ससार मे आने का प्रश्न खडा ही नही होता है। जिस प्रकार बीज समूल जल जाने पर पुन अकुरित नही होता है, उसी प्रकार कर्मरूपी वीज पूरी तरह से विनष्ट हो जाने पर भवरूपी अंकुर पैदा नही होते हैं।[१]

सेनापति के पलायन होने पर सारी सेना मैदान छोड कर भाग जाती है, उसी प्रकार मोहरूपी सेनापति के भ्रष्ट होने पर सर्वकर्मरूपी सेना निर्जरित हो जाती है।[२]

ऐसे महादुरुह निर्वाण तक पहुँचना, प्रत्येक साधक के वश की बात नही है। चूँकि साधनाकाल मे साधक के समक्ष विविध विघ्नवाधाएँ उभर आती हैं। साधनामार्ग से स्खलित करना ही उनका कार्य है। इसलिए जीवन मे दृढता का प्रमुख स्थान माना है। दृढता के सद्भाव मे साधक सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक् चारित्र सम्यक्त्वरूप इस मोक्षमार्ग की आराधना मे उत्तीर्ण है।

जिसमे ज्ञान और क्रिया का सुन्दरतम सगम हुआ है। ज्ञान और क्रिया दोनो निर्वाण के दो मगलद्वार माने है।[3]

योगवाशिष्ठ उपनिपद् मे लिखा है—मुक्ति-महल के चार द्वारपाल हैं—यथा—शाति (२) सद्विचार (३) सतोष और 'साधुसगति।[४]

इस प्रकार भारत के महर्षियो ने निर्वाण से सम्बन्धित अत्युत्तम विश्लेपण प्रस्तुत कर सचमुच आत्मविज्ञान का श्लाघनीय परिचय प्रस्तुत किया है।

——(०)——

---

१ मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वार परिकीर्त्तिता:।
शमो विचार सन्तोपश्चतुर्थ: साधुसगम ॥
योगवाशिष्ठ २।१६।५८

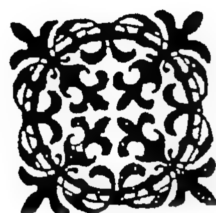
२ सव्वारभ-परिग्गहणिक्खेव्व, सव्वभूतसमया य।
एक्कग्गमणस्स माहाणया य, अह एत्तिओ मोक्खो ॥
(वृहत्कल्पभाष्य ४५८५)

३ यथा दग्वाना वीजाना, न जायन्ते पुनरकुरा:।
कर्मवीजेपु दग्वेपु, न जायन्ते भवाकुरा. ॥
(सूत्रकृतागसूत्र)

४ सेनापतो निहते यथा, सेना प्रणश्यति।
एव कर्माणि नश्यन्ति मोहनीये क्षय गते ॥
(सूत्रकृताग)

जैनदर्शन में निर्वाण :

एक विवेचन



—भवरलाल पोल्याका, जैनदर्शनाचार्य, सा शास्त्री, (जयपुर)



धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को भारत के प्राय. सभी धर्माचार्य एव दार्शनिक मानते हैं, जिनमे ससारीपुरुष का चरम पुरुषार्थ, मोक्ष की प्राप्ति ही निहित है। केवल चार्वाकदर्शन ही इसका अपवाद है, क्योकि वह आत्मा का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही मानता। ये सारे ही दर्शन सामान्यत इस तथ्य से तो एक मत हैं कि मुक्तावस्था मे आत्मा कर्मबन्धन का नाश कर स्वरूप को प्राप्त कर लेता है तथा वहाँ लेशमात्र भी दु ख नही है, केवल सुख ही सुख है। फिर भी मोक्ष के स्वरूप के सम्बन्ध मे उनका मतैक्य नही है।

अमरकोषकार के अनुसार मोक्षविपयक बुद्धि ज्ञान कहलाती है। मुक्ति, कैवल्य, निर्वाण, श्रेय, नि श्रेयस, अमृत, मोक्ष और अपवर्ग ये सब समानार्थी पर्यायवाची शब्द हैं (देखिये काण्ड १ वर्ग ५ श्लोक ५-६) अत हमने भी इस रचना मे इन शब्दो का प्रयोग किया है।

नैयायिक वैशेषिक बुद्धि, सुख, दु ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और सस्कार को आत्मा के ९ गुण मानते हैं। उनका कहना है कि धर्म और अधर्म से बुद्धि, बुद्धि से सस्कार, सस्कार से इच्छा और द्वेष, इच्छा और द्वेष से प्रयत्न तथा प्रयत्न से सुख और दु ख उत्पन्न होते हैं। इन नौ आत्मगुणो का आत्यतिक क्षय ही मोक्ष है। (देखिये प्रशस्तपादभाष्य की व्योमवती टीका)।

इस सम्बन्ध मे जैनो का कहना है कि जैसे आग से ऊष्णता, जल से शीतलता कभी भी पृथक् नही किये जा सकते, वैसे ही ज्ञान और दर्शन जो कि आत्मा के गुण हैं कभी भी नष्ट नही हो सकते। यदि गुणो का गुणी से पृथक् होना मान लिया जावे तो फिर जड और चेतन मे कोई भेद नही रहेगा। यदि ऐसा कहा जाय कि ज्ञान का सम्बन्ध केवल आत्मा से ही होता है, जड से नही, तो ऐसा क्यो है ? इस तर्क का

कोई उत्तर नही है। हाँ, यदि यह कहा जाय कि केवल इन्द्रियजन्य ज्ञान का उच्छेद होता है तो जैन ऐसा मानते ही हैं इससे उनका विरोध नही है।

नैयायिक ऐसा भी कहते है कि मोक्ष होने पर आत्मा की अवस्था ऐसी ही है जैसी कि स्वप्नरहित निद्रा की। लेकिन यह कहना भी ठीक नही, क्योंकि स्वप्न रहित निद्रा की अवस्था वैसी ही है जैसी कि जड। तब तो जड को भी मोक्ष हो जाना चाहिए।

वेदान्ती भास्करीय निर्वाणावस्था मे केवल आनन्द ही आनन्द मानते हैं। जैन इस वात को भी आशिकरूपेण सत्य मानते हैं। उनका कहना है कि मुक्तावस्था मे भी आनन्द एकान्तरूप से नित्य न हो कर परिणामी भी है। ज्ञान द्रव्यदृष्टि से नित्य है किन्तु ज्ञेय परिणमनशील हैं। ज्ञान ज्ञेयो को दर्पण की भाँति जानता है। अत जैसे ज्ञेय होते है वैसा ही प्रतिभास केवली के ज्ञान मे पडता है। आचार्य समन्तभद्र ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ रत्नकरण्ड श्रावकाचार के मगलाचरण मे कहा है—'दर्पणतल इव सकला प्रतिफलन्ति पदार्थमालिका यत्र।' इसलिये जिस प्रकार दर्पण और उसमे प्रतिभासित होने वाले पदार्थ भिन्न हैं उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान गुण सर्वथा नित्य है और अविकारी है किन्तु ज्ञेयो के परिणमनशील होने के कारण वह ज्ञान भी कथचित परिणमनशील है।

बौद्ध रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान-इन पाँच स्कन्धो के निरोध के फलस्वरूप अभाव को मोक्ष मानते हैं। वे मुक्ति को इस प्रकार से शून्य मानते हैं। जिस प्रकार तेल की समाप्ति पर दीपक बुझ जाता है। किन्तु **माध्यमिक बौद्ध** निर्वाण को अवक्तव्य वताते हैं। वे कहते हैं कि निर्वाण न तो परिसमाप्ति है और न अभाव है। निर्वाण का स्वरूप कैसा है, कहा नही जा सकता। चूँकि निर्वाण शून्यरूप है, अत आत्मा के कही जाने का प्रसग ही उपस्थित नही होता। जैन कहते हैं आत्मा सत् है, अर्थात् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक है। सत् का कभी अभाव होता नही। आत्मा शरीर से भिन्न शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, किन्तु कर्मो के कारण वह ससारी हो रहा है। कर्मवन्धन के हटते ही आत्मा शुद्ध-स्वरूप को प्राप्त कर ऊर्द्ध्व गमन स्वभावी होने से ऊपर की ओर गति करता है और लोकाकाश के अग्रभाग मे जा कर ठहर जाता है। क्योकि आगे धर्मद्रव्य, जो कि जीव की गति मे कारण है, नही है।

ब्रह्माद्वैतवादी 'आत्मैकत्वज्ञानात्परमात्मनि लय सम्पद्यते इति एव मोक्ष' ऐसा मानते हैं। जैन प्रत्येक आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता मानते है और अपनी अवगाहना शक्ति के कारण अनन्तानन्त आत्माएँ एक ही स्थान मे रह सकती हैं।

साख्य प्रकृति और पुरुष मे भेदविज्ञान होने पर शुद्ध चैतन्य मात्र स्वरूप मे प्रतिष्ठित होने को मोक्ष कहते हैं। 'तदाद्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्' (योग सूत्र १।३)।

प्रकृति से अभिप्राय जड और पुरुष से अभिप्राय आत्मा से है। मोक्ष का यह स्वरूप जैनो के अत्यधिक निकट होने पर भी आपत्तिजन्य बात इसमे यह है कि साख्य प्रकृति को केवल कर्ता और आत्मा (पुरुष) को केवल भोक्ता मानते हैं। जब पुरुष प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाता है तो सुख आदि गुण भी नष्ट हो जाते हैं। केवल पुरुष (आत्मा) की ही सत्ता शेष रहती है। मुक्ति मे सुखादि की सत्ता नही है, क्योकि ये सब प्रकृति के भाव हैं। **प्रभाकर** भी मुक्तावस्था मे सम्पूर्ण धर्मों का नाश तथा केवल स्वाभाविक आत्मा का अस्तित्व मानता है। **कुमारिल** दु खमुक्ति को मुक्ति मानता है। करे कोई और भरे कोई ऐसा ठीक नही है। आत्मा जैनो के मत मे व्यवहार नय से पुद्गल कर्मों का, अशुद्ध निश्चयनय से रागद्वेपादि का तथा शुद्ध निश्चयनय से ज्ञान-दर्शन आदि शुद्ध भावो का कर्ता है। इस प्रकार आत्मा एक अपेक्षा से कर्ता एव एक अपेक्षा से अकर्ता है। जो कर्ता होगा वही भोक्ता भी होगा। गुणो का अभाव पदार्थ मे सम्भव ही नही है। अग्नि से उष्णत्व कभी पृथक् नही हो सकता। उष्णत्व के अभाव मे अग्नि का सद्भाव दिखाई नही देता।

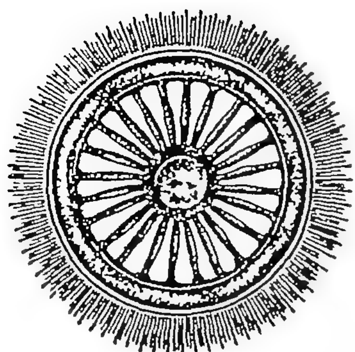
सुप्रसिद्ध जैन सूत्रकार श्रीमदुमास्वाति ने अपने मोक्षशास्त्र अपर नाम तत्वार्थ-सूत्र नामक ग्रन्थ के दसवें अध्याय मे पहले के नौ अध्यायो मे जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सवर और निर्जरा तत्वो का वर्णन करने के पश्चात् मोक्षतत्व का वर्णन किया है। आत्मा अनादिकाल से कर्मों के सम्बन्ध के कारण परतन्त्र है, अत दु खी है। कर्मों की सख्या आठ है—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। ज्ञानावरण आत्मा के ज्ञान गुण एव दर्शनावरण दर्शन गुण को ढकता है। मोहनीय कर्म आत्मा को मोहित करता है और अन्तराय कर्म से इच्छित वस्तु की प्राप्ति नही होती। ये चार कर्म जीव के चार स्वाभाविक गुण ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य को ढकते हैं। अत घाती कर्म कहलाते हैं। शेष चार कर्म अघाती हैं, क्योकि उनसे आत्मा के गुणो का घात नही होता। आयु-कर्म का कार्य है—आत्मा को निश्चित समय तक एक शरीर मे रोके रखना। नाम-कर्म के कारण अच्छे और बुरे शरीर की रचना होती है। गोत्रकर्म के कारण उच्च या नीच कुल की प्राप्ति होती है। वेदनीयकर्म साता और असाता का अनुभव कराता है।

आत्मा जब शुद्धि की ओर बढ़ता है तो सयोगकेवली नामक तेरहवें गुण-स्थान में पहुँचता है। इससे पूर्व वह बारहवें क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान मे मोह को नष्ट कर चुकता है। इसके पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन कर्मों को अन्तर्मुहूर्त मे एक साथ नष्ट कर केवली बन जाता है और आत्मा के अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख तथा अनन्तवीर्य नामक गुण प्रकट हो जाते हैं। ये ही अरिहन्त, जिन, जीवन्मुक्त या केवली कहलाते हैं। इनके दो भेद हैं—
१ सामान्य केवली, २ तीर्थङ्कर।

तीर्थङ्कर जन्मना मति, श्रुत एव अवधि (इन तीन) ज्ञानो के धारी होते है। इनके कई प्रकार के अतिशयो का वर्णन जैनशास्त्रो मे है। ये एक कालचक्र मे २४ ही होते हैं। विदेहक्षेत्रो की वात इससे भिन्न है। वहाँ २० तीर्थङ्कर प्रतिसमय रहते है। ये तीर्थङ्कर इसलिये कहलाते हैं कि अपने उपदेशद्वारा ये ससार के जीवो को भवसागर से पार उतरने का रास्ता वताते हैं। इनकी उपदेशसभा मे, जो कि समवशरण कहलाती है, सभी प्राणी पशु-पक्षी तक भी विना किसी प्रकार के भय और भेदभाव के उपस्थित होते हैं एवं अपनी-अपनी भाषा मे उसे समझते हैं। भगवान् महावीर इस कडी के अन्तिम तीर्थङ्कर थे। आद्य नमस्कारमत्र मे 'णमो अरिहताण' कह कर सर्वप्रथम अरिहतो को नमस्कार किया जाता है, क्योकि वे श्रुत की रचना कर अपने उपदेश द्वारा जीवो को मुक्ति का मार्ग वता असीम उपकार करते हैं। इनकी तुलना साख्यो और वेदान्तियो के जीवन्मुक्त, वौद्धो के उपाधिशेष निर्वाण, और माध्यमिको के अप्रतिष्ठित निर्वाण से की जा सकती है। हितोपदेशी होने से वे ही आप्त कहलाते हैं।

थोडी आयु शेष रहने पर शेष चार अघातिया कर्मों का भी क्षय हो जाने पर सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाता है, तव वन्ध का कोई कारण शेष न रहने से आत्मा मुक्त हो जाती है। उस समय आठो कर्मों के क्षय हो जाने से आत्मा मे ये आठ गुण प्रकट हो जाते हैं—१ अनन्तज्ञान, २ अनन्तदर्शन, ३ अनन्तवीर्य, ४ इन्द्रियसुख का अभाव, ५ अनन्तसुख, ६ जन्ममरण का अभाव, ७ अवगाहन-शक्ति अथवा अमूर्तत्व, ८ ऊँचनीचकुल का अभाव। अपने अन्तिम शरीराकार यह मुक्त आत्मा अपने ऊर्द्ध्वगमन स्वभाव के कारण लोक के अग्रभाग मे जा ठहरती हैं, क्योकि इससे आगे धर्मास्तिकाय का अभाव है। मुक्तावस्था मे कर्मो का नाश नही होता, अपितु आत्मा कर्मवन्धन से पृथक् हो जाती है। कर्मों से पृथक् होने के पश्चात् भी आत्मा पूर्वसस्कार के वश गति करती है। जिस प्रकार कुम्हार का चक्र उस को घुमाने वाले डंडे के हट जाने पर भी कुछ समय तक गति करता रहता है, कीचड से सना तुम्वा कीचड के हट जाने पर ऊपर ही आता है, एरण्ड का वीज वीजकोशवव से छूटने पर ऊपर ही जाता है तथा पवन आदि का कोई कारण न हो तव भी अग्निशिखा ऊपर ही जाती है उसी प्रकार कर्ममल से रहित, कर्मवन्धन से मुक्त, रागद्वेष और मोह अर्थात् मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के अभाव के कारण यह आत्मा ऊपर ही की ओर जाती है। यह सिद्धावस्था ही जीव का चरम पुरुषार्थ निर्वाण है।





विभिन्न दर्शनों में निर्वाण : सिद्धांत और व्याख्या

—प्रो० श्रीरंजनसूरिदेव

व्याख्याता, प्राकृत-शोधसंस्थान, वैशाली



निर्वाण, मोक्ष, मुक्ति, निवृ ति, कैवल्य आदि शब्द सम्प्रदाय-भेद से न्यूनाधिक अर्थान्तरवाची होने के वावजूद पर्यायवाची हैं, जिनका मूल अर्थ शान्ति या दु.ख-निवृत्ति है। चार्वाक के अतिरिक्त प्राय समस्त भारतीय दर्शनो मे अविद्या या अज्ञान समूल नाश को 'मोक्ष' कहा गया है।

साख्यदर्शन के मतानुसार, मोक्ष का साधन ज्ञान है और अविद्या या अज्ञान का विनाश ही मोक्ष है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन त्रिविध दु खो की प्राप्ति अविद्या है। अविद्या का विनाश विवेकख्याति से होता है। उक्त त्रिविध दु खो की आत्यन्तिक हानि को मोक्ष कहते हैं। दु ख की आत्यन्तिक हानि का एकमात्र उपाय विवेकख्याति, यानी विवेक (ज्ञान) से अविवेक (अज्ञान) का विनाश है। 'साख्यकारिका' मे दु खो का आत्यन्तिक निवृत्ति को ही 'कैवल्य' कहा गया है। कैवल्य की प्राप्ति तत्वज्ञान होने पर ही सम्भव है। कैवल्य-प्राप्ति के बाद सभी सशय दूर हो जाते हैं और हृदय की समस्त ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।

'तत्त्वसमास' मे मोक्ष को तीन प्रकार का माना गया है प्राकृतिक, वैकारिक और दाक्षिणिक। प्राकृतिक वन्धनो से मुक्ति को प्राकृतिक मुक्ति कहा जाता है। प्रकृति के विकार इन्द्रिय, मन आदि के शासन से मुक्ति वैकारिक मुक्ति है और कर्मकाण्ड के अस्थायी फल से विरति को दाक्षिणिक मुक्ति कहा गया है। यो, साख्यवादियो की दृष्टि से मुक्ति मुख्यत दो प्रकार की होती है जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति। जीवन्मुक्ति मे सस्कार शेप रहते हैं और विदेहमुक्ति मे सस्कार पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। विवेकख्याति से ही जीवन्मुक्ति होती है। इसमे पूर्वजन्म के सस्कार के शेष रहने से सशय की सत्ता तो वनी रहती है, किन्तु कैवल्य के अनुभव से किसी प्रकार की वाधा नही होती। जिस प्रकार कुम्हार डडे से चाक को घुमाता है और डडा हटा लेने पर भी वह चाक सस्कारवश घूमता रहता है उसी प्रकार पुरुप भी तत्त्वज्ञान हो जाने के वावजूद पूर्व-सस्कारो के शेप रहने से कुछ दिनो तक शरीर धारण किये रहता है। किन्तु, विदेहमुक्ति मे सस्कारो का सर्वथा ध्वस हो जाता है।

शरीरपात के वाद दु ख की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाने पर विदेहमुक्ति होती है। साख्यो का शरीरपात के वाद सर्वथा मुक्ति का सिद्धान्त चार्वाको के उक्त देहत्याग-रूप मोक्ष से वहुश· साम्य रखता है। साथ ही, जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति का प्रसग जैनो के निर्वाण-सिद्धान्त से भी मेल खाता है।

सांख्य० के सदृश पातजल योगदर्शन मे भी 'मोक्ष' के लिए 'कैवल्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। क्योकि साख्य-योग एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं। योग-दर्शन के अनुसार, 'कैवल्य' का अर्थ है—केवल उसी का होना। अर्थात्, एकाकित्व का ही नाम कैवल्य है। स्पष्ट यह कि केवल अपने रूप मे हो जाना तथा किसी के साथ उसका सम्वन्ध न होना 'कैवल्य' है। 'कैवल्य' की व्याख्या करते हुए पतजलि ने कहा है कि प्रकृति के कार्य महत् आदि के विलय होने से तथा पुरुप के साथ प्रकृति का आत्यन्तिक वियोग होने से कैवल्य (एकाकित्व) सिद्ध होता है। इस प्रकार, समस्त औपाधिक स्वरूप को छोड कर अपने मूलरूप मे स्थित हो जाना ही पुरुष का कैवल्य है। जैनदर्शन मे कैवल्य (निर्वाण या मोक्ष) का मूल कारण सम्यग्ज्ञान माना गया है।

न्याय-वैशेषिक-दर्शन के आचार्यों ने दु ख की आत्यन्तिक निवृत्ति को मोक्ष स्वीकार करते हुए भी शरीर-विच्छेद को मोक्ष नही माना है। उनके मत से तत्त्व-ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। श्रीधराचार्य ने इस सन्दर्भ मे तर्क करते हुए कहा है कि तत्त्वज्ञान के लिए श्रद्धा अनिवार्य है। विना श्रद्धा के जिज्ञासा नही होती और विना जिज्ञासा के तत्त्वज्ञान नही होता है। इसलिए, तत्त्वज्ञान के विना मोक्ष की प्राप्ति नही होती। अत· तत्त्वज्ञान ही मोक्ष का प्रमुख साधन है। न्याय-वैशेषिक के मत मे अष्टाग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) के अनुष्ठान से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति मानी गई है। अष्टाग योग द्वारा तत्त्व-ज्ञान प्राप्त होने पर आत्मा का साक्षात्कार होता है और आत्म-साक्षात्कार ही मोक्ष प्राप्ति का कारण वनता है ('आत्मसाक्षात्कारो मोक्षहेतु ')।

मीमांसादर्शन के अनुसार, आत्मा का अपने से भिन्न, यानी विजातीय वस्तुओ से सम्वन्ध होना 'वन्ध' है। मीमासा के तीन वन्धन इस प्रकार हैं : भोगायतन शरीर, भोगसाधन इन्द्रियाँ और भोगविषय समस्त जागतिक पदार्थ। आत्मा अनादिकाल से ही इन तीन वन्धनो मे पडी रहती है एवं अनेक प्रकार के कष्टो का अनुभव करती रहती है। इसी वन्धन के कारण ही वह सुख-दु ख आदि विषयो का उपभोग करती है। इसे ही भव-वन्धन कहा जाता है। भव-वन्धन के कारण ही मनुष्य जन्म-मरण के चक्र मे घूमता रहता है। फलत , वह सासारिक वन्धनो से उद्विग्न होकर उनसे मुक्ति चाहता है। इसीलिए, उक्त त्रिविध वन्धनो से छुटकारा पा लेना ही मोक्ष है। 'शास्त्रदीपिका' मे कहा गया है 'त्रिविधस्यापि वन्धनस्यात्यन्तिको विलयो मोक्ष· ।'

जैन दर्शन की तरह मीमासादर्शन भी कर्म को ही बन्धन का कारण मानता है। बन्धन कार्य है और कर्म कारण है। कारण का नाश होने पर कार्य स्वत: नष्ट हो जाता है। मीमासक लोग बन्धन-रूप कर्म के दो प्रकार मानते हैं काम्य और निपिद्ध। काम्य कर्मों से पुण्य और निपिद्ध कर्मों से पाप उत्पन्न होता है। ये दोनो ही कर्मबन्ध के कारण हैं। इनका नाश हो जाने पर कार्य-रूप बन्ध स्वत नष्ट हो जाता है। सासारिक बन्धनो से मुक्ति चाहने वाले को पाप-पुण्य के कार्यों से ऊपर उठना आवश्यक है। इसके लिये केवल वेद-विहित कर्म करना अनिवार्य है। वेदोक्त कर्मों के आचरण से शरीर का नाश होने पर पुन नये शरीर मे आत्मा का प्रवेश नही होता। आत्मा मुक्त हो कर अपने शुद्ध स्वरूप मे अवस्थित हो जाती है।

वेदान्त-दर्शन मे जीव और ब्रह्म के तादात्म्य को 'मुक्ति' कहा गया है। चित्सुखाचार्य के अनुसार, परमानन्द का साक्षात्कार ही मोक्ष है। पदमपादाचार्य मिथ्याज्ञान के अभाव को मोक्ष कहते हैं। साख्यो तथा जैनो की तरह वेदान्तियो ने भी जीवन्मुक्ति तथा विदेह-मुक्ति के रूप मे मुक्ति के दो प्रकार माने है। किन्तु वे इनकी व्याख्या अपनी पद्धति से करते हैं। उनका कहना है कि 'तत्त्वमसि' वाक्य के द्वारा जीव और ब्रह्म की एकता का ज्ञान हो जाने से जब परब्रह्म का साक्षात्कार होता है, तब अज्ञान और उसके कार्य का नाश हो जाने पर सचित सशय, विपर्यय आदि कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसी स्थिति मे ब्रह्मवेत्ता जीवित रहते हुए ही समस्त सासारिक बन्धनो से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार के ब्रह्मनिष्ठ पुरुष को 'जीवन्मुक्त' कहते हैं। जीवन्मुक्त पुरुष का जब शरीरपात हो जाता है, तब वह 'विदेहमुक्त' की सज्ञा प्राप्त करता है। विदेहमुक्त को ही 'परममुक्त' कहते हैं। विदेहमुक्ति या परम-मुक्ति होने पर पुरुष की जन्म-मरण-रूप सासारिक बन्धनो से, आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है।

बौद्ध-दर्शन मे भी दु.खनिरोध को ही निर्वाण कहा गया है। समस्त दु खो के कारणो का विनाश ही निर्वाण या मोक्ष है। बौद्ध-दर्शन मे भी निर्वाण के सन्दर्भ मे 'दु खनिरोध' की व्याख्या 'दु खो की आत्यन्तिक निवृत्ति' की गई है। व्युत्पत्ति के आधार पर, निर्वाण, शब्द निर् उपसर्गपूर्वक 'वा' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय का योग होने पर बनता है, जिसका अर्थ है बुझना। किन्तु, बौद्ध-दर्शन मे 'निर्वाण' का 'बुझना' अर्थ अभिप्रेत नही है। यदि 'निर्वाण' शब्द का 'बुझना' अर्थ स्वीकार किया जायगा, तो आत्मा का बुझना या शान्त होना अर्थ गृहीत होगा। बौद्धमत मे आत्मा का अस्तित्व ही नही है, तो फिर उसका बुझना' अर्थ कैसे होगा ? अतएव, 'निर्वाण' पद का अर्थ दु खो का आत्यन्तिक विनाश ही ग्रहण करना उपयुक्त होगा। डा० राधाकृष्णन् ने 'निर्वाण' का अर्थ 'बुझना' किया है और उसका तात्पर्य 'नष्ट होना' बताया है। इस प्रकार दु खो का बुझना या दुःखो का नाश होना ही निर्वाण है।

बौद्धमत के अनुसार, निर्वाण या मोक्ष जीवनकाल मे भी प्राप्त किया जा सकता है, जिसे जीवन्मुक्त कहते है। जीवन्मुक्तावस्था मे व्यक्ति, राग-द्वेपादि दुर्गुणो

पर विजय प्राप्त कर अपने कर्म-वन्धन का विनाश करने मे समर्थ हो जाते हैं। जीवन्-मुक्त दशा मे कर्मासक्ति न रहने के कारण कर्मफल-रूप पुनर्जन्म की प्राप्ति नही होती। जैसे वीज के दग्ध हो जाने पर उससे अकुर नही निकलते। कर्मासक्ति के अभाव का यह तात्पर्य कदापि नही है कि निर्वाण प्राप्त कर लेने पर 'अर्हत्' निष्क्रिय हो जाते हैं। वे कर्म करते रहते है, किन्तु कर्म के वन्धन मे नही वधते। यहाँ भगवद्गीता मे 'मा ते सगोऽस्त्वकर्मणि' वाक्य से स्पष्टतया साम्य परिलक्षित होता है। महात्मा वुद्ध परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर भी परिभ्रमण करके धर्मप्रचार करते रहे। इस प्रकार, वौद्धमत मे भी मुक्त पुरुष दो प्रकार के होते हैं एक जीवन्मुक्त, जिसमे वे जीवन धारण किये रहते है। दूसरे वे, जिनका सासारिक जीवन समाप्त हो जाता है और जो षडायतन शरीर का परित्याग कर देते हैं।

भारतीय दर्शन-परम्परा में जैन-दर्शन अपना प्रमुख और पार्थक्य स्थान रखता है। जैनदर्शन और धर्म दोनो परस्पर पुखानुपुखरूप से अनुस्यूत हैं। जैनदर्शन की नास्तिकदर्शन मे परिगणना अवास्तविक है। पाणिनि के अनुसार, यदि हम नास्तिक शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ (नास्ति परलोक इति मतिर्यस्य स नास्तिक.) लेते हैं, तो इस दशा मे केवल चार्वाक-दर्शन ही नास्तिक-दर्शन कहलायेगा। जैन-दर्शन तो परलोक की सत्ता स्वीकारता है और पुनर्जन्म को भी मानता है। यदि नास्तिक शब्द का अर्थ निरीश्वरवादी लिया जाय, तो जैनदर्शन के सन्दर्भ मे यह भी उपयुक्त नही होगा, क्योकि जैनदर्शन सीधे ईश्वर के नाम से न सही, किन्तु 'जिन' या 'अर्हत्' के नाम से ईश्वर को तो मानता ही है। जैन धर्म का मत है कि ईश्वर अवतार नही लेता, वल्कि मानव ही देवत्व या ईश्वरत्व को प्राप्त करता है, फिर 'जिन' या अर्हत्' हो जाता हैं। 'जिन' या 'अर्हत्' ही ईश्वर है, वही सर्वज्ञ है। यदि नास्तिक शब्द का अर्थ वेदनिन्दक लेते हैं, तो जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य मे भी यह भी सटीक नही वैठता है, क्योकि जैन भी प्रकारान्तर से वेद को स्वीकार करता ही है। उसके लिए जैनागम ही वेद हैं। अमरकोशकार के अनुसार, मिथ्यादृष्टि ही नास्तिकता है ('मिथ्यादृष्टिर्नास्तिकता')। इसलिए जो कोई भी मिथ्या दृष्टि रखने वाले हैं, वे ही नास्तिको मे परिगणनीय हैं। इस प्रकार, मिथ्यादृष्टि रखने वाले चार्वाको को ही केवल नास्तिकशिरोमणि कहा जा सकता है।

जैनदर्शन मे मिथ्यादृष्टि को ही वन्ध का कारण माना गया है। वन्ध का सवर, यानी अवरोध कर लेने पर नये कर्मों का अभाव होने से और निर्जरा, यानी तप आदि के द्वारा सचित कर्मों के विनाश-रूपी कारण के सम्वन्ध से पूर्वकर्मों के क्षय होने से समस्त कर्मों की जो आत्यन्तिक मुक्ति होती है, उसे ही मोक्ष या निर्वाण कहते है। 'तत्त्वार्थसूत्र' के रचयिता उमास्वाति (उमास्वामी) के अनुसार, वन्ध के कारणो का अभाव तथा निर्जरा के द्वारा समस्त कर्मों से मुक्त होना ही मोक्ष है (वन्ध-हेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षणं मोक्ष)। यह मोक्ष भी दो प्रकार का होता है : भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष। कुन्दकुन्दाचार्य के मत से ज्ञानावरणीय, दर्शना-

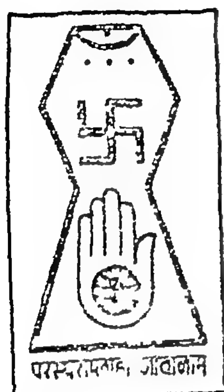
वरणीय, मोहनीय और अन्तराय—इन चार घातीय कर्मों का क्षय भावमोक्ष है और आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय—इन चार अघातीय कर्मों का क्षय द्रव्यमोक्ष है। मोक्ष या निर्वाण से अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य आदि उत्पन्न होते हैं। इसके वाद जीव ईश्वर और सर्वज्ञ हो जाता है।

साधना की चौदह भूमिकाओ मे तेरहवी और चौदहवी भूमिका मे पहुँचने पर जीव को मोक्ष या निर्वाग की प्राप्ति होती है। साधना की इस भूमिका या स्तर को 'गुणस्थान' कहा जाता है। वारहवी भूमिका मे साधक का मोहक्षय हो जाता है और तेरहवी भूमिका मे ज्ञानादि-निराधक अन्य कर्म भी क्षीण हो जाते है, फलतः आत्मा मे विशुद्ध ज्ञानज्योति का आविर्भाव होता है। आत्मा की इसी अवस्था का नाम सयोगिकेवली है। विशुद्ध ज्ञानी होते हुए भी शारीरिक प्रवृत्तियो से युक्त रहने वाला सयोगिकेवली कहलाता है। सयोगिकेवली की अवस्था ही सदेहमुक्ति है।

सयोगिकेवली जब अपने देह से मुक्ति पाने के लिए विशुद्ध ध्यान का आश्रय ले कर मानसिक, वाचिक, एव कायिक व्यापारो को रोक देता है, तब वह आध्यात्मिक विकास की अवस्था मे पहुँच जाता है। चौदहवी भूमिका को प्राप्त आत्मा की इसी अवस्था का नाम अयोगिकेवली है। इसमे आत्मा उत्कृष्टतम शुक्लध्यान द्वारा सुमेरु की भाँति निष्कम्प स्थिति को प्राप्त कर अन्त मे देहत्यागपूर्वक सिद्धावस्था को प्राप्त होती है। इसी सिद्धावस्था का नाम परमात्मपद, स्वरूपसिद्धि, मुक्ति, मोक्ष या निर्वाण है। यह आत्मा की सर्वांगीण पूर्णता, पूर्ण कृतकृत्यता एव परम पुरुपार्थ-सिद्धि है। इस स्थिति मे आत्मा की आत्यन्तिक दु खनिवृत्ति हो जाती है और उसे अनन्त अव्यावाध तथा अलौकिक सुख प्राप्त होता है। आत्मा की इसी उत्कृष्ट निर्वाण-स्थिति को तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका मे पूज्यपादाचार्य ने इस प्रकार परिभापित किया है—निरवशेपनिराकृतकर्ममलकलकस्याऽशरीरस्यात्मनोऽचिन्त्य-स्वाभाविकज्ञानादिगुणमव्यावाधसुखमात्यन्तिकमवस्थान्तर मोक्ष।' अयोगकेवली की यही स्थिति विदेहमुक्ति कहलाती है।

इस प्रकार, मोक्ष या निर्वाण जीवन की वह अवस्था है, जहाँ सब बन्धन उन्मूलित हो जाते है, दैहिक, वाचिक और मानसिक सव दोप नि.शेप हो जाते हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौतिक और धार्मिक सब वन्धनो से मुक्ति या पूर्ण स्वतन्त्रता ही निर्वाण है। समग्र वासनाओ और क्लेशो की निरपेक्ष शान्ति ही निर्वाण का परम लक्ष्य है। निर्वाण के सन्दर्भ मे भगवान् महावीर ने दो प्रकार की परिज्ञा का निर्देश किया है· 'ज्ञ' और 'प्रत्याख्यान'—जानना और छोडना। ज्ञेय सव पदार्थ हैं। आत्मा के साथ जिसका विजातीय सम्वन्ध है, वह हेय है। उपादेय से भिन्न हेय कुछ भी नही है। आत्मा का अपना रूप सत्, चित् और आनन्दघन है। जव तक हेय नही छूटता, तव तक वह छोडने-लेने की उलझन मे फँसी रहती है। हेय छूटते ही आत्मा अपने स्वरूप मे अवस्थित हो जाती है। महावीर की दृष्टि मे निर्वाण का यही स्वरूप है।

—०—



"निर्वाण का स्वरूप तथा उसका मार्ग"

—डा० सत्यदेव शास्त्री, एम० ए०, डी० लिट्०



भगवान महावीर के अनुसार निर्वाण या मोक्ष की प्राप्ति ही मानवजीवन का चरम लक्ष्य है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र ये रत्नत्रय इसके तीन साधन हैं।[1]

इन्ही रत्नत्रय के चारित्ररत्न मे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह; ये पाँच महाव्रत एव पाँच अणुव्रत आ जाते हैं। सर्वथा निर्वाणप्राप्ति के लिए पच-महाव्रतो का पालन करने की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है। इसी प्रकार गृहस्थ के लिए ५ अणुव्रतो का पालन भी निर्वाणप्राप्ति के लिए आवश्यक है। व्रतो का पालन करने से चित्त की वासनाएँ दूर हो जाती हैं और जीव पर पडा हुआ आवरण हट जाता है।

भ० महावीर की दृष्टि मे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य तथा अनन्तसुख आत्मा के स्वत. स्वाभावत. विद्यमान रहते है। इन्हें 'अनन्त-चतुष्टय' कहा जाता है। यदि आत्मा मे यह अनन्तचतुष्टय स्वाभाविक रूप से विद्यमान न होता, तो मोक्षावस्था मे भी वह इसे प्राप्त नही कर पाता। जीव के निसर्गत· मुक्त होने पर भी वासनाजन्य कर्म उसके विशुद्ध स्वभाव पर आवरण डाले रहते हैं। ये जीव के वास्तविक स्वरूप को आवृत करके उसे दु खमय प्रपंच मे डाले हुए है। कर्म-पुद्गलो के साथ सवद्ध जीव वन्धन मे पड जाता है। कुछ कर्मपुद्गल इसके दर्शन को और कुछ इसके ज्ञान को आच्छादित कर देते हैं तथा कुछ कर्मपुद्गल इसके मोह को उत्पन्न करने के सावन वन जाते हैं। इस प्रकार ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोह-नीय, वेदनीय, आयुष्क, नाम, गोत्र तथा अन्तराय—इन आठ प्रकार के कर्मों के अनेक अवान्तर भेद हैं[2], जो जीव के विशुद्ध स्वरूप पर आवरण डालते हुए उसके वन्धन का

---

१ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग.। तत्त्वार्थ सूत्र १/१

२. ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुष्कनामगोत्रान्तराया.। त० सू० ८/५

कारण बनते हैं। प्रत्येक क्रिया के साथ, चाहे वह क्रिया शारीरिक हो या मानसिक और चाहे वह कितनी ही सूक्ष्म क्यो न हो, कर्मपुद्गल जीव के साथ सबद्ध हो जाते हैं और उसके स्वरूप को ढक देते हैं। जीव को अपने सस्कारो एव अन्तर्निहित प्रवृत्तियो के अनुरूप ही देह, इन्द्रिय आदि भोगायतन की प्राप्ति होती है। उसकी अन्तर्निहित प्रवृत्तियाँ बाह्य जगत से उन्ही कर्मपुद्गलो को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं, जिनके द्वारा उनकी तृप्ति हो सके। इस सम्बन्ध मे प्रसिद्ध जैन दार्शनिक उमास्वामी का कथन है कि जीव अपने कषायो के अनुरूप ही कर्मपुद्गलो को अपनी ओर आकृष्ट करता है[3] जिसके परिणामस्वरूप वह बन्धन मे पड जाता है। ये कर्मपुद्गल उसके शुद्ध स्वरूप को आवृत कर देते है, जिससे कि वह अनन्त से सान्त एव मुक्त से बद्ध हो जाता है। क्योकि कर्मपुद्गलो का जीव के साथ सबद्ध हो जाना ही बन्धन है। अत· इनका जीव से बाहर निकल जाना या नष्ट हो जाना ही मोक्ष[4] है। जैन आचारशास्त्र मे इनके लिए दो उपाय बतलाये गये हैं—१—सवर तथा २—निर्जरा। आस्रव का निरोध सवर[5] है। इसके द्वारा जीव मे कर्मपुद्गलो के प्रवेश को रोका जाता है, जिससे कि वह और अधिक बन्धन मे पडने से बच जाता है। संवर के निम्नलिखित छह साधन माने गये हैं—गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय तथा चारित्र[6]। कायिक, वाचिक और मानसिक व्यापारो का निग्रह गुप्ति[7] है। चलने, बोलने, भिक्षाटन ग्रहण करने और मल-मूत्र त्याग करने मे सतर्कता एव सावधानी का अवलबन करना समिति[8] कहलाता है। क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, सयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दस प्रकार के धर्म[9] हैं। जीव और जगत् के यथार्थ तत्त्व के सम्बन्ध मे भावना करना अनुप्रेक्षा[10] है। भूख, प्यास, शीतोष्ण आदि से उत्पन्न उद्वेगो को सहन करना परिषह[11] है। समता, निर्मलता, निर्लोभता, सम्यक् व्यवहार आदि का नाम चारित्र[12] हैं। इन छह साधनो के द्वारा आस्रव का निरोध किया जाता

---

३ सकषायत्त्वाज्जीव कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते, स बन्ध. ॥ त० सू० ८/२,३
४. कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्ष । त० सू० १०/३ तथा,
कृत्स्नकर्मवियोगलक्षणो मोक्ष । राजवार्तिक, अकलक भट्ट १/४/२०
५. आस्रवनिरोध सवरः। त० सू० ६/१
६ स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रै· । त० सू० ६/२
७ सम्यग्योगनिग्रहो गुप्ति । त० सू० ६/४
८ ईर्याभाषणैषणादाननिक्षेपोत्सर्गा समितय । त० सू० ६/५
६ तत्त्वार्थ सूत्र, ६/६
१० तत्त्वार्थ सूत्र ६/७
११ तत्त्वार्थ सूत्र ६/८
१२ तत्त्वार्थ सूत्र, ६/१८

है, जिसके परिणामस्वरूप जीव मे नये कर्मपुद्गलो का प्रवेश रुक जाता है। किन्तु जीव मे पहले से प्रविष्ट कर्मपुद्गलो का क्षय सवर के इन साधनो के द्वारा सभव नही होता है। उसके लिए निर्जरा का आश्रय लेना पडता है। निर्जरा के द्वारा जीव में प्रविष्ट कर्मपुद्गलो का क्षय[13] कर दिया जाता है। यह निर्जरा दो प्रकार की होती है—१—अविपाक निर्जरा, तथा २—सविपाक निर्जरा। तपस्या के द्वारा फलोत्पत्ति के पूर्व कर्मपुद्गलो का क्षय कर देना अविपाक निर्जरा है। फलोत्पत्ति के पश्चात् स्वाभाविक रूप से कर्मपुद्गलो का जीव से वाहर निकल जाना सविपाक निर्जरा है।

जीव से कर्मपुद्गलो के पूर्णरूप से पृथक् हो जाने के वाद जीव शरीर का त्याग कर देता है। वन्धन के कारणभूत कर्मपुद्गलो का सम्वन्ध समाप्त हो जाने के उपरान्त जीव शरीर मे नही रह सकता है। अतएव जैनमत मे 'जीवन्मुक्ति' का सिद्धान्त मान्य नही है। जैनसिद्धान्त के अनुसार जीव का स्वभाव ऊपर की ओर उठना है। जैसे दीपशिखा स्वभावतः ऊपर की ओर उठती है और जैसे शुष्क काष्ठ स्वभावतः जल के ऊपर तैरता है, वैसे ही जीव स्वभावत ऊपर की ओर उठता है।[14] किन्तु जैसे मिट्टी के भार से काष्ठ जल के भीतर चला जाता है और मिट्टी के गलते ही वह पुन ऊपर की ओर आ जाता है, वैसे ही कर्मपुद्गल के सयोग से जीव अधोगति को प्राप्त होता है और उनके वाहर निकल जाने पर वह ऊपर की ओर उठने लगता है। लोकाकाश तथा अलोकाकाश के वीच मे एक नितान्त पवित्र स्थान है, यही सिद्धजीवो की निवास भूमि[15] है। इस स्थान को 'सिद्धशिला' कहते हैं। यहाँ पहुँच कर जीव 'अनन्तचतुष्टय' को प्राप्त कर परमशान्ति का अनुभव करता है। साधको के लिये यही चरममुक्तावस्था है।

किन्तु सिद्धावस्था तक पहुँचने के पूर्व साधक को अपने आध्यात्मिक विकास के मार्ग मे क्रमश. आगे की ओर वढना पडता है। मोक्षमार्ग के इन सोपानो को जैन आचारशास्त्र मे 'गुणस्थान' कहा गया है। गुणस्थानो की सख्या चौदह है। इनमे मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से ले कर अन्तिम अवस्था तक क्रमश· आगे की ओर वढ़ना पडता है। इन गुणस्थानो की कल्पना मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१—मिथ्यादृष्टि, २—ग्रन्थिभेद, ३—मिश्र, ४—अविरतसम्यग् दृष्टि, ५—देशरविति, ६—प्रमत्त, ७—अप्रमत्त, ८—अपूर्व कर्म, ९—अनिवृत्ति, १०—सूक्ष्मसाम्पराय, ११—उपशान्तमोह, १२—क्षीणकपाय, १३—सयोगकेवली तथा १४—अयोगकेवली। अकलकदेव ने राजवार्तिक मे (९ १

---

१३. तपसा निर्जरा च। त० सू० ९/३

१४ यथा प्रदीपशिखा स्वभावादुत्पतति तथा मुक्तात्माऽपि ऊर्ध्वंगतिस्वाभाद्दूर्ध्वमेवारोहति। राजवार्तिक, १०/७/६ अकलक भट्ट

१५ तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्। त० सू० १०/५

१२ से ६ १ ३० तक) इन गुणस्थानो का विस्तार से वर्णन किया है।[१६] मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे जीव विवेकहीनता की दशा मे होता है। ग्रन्थिभेद गुणस्थान मे उसमे सत्-असत् के विवेक का उदय हो जाता है। मिश्र गुणस्थान मे निश्चय और अनिश्चय की मिश्रित दशा रहती है। अविरतसम्यक्दृष्टि गुणस्थान मे सम्यक् श्रद्धा की प्राप्ति होती है। इस अवस्था मे जीव को सम्यक्दृष्टि की तो प्राप्ति हो जाती है, किन्तु उसे इस दृष्टि को कार्यरूप मे परिणत करने की शक्ति प्राप्त नही होती। श्रद्धा की प्राप्ति हो जाने पर भी वह अपने आपको दुष्कर्मों से बचाने मे असमर्थ रहता है। देशविरतिगुणस्थान मे दुष्कर्मों का आशिक रूप से त्याग हो पाता है। प्रमत्तगुणस्थान मे आत्मसयम की प्राप्ति तो हो जाती है, किन्तु इसमे प्रमाद की दशा बनी रहती हैं। अप्रमत्तगुण स्थान मे यह प्रमाद भी दूर हो जाता है। अपूर्व-कर्णगुणस्थान मे जीव को पवित्रता की प्राप्ति होती है, साथ ही उसे अननुभूतपूर्व आनन्द की उपलब्धि होती है। अनिवृत्तिगुणस्थान मे जीव निरन्तर विशुद्ध चिन्तन एव ध्यान मे निमग्न रहता है। सूक्ष्मसाम्पराय की अवस्था मे सुख, दुख चिन्ता, भय आदि दूर हो जाते है। किन्तु तृष्णा सूक्ष्मरूप मे बनी रहती है। उपशान्तमोह की अवस्था मे मोह एव तृष्णा उपशान्त हो जाते हैं। क्षीणमोहगुणस्थान मे जीव की सभी घातीय कर्मों से मुक्ति हो जाती है, किन्तु अभी अघातीय कर्म बने रहते हैं। इस अवस्था मे वह सर्वज्ञ हो जाता है। अगली अवस्था सयोगकेवली गुण-स्थान की होती है। वह अवस्था अन्य दर्शनो मे प्रतिपादित जीवन्मुक्तावस्था के समान है। इसमे बन्धन के पांच कारणो—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग मे से पहले चार का नाश हो जाता है, केवल अन्तिम कारण योग (कायिक, वाचिक तथा तथा मानसिक प्रवृत्ति) बना रहता है। साधना की अन्तिम अवस्था अयोगकेवली गुण-स्थान मे जीव के सभी कर्मों का विनाश हो जाता है। यह अवस्था कुछ क्षणो तक रहती है। इसके अनन्तर ही साधक सिद्धावस्था एव मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

जैन-आचार्यों ने मोक्ष को दो प्रकार का माना है—१—भावमोक्ष तथा २—द्रव्यमोक्ष। जीव जब घातीय कर्मों से मुक्त हो जाता है, तब उसे भावमोक्ष की प्राप्ति होती है।[१७] किन्तु जब उसके अघातीय कर्मों का भी अन्त हो जाता है, तब उसे द्रव्यमोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय तथा अन्तराय इन चार प्रकार के कर्मों को घातीय कर्म माना गया है। इसके विपरीत वेदनीय, आयुष्क, नाम तथा गोत्र कर्मों को अघातीय कर्म कहा गया है। कुन्दकुन्दाचार्य के मत से घातीय कर्मों का नाश होने पर जीव को भावमोक्ष की प्राप्ति होती है तथा अघातीय कर्मों का भी नाश हो जाने पर उसे

---

१६ राजवार्तिक, ६/१/१२ से लेकर ६/१/३० तक।

१७ An Epitome of Jainism P 617 Nahar & Ghoshal.

द्रव्यमोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। किन्तु आचार्य नेमिचन्द्र कुन्दकुन्दाचार्य के उपर्युक्त मत से सहमत नही है। उनके मत से कर्मों के नाश के लिए किये गये मानसिक प्रयत्नो के द्वारा भावमोक्ष की तथा कर्मों के पूर्णतया नष्ट हो जाने पर द्रव्यमोक्ष की प्राप्ति होती है। आ० नेमिचन्द्र के मत से भावमोक्ष की अवस्था कुछ क्षणो तक ही रहती है, उसके बाद द्रव्यमोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। किन्तु इसके विपरीत कुन्दकुन्दाचार्य के मत मे भावमोक्ष की अवस्था वर्षों तक बनी रह सकती है। उमास्वामी के मत मे जिस साधक के घातीय कर्मों का नाश हो जाता है, उसे सर्वज्ञता की प्राप्ति हो जाती है। वह केवलज्ञानसपन्न होने के कारण 'केवली' कहलाता है। जब उससे अघातीय कर्मों का भी नाश हो जाता है तब वह मुक्त हो जाता है। इस प्रकार उमास्वामी का 'केवली' तथा कुन्दकुन्दाचार्य का 'भावमोक्ष' वेदान्त के जीवन्मुक्ति के सिद्धान्त के बहुत समीप आ जाता है। जैनदर्शन के प्रसिद्ध विद्वान् डा० नथमल टाटिया का कथन है कि घातीय कर्मों की तुलना वेदान्तसम्मत माया की आवरण शक्ति से तथा अघातीय कर्मों की तुलना उसकी विशेप शक्ति से की जा सकती है।[१८] घातीय कर्मों के नाश से आवरण भग हो जाता है, जिससे साधक को सर्वज्ञता की प्राप्ति हो जाती है। अघातीय कर्मों के नाश से उसकी चचलता एव विक्षिप्तता का भी अन्त हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वह निर्वाण या मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जैनदर्शन मे, सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र इन तीनो को सम्मिलित रूप मे मोक्ष का साधन माना गया है। उमास्वामी के अनुसार यथार्थज्ञान के प्रति श्रद्धा का होना सम्यग्दर्शन १९ कहलाता है। कुछ व्यक्तियो मे तो यह स्वभावत विद्यमान रहता है और कुछ इसे विद्योपार्जन एव अभ्यास के द्वारा प्राप्त करते हैं। किन्तु श्रद्धा का उदय तभी होता है, जब अश्रद्धा को उत्पन्न करने वाले कर्म का सवर या निर्जर होता है। सम्यग्दर्शन का अर्थ अन्धविश्वास नही है। श्रद्धा पूर्णतया युक्ति एव तर्क पर प्रतिष्ठित होती है। अध्यात्ममार्ग के पथिक के लिए सबसे अधिक उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण साधन सम्यक् श्रद्धा है। सम्यग्ज्ञान दूसरा साधन है। शास्त्र के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो तथा तत्त्वो का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना सम्यक् ज्ञान है।[२०] जीव और अजीव के मूल तत्त्वो का विशेषज्ञान प्राप्त होना सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान असदिग्ध तथा दोपरहित होता है। सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान की चरितार्थता सम्यक्चारित्र मे ही सम्पन्न होती है। अहितकार्यों का वर्जन और हितकार्यो का आचरण ही

---

१८ Studies in Jaina Philosophy P. XX, Nathmal Tatia

१९ तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम्। त० सू० १/२

२० द्रव्यसग्रह, श्लोक ४२, आ० नेमिचन्द्र

सम्यक्चारित्र है।[२१] सम्यक्चारित्र के द्वारा जीव अपने कर्मों से मुक्त हो सकता है, क्योकि कर्मों के कारण ही बन्धन होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनो को सम्मिलित रूप मे मोक्ष का साधन माना गया है। जैन दर्शन मे अद्वैत वेदान्त के उस मत का खण्डन किया गया है, जिसके अनुसार एकमात्र ज्ञान को ही मोक्ष का साधन स्वीकार किया जाता है। इस सम्बन्ध मे विद्यानन्द का यह कथन है कि जो एकमात्र ज्ञान को मोक्ष का साधन मानते हैं उनके मत से ज्ञानी पुरुष के शरीरधारण की व्याख्या नही की जा सकती। यदि ज्ञान ही मोक्ष का साधन हो तो ज्ञानप्राप्ति के अनन्तर ज्ञानी पुरुष शरीरधारण कैसे किये रह सकता है? क्या यह संभव है कि प्रदीप जलता रहे और अन्धकार भी बना रहे? यदि यह कहा जाय कि प्रारब्ध कर्मों के फलोपभोग के लिए ज्ञानी पुरुष को शरीर धारण करना पडता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञानप्राप्ति के अनन्तर भी ऐसे कुछ दोष रह जाते हैं, जिनका निवारण सम्यक्चारित्र के द्वारा ही सभव है। इस प्रकार सम्यग् ज्ञान के साथ सम्यक्चारित्र को भी मोक्ष का साधन मानना पडता है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र को निर्वाण का साधन स्वीकार करते हुए महावीरदृष्टि मे मन की तीनो शक्तियो—ज्ञान, इच्छा तथ क्रिया की उपयोगिता पर बल दिया गया है। केवल ज्ञान, केवल कर्म अथवा केवल भक्ति हमे निर्वाण तक नही पहुँचा सकती। निर्वाण की प्राप्ति के लिए, जो मानवजीवन का चरम लक्ष्य है, मन के तीनो घटकतत्त्वो के बीच पूर्ण सामञ्जस्य एवं तालमेल आवश्यक है।[२२] इस प्रकार भ० महावीर की दृष्टि से ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग तथा भक्ति-मार्ग मे अविरोध एव समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास उपलब्ध होता है। इस दृष्टि से यह मत शकराचार्य के उस मत से जो एकमात्र ज्ञान को ही मोक्ष का साधन स्वीकार करता है और मीमासको के उस मत से जो एकमात्र कर्म को ही स्वर्गप्राप्ति एव नि श्रेयस का साधन मानता है, तथा वैष्णवाचार्यों के उस मत से जो एकमात्र भक्ति एव प्रपत्ति को ही मुक्ति का साधन स्वीकार करता है, कही अधिक वैज्ञानिक एव युक्तयुक्त प्रतीत होता है।



---

२१ द्रव्यसग्रह, श्लोक ४५, आ० नेमिचन्द्र

२२ History of Indian Philosophy, By J N Sinha, Vol II, P. 277.

निर्वाण का महत्त्वपूर्ण अंग—



ध्यानसाधना : वर्तमान संदर्भ में

डा० नरेन्द्र भानावत, एम० ए०, पी-एच० डी०



आज का युग विज्ञान और तकनीकी प्रगति का युग है। अतः यह प्रश्न महज उठ सकता है कि ऐसे द्रुतजीवी युग मे ध्यान-भावना की क्या सार्थकता और उपयोगिता हो सकती है ? ध्यान का बोध हमे कही प्रगति की दौड मे रोक तो नही लेगा, हमारी क्रियाशीलता को कुठित तो नही कर देगा, हमारे सस्कारो को जड और विचारो को स्थिति-शील तो नही बना देगा ? ये खतरे ऊपर से ठीक लग सकते हैं पर ये सतही हैं। ध्यानसाधना निष्क्रियता या जडता का बोध नही है। यह समता, क्षमता और अखण्ड शक्ति व शाति का विधायक तत्व है।

एक समय था, जब मुमुक्षुजनो के लिए ध्यान का लक्ष्य निर्वाण-प्राप्ति था। वे मुक्ति के लिए ध्यान-साधना मे तल्लीन रहते थे। आध्यात्मिक दृष्टि से यह लक्ष्य अब भी बना हुआ है। पर वैज्ञानिक प्रगति और मानसिक बोध के जटिल विकास ने ध्यान-साधना की सामाजिक और व्यावहारिक उपयोगिता भी स्पष्ट प्रकट कर दी है। यही कारण है कि आज विदेशो मे ध्यान भौतिक वैभव से सम्पन्न लोगों का आकर्षण केन्द्र बनता चला जा रहा है।

ध्यान और चेतना

ध्यान का सम्बन्ध चेतना से है। मनोवैज्ञानिको ने चेतना के मुख्यत. तीन प्रकार बतलाये हैं—जानना अर्थात् ज्ञान (Cognition), अनुभव करना अर्थात् अनुभूति (Feeling) और चेष्टा करना अर्थात् मानसिक सक्रियता (Conation)। ये तीनो मन के विकास मे परस्पर सम्बद्ध-सलग्न हैं। ध्यान एक प्रकार की मानसिक चेष्टा है। यह मन को किसी वस्तु या सवेदना पर केन्द्रित करने मे सक्रिय रहती है। पर भ० महावीर जैसे आध्यात्मिक पुरुषो ने ध्यान को इससे आगे चित्तवृत्ति के निरोध रूप मे स्वीकार कर आत्म-स्वरूप मे रमण करने की प्रक्रिया बतलाया है।

ध्यान के प्रकार

ध्यान के कई अग-उपाग है। जैनधर्म मे इसका कई प्रकार मे वर्गीकरण मिलता है। ध्यान के मुख्य चार भाग हैं—(१) आर्तध्यान, (२) रौद्रध्यान, (३) धर्मध्यान और (४) शुक्लध्यान।

आर्त का अर्थ है पीडा, दुख, चीत्कार। इस ध्यान मे चित्तवृत्ति बाह्यविषयो की और उन्मुख रहती है। कभी अप्रिय वस्तु के मिलने पर और कभी प्रिय वस्तु के अलग होने पर आकुलता बनी रहती है। रौद्र का अर्थ है—भयकर, डरावना। इस ध्यान मे हिंसा, झूठ, चोरी, विषयादि के सेवन की पूर्ति मे प्रवृत्ति रहती है और इनके बाधक तत्वो के प्रति द्वेष के कारण कठोरक्रूरभावना बनी रहती है। आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनो त्याज्य है। आर्तध्यान व्यक्ति को राग मे बाधता है और रौद्र-ध्यान द्वेष मे। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये दोनो ध्यान अनैच्छिक ध्यान की श्रेणी मे आते हैं। इनके ध्यान मे इच्छाशक्ति को कोई प्रयत्न नही करना पडता। ये मानव की पशु-प्रवृत्ति को सतृप्ति देने मे ही लीन रहते है। इनका साधना की दृष्टि से कोई महत्व नही हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से इन्हे 'ध्यान' नही कहा जा सकता। ये अशुभध्यान हैं।

धर्मध्यान और शुक्लध्यान शुभध्यान है। इनका चिन्तन राग-द्वेष को कम करने के लिए किया जाता है। ये आभ्यन्तर तप माने गये हैं। धर्मध्यान के चार प्रकार माने गये हैं—(१) आज्ञाविचय-आगमसूत्रो मे प्रतिपादित तत्वो को ध्येय बना कर उनका चिन्तन करना। (२) अपायविचय-रागद्वेषादि दोषो के क्षयहेतु ध्येय बना-कर उनमे लीन होना। (३) विपाकविचय-कर्म के विविध फलो को ध्येय बना कर उनकी निर्जरा के लिए चिन्तन करना। (४) सस्थानविचय-द्रव्य की विविध पर्यायो को ध्येय बना कर उनमे एकाग्र होना। धर्मध्यान के आगे की अवस्था शुक्लध्यान है। यह शुद्ध ध्यान माना गया है। इसके भी चार प्रकार हैं—(१) पृथकत्ववितर्क-सविचार-इसमे अर्थ, व्यजन और योग का सक्रमण रूप से—एक पदार्थ का विचार कर उसे छोड दूसरे पदार्थ मे विचार जाना—विचार किया जाता है। (२) एकत्व वितर्कअविचार-इसमे एक ही पदार्थ पर अटल रह कर अभेदबुद्धि द्वारा विचार किया जाता है। इसमे सक्रमण का अभाव रहता है। (३) सूक्ष्मक्रिया—अप्रतिपाति—इसमे मन-वचन-काया सम्बन्धी स्थूल योगो को सूक्ष्म योग द्वारा रोक दिया जाता है और मात्र श्वास-उच्छ्वास की सूक्ष्म क्रिया ही रह जाती है। इसका पतन नही होता। सयोगी केवली को यह ध्यान होता है। (४) समुच्छिन्नक्रिया-अनिवृत्ति जब शरीर की श्वास-प्रश्वास क्रिया भी बन्द हो जाती है और आत्म-प्रदेश सर्वथा निष्कम्प हो जाते हैं। इसमे स्थूल या सूक्ष्य किसी प्रकार की मानसिक, वाचिक, कायिक क्रिया नही रहती। यही मुक्तदशा की स्थिति है।

शुक्लध्यान के आरम्भिक दो ध्यानो मे श्रुतज्ञान का अवलम्ब लेना होता है, जबकि अन्तिम दो मे श्रुतज्ञान का आलम्बन भी नही रहता। अतः ये दोनो ध्यान अनालम्बन कहलाते हैं।

बौद्धधर्म मे ध्यान पर सर्वाधिक जोर दिया गया है। वहाँ ध्यान (झान) का एक अर्थ चित्तवृत्तियो को जलाना भी किया है। यहाँ ध्यान के दो मुख्य प्रकार

माने गये हैं—(१) आरम्भण उपनिज्भान-जो चित्त के विषयभूत वस्तु (आलम्वन) पर चिन्तन करे। (२) लक्खण उपनिज्झान—जो ध्येय वस्तु के लक्षणो पर चिन्तन करे।

आरभण उपनिज्झान ध्यान के आठ भेद हैं—

१—वितर्क, विचार, प्रीति, सुख व एकाग्रता सहित ध्यान

२—विचार, प्रीति, सूख व एकाग्रता सहित ध्यान

३—प्रीति, सुख व एकाग्रता सहित ध्यान

४—सुख व एकाग्रता सहित ध्यान

ये चारो ध्यान रूपावचर ध्यान कहलाते है। इनमे वृत्तियो को क्रमशः सक्षिप्त कर चित को एकाग्र किया जाता है।

५—आकाशान्त्यायतन

६—विज्ञानानन्त्यायतन

७—अकिंचनायतन

८—नैवसज्ञानासज्ञायतन

ये चार अरूपावचर ध्यान कहे जाते है। इन आयतनो को जब साधक शनैः शनैः पार कर लेता है, तव उसे निर्वाण की प्राप्ति होती है। अन्तिम अवस्था को 'भवाग्र' कहा गया है।

लक्खण उपनिज्झान के भी तीन भेद किये है—विपस्सना, मग्ग और फल। विपस्सना मे प्रज्ञा, ज्ञान और दर्शन होता है। इसमे विषय-वस्तु के लक्षणो पर विचार किया जाता है। मग्ग मे उसका कार्य पूर्ण होता है और फल मे उसकी निष्पत्ति होती है। इसी को लोकोत्तर ध्यान कहते हैं जो निर्वाण का विशिष्टरूप माना गया है।

ध्यान तत्व का प्रसार .

भगवान् महावीर और वुद्ध दोनो वडे ध्यान-योगी थे। ध्यानावस्था मे ही दोनो मुक्त हुए। महावीर की ध्यान-परम्परा मध्य-युग मे आ कर मन्द पड गई। इसके कई सामाजिक और प्राकृतिक कारण रहे हैं। जैनश्रमणो के नगर-सम्पर्क ने भी उसमे वाधा डाली। पर बुद्ध की ध्यान-परम्परा ने ध्यान-सम्प्रदाय का एक स्वतन्त्र रूप ही धारण कर लिया और चीन-जापान मे उसका व्यापक प्रचार हुआ। वह परम्परा आज भी वहाँ जीवित है।

बुद्ध के बाद हुए २८ वें धर्माचार्य[1] बोधिधर्म[2] ने सन् ५२० या ५२६ ई० मे चीन जा कर वहाँ ध्यान-सम्प्रदाय (चान्-त्सुंग) स्थापना की। बोधिधर्म की मृत्यु के बाद भी चीन मे उनकी परम्परा चलती रही। उनके उत्तराधिकारी इस प्रकार हुए—

१ हुई के (सन् ४०६-५९३ ई०)
२ सेंग-त्सन् (मृत्यु सन् ६०६ ई०)
३ ताओ-ह्सिन (सन् ५८०-६५१ ई०)
४ हुंग-जेन (सन् ६०१-६७४ ई०)
५ हुइ-नेंग् (सन् ६३८-७१३ ई०)

हुई-नेंग् ने अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त नही किया, पर यह परम्परा वहाँ चलती रही। इसका चरम विकास तग् (सन् ६१६-९०५ ई०), सुग् (सन् ९६०-१२७८ ई०) और यूआन् (सन् १२०६-१३१४ ई०) राजवशो के शासन-काल मे हुआ। १३-१४ वी शती के बाद महायान बौद्ध-धर्म का एक अन्य सम्प्रदाय, जो जो अमिताभ की भी भक्ति और उनके नाम-जप पर जोर देता है, अधिक प्रभावशाली हो गया। इसका नाम जोदो-शूया सुखावती सम्प्रदाय है। सम्प्रति चीन-जापान मे यह सर्वाधिक प्रभावशील है।

चीन से यह तत्व जापान गया। येइ-साइ (सन् ११४१-१२१५ ई०) नामक जापानी भिक्षु ने चीन मे जा कर इसका अध्ययन किया और फिर जापान मे इसका प्रचार किया। जापान मे इस तत्व की तीन प्रधान शाखाएँ हैं—

(१) रिजई शाखा—इसके मूल प्रवर्तक चीनी महात्मा रिजई थे। इस शाखा मे येइ-साइ, दाए-ओ (सन् १२३५-१३०८ ई०), देतो (सन् १२८२-१३३६),

---

१—बौद्धधर्म के पहले जो २७ धर्माचार्य हुए, उनके नाम इस प्रकार हैं—
(१) महाकाश्यप, (२) आनन्द, (३) शाणवास, (४) उपगुप्त, (५) घृतक, (६) मिच्छक, (७) वसुमित्र, (८) बुद्धनन्दी, (९) बुद्धमित्र, (१०) भिक्षु पार्श्व, (११) पुण्ययशस्, (१२) अश्वघोष, (१३) भिक्षु कपिमाल, (१४) नागार्जुन, (१५) काणदेव, (१६) आर्य राहुलत, (१७) संघनदी, (१८) सघयशस्, (१९) कुमारत, (२०) जयत, (२१) वसुबन्धु, (२२) मनुर, (२३) हक्लेनयशस्, (२४) भिक्षु सिंह, (२५) वाशसित् (२६) पुण्यमित्र, (२७) प्रज्ञातर
—ध्यान-सम्प्रदाय : डा० भरतसिंह उपाध्याय, पृ० १३-१४।

२—ये दक्षिण भारत के काचीपुरम् के क्षत्रिय (एक अन्य परम्परा के अनुसार ब्राह्मण) राजा सुगन्ध के तृतीय पुत्र थे। इन्होने अपने गुरू प्रज्ञातर से चालीस ' 'वर्ष तक बौद्धधर्म की शिक्षा प्राप्त की। गुरु की मृत्यु के बाद ये उनके आदेश का अनुसरण कर चीन गये। वही पृ० १।

क्वजन (सन् १२७७-१३६० ई०), हेकुमिन (सन् १६८५-१७६८ ई०) जैसे विचारक ध्यानयोगी हुए।

(२) सोतो शाखा—इसकी स्थापना येइ-साइ के बाद उनके शिष्य दो-गेन्-(सन् १२००-१२५३ ई०) ने की। इसका सम्बन्ध चीनी महात्मा हुइ-नैंग के शिष्य चिग्-यूआन् और उनके सदस्य शिद्-ताउ (सन् ७००-७९० ई०) से रहा है।

(३) ओवाकु शाखा—इसकी स्थापना इजेन (सन् १५९२-१६७३ ई०) ने की। मूलरूप मे इसके प्रवर्तक चीनी महात्मा हुआङ्-पो थे, जिनका समय ९वी शती है और जो हुइ-नैंग् की शिष्यपरम्परा की तीसरी पीढी मे थे।

उपर्युक्त विवरण से सूचित होता है कि ध्यानतत्व का वीज भारत से चीन-जापान गया, वहाँ वह अंकुरित ही नही हुआ, पल्लवित, पुष्पित और फलित भी हुआ। वहाँ के जन-जीवन मे (विशेषतः जापान मे) यह तत्व घुलमिल गया है। वह केवल अध्यात्म तक सीमित नही रहा, उसने पूरे जीवन-प्रवाह मे अपना ओज और तेज विखेरा है। येइ-साइ की एक पुस्तक कोजन-गोकोकु-रोन (ध्यान के प्रचार के रूप मे राष्ट्र की सुरक्षा) ने ध्यान को वीरत्व और राष्ट्र-सुरक्षा से भी जोड दिया है। जापानी सिपाहियो मे ध्यानाभ्यास का व्यापक प्रचार है। मनोवल, अनुशासन, दायित्ववोध और अन्तर्निरीक्षण के लिए वहाँ यह आवश्यक माना जाता है। जापान ने स्वावलम्वी और स्वाश्रयी बन कर जो प्रगति की है, उसके मूल मे ध्यान की यह ऊर्जा अवश्य प्रवाहित है।

मुझे लगता है, पश्चिमी राष्ट्रो मे जो ध्यान का आकर्पण वढा है, वह उसी ध्यानतत्व का प्रसार है, चाहे यह प्रेरणा उन्हे सीधी भारत से मिली हो, चाहे चीन-जापान के माध्यम से।

यह इतिहास का कटु सत्य है कि वर्तमान भारतीय जन-मानस अपनी परम्परागत निधि को गौरव के साथ आत्मसात् नही कर पा रहा है। जव पश्चिमी राष्ट्र का मानस उसे अपना लेता है या उसकी महत्ता-उपयोगिता प्रकट कर देता है, तव कही जा कर हम उसे अपनाने का प्रयत्न करते हैं और अपने ही घर मे 'प्रवास' से लगते हैं। 'ध्यान' भी इस सदर्भ से कटा हुआ नही है। पश्चिम मे जव 'हरे राम हरे कृष्ण' की धुन लगी, तव कही जा कर हमे अपने 'ध्यान-योग, की गरिमा और आवश्यकता का वोध हुआ।

ध्यान के प्रति पश्चिमी आकर्षण :

यह वोध स्वागतयोग्य है, क्योकि इसके द्वारा हमे विलुप्त होती हुई ध्यान-साधना की अन्त सलिला को फिर से पुनर्जीवित करने का अवसर मिला है। पर जिस माध्यम से यह 'वोध' हुआ है, उसमे कई खतरे भी है। पहला खतरा तो यह कि हम ध्यान की मूल चेतना को भूल कर कही इसे फैशन के रूप मे ही ग्रहण

कर लें। दूसरा यह कि हम इसे केवल जडमनोविज्ञान के धरातल पर ही स्वीकार करके न रह जाय और इस वस्तु या विचार के साथ मन के समायोजन (Adjustment) तक ही सीमित न कर दें और तीसरा यह कि हम वैज्ञानिक चिन्ता-धारा को छोड कर कही मध्ययुगीन सस्कारो मे फिर न बृध जांय।

ऊपर जिन खतरो की चर्चा की गई है, वे निराधार नही हैं। उनके पीछे आधार है। 'ध्यान' के सम्बन्ध मे जो पश्चिम की हवा चली है, वह भोग के अतिरेक की प्रतिक्रिया की परिणति है, आत्मा के स्वभाव मे रमण करने की सहज वृत्ति नही। भौतिक ऐश्वर्य मे डूबे पश्चिम के मानव के लिए वह भौतिक यन्त्रणाओ से मुक्ति का साधन है, इन्द्रियभोग के अतिरेक की थकान की विश्रान्ति है, मानसिक तनाव और दैनन्दिनी जीवन की आपाधापी से बचने का रास्ता है। ध्यान के प्रति उसकी ललक भौतिक पदार्थों की चरम सतृप्ति (संत्रास) का परिणाम है, उसका लक्ष्य प्राच्य मनीषियो की तरह मुक्ति या निर्वाणप्राप्ति नही है। उसे वह शारीरिक और मानसिक स्तर तक ही समझ पा रहा है। उसके आगे आत्मिक स्तर तक अभी उसकी पहुँच नहीं है। पर हमारे यहाँ ध्यानयोग की साधना भोग की प्रतिक्रिया का फल नही है। उसका उद्देश्य महान् है। वह चरस, गाँजा का विकल्प नही है और न है कोरा मन का वैलासिक उपकरण। उसके द्वारा आत्मा के स्वभाव को पहचान कर उसमे रमण करने की चाह जागृत की जाती है, चित्तवृत्ति का निरोध किया जाता है—इस प्रकार कि वह जड नही बने, वरन् सूक्ष्म होती हुई शून्य हो जाय। रिक्तता नही, वरन् अनन्त शक्ति और आनन्द से भर जाय।

ध्यान . शक्ति और शांति का स्रोत

आज की प्रमुख समस्या शान्ति की खोज की है। शान्ति आत्मा का स्वभाव है। वह स्थिरता और एकाग्रता का परिणाम है। आज का मानस अस्थिर और चचल है। शान्ति की प्राप्ति के लिए मन की एकाग्रता अनिवार्य है। पर मन आज चलायमान है। 'योगशास्त्र' मे मन की चार दशाओ का वर्णन किया गया है—

(१) **विक्षिप्तदशा**—आज विश्व का अधिकाश मन इसी दशा को प्राप्त है। मस्तिष्क के अत्यधिक विकास ने मन को विक्षिप्त बना दिया है। वह लक्ष्यहीन, दिशाहीन हो कर इधर-उधर भटक रहा है। वह अत्यन्त चचल, अस्थिर और निर्बल बन गया है। उसे इन्द्रिय-भोगो ने सतृप्ति के बदले दिया है—सत्रास, तनाव और तृष्णा का अलघ्य क्षेत्र। कुठा और अत्यधिक निराशा तथा थकान के कारण वह विक्षिप्त हो कर निरुद्देश्य भटकता है।

(२) **यातायात-दशा**—विज्ञान ने यातायात और सचार के साधन इतने तीव्र और द्रुतगामी बना दिये हैं कि इस दशा वाला मन गति तो कर लेता है पर

दिशा नही जानता। वह कभी भीतर जाता है, कभी वाहर आता है। किसी एक विषय पर टिक कर रह नही सकता। वह अवसरवादी और दलवदलू वन गया है। वह किसी के प्रति वफादार नही, प्रतिवद्ध नही, आत्मीय नही। वह अपने ही लोगो के वीच पराया है। आज के युग की यह सवसे वडी दर्दनाक मानव-पीडा है। इस अस्थिरता और चंचलता के कारण वह सवको नकारता चलता है, किसी का अपना वन कर रह नही पाता।

(३) **श्लिष्ट-दशा**—इस दशा का मन कही स्थिर होने का प्रयत्न तो करता है, पर उसकी स्थिरता प्राय. क्षणिक ही होती है। दूसरे, वह अपवित्र, अशुभ व वाह्यविपयो मे ही स्थिर रहने का प्रयत्न करता है। शास्त्रीय दृष्टि से आर्त एव रौद्र-ध्यान की स्थिति वाला है यह मन। जहाँ शुभ भावना और पवित्रता नही, वहाँ शान्ति कैसे टिक सकती है। पश्चिम का वैभवसम्पन्न मानस इसी दशा का है।

(४) **सुलीन-दशा**—इस दशा का मन शुभ एवं पवित्र भावनाओ मे स्थिर रह कर एकाग्रता व दृढता प्राप्त करता है।

ध्यान-साधना का मुख्य लक्ष्य मन को सुलीन दशा मे अवस्थित करना है।

आज का मानस चंचल, अस्थिर, अनुशासन-हीन और उच्छृखल है। ध्यान उसमे स्थिरता और सन्तुलन की स्थिति पैदा करता है। आज का व्यक्ति गैरजिम्मेदार वनता जा रहा है। उसमे कार्य के प्रति लगन, तल्लीनता और उत्साह नही है। वह अपने ही कर्तव्यो के प्रति उदासीन वन गया है। इसका मुख्य कारण है—चित्त की एकाग्रता का अभाव। इस एकाग्रता को लाने के लिए ध्यानाभ्यास आवश्यक है। पर यह ध्यानाभ्यास आसन और प्राणायाम तक ही सीमित न रह जाय। इसे यम-नियमादि से तेजस्वी वनाना होगा। चित्तवृत्ति को पवित्र और सयमित करना होगा। मन की गति को मोडना होगा। उसे स्वस्थता-प्रदान करना होगा।

ध्यान की भूमिका तैयार करने के लिए उचित आहार-विहार, सत्सग और स्थान की अनुकूलता पर भी दृष्टि केन्द्रित करनी होगी, अन्यथा, ध्यान की ओट मे हम छले जायेंगे और हमारा प्रयत्न आत्म-प्रवचना वन कर रह जायेगा।

आज की प्रमुख समस्या तीव्र और गतिशील जीवन मे भी स्थिर और दृढ रहने की है। ध्यानसाधना इसके लिए भूमि तैयार करती है। वह मानसिक सक्रियता को जड नही वनाती, चेतना के विभिन्न स्तरो पर उसे विकसित करती चलती है। आन्तरिक ऊर्जा को जागरूक वनाती चलती है। उससे आत्मशक्ति की वेटरी चार्ज होती रहती है, वह कमजोर नही होती। यह ध्याता पर निर्भर है कि वह उस शक्ति का उपयोग किस दिशा मे करता है। यहाँ के मनीपी उसका उपयोग आत्मस्वरूप को पहचानने मे करते रहे, जव आत्म-शक्ति विकसित और जागृत हो जाती है, हम उसी तुलना मे विघ्नो पर विजय प्राप्त करते चलते हैं। प्रारम्भ मे हम

भौतिक और बाहरी विघ्नो पर विजय प्राप्त करते हैं; पर जब शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है, तब हम आन्तरिक्त शत्रुओ एव वासनाओ पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं। आज आन्तरिक खतरे अधिक सूक्ष्म और बलशाली बन गये हैं, उन्हे वशवर्ती बनाने के लिए ध्यानाभ्यास आवश्यक है।

ध्यान और सामाजिकता का प्रश्न :

ध्यान-साधना आध्यात्मिक ऊर्जा का स्रोत तो है ही, सामाजिक शालीनता और विश्व-बन्धुत्व-भावना की वृद्धि मे भी उससे सहायता मिल सकती है। यह जीवन से पलायन नही, वरन् जीवन को ईमानदार, सदाचारनिष्ठ, कलात्मक और अनुशासनबद्ध बनाये रखने का महत्वपूर्ण साधन है। यह एक ऐसी सगम-स्थली है, जहाँ विभिन्न धर्मों, जातियो और सस्कृतियो के लोग एक साथ मिल-बैठ कर परम सत्य से साक्षात्कार कर सकते हैं, अपने आपको पहचान सकते हैं, शर्त केवल यही है कि इसे भोगोन्मुख होने से रोका जाय।



अट्टरूद्दाणि वज्जिता झाएज्जा सुसमाहिए।
धम्मसुक्काइं झाणाइं, झाण तं तु बुहा वए॥

उत्तराध्ययन सू० ३६ अ० ३०

आर्त और रौद्र ध्यान को छोड कर सुसमाहित साधक जो धर्मध्यान और शुक्लध्यान ध्याता है, ज्ञानीजन उसे ही ध्यानतप कहते हैं।

ओम चित्तं समादाय झाणं समुपज्जइ।
धम्मे ठिओ अविमणे निव्वाणमभिगच्छइ॥

—दशाश्रुतस्कन्ध ५।१

चित्तवृत्ति निर्मल होने पर ही ध्यान की सही स्थिति प्राप्त होती है। जो विना किसी विमनस्कता के निर्मल मन से धर्म (ध्यान) मे स्थित है, वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

निर्वाण-साधना में बाधक : भौतिक उपलब्धियाँ

—मुनि नेमिचन्द्र

[निर्वाण आध्यात्मिक विकास की चरम उपलब्धि है। उस उपलब्धि के पथ पर बढ़ने वाले साधक के चरणो मे भौतिक उपलब्धियाँ भी स्वत लोटने लगती हैं। किन्तु निर्वाण का पथिक उन भौतिक उपलब्धियो, विभूतियो की मोहिनी मे उलझता नही है, अगर उलझ गया तो बस' यहाँ प्रस्तुत है, उन भौतिक उपलब्धियो की मोहिनी से बचे रहने की एव विचारोत्तेजक चेतावनी प्रसिद्ध विचारक एव लेखक मुनिश्री नेमिचन्द्रजी की लोहलेखनी द्वारा]

—सम्पादक

भ० महावीर का यह सिद्धान्त था कि निर्वाण-साधना मे बाधक विघ्नो, कष्टो, परिपहो और उपसर्गों के सह लेने पर अनेक लोग—देवता और मानव ही नही, प्रकृति भी अनुकूल हो जाती है, पृथ्वीकाय आदि के असज्ञी जीव भी अनुकूल हो जाते है। मतलब यह कि कठोर साधना मे उत्तीर्ण होने के बाद साधन को कई प्रकार की सिद्धियाँ, लब्धियाँ, विभूतियाँ, अतिशय या चमत्कार प्राप्त हो जाते हैं, देवताओ का आगमन, आकाश, मे उड्डयन, वैभवसूचक छत्रचामरादि विभूतियाँ प्राप्त हो जाती हैं, लेकिन साधक इन सबसे निर्लेप न रहे, इनके प्रवाह मे बह जाए तो वह सारी साधना को मटियामेट कर देता है। साधना से निर्वाण प्राप्त करने या कर्मक्षय करने के बदले वह मोहमाया, प्रसिद्धि और आडम्बर मे और अधिक फँसता जाता है, भक्तो की जमघट और सेवा करने वालो की होड उसके साधनामय जीवन को चौपट करते देर नही लगाते। अतः इनसे प्रतिक्षण सावधान रहना चाहिए, **चरे पयाइं परिसंकमाणो**—कदम फूँक-फूँक कर रखना चाहिए।

निर्वाणवादी भ० महावीर उपर्युक्त सिद्धान्त की कसौटी मे खरे उतरते हैं। वे देवो और मानवो की सहायता से निरपेक्ष रहते थे; उन्हे कई प्रकार की लब्धियाँ

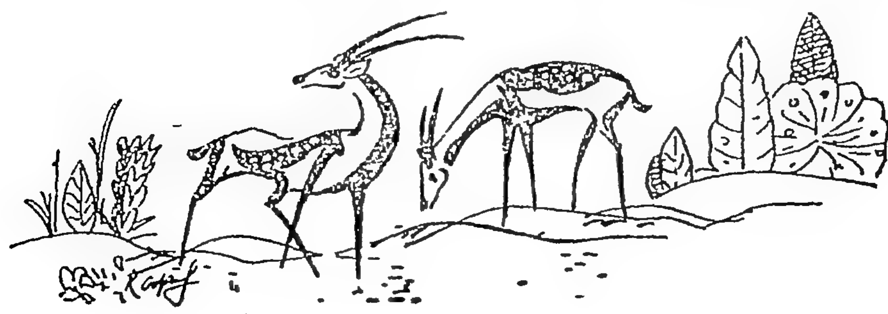
और सिद्धियाँ प्राप्त भी हुईं, लेकिन कभी उनका प्रयोग उन्होने अपने लिए खासतौर से दूसरो को दु खी करने के लिए नही किया। वे चाहते तो अपने पर कष्टो का कहर बरसाने वालो को अपने तपोबल से भस्म कर सकते थे, इन्द्र आदि को आदेश दे कर या इशारा करके वे उन्हें उनके किये का बदला ले सकते थे। लेकिन इन सब को साधक के जीवन मे सबसे अधिक बाधक या निर्वाण मे विघ्नकारक समझ कर उन्होने कभी इनका प्रयोग नही किया। केवल ज्ञान प्राप्त होने से पहले तक भी छद्मस्थ-अवस्था के साधनाकाल मे भी महावीर ने इस बारे मे जरा भी प्रमाद नही किया। वे भौतिक उपलब्धियो को कर्मक्षय करने मे रुकावट डालने वाली समझते थे। सहज-भाव से जो कुछ अनुकूलता प्राप्त हो गई, उसे ही वे स्वीकार करते थे, परन्तु चला कर उसके लिए लालायित नही रहते थे।

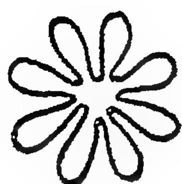
इसी कारण उनकी निर्वाणसाधना निर्विघ्न, निर्दोष और निराबाध चलती रही। उनकी आत्मा कर्मों के भार से दिनानुदिन हलकी होती गई। निर्वाण की पूर्वोक्त परिभाषा के अनुसार उनकी आत्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि विकारो से रहित होती चली गई। प्रसिद्धि का मोह, आडम्बरो और चमत्कार-प्रदर्शनो के द्वारा जनता को आकृष्ट करने की लालसा या वासना उनमे तनिक भी नही थी। अन्यथा, भगवान् चाहते तो कुछ चमत्कार बता कर अनार्यदेशवासी लोगो को अनायास ही अनुकूल बना सकते थे। चडकौशिक सर्प को मत्र द्वारा वश मे कर सकते थे। परन्तु महावीर को यह कदापि अभीष्ट नही था। वे अपना महावीरत्व साधना मे पुरुषार्थ करके निर्वाण प्राप्त करने मे दिखाना चाहते थे, कर्मों से जूझ कर विजय प्राप्त करने मे ही उन्हे वीरत्व प्रतीत होता था। यही कारण है कि महावीर जादू, टोने, मत्र-तत्र, आदि अन्धविश्वासो से स्वय भी दूर रहे और जनता को भी इनके चक्कर मे नही फँसाया। अपने अनुगामी साधु-साध्वियो को भी उन्होने जादू-मत्र आदि के प्रयोगो के लिए निषेध किया। उन्होंने कहा—

नक्खत्त सुमिणं जोग निमित्त मंतभेसजं।
गिहिणो त न आइक्खे, भूयाहिगरण पय॥

दशवैकालिक अ० ८ गा० ४८

साधक ग्रह, नक्षत्र, स्वप्न, योग, निमित्त (भविष्यवाणी), मत्र, भैषज्य आदि वातें गृहस्थो को न बताए। क्योकि इनसे प्राणियो की विराधना होने की सभावना है।





निर्वाणसाधना में कर्मक्षय की अनिवार्यता

—डा० पन्नालाल साहित्याचार्य, सागर



लोक षड्द्रव्यो का समूह है। छह द्रव्यो मे जीव और पुद्गल द्रव्य मे वैभाविक शक्ति है, जिसके कारण वे कारणो से प्रभावित हो कर विकृत परिणमन करने लगते हैं। जीव मे रागादिभाव होना उसका विकृत परिणमन है और पुद्गल मे कर्मस्कन्धादि रूप परिणमन होना उसका विकृत परिणमन है। जीव का विकृत परिणमन पुद्गल कर्म की उदयावस्था के कारण होता है और पुद्गल का विकृत परिणमन जीव की रागादि अवस्था के कारण। जीव और कर्म-नोकर्मरूप पुद्गल का सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। जीव की चतुर्गतिरूप ससारी पर्याय शुद्ध जीव की पर्याय नही है, किन्तु जीव और पुद्गल के संयोग से निर्मित सयोगी पर्याय है। संयोगी पर्याय के कारण जीव की ससारी अशुद्ध पर्याय कहलाती है और सिद्ध-परमेष्ठी की पर्याय परद्रव्य से रहित होने के कारण शुद्ध पर्याय कही जाती है।

जब तक जीव और कर्म-नोकर्म रूप पुद्गल का सम्बन्ध रहता है, तब तक जीव की ससार-पर्याय रहती है और जब समस्त कर्मों से रहित जीव की अवस्था हो जाती है, तब सिद्ध-अवस्था प्रकट हो जाती है। इस सन्दर्भ मे विचार करने की बात यह है कि जब जीव और कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलद्रव्य स्वतन्त्र है स्वतन्त्र द्रव्य हैं, तब इनका सयोग कैसे हो गया ? जब इनके सयोग के कारणो पर विचार करते हैं, तब आस्रव और बन्ध तत्व की ओर लक्ष्य जाता है। आत्मा अपनी योगशक्ति—मन वचन, काय के निमित्त से होने वाले परिष्पन्द के कारण कर्म-नोकर्म-पुद्गलो को ग्रहण करता है तथा मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद और कषाय के कारण उन गृहीत पुद्गल-स्कन्धो को स्थिति और अनुभाग दे कर बन्ध-अवस्था को प्राप्त कराता है, यही आस्रव और बन्ध तत्व है। आस्रव और बन्ध का फल संसार है।

ससार-भ्रमण से छूट कर मुक्त-अवस्था प्राप्त करना जीव का उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति तब तक नही हो सकती, जब तक आत्मा मे आने वाले नूतन कर्मों के प्रवेश पर नियन्त्रण नही किया जाता। यह नियन्त्रण ही शास्त्रीय भाषा मे सवर कहलाता है। संवर हो जाने पर भी जब तक सत्ता मे स्थित कर्म-नोकर्म के प्रदेशो को आत्मा से पृथक् नही किया जाता, तब तक सकल कर्म से रहित मोक्षपर्याय का

प्रकट होना असभव है। इसलिए तपश्चरणादिरूप पुरुषार्थ के द्वारा कर्मक्षय का पुरुपार्थ करना आवश्यक है। जीव का यह पुरुषार्थ क्रम-क्रम से ही पूर्ण होता है। कर्मों के इस क्रमिक पृथक्करण को निर्जरा कहते हैं। इस प्रकार सवर और निर्जरा के द्वारा जब आत्मप्रदेशो से समस्त कर्म-प्रदेश पृथक् हो जाते हैं, तब मोक्ष होता है। मोक्ष का अर्थ छूटना है, छूटना बन्धपूर्वक होता है अर्थात् पहले बन्ध-पर्याय होती है और उसके बाद मोक्षपर्याय। बन्ध अपने कारणो से होना है और मोक्ष अपने कारणो से। बन्ध के कारण मिथ्यादर्शनादि हैं और मोक्ष के कारण सम्यक्दर्शनादि हैं।

*हे प्राणी ! तू बन्ध और मोक्ष के कारणो का सही-सही निर्णय कर मोक्ष-*प्राप्ति की दिशा मे चलने का पुरुषार्थ कर तो सही। अपने आपको अकर्मण्य मान कर पुरुपार्थहीन क्यो हो रहा है ? देख, विपरीतदिशा मे होने वाला पुरुपार्थ तुझे इष्ट स्थान मे नही पहुँचा सकेगा, यह ध्रुव सत्य है। इसलिये एक बार मार्ग का सही निर्धारण अवश्य कर ले, फिर चलना प्रारम्भ कर दे।

विपरीत अभिप्राय को दूर कर आत्मा को ज्ञायक-स्वभाव का परिज्ञान प्राप्त करना और उसी ज्ञायक स्वभाव मे लीन हो जाना। यह अभेद रत्नत्रय ही मोक्ष का साक्षात् मार्ग है। इस अभेद-रत्नत्रय की साधना मे जो साधक होता है, वह भेद रत्नत्रय भी उपचार से मोक्षमार्ग कहलाता है। अभेदरत्नत्रय स्वय प्रकट होता है और भेदरत्नत्रय बुद्धिपूर्वक ग्रहण किया जाता है। भेदरत्नत्रय की साधना से अभेद-रत्नत्रय की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। इसलिये जो कार्य तेरे बुद्धिगोचर है, उसे श्रद्धा के साथ कर। अवसर आने पर अभेदरत्नत्रय भी प्रकट हो जायगा और उसके माध्यम से तू कर्मबन्धन विमुक्त हो जायगा।

इस सन्दर्भ मे कर्मस्वरूप, उसके भेद और उनसे छूटने की प्रक्रिया पर भी विचार कर लेना अपेक्षित है।

कर्मस्वरूप और उनके भेद :

पुद्गल द्रव्य की २३ वर्गणाओ मे एक कार्मण वर्गणा है, जो लोक मे सर्वत्र व्याप्त है और विस्रसोपचय के रूप मे प्रत्येक आत्मा के साथ सलग्न हो रही है। आत्मा को रागादिभावो का निमित्त पा कर वे कार्मण वर्गणा के परमाणु कर्मरूप परिणत हो जाते है। इन परमाणुओ की विविध जातियो मे आठ जातियाँ प्रमुख हैं, जो जैनागम मे १ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, - नाम, ७ गोत्र और ८ अन्तराय के नाम से प्रख्यात हैं, इनके उत्तर भेद १४८ हैं। कर्मप्रकृतियाँ अपने नाम के अनुसार आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि गुणो को आवृत

करती है—प्रकट नही होने देती हैं।[1] इस कर्मरूप पुद्गलद्रव्य की ऐसी कोई अनिर्वचनीय शक्ति है, जो आत्मा के केवलज्ञानस्वभाव को भी आच्छादित कर देती है। यह कर्म का सम्बन्ध यद्यपि अनादिकाल से चला आ रहा है, तथापि दुरानुदूर भव्य को छोड अन्य भव्यो का समय आने पर छूट जाता है। अभव्य तथा दूरानुदूर भव्य का उपादान इस प्रकार का है कि उसे अनन्तकाल तक इसी अवस्था मे रहना पडता है—चतुर्गति के चक्र मे उसे निरन्तर घूमना पडता है।

भव्यजीव का संसारभ्रमण का काल जब अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण शेष-रह जाता है, तब वह सम्यक्दर्शन प्राप्त करने के योग्य होता है। मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति और अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, मायानु, लोभ इन सात प्रकृतियो का उपशम कर वह औपशमिक सम्यगदर्शन प्राप्त करना है। इसके अनन्तर क्षायोपशमिक अथवा वेदक सम्यक्त्व प्राप्त करता है। कदाचित् क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर मिथ्यात्व के प्रपच से सदा के लिये वञ्चित हो जाता है। सम्यक्ज्ञान तो सम्यग्दर्शन का सहभावी है, परन्तु सम्यक्चारित्र, सम्यक्दर्शन के साथ होता भी है और नही भी होता। इतना अवश्य निश्चित है कि वह देर-सवेर सम्यक्चारित्र को अवश्य प्राप्त करना है।

सम्यग्दृष्टि जीव की यह श्रद्धा होती है कि राग-द्वेषादिक मेरे स्वभाव मे नही हैं, अत प्रारम्भिक गुणस्थानो मे राजादिक के रहते हुए भी वह छद्मस्थ वीतराग के समान अनुभव मे आता है। चार ध्यानो मे शुक्लध्यान का महत्व सर्वोपरि है, क्योकि कर्मवन्धनो को काटने वाला और कोई ध्यान नही है। शुक्लध्यान के पृथक्त्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्कवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरत क्रियानिर्वति के नाम से चार भेद हैं। इनमे से पहला शुक्लध्यान मोहनीय कर्म के क्षय का आयोजन करता है। इसके प्रभाव से दशमगुणस्थान के अन्त तक मोहनीय कर्म की समस्त प्रकृतियो का क्षय हो जाता है और उसके फलस्वरूप आत्मा छद्मस्थ वीतराग हो कर वारहवें गुणस्थान मे पहुँचता है वहाँ द्वितीय शुक्लध्यान के प्रभाव से शेष तीन घातिया कर्मों तथा नामकर्म की तेरह प्रकृतियो का क्षय करता है। भुज्यमान आयु को छोड़ शेष तीन आयुकर्म सत्ता मे ही नही रहते इसलिए उनका क्षय अयत्नसाध्य होता है। इस प्रकार ६३ प्रकृतियो का क्षय कर यह मानव सर्वज्ञ-वीतराग वनता है। केवलज्ञान के द्वारा संसार के समस्त पदार्थों का ज्ञाता हो जाता है। इस समय यह तेरहवें गुणस्थान मे रह कर दिव्यध्वनि के द्वारा संसार के असंख्य जीवों का कल्याण करता है। इस गुणस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक करोड वर्ष पूर्व है।

---

१ कापि अपुव्वा दीसइ पुग्गल दव्वस्स एरिसी सत्ती।
केवलणाणसहावो जीवस्स विणासिदो जेण॥ कार्तिकेयानुप्रेक्षा

जब तेरहवें गुणस्थान का काल अन्तमुहूर्त प्रमाण बाकी रहता है और मनोयोग, तथा वचनयोग नष्ट हो कर जब काययोग भी सूक्ष्मस्पन्दन को प्राप्त होता है, तब सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम का तृतीय शुक्लध्यान प्रकट होता है और उसके द्वारा पूर्व समय से असंख्यातगुणी निर्जरा करता है। स्मरण रखने की बात है कि तेरहवें गुणस्थान मे क्षय तो एक भी प्रकृति का नही होता है परन्तु निर्जरा सबसे अधिक होती है। इसके पश्चात् 'व्युपरतक्रियानिर्वति' नामक शुक्लध्यान का चौथा भेद प्रकट होना है और उसके माध्यम से उपान्त्य समय मे बहत्तर कर्म प्रकृतियो का और अन्त्य समय मे शेष तेरह प्रकृतियो का क्षय करके यह जीव एक समय मे ऋजुगति से जा कर त्रिलोकशिखर मे स्थिर हो जाना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि **निर्वाणसाधना में कर्मक्षय की अनिवार्यता हैं।** सौ टच का स्वर्ण तभी कहा जाता है, जब उसमे किट्टकालिमा का एक भी कण विद्यमान नही रहता। उसी प्रकार निर्वाण की साधना भी तभी होती है, जब आत्मा मे कर्मकालिमा का एक भी कण नही रहता है। इस निर्वाणधाम मे पहुँचा हुआ जीव, शाश्वत सुख का उपभोक्ता होता है, सैकडो कल्पकाल बीत जाने पर भी वह वहाँ से विचलित नही होता।



अट्ठकम्माइं वोच्छामि, आणुपुव्विं जहक्कमं।
जेहिं बद्धो अय जीवो, ससारे परिवत्तए॥

मैं अनुक्रम से आठ कर्मों का वर्णन करूँगा, जिनसे बधा हुआ यह जीव ससार मे परिभ्रमण करता है।

तम्हा एएसिं कम्माण अणुभागे वियाणिया।
एएसिं संवरे चेव, खवणे य जहा बुहे॥

इसलिए इन कर्मों के अनुभागो (रसो) को जान कर बुद्धिमान साधक इनका सवर (रोकने) और क्षय करने का प्रयत्न करे।

विगिंय च कम्मणो हेउं, जस सचिणु खतिए।
सरीर पाढव हिच्चा, उड्ढ पक्कमई दिस॥—उत्तरा०

कर्मबन्ध के कारणो को ढूँढो, उनका छेदन करो, और फिर क्षमा आदि के द्वारा अक्षय यश का सचय करो। साधक पार्थिव शरीर को छोड कर, ऊर्ध्व गति (मोक्ष स्वर्ग) को प्राप्त करता है।

करती है—प्रकट नही होने देती है।[1] इस कर्मरूप पुद्गलद्रव्य की ऐसी कोई अनिर्वचनीय शक्ति है, जो आत्मा के केवलज्ञानस्वभाव को भी आच्छादित कर देती है। यह कर्म का सम्बन्ध यद्यपि अनादिकाल से चला आ रहा है, तथापि दुरानुदूर भव्य को छोड अन्य भव्यो का समय आने पर छूट जाता है। अभव्य तथा दूरानुदूर भव्य का उपादान इस प्रकार का है कि उसे अनन्तकाल तक इसी अवस्था मे रहना पडता है—चतुर्गति के चक्र मे उसे निरन्तर घूमना पडता है।

भव्यजीव का ससारभ्रमण का काल जब अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण शेष-रह जाता है, तब वह सम्यक्दर्शन प्राप्त करने के योग्य होता है। मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति और अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, मायानु, लोभ इन सात प्रकृतियो का उपशम कर वह औपशमिक सम्यगदर्शन प्राप्त करना है। इसके अनन्तर क्षायोपशमिक अथवा वेदक सम्यक्त्व प्राप्त करता है। कदाचित् क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर मिथ्यात्व के प्रपच से सदा के लिये वञ्चित हो जाता है। सम्यक्ज्ञान तो सम्यग्दर्शन का सहभावी है, परन्तु सम्यक्चारित्र, सम्यक्दर्शन के साथ होता भी है और नही भी होता। इतना अवश्य निश्चित है कि वह देर-सवेर सम्यक्चारित्र को अवश्य प्राप्त करना है।

सम्यग्दृष्टि जीव की यह श्रद्धा होती है कि राग-द्वेषादिक मेरे स्वभाव मे नही हैं, अत प्रारम्भिक गुणस्थानो मे राजादिक के रहते हुए भी वह छद्मस्थ वीतराग के समान अनुभव मे आता है। चार ध्यानो मे शुक्लध्यान का महत्व सर्वोपरि है, क्योकि कर्मवन्धनो को काटने वाला और कोई ध्यान नही है। शुक्लध्यान के पृथक्त्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्कवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरत क्रियानिर्वर्ति के नाम से चार भेद हैं। इनमे से पहला शुक्लध्यान मोहनीय कर्म के क्षय का आयोजन करता है। इसके प्रभाव से दशमगुणस्थान के अन्त तक मोहनीय कर्म की समस्त प्रकृतियो का क्षय हो जाता है और उसके फलस्वरूप आत्मा छद्मस्थ वीतराग हो कर वारहवें गुणस्थान मे पहुँचता है वहाँ द्वितीय शुक्लध्यान के प्रभाव से शेष तीन घातिया कर्मों तथा नामकर्म की तेरह प्रकृतियो का क्षय करता है। भुज्यमान आयु को छोड शेप तीन आयुकर्म सत्ता मे ही नही रहते इसलिए उनका क्षय अयत्नसाध्य होता है। इस प्रकार ६३ प्रकृतियो का क्षय कर यह मानव सर्वज्ञ-वीतराग वनता है। केवलज्ञान के द्वारा संसार के समस्त पदार्थों का ज्ञाता हो जाता है। इस समय यह तेरहवें गुणस्थान मे रह कर दिव्यध्वनि के द्वारा ससार के असख्य जीवो का कल्याण करता है। इस गुणस्थान का जघन्यकाल अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तमु हूर्त कम एक करोड वर्ष पूर्व है।

---

१. कापि अपुव्वा दीसइ पुग्गल दव्वस्स एरिसी सत्ती।
केवलणाणसहावो जीवस्स विणासिदो जेण॥ कार्तिकेयानुप्रेक्षा



महावीर तव अभिनन्दन है।

श्री विपिन जारोली



महावीर तव अभिनन्दन है।
ज्ञातपुत्र, त्रिशलानन्दन, वीर जिनेश्वर वन्दन है।
महावीर तव अभिनन्दन है।

श्रमण संस्कृति के अधिनायक,
सत्य-अहिंसा के चिर गायक,
मुक्ति-मार्ग के अमर पथिक, तव कोटि-कोटि जिनका वन्दन है।
महावीर तव अभिनन्दन है।

चण्ड, माली उद्धारक नरवर,
शूद्र, नारी के तारक जिनवर,
मूक प्राणियो के चिररक्षक, जिनवाणी के जीवनधन है।
महावीर तव अभिनन्दन है।

आज बढ़ रहे एटम-अणुबम,
अंधकार शोषण का दुर्दम,
पिसती-कराहती मानवता, कर रही तुम्हारा आह्वान है।
महावीर तव अभिनन्दन है।

:०:—:०:

निर्वाणसाधना के लिए



महावीर का स्वतन्त्र चिन्तन

विद्वद्रत्न मुनि राम कृष्णजी म०



अन्तरिक्ष मे स्वतन्त्रता से विचरण करने वाला सूर्य किसी दूसरे ग्रह से प्रकाश लेकर ज्योतिर्मय नही होता। उसका अपना स्वतन्त्र प्रकाश होता है। अखिल अन्तरिक्ष की भूमा मे सूर्य ही एक ऐसा ग्रह है, जो अपने ही प्रकाश मे अपनी परिक्रमा कर रहा है। इस विस्तीर्ण वसुधा पर महापुरुष ही एक ऐसा व्यक्ति है, जो अपने ही प्रकाश मे अपनी यात्रा करता है। मार्ग बना-बनाया नही मिलता। जो मार्ग बनाता है, वह महापुरुष है।

भारत का एक सत्पुत्र, कुण्डग्राम का एक राजकुमार भिक्षुक-जीवन मे प्रवेश करता है। भिक्षुकजीवन साधना का मार्ग है। साधनाजीवन 'विश्लेपण की एक विशिष्ट प्रक्रिया है, जहाँ आत्मा का पौरुष प्रदीप्त किया जाता है। महावीर के नाम से पुकारा जाने वाला यह राजकुमार पौरुष को प्रदीप्त करने के लिए निर्वाण-साधना के मार्ग पर अवतीर्ण होता है। वह आत्म-ज्योति के प्रादुर्भूत होने तक निश्चित सकल्प के साथ वृक्ष के नीचे ध्यान लगा कर बैठ जाता है। इस महनी प्रक्रिया के लिए उसका चिन्तन पूर्ववर्ती धर्म-ग्रन्थो और 'धर्म-वीथियो से उन्मुक्त हो कर स्वतन्त्र था। तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परम्परा के विद्यमान होते हुए भी, राजकुमार भिक्षुक उसके पीछे नही चला। श्रुति और स्मृतियो को उसने अपना पथ-प्रदर्शक नही माना, क्योकि प्रत्येक युग का वातावरण नया होता है। उसमे मार्ग-निर्माण के लिए अभिनव स्वानुभूति आवश्यक है। अत. महावीर का चिन्तन स्वतन्त्र होने से उनका पौरुष स्वतन्त्र था। इस भिक्षुक ने इस परम सत्य को सबके सामने प्रस्तुत किया। उसने अपने पीछे चलने के लिए जन-समूह से कभी आग्रह नही किया।

चूँकि निर्वाण साधना के लिए महावीर धर्माचरण को अत्यन्त आवश्यक मानते थे। और धर्म वास्तव मे मनुष्य मे छिपे पशुत्व की परिशुद्धि के लिए ही है। धर्म की सर्व-प्रथम प्रक्रिया मानव-जीवन मे पशुत्व के निराकरण मे होती है। इसीलिए भगवान् महावीर ने अपने प्रवचन मे जीवन के क्रमिक विकास मे मनुष्यत्व की उपलब्धि को सबसे पहले स्वीकृत किया। पशुत्व के निराकरण के बिना विशुद्ध मानवता की उपलब्धि सम्भव नही हो सकती। विशुद्ध मानवता के बिना निर्वाण साधना का प्रारम्भ नही होता।



दे कर मुक्तिप्राप्ति मे किन्ही पर प्रतिबध लगा दिया हो, लेकिन महावीर के सिद्धान्त ऐसा करने के लिए कोई निर्देश नही करते हैं।

वर्ण :

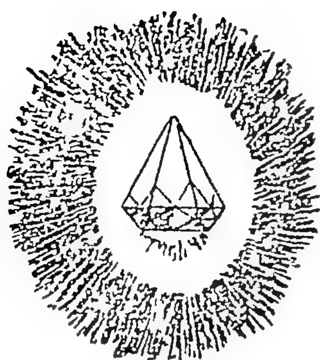
आर्यसस्कृति मे चार वर्ण माने गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र। इनमे से ब्राह्मणवर्ण वाले मुक्ति के अधिकारी एव धर्माधिकारी माने जाते रहे हैं। वे ही जन्म से पवित्र एव धर्मानुग वदनीय एव पूजनीय रहते आये हैं। वीर-शासन मे मुक्ति के लिए कर्म से ब्राह्मणत्व एव क्षत्रियत्व प्रधान माने हैं। चाहे वह वर्ण का वैश्य हो अथवा शूद्र हो। किसी भी वर्ण का कोई भी भव्यात्मा अपनी आत्मा को सम्यक्ज्ञान दर्शन और चारित्र के बल पर मुक्ति का वरण कर सकता है। शूद्र से शूद्र भी आत्माभिमुख होता हुआ महानिर्वाणपद को पा सकता है। कर्मक्षय करने मे और जीवो के सहकार मे क्षत्रियत्व, ज्ञानसम्पादन में ब्राह्मणत्व, गुणग्रहण मे वैश्यत्व और प्राणिमात्र की सेवा और सहकार मे शूद्रत्व वरणीय है। वीर का फर्मान है कि कोई भी वर्ण न स्थाई है और न स्थाई रहेगा। आत्मा स्थाई है। अतः ऊपर के आवरणो से भेद कल्पना करना और अपने सस्कारो मे रही हुई घृणा को स्थान देना अनुपयुक्त है। निर्वाण-मार्ग मे भेदवृत्ति बाधक है।

रूप-रग को भी वर्ण कहा गया है। मानव किसी भी रग का हो, आत्मोत्कर्ष करने का अधिकारी है। काला, पीला, लाल और श्वेत रग देह के हैं और कार्माण वर्गणा के हो सकते हैं, लेकिन आत्मा के नही। आत्मा चिन्मय है, प्रकाशपुञ्ज है। अत इसमे वर्ण का भेदाभेदज्ञान, अज्ञान एव कुज्ञान का परिणाम है।

किसी भी वर्ण के मानव-मानवी जब सम्यक्त्व-सत्यज्ञान को पा जाते है और मोहकर्म का क्षय करने के हित चारित्र को अगीकार कर लेते है, उस आत्म-साधना की वृत्ति मे वे सभी आत्मा गुणोत्कर्ष करते हुए मोक्ष को चले जाते हैं। वहाँ ऊँच-नीच वर्ण एव शरीर के रूप-रग कोई बाधक नही बनते। हरिकेशी आदि श्वपच योनि के असख्य साधक निर्वाण को प्राप्त कर चुके हैं और आर्यक्षेत्र के दक्षिणी और उत्तरी विश्व के असंख्य अनेक रूपरंग वाले मानवो ने निर्वाण को पा लिया है।

वेष :

मानव-मानवियो के वेष; देश, काल और परिस्थितिवश भिन्न होते हैं, लेकिन आत्माभिमुख प्रवृत्ति के तरीके पृथक् होते हुए भी पहुँच एक है। निर्वाणप्राप्तिमे प्रधान लक्ष्य आत्मसाधना का है। शरीर साधक बन सकता है, लेकिन वेप तो मात्र परिचायक रह सकता है। किसी भी वेष मे निर्वाणाभिमुखी आत्मा, मुक्त हो सकता है। वाह्य वेष परिग्रहमय है, अत. हेय है। समाज मे और अपने साधकवर्ग मे सीमित



निर्वाण-दृष्टि से वर्ण, वेष, लिंग, वय और संघ का कितना महत्व ?

पं० उदय जैन—कानोड़



[पं० उदय जैन जाने-माने विद्वान्, विचारक एवं शिक्षा-शास्त्री हैं। दूसरे शब्दों में कहे तो जवाहर विद्यापीठ, कानोड़ के माध्यम से समाज की भावी पीढ़ी के जीवन-निर्माता हैं। आपका चिन्तन तर्क और श्रद्धा से संतुलित है। निर्वाण के लिए वर्ण, वेष, लिंग, वय और संघ का कितना महत्व है ? यह आपके चिन्तन के प्रकाश में पढ़िये—स०]

आत्मा का कार्माणवर्गणा से पृथक् होना अथवा कपाय से मुक्ति पाना सच्चा निर्वाण है। यो निर्वाण का अर्थ मुक्ति से और देहावसानक्रिया से भी लिया जाता है। शरीर से छुटकारा पाना निर्वाण है। महापुरुष का शरीर से छूटना महानिर्वाण कहला सकता है।

वेदान्त और जैनदर्शन मुक्ति की प्रधानता से निर्वाण का मूल्याकन करते ह। अत अनन्तज्ञान एव सच्चिदानदमय दशा की प्राप्ति, निर्वाण का द्योतक है। महा-प्रयाण भी निर्वाण का पर्यायवाची है। जन्म-मरण के लिए देह-त्याग, प्रयाणक्रिया मे आता है। जन्म-मरण से मुक्तिरूप देह-त्याग—सदा के लिए अमरत्व की प्राप्ति महाप्रयाण हो जाता है अथवा साधारण जनसमुदाय के मानव की मृत्यु प्रयाण और महापुरुष की मृत्यु महाप्रयाण बन जाती है।

निर्वाण, सत्य माने मे सर्वज्ञ महावीर के इस पच्चीसवी शती-महोत्सव के अवसर पर पुनर्जीवित हुआ मालूम पडता है। निर्वाण-महोत्सव-महावीर भगवान् के मोक्षगमन के अर्थ मे लिया जा रहा है। यो भगवान् महावीर के उपदेशानुसार जो भी जीवात्मा, परमात्मा बनने की योग्यता सम्पादन कर, देह-विसर्जन करते हैं, वे सभी निर्वाणगामी होते हैं, ऐसा माना जाता है।

आत्मा के चरमोत्कर्ष का मार्गानुसरण सभी जीवो के लिए खुला हुआ है। किसी भी जाति, वर्ण, वर्ग, लिंग अथवा वय का कोई प्रतिबंध वीर-संघ मे नही माना गया है। हमारे बुद्धिजीवियो ने भेदभाव की प्रवृत्त होती हुई मनोवृत्ति को स्थान

एक-एक वृद्ध आत्मा आत्मदर्शन नही कर पाता और एक-एक गजसुकुमाल जैसे बालक गुणस्थान की उत्तम स्थिति को पा कर निर्वाण को पा सकते हैं। अतः उम्र की सीमा साधना के लिए किन्ही अशो मे सामाजिक व्यवस्था मे ग्राह्य हो सकती है, लेकिन मुक्तिमार्ग मे यह कसौटी झूठी साबित हुई है। आत्मविकास का शरीरविकास से सामान्य सम्बन्ध हो सकता है, लेकिन वास्तविक कोई सम्बन्ध नही है। वीर के शासन मे आत्मिक गुणो की उपलब्धि के साथ निर्वाणप्राप्ति मे उम्र का बधन कही भी नही है।

संघ :

संघ की महत्ता आत्मिकविकास मे सहयोग दे सकती है। तीर्थ की रचना का मूर्तरूप सघ कहलाता है, लेकिन वर्तमान का विभिन्न रूपो मे बिखरा हुआ संघ, सघ नही है। यह तो सम्प्रदायें और पथ हैं। इन सघ-रचनाओ से आत्मा को निर्वाण प्राप्त होना दुष्कर है।

सघ के भीतर और सघ के बाहर भव्यात्माए कल्याणमार्ग मे बढती हुई निरन्तर गति करती हुई मुक्त बन सकती हैं। सघ के भीतर और बाहर कोई भेद-भाव महावीर प्रभु ने कही भी नही बताया। गुणस्थानो मे बढती हुई चौदहवी अवस्था को पाने के लिए सघ मे रहना कोई आवश्यक नही है। कोई महानुभाव उस समय के विचरने एव प्रचार करने वाले बौद्ध आदि सघो मे रहता हुआ भी निर्वाण प्राप्त कर सकता था। सघ साधक अवश्य है। संघ मे रहना भी आवश्यक है, लेकिन आत्माभिमुख चेतनश्री का विकास सघ के बाहर रहने पर भी रुक नही सकता। साधको के लिए मर्यादा-पालन आवश्यक है, लेकिन अनिवार्य नही।

आत्मा की प्रगति के अनुकूल सभी साधन ग्राह्य हैं और प्रतिकूल वर्जनीय हैं। चाहे वे लिंग, वय, वेष, वर्ण और सघ रूप मे ही क्यो न हो।

वर्ण, वेष, लिंग, वय और सघ की निर्वाणदृष्टि से उतनी ही अपेक्षा होनी चाहिए, जितनी साधक को साधना मे जरूरत हो। सभी की महत्ता साधक की स्थिति और आत्मिक विकासभूमिका पर अवलबित है। उपरोक्त पांचो वस्तुएं निर्वाणप्राप्ति पर अनावश्यक हैं। निर्वाणप्राप्ति तक इनकी आवश्यकता है, निर्वाण-प्राप्ति मे इनकी अनिवार्यता नही। इनका सीमाबधन साधक की स्थिति के अनुकूल, परिस्थिति के अनुसार बाधक और साधक बन जाता है। लेकिन सीमाबधन मे आपसी घृणा वर्जनीय है, सीमा का पारस्परिक द्वेष त्याज्य है।

——(०)——

रखने के लिए व्यवहार्य है। सम्प्रदायो के भिन्न-भिन्न वेषो और परिचायक-वेषरहित नग्नावस्था मे रहते हुए आत्मा निर्वाण पा सकता है। वेष लज्जा ढाकने, शीत-उष्ण एव वर्षा आदि की रक्षा के लिए होना चाहिये तथा जिस सम्प्रदाय मे रह कर साधना करता है, वह भले ही रहे, किन्तु उस वेष का मोह नही होना ही निर्वाण-पथ के पथिक की सच्ची पहिचान है। निर्वाणप्राप्ति मे वेष का निश्चितीकरण अस्वाभाविक और आशाश्वत मूल्यो का अकन करता है। अत वेष की महत्ता निर्वाण-दृष्टि से परिहार्य है।

लिग :

स्त्री, पुरुष और नपुंसक तीन लिग माने जाते है। वीर के शासन एव उपदेश तथा परिचर्या मे स्त्री हो या पुरुष अथवा नपुसक, सभी को अपनी आत्मा की उन्नति, निर्वाणप्राप्ति मे समान अवसर और अधिकार दिये हुए है। उचित अवसर मिलने पर निर्वाण प्राप्त हो सकता है। बाह्यलिंग इसके लिए बाधक नही बन सकते। शरीर आत्मा का घर या साधन है। शरीर आत्मा नही। साधन आत्मोत्कर्ष मे साधन बन सकता है, बशर्ते कि आत्मा निर्वाण की ओर गति करे। शरीर के लिगभेद से कामवासनाओ का सम्बन्ध अवश्य होता है, लेकिन जब क्षायिक चारित्रवाला वासनाओ को पारित कर देता है, तब बाह्यलिंग वासना का उत्पादक कैसे बन सकता है? पुरुषलिंग वाला स्त्रीलिंग वाले से और स्त्रीलिंग वाले पुरुषलिंग वाले से तथा नपुसक दोनो लिग वालो के साथ कामवासना का शिकार बनता आ रहा है। इसका यह मतलब नही कि सभी आत्माएँ ऐसी ही हो। सौ मे से ९९वें प्रतिशत कामवासना-ग्रसित आत्माएँ चारित्र का विकास नही कर पाती, लेकिन कुछेक आत्माएँ ऐसी होती हैं, जिनको भोगेच्छा पैदा नही होती है, जिनको भौतिक ज्ञान की तरफ रुचि है वे लिंग पर ध्यान देते रहते हैं। लेकिन आत्माभिरुचिवाला आत्मा, विषयवासना को जीत कर आत्मविजयी बन जाता है, उसके लिए स्त्री, पुरुष और नपुसक सिर्फ हाड मास के पुतले मात्र दिखते हैं। लिंगभेद वासना के कारण है। वासना नष्ट हुई, लिंगभेद नष्ट हुए। अतः किसी भी लिग का आत्मा, आत्मिक गुणो का विकास करता हुआ निर्वाण प्राप्त कर सकता है। मुक्तिप्राप्ति मे बाह्यलिंग बाधक नही, सिर्फ वेद-कामवासना का ज्ञान अथवा भाव बाधक है। अत निर्वेद मुक्ति कही है। जब तक शरीर है, किसी भी लिंग का आश्रय रहेगा ही, बिना शरीर के साधना अशक्य है।

वय :

आत्मोत्कर्ष एव निर्वाणप्राप्ति मे उम्र की सीमा बाधना निरी मूर्खता है। अमुक वय तक ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ एव सन्यासी बन कर जीना, यह सासारिक व्यवस्था हो सकती है, लेकिन आत्मिक साधना मे भवस्थिति की परिपक्वता एव सम्यक्त्व की उपलब्धि के साथ वीर्य की चारित्र मे प्रवृत्ति ही प्रमुख स्थान पाती है।

अनेकान्तसिद्धान्त की प्राचीनता

इस युग के आदि मे धर्म के आदिप्रवर्त्तक भगवान ऋषभदेव ने पदार्थ के अनेकधर्मात्मक होने का उपदेश दिया था। अत. अनेकान्त का सिद्धान्त तो सदैव का ही है। किन्तु भगवान् महावीर के समय मे परस्थितियाँ कुछ जटिल हो गई थी। उस समय एकान्तवाद के कई प्रबल प्रचारक थे और नित्यवाद, अनित्यवाद, क्षणिक वाद आदि बहुत-सी विरोध उत्पन्न करने वाली मान्यताएँ प्रचलित थी। अनेकान्तवाद से सभी धार्मिक विरोध समाप्त हो जाते हैं। अत भगवान महावीर ने पदार्थ का पूर्ण ज्ञान करने के लिये अनेकान्तवाद के सिद्धान्त को ग्रहण करने का उपदेश दिया था। किसी भी पदार्थ को पूर्णरूप से प्रगट करने को यह सूर्य के समान है। कहा भी गया है—

परमागमस्य बीजं, निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्।
सकलनयविलसिताना, विरोधमथन नमाम्यनेकान्तम्॥

अर्थ—जो परमागम का बीज है, जो जन्मान्धो के लिये सूर्य के समान है, और जो सम्पूर्ण नयो से सुशोभित है और पारस्परिक विरोध को दूर करता है, उस अनेकान्त को मैं नमस्कार करता हूँ।

भगवान् महावीर की अनेकान्तवादी दृष्टि

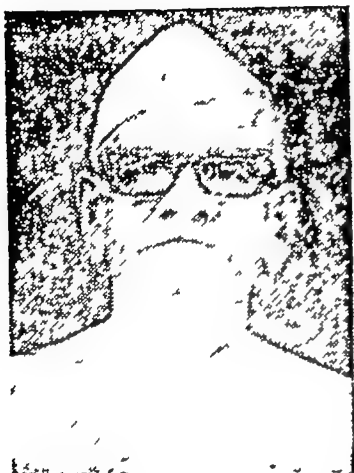
भगवान् महावीर ने कहा था कि वस्तु मे अनन्त धर्म होते हैं। जितने धर्म होते हैं उतने ही एकान्तवाद हो सकते हैं। वे सभी धर्म और सभी एकान्त सापेक्ष होते हैं। उनको सापेक्ष ही ग्रहण करना चाहिये। यही अनेकान्तवाद का सिद्धान्त है। सभी एकान्तवादियो का समन्वय करने के लिये भगवान् महावीर ने अनेकान्तबाद के चार भेद बताये, जैसा कि निम्न श्लोक से ज्ञात होता है—

स्यान्नाशि नित्य सदृश विरूप वाच्य न वाच्य सदसत्तदेव।
विपश्चिता नाथ निपीततत्वसुधोद्गतोद्गारपरम्परेयम्॥

अर्थ—हे विद्वानो के शिरोमणि, आपने अनेकान्तरूपी अमृत को पी कर प्रत्येक वस्तु को कथचित् अनित्य, कथचित् नित्य, कथचित् सामान्य, कथचित् विशेष, कथचित् वाच्य, कथचित् अवाच्य; कथचित् सत् और कथचित् असत् प्रतिपादन किया है।

कथंचित् : अनेकान्त का प्राणतत्व

इससे स्पष्ट होता है कि अनेकान्त के मुख्य चार भेद हैं—(१) कथचित् नित्य कथचित् अनित्य, (२) कथचित् सामान्य, कथचित् विशेष, (३) कथचित् वाच्य कथचित् अवाच्य, (४) कथचित् सत् कथंचित असत्। "कथचित्" शब्द का प्रयोग अनेकान्तवाद का प्राण है। "कथचित्" का अर्थ "आशिक रूप मे", "अपेक्षा-कृत" अथवा "ऐसा भी है", है। 'कथचित्' शब्द के प्रयोग से वस्तु मे किसी धर्म



भगवान् महावीर की अनेकान्तवादी दृष्टि

रामसिंह जैन, एम ए एल टी.



प्रत्येक पदार्थ को पूर्ण रूप से समझने के लिए, उसे विभिन्न दृष्टियो से देखना अनेकान्तवाद कहलाता है। और उसे एक ही दृष्टि से देखने को तथा उस दृष्टि-विशेप से ग्रहण किये हुए उसके अश को पूर्ण पदार्थ पूर्ण सत्य मान लेने को एकान्तवाद कहते हैं। यह केवल आपेक्षिक सत्य कहा जा सकता है। वस्तु के एक अश को ग्रहण करना नय का विपय है और नय ज्ञान का अश होता है। पूर्णज्ञान प्रमाण कहलाता है। पदार्थ के पूर्णज्ञान को प्राप्त करने के लिये अनेकान्तवाद एक मार्ग है। अनेकान्तवाद सभी एकान्तवादियो के पारस्परिक मतभेदो को दूर कर उनके सभी दृष्टिकोणो का समन्वय करता है। अनेकान्तवाद सभी द्रव्यो एव उनकी सभी पर्यायो मे है।

अनेकान्तवाद की पृष्ठ-भूमि

जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक पदार्थ मे अनन्त धर्म होते है। छदमस्थ का ज्ञान इन अनन्त धर्मों मे से कुछेक को ही जान सकता है। वह दूसरो को भी उन्ही कुछेक धर्मों का ज्ञान करा सकता है। अत उसका ज्ञान पूर्ण सत्य नही कहा जा सकता ; आपेक्षिक सत्य अवश्य कहा जा सकता है। इस वात को जानने के लिये अन्धे पुरुपो का उदाहरण अति उपयुक्त है। जिस प्रकार कई अन्धे पुरुप किसी हाथी के भिन्न-भिन्न अगो को हाथ से टटोल कर उसके उन भिन्न-भिन्न अगो को ही पूर्ण हाथी समझ कर परस्पर लडते हैं, उसी प्रकार ससार का प्रत्येक दार्शनिक अल्पसत्ता के कारण पदार्थ के एक अश को ही जानता है और उस पदार्थ के उस अश को ही पूर्ण सत्य समझ कर पारस्परिक विवाद खडा कर देता है। वस, इन्ही परस्थितियो मे अनेकान्तवाद का जन्म होता है।

कि नय ज्ञान का अश होता है और नयो के समूह को ज्ञान कहते हैं। जितने शब्द हैं, उतने ही नय है। किन्तु मुख्य नय दो ही है—(१) द्रव्यार्थिक नय, (२) पर्यायार्थिक नय। द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद है—(१) नैगम, (२) सग्रह, (३) व्यवहार। पर्यायार्थिक नय के चार भेद हैं—(१) ऋजुसूत्र, (२) शब्द, (३) समभिरूढ, (४) एवभूत। इन नयो के समूह को ज्ञान कहते हैं। वही प्रमाण है और वस्तु-स्वरूप का यथार्थ प्रतिपादन करने वाला है। किन्तु सारे एकान्तवाद उक्त सात नयो मे से किसी एक नय के आश्रित होते हैं।

अत वे सभी किसी एक नय की अपेक्षा से सत्य है। उदाहरण के लिये ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से बौद्ध, सग्रहनय की अपेक्षा से वेदान्त, नैगमनय की अपेक्षा से नैयायिक-वैशेषिक, शब्दनय की अपेक्षा से शब्द-ब्रह्मवादी तथा व्यवहारनय की अपेक्षा से चार्वाक-दर्शन को सत्य कहा जा सकता है। इसीलिये योगी आनन्दघनजी ने कहा है कि—

षड्दर्शन जिन-अग भणीजे, न्यास षडग जे साधे रे।
नमिजिनवरना चरण-उपासक, षड्दर्शन आराधे रे॥

इससे स्पष्ट होता है कि सभी दर्शनो को एकत्रित करने पर जैनदर्शन समग्र बन जाता है। कहा भी है कि—

अनेकान्तात्मक वस्तु-गोचर सर्वसविदाम्।
एकदेशविशिष्टोऽर्थ. नयस्य विपयो मत॥

अर्थ—सर्वदेशीयज्ञान का वस्तुविपय अनेकान्तात्मक है। वस्तु का एकशीय ज्ञान नय का विषय होता है। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक नय एकान्त सत्य है। अपेक्षाकृत सब नयो को ग्रहण करना अनेकान्त है। वही प्रमाण है और वही जैन सिद्धान्त है।

सप्त नय

यहाँ उन सात नयो के विषय मे भी कुछ जान लेना आवश्यक है। उनका स्वरूप निम्न प्रकार है—

(१) नैगमनय—ज्ञान का वह अश, जो भूत और भावी पर्यायो को वर्तमान मे ग्रहण करे, उसे नैगम नय कहते हैं। जैसे डाक्टरी पढ़ने वाले विद्यार्थी को डाक्टर साहब कहना।

(२) सग्रहनय—जो समस्त वस्तुओ के सग्रह को एकरूप कहे, उसे सग्रहनय कहते हैं। जैसे सेना कहने से, सिपाही, घोडे आदि सभी का ज्ञान होता है।

(३) व्यवहारनय—जो सग्रहनय द्वारा ग्रहण किये हुए विषय मे भेद करता है, उसे व्यवहारनय कहते है। जैसे पैदल सेना, घोडो की सेना आदि।

(४) ऋजुसूत्र—वर्तमान पर्याय को ग्रहण करने वाला ऋजुसूत्रनय कहलाता है। जैसे जीव को मनुष्य, देव आदि कहना।

का लोप नही होता है और वह हठाग्रह को भी दूर करता है। उदाहरण के लिये हमने कहा, "जीव कथचित् ज्ञान गुण वाला है।" इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि उसमे ज्ञानगुण के अतिरिक्त अन्य गुण भी हैं। कथचित् का विरोधी 'ही' शब्द है। जिस प्रकार अनेकान्त का मुख्य शब्द "कथचित्" है, उसी प्रकार एकान्तवादियो का मुख्य शब्द "ही" है। यदि कहा जाये कि वस्तु का स्वरूप ऐसा ही है; तो इसका अभिप्राय यह होता है कि वह अन्य प्रकार का नही हो सकता और उसमे अपेक्षित धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म नही है। वस्तु के इस प्रकार के प्रतिपादन मे हठाग्रह निहित है। जैसे यदि कहा जाए कि "जीव ज्ञानगुण वाला ही है", तो इससे प्रगट होता है कि उसमे अन्य गुण नही है। किन्तु जीव मे तो वीर्य, सुख आदि अनन्त गुण हैं। इसीलिये अनेकान्तवाद मे कथचित् शब्द का प्रयोग वस्तु के जानने और उसके प्रतिपादन करने मे प्रथम आवश्यक बताया गया है। "अनेकान्तवाद" वस्तु का धर्म है और उसका शब्दो द्वारा प्रतिपादन करने वाला "स्याद्वाद" है।

भेदो में अभेदता

एक बात जो उक्त भेदो से और प्रगट होती है, वह यह है कि दो विरोधी धर्म भी वस्तु मे एक साथ रह सकते हैं। इसीलिये प्रतिपक्षसहित इन चार भेदो को आठ रूप मे कहा गया है। द्रव्यदृष्टि से वस्तु नित्य, अवाच्य, सामान्य और सत्रूप है। वही वस्तु पर्यायदृष्टि से अनित्य, वाच्य, विशेष और असत्रूप है। जैनधर्म एकान्त से न तो द्रव्यदृष्टि को ही ग्रहण करता है और न पर्यायदृष्टि को ही। पर्यायरहित द्रव्य और द्रव्यरहित पर्याय नही होती है। गुण के विकार को पर्याय कहते हैं और गुण के समूह को द्रव्य कहते हैं। अत द्रव्य मे गुण और पर्याय दोनो ही होते हैं। "तत्वार्थसूत्र" मे कहा गया है—"गुणपर्यायवद्द्रव्य।" अर्थात् गुण और पर्याय के समूह को द्रव्य कहते हैं। न तो केवल गुण ही द्रव्य है और न पर्याय ही द्रव्य है। जैनधर्म का अनेकान्तवाद दोनो दृष्टियो (द्रव्यदृष्टि जो गुणो का प्रतिपादन करती है, और पर्यायदृष्टि) को वस्तु मे अपेक्षाकृत स्वीकार करता है। गुण और पर्याय दोनो ही द्रव्य के आश्रित होते हैं। अत वस्तु का पूर्ण ज्ञान करने के लिये द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टि, इन दोनो ही दृष्टियो का ज्ञान करना चाहिये। किन्तु एक समय मे एक दृष्टि से वस्तु के एक ही अश को जाना जा सकता है। अतः वह एकान्त सत्य अथवा अपेक्षाकृत सत्य कहा जा सकता है। यही भगवान् महावीर की अनेकान्तदृष्टि थी।

अनेकान्तवाद का समन्वयवादी सिद्धान्त

उक्त पक्तियो मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अनेकान्तवाद के भेद द्रव्य-दृष्टि और पर्यायदृष्टि के आधार पर ही किये गये हैं। द्रव्यदृष्टि द्रव्यार्थिनय का विषय है और पर्यायदृष्टि पर्यायार्थिक नय का विषय है। जैनागम मे कहा गया है



भगवान् महावीर और अनेकान्तवाद

जैनभूषण, पण्डितरत्न श्रीज्ञानमुनिजी म०



विश्ववन्द्य श्रमण भगवान् महावीर ने ससार मे चल रहे या चलने वाले पारस्परिक झगडो द्वन्द्वो और सघर्षों के अन्त के लिए अहिंसा की देन दी। उन्होने उसे केवल पोथियो की वस्तु न बना कर आचाररूप मे परिणत भी किया। भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित अहिंसा को मुख्यत. दो भेदो मे बाँटा जा सकता है—आचार मे अहिंसा और विचार मे अहिंसा।

अनेकान्तवाद का स्वरूप

विचार मे अहिंसा को ही हम अनेकान्त कहते हैं। विचारभेद के कारण—मतो, पथो और सम्प्रदायो का जन्म होता है। उसी के कारण सघर्ष होता है। भगवान् महावीर ने इसी सघर्ष की जड पर प्रहार करते हुए कहा कि अनेकान्त के द्वारा किसी भी मत, पथ या सम्प्रदाय मे कथित विचारधारा और आचारपद्धति को किसी एक ही दृष्टिकोण से न देख कर, उसकी दृष्टि से भी देखो, उसकी अपेक्षा से भी देखो। जब व्यक्ति दूसरे के मत, पथ, सम्प्रदाय या दर्शन पर भी शान्तिपूर्वक सहिष्णुता से विचार करता है तो विरोध का शमन स्वत ही हो जाता है। समन्वयदृष्टि से सघर्ष नही रहता। एकान्त कदाग्रह सत्य नही कहा जा सकता। कोई विचार तभी पूर्ण सत्य कहा जा सकता है, जब उसे सभी पहलुओ से जाँचा-परखा जाए। उसी तथ्य एव सत्य का नाम अनेकान्तवाद है। दर्शनशास्त्र की भाषा मे विश्व की प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक है, उसमे अनेकानेक धर्म निवास करते हैं। अनेकान्तवाद वस्तु के सभी धर्मो को समझ लेने की बात कहता है। वस्तु के सभी धर्मों पर दृष्टिपात न करके, केवल उसके किसी एक धर्म पर दृष्टिपात करना और उसी एक धर्म को ही वस्तु का स्वरूप समझना अनेकान्तवाद को इष्ट नही है। अनेकान्तवाद वस्तु के सभी धर्मों की ओर देख कर उसके स्वरूप का निर्णय करता है। इस तथ्य को एक उदाहरण से समझिए। भारत के कुछ विचारक आत्मा को सर्वथा नित्य मानते हैं और कुछ

(५) शव्दनय—जो, लिंग, वचन, कारक के व्यभिचार का दूर करता है, उसे शव्दनय कहते हैं। जैसे इन्द्रियो के स्वामी को इन्द्र कहना।

(६) समभिरूढ़नय—रूढि से प्रचलित अर्थ को ग्रहण करना। जैसे गाय को गाय कहना।

(७) एवभूतनय—क्रिया के आधार से कर्त्ता का ज्ञान करना। जैसे पूजा करते समय मनुष्य को पुजारी कहना।

ये ही सातो नय मिल कर वस्तु के यथार्थस्वरूप को प्रगट करते हैं। ये सभी नय अनेकान्तवाद पर आधारित हैं।

अनेकान्तवाद और लोकव्यवहार

हम लोकव्यवहार मे भी अनेकान्तवाद को ही ग्रहण करते हैं। यदि इस सिद्धान्त का लोक-व्यवहार मे प्रयोग न किया जाये, तो ससार का व्यवहार चल ही नही सकता। इसके लिये एक व्यक्ति का उदाहरण ले लीजिये। वह व्यक्ति अपने पिता की अपेक्षा पुत्र और पुत्र की अपेक्षा पिता है। इसी प्रकार उसमे भ्रातृत्व, पतित्व, स्वामित्व, सेवकत्व आदि अनेक धर्म है। लेकिन वे सव अपेक्षाकृत हैं। शव्द का उच्चारण होते ही अपेक्षित ज्ञान ग्रहण कर लिया जाता है। जव वहन कहती है, भाई! तव भाई समझ लेता है कि वहन वुला रही है। लेकिन जव भाई कहा गया तव उस व्यक्ति मे अन्य धर्म भी थे। लेकिन वे गौण थे। यहाँ उनकी विविक्षा नही थी। तत्वार्थसूत्र मे कहा गया है कि "अर्पितानर्पितसिद्धे।" अर्थात् जव एक धर्म को ग्रहण किया जाता है, तव उसी की मुख्यता होती है। उस समय अन्य धर्म गौण होते हैं। वे कही चले नही जाते। यही अनेकान्तवाद का स्वरूप है। वस्तु को भलीभाँति समझने के लिये भगवान् ने यही उपदेश दिया था। इसको समझे विना वस्तु का स्वरूप नही जाना जा सकता और न लोकव्यवहार ही चल सकता है। कहा भी है—

जेण विणा लोयस्सवि विवहारो सव्वहा न निव्वडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगतवायस्स ॥

अर्थ—जिसके विना लोक के सभी व्यवहार का सर्वथा निर्वाह नही हो सकता है, त्रिभुवन के एकमात्र गुरु उस अनेकान्तवाद को नमस्कार है।

साराश—अभिप्राय यह है कि भगवान् महावीर ने अपने उपदेशो मे अनेकान्त-सिद्धान्त को वस्तु का स्वरूप समझने के लिये आवश्यक वताया। विशेपता यह है कि उन्होंने एकान्तदृष्टि को भी आशिक रूप से सत्य माना है। तभी नो जैनधर्म का किसी से विरोध ही नही है।



२. दरिद्र ब्राह्मणको वस्त्रदान।

विचारक उसे सर्वथा अनित्य कहते हैं। यदि आत्मा को सर्वथा नित्य मान लिया जाए तो आत्मा का शरीर-परिवर्तन प्रमाणित नही हो सकता। क्योकि नित्य वस्तु सदा एक ही अवस्था मे विद्यमान रहा करती है, उसमे परिवर्तन नही आ सकता। ऐसी स्थिति मे जब आत्मा नित्य है तो वह एक शरीर को छोड कर दूसरे शरीर मे प्रविष्ट नही हो सकती। यदि आत्मा को सर्वथा अनित्य मान लेते है तो विनाशशील होने से उसको अतीतकालीन स्थिति का ज्ञान नही हो सकता है। जब आत्मा का पहले आतीतकाल मे अस्तित्व ही नही था, तब वह आत्मा अतीतकालीन परिस्थितियो की ज्ञाता हो भी कैसे सकती है ? अत आत्मा को केवल नित्य मानने पर समस्या समाहित नही होती और यदि इसे अनित्य मान लिया जाए, तब भी बात नही बन सकती। अत अनेकान्तवाद की मान्यतानुसार आत्मा को नित्यानित्य मान लिया जाए तो कोई विवाद नही रहने पाता।

अनेकान्तवाद कहता है कि किसी अपेक्षा से आत्मा नित्य भी है और किसी दृष्टि से आत्मा अनित्य भी है। संसारी आत्मा कभी मनुष्यदशा मे और कभी पशु-दशा मे देखी जाती हैं। नट की भाँति इसके अनेको रूप दिखाई देते हैं। अवस्थाओ के इस परिवर्तन की अपेक्षा से आत्मा अनित्य है। तथा आत्मा मनुष्य, पशु आदि किसी भी दशा मे रहे किन्तु वह रहती आत्मा ही है, अनात्मा या जड नही बन जाती, उसकी ज्ञानचेतना कभी समाप्त नही होती। इस दृष्टि से आत्मा नित्य है। इस प्रकार आत्मा को नित्यानित्य मान लेने पर दार्शनिक जगत् का धर्म-द्वन्द्व समाप्त हो सकता है।

अनेकान्तवाद और विज्ञान—

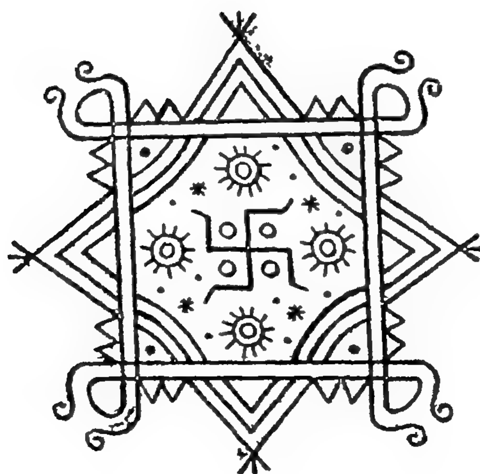
आधुनिक वैज्ञानिको ने भी प्रत्येक वस्तु मे अनन्तधर्म स्वीकार किए हैं और उन धर्मों का समन्वय वे अनेकान्तवाद के द्वारा ही करते हैं। विज्ञान कहता है कि पदार्थ मे ऐसे अनेको गुण विद्यमान हैं, जिन्हें पूरी तरह जाना नहीं जा सकता है। साधारणतया पदार्थों को हम जिस रूप मे देखते हैं वही उसका पूरा रूप नही होता। पदार्थों मे अनेको अप्रकट गुण या शक्तियां विद्यमान हैं, जिन्हे जानना एव समझना नितान्त आवश्यक है। विज्ञान ने इस दिशा मे काफी प्रयत्न किए हैं। अणुशक्ति का अन्वेषण करके विज्ञान ने वस्तु की अनन्तधर्मात्मकता को ही प्रमाणित किया है।

स्याद्वाद की व्यावहारिक उपयोगिता—

स्याद्वाद की उपयोगिता केवल दार्शनिक ही नही है। उसकी व्यावहारिक उपयोगिता भी बडी विलक्षण है। जीवन के हर मोड पर अनेकान्तवाद का महाप्रकाश मनुष्य का मार्गदर्शन कर सकता है। स्याद्वाद की इस व्यावहारिक उपयोगिता के सम्बन्ध मे सुप्रसिद्ध विद्वान् काका कालेलकर कितनी सुन्दर बात कह रहे हैं। उन्ही के शब्दो मे कहे तो कह सकते हैं कि "अहिंसाधर्म का एक उज्ज्वलरूप

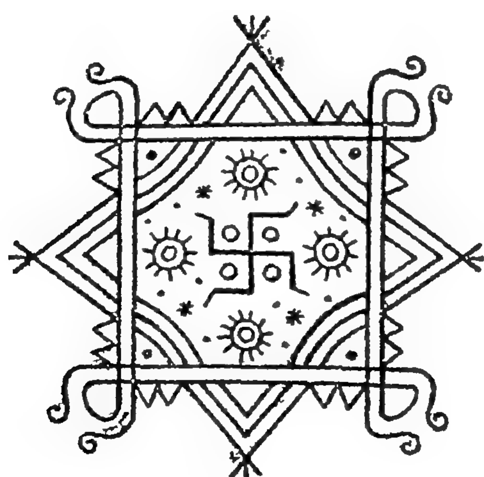
है—अनेकान्तवाद या स्याद्वाद। इसकी तात्त्विक, दार्शनिक और तार्किक चर्चा बहुत हो चुकी है। इसमे अब किसी को दिलचस्पी नही है। लेकिन सास्कृतिक क्षेत्र मे, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे, अन्तर्राज्यीय क्षेत्र मे, रग मे और गोरे, काले, पीले, लाल या गेहूँवर्णी भिन्न-भिन्न वर्णों के सम्बन्ध के बारे मे अगर हम समन्ववाद को चलायेंगे और स्यादवाद को नया रूप देगें तो जैनसस्कृति फिर से सजीवन और तेजस्वी बनेगी। अगर इस क्षेत्र मे जैन समाज ने कुछ पुरुपार्थ करके दिखलाया तो बिना कहे दुनियाभर के मनीषी जैनशास्त्रो का अध्ययन करेंगे और जिसे नवप्रेरणा का उद्‌गम कहा है; उसे ढूंढेंगे।"

सक्षेप मे, अपनी बात कहे तो भगवान् महावीर का अनेकान्तवाद सिद्धान्त विश्व के समस्त दर्शनो, धर्मों, सम्प्रदायो, मतो, पन्थो का समन्वय करता है। यह विश्व कों शिक्षा देता है कि विश्व के सभी धर्मों मे जहां कही भी सत्याश है उसका आदर करो और जो असत्याश है उसको ले कर किसी से घृणा या द्वेष न करो। क्योकि घृणा आध्यात्मिक जीवन का सर्वोपरि शत्रु है। इसी से आपसी क्लेश, मनो-मालिन्य और वैरविरोध की भावना जन्म लेती है। इस तरह अनेकान्तवाद का आश्रय ले कर यदि मानव गुणग्राही बन जाए और दोषदृष्टि छोड दे तो विश्व का कायाकल्प हो सकता है।



है—अनेकान्तवाद या स्याद्वाद। इसकी तात्त्विक, दार्शनिक और तार्किक चर्चा बहुत हो चुकी है। इसमे अब किसी को दिलचस्पी नही है। लेकिन सास्कृतिक क्षेत्र मे, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे, अन्तर्राज्यीय क्षेत्र मे, रग मे और गोरे, काले, पीले, लाल या गेहूँवर्णी भिन्न-भिन्न वर्णो के सम्वन्ध के वारे मे अगर हम समन्ववाद को चलायेंगे और स्यादवाद को नया रूप देगें तो जैनसस्कृति फिर से सजीवन और तेजस्वी वनेगी। अगर इस क्षेत्र मे जैन समाज ने कुछ पुरुषार्थ करके दिखलाया तो बिना कहे दुनियाभर के मनीषी जैनशास्त्रो का अध्ययन करेंगे और जिसे नवप्रेरणा का उद्गम कहा है; उसे ढूँढेंगे।"

सक्षेप मे, अपनी वात कहे तो भगवान् महावीर का अनेकान्तवाद सिद्धान्त विश्व के समस्त दर्शनो, धर्मो, सम्प्रदायो, मतो, पन्थो का समन्वय करता है। यह विश्व को शिक्षा देता है कि विश्व के सभी धर्मो मे जहाँ कही भी सत्याश है उसका आदर करो और जो असत्याश है उसको ले कर किसी से घृणा या द्वेष न करो। क्योकि घृणा आध्यात्मिक जीवन का सर्वोपरि शत्रु है। इसी से आपसी क्लेश, मनोमालिन्य और वैरविरोध की भावना जन्म लेती है। इस तरह अनेकान्तवाद का आश्रय ले कर यदि मानव गुणग्राही वन जाए और दोषदृष्टि छोड दे तो विश्व का कायाकल्प हो सकता है।





निर्वाण का प्रथम सोपान : अपरिग्रह

—बनारसीदास चतुर्वेदी, ज्ञानपुर वाराणसी



[जब तक मन से आसक्ति के बधन नही टूटते, तब तक मुक्ति या निर्वाण नही हो सकता। आसक्ति को तोडने की सबसे पहली चोट है—अपरिग्रह। इसलिए अपरिग्रह निर्वाणसाधना का प्रथम सोपान है। सुप्रसिद्ध साहित्यिक एवं विचारक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का आज के युगधर्म की विवक्षा के साथ अपरिग्रह की अपेक्षा पर पढिए ··]

—सम्पादक

निस्सन्देह इस समय सम्पूर्ण विश्व के सामने एक धर्म सकट उपस्थित हो गया है। ससार की बड़ी-बडी शक्तियाँ अब यह अनुभव करने लगी हैं कि वे विनाश के कगार पर खडी है।

हिंसा के साधन इतने शक्तिशाली हो गये है—आणविक अस्त्र इतने भयकर बन चुके हैं—कि कुछ बट्टनो के दबाते ही प्रक्षेपास्त्र विश्व के महान नगरो को क्षणभर मे भूमिसात् कर सकते हैं, शतशताब्दियो से अर्जित सभ्यता के चिह्न को धूल मे मिला सकते हैं।

क्या वर्तमान परिस्थिति मे अहिंसा का आश्रय ले कर विश्व को बचाया जा सकता है? क्या ससार की महान शक्तियाँ किसी व्यावहारिक समझौते द्वारा विनाश की घडी को सदासर्वदा के लिये टाल सकती हैं? अमरीका तथा रूस के नेता अब इस बारे मे चिन्ता तो करने लगे हैं और किसिंगर तथा ब्रेजनेव की यात्राएँ इसका प्रमाण है।

किसी भी बीमारी के इलाज के पहले उसके मूल कारणो को जान लेना जरूरी होता है। गम्भीरतापूर्वक विचार करने से यह पता चल सकता है कि भिन्न-भिन्न जातियो की विस्तारवादी नीति—जो परिग्रह का ही दूसरा नाम है, इस विश्वसकट के मूल मे है। यूरोपीय जातियो ने अफ्रीका तथा एशिया मे छीना-झपटी के जो खेल खेले थे और जिस प्रकार करोडो व्यक्तियो को गुलामी की जजीरो मे जकड दिया था, मुख्यतया उन्ही के कारण महायुद्ध हुए थे। हर्ष तथा सन्तोष की बात है कि परतन्त्र जातियाँ अब स्वाधीन हो कर स्वतन्त्रता के वातावरण मे साँस ले रही है।

पर अब भी 'प्रभावशाली क्षेत्र'—(Zones of influence) बनाने की नीति उन महत्वाकाक्षी जातियो ने नही छोडी। वह भी आखिर पुरानी नीति का नवीन सस्करण ही है। पर अब दुनिया का लोकमत जाग्रत है और वह धोखे मे नही आ सकती।

इसमे सन्देह नही कि अन्त मे तो विजय अहिंसा की ही होगी—शान्ति स्थापित हो कर ही रहेगी, पर उसके पूर्व एक खतरा अवश्य है—वह यह कि भारत को खून की नदियो मे से गुजरना पडे। हमारे पडोसियो को अहिंसा की नीति (जिसे आज-कल की भाषा मे 'सह-अस्तित्व' कहते हैं) समझने मे बहुत देर लग सकती है।पर बहुसख्यक जातियो की चिन्ता हमे फिलहाल छोड कर व्यक्तिगत तौर पर ही विचार करना चाहिये। प्रत्येक महान यज्ञ का प्रारम्भ व्यक्ति द्वारा छोटे से छोटे केन्द्र या स्थान पर हो सकता है और बढते-बढते उसकी परिधि मे सम्पूर्ण विश्व आ सकता है। आखिर भगवान् महावीर भी एक व्यक्ति ही थे, जिनके सिद्धान्तो का महत्व अब सम्पूर्ण विश्व समझने लगा है।

पर सिद्धान्तो की शेखी बघारने का युग अब लद चुका है। एक अंग्रेजी कविता है—

Go put your creed, Into your deed
Nor speak with double tongue

अर्थात्-अपने सिद्धान्तो को कार्यरूप मे परिणत करो, दुहरी जबान से न बोलो।

दुर्भाग्य की बात यही है कि भगवान राम तथा कृष्ण, प्रभु ईसामसीह, भगवान बुद्ध और हजरत मुहम्मद के अनुयायी अपने अवतारो के प्रति मौखिक श्रद्धा ही प्रकट करते रहे हैं और उनका व्यवहार उसके सर्वथा विपरीत रहा है। फिर अकेले जैनसमाज को ही क्यो दोषी ठहराया जाय ?

मुख्य सवाल यह नही है कि भगवान् महावीर ने क्या कहा था अथवा महात्मा गाँधी क्या कहते थे ? असली प्रश्न तो यह है कि हम और आप जो उनके अनुयायी होने का दम भरते हैं—या दम्भ करते हैं!—अपने नित्य के जीवन मे क्या कर रहे हैं ?

महात्मा गाँधीजी ने साधनसम्पन्न व्यक्तियो से यह आशा की थी कि वे ट्रस्टी बन कर लोकहित के कार्यों मे अपने साधनो का उपयोग करेंगे, पर एकाध को छोड कर किसी ने भी उनके आदेशो का पालन नही किया। अवश्य ही सेठ जमनालालजी तथा विडला-बन्धुओ ने उस दिशा मे कुछ काम किये थे। पर ९९ फीसदी ने इधर ध्यान ही नही दिया।

मुझे दो बार रूस जाने का अवसर प्राप्त हुआ था, और मैंने वहाँ नवीन मानव का निर्माण अपनी आँखो से देखा था। हमे इस भ्रमात्मक धारणा को तिलाजलि दे देनी चाहिये कि ऋषि लोग केवल भारतभूमि मे ही पैदा होते हैं। कार्ल मार्क्स (जिन्हे लाला हरदयाल ने ऋषि लिखा था) जर्मनी मे पैदा हुए थे और राजर्षि लैनिन रूस मे ! दुनियाँ का एक बडा हिस्सा उनकी पूजा करता है।

यह जरूरी नही है कि हम किसी देश-विदेश की नीतियो की हूवहू नकल कर लें। पर हर हालत मे हमे स्वेच्छा से नही, तो मजवूरी से अपरिग्रह की नीति को अपनाना ही होगा।

अन्तहु तोहि तजेंगे पामर, क्यो न तजै तव ही तैं ?

जब मास्को की गोर्की इन्स्टीट्यूट से हमने दो मोटे ताजे रूसियो के चित्र देखे तो हम पूछ वैठे—ये कौन हैं ? उत्तर मिला—ये सफेद कौए हैं ? यानी वे पूँजीपति, जिन्होने लैनिन तथा गोर्की की सहायता की थी।

रूस के सैकडो पूँजीपतियो का अव नामोनिशान वाकी नही। जो लोग स्वेच्छा से अपने द्रव्यसाधनो को जनता-जनार्दन को अर्पित नही करेंगे, उनसे वे जोर-जवरदस्ती से छीन लिये जावेंगे !

इस अवसर पर हमे वह वातचीत याद आती है, जो महात्मा गांधी तथा सुप्रसिद्ध अमरीकन पत्रकार लुई फिशर के वीच हुई थी।

जमीदारी के उन्मूलन की चर्चा चल रही थी। तव महात्माजी ने कहा था—"किसानो मे स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने की शक्ति आ जायगी और उनका दूसरा कदम होगा जमीन पर कावू कर लेना।"

फिशर ने पूछा "क्या हिंसा द्वारा वे जमीन हडपेंगे ?"

वापू ने कहा—"हाँ, हिंसा हो सकती है, पर जमीदार लोग सहयोग कर सकते हैं।"

जव फिशर ने इस कथन पर टीका-टिप्पणी की तो वापू ने मजाक मे कहा—

"जमीदार लोग भाग खडे होंगे। यही उनका सहयोग होगा।"

फिशर ने कहा "तव तो खून खच्चर होगा।"

इस पर महात्मा जी ने कहा—"हाँ, पन्द्रह दिन के लिये अव्यवस्था हो सकती है, पर शीघ्र ही हम लोग उस पर कावू पालेंगे।"

महात्माजी का यह कथन पूँजीवाद पर भी लागू हो सकता है।

अनेकान्त, अपरिग्रह, अहिंसा तथा आध्यात्मिक स्वावलम्बन के जो सिद्धान्त भ० महावीर द्वारा प्रचारित होते रहे है, उनका विश्वव्यापी महत्व है। पर जव तक स्वय हम लोग व्यक्तिगत तौर पर उन्हे अपने आचरणो मे नही उतारते; तव तक वे प्रभावहीन ही वने रहेंगें। इनमे भी अपरिग्रह का सिद्धान्त सर्वोपरि है और वही आज का युगधर्म है।



तब जय बोलो महावीर को

संगीतकार
जैन 'विनय' देवबंदी

पलट के रख दी जिसने, सब रेखाएँ तकदीर की,
जय बोलो महावीर की, जय बोलो २ ।।ध्रुव ।।

वीर के गुण आलापने वालो, वीर का पथ अपनाओ ।
हिंसा, चोरी, झूठ, कपट, छल, स्वार्थ दूर भगाओ ।।
ऊँच-नीच और राग-द्वेष की, दीवारो को ढाओ ।
आपस के मत-भेद भुला कर, सबको गले लगाओ ।।
पहले इतना कर लो, तब बोलो जय महावीर की ।।जय बोलो०।।

हो कोई स्थानकवासी, या होवे श्वेताम्बर ।
इससे हमको क्या लेना, कि है कोई दिगाम्बर ।।
आपस के झगडो की खाई, अब तो मिल कर पाटो ।
एक पेड की शाखा हैं, मत इक दूजे को काटो ।।
जोडो, अब भी जोडो, बिखरी कडियाँ जजीर की ।।जय बोलो।।

जैनधर्म के ठेकेदारो, सम्भलो, अब भी जागो ।
झूठी मान-प्रतिष्ठा के, चक्कर को अब तो त्यागो ।।
वक्त को देखो, बात को समझो, तजो आपसी झगडा ।
इन झगडो के कारण ही, जैन-धर्म रहा पिछडा ।।
पहले यह सब रोको, तब जय बोलो जय महावीर की।।जय०।।

वीर के शासन मे सब हिल-मिल, गीत अभय के गाते ।
शेर, गाय, मृग एक घाट ही, पानी पीने आते ।।
किन्तु, आज हम मानव हो कर, मानव को ही सताते ।
महावीर की वाणी को, नाहक बदनाम कराते ।।
हिल-मिल रहना सीखो, तब बोलो जय महावीर की।।जय बोलो।।

होटल, क्लबो मे होती है, शर्मो-हया नीलाम ।
आज सभ्यता चौराहो पर, होती है बदनाम ।।
गली-गली औ गाँव-गाँव मे, खुली हैं जो मधुशाला ।
वीर ही जाने, मेरे देश का, क्या है होने वाला ।।
पीना-पिलाना छोडो, तब बोलो जय महावीर की।।जय बोलो।।

जलसो और जलूसो से ही, काम न पूरा होगा ।
वक्ता, गायक बुलवा कर भी, फर्ज न पूरा होगा ।।
करनी-कथनी एक करो, तब जा कर ही कुछ होगा ।
वीर-प्रभु निर्वाण-महोत्सव, सफल तभी बस होगा ।।
गिरतो को 'विनय' है थामो, तब बोलो जय-महावीर की ।।जय०।।

●



निर्वाण-साधना और सामाजिक अनिष्ट-निवारण

श्री अखिलेश मुनि



[श्री अखिलेश मुनिजी राष्ट्रसंत उपाध्याय कविश्री अमरचन्दजी म० के गुरुभाई हैं। सन्मति ज्ञानपीठ, वीरायतन आदि संस्थाओं के आप मेरुदण्ड हैं। समाज-सेवा के साथ-साथ सत-सेवा में रत रहते हुए भी आप अभिमान और प्रसिद्धि से काफी दूर हैं। ये ही वातें आपके द्वारा प्रस्तुत लेख में प्रतिविम्बित हुई हैं—स०।]

महावीर की निर्वाणसाधना केवल एकान्त मे या सिर्फ व्यक्तिगत-हित साधन के लिए ही नही थी। अहिंसा आदि पांचो ही महाव्रतो का पालन समाज के सम्पर्क से ही हो सकता है, क्योकि इन पाचो के पालन मे दूसरे की अपेक्षा अनिवार्य होती है। अहिंसा आदि महाव्रतो की कसौटी या थर्मामीटर तो मानव-समाज या अन्य प्राणी ही है। फिर अन्य प्राणियो से वच कर या उनके सम्पर्क के कारण दोप पैदा होने के डर से भाग कर साधक कैसे अलग-थलग या एकान्त स्वहितार्थी हो सकता है। यही सोच कर भ० महावीर विभिन्न जनपदो मे, यहाँ तक कि अनार्यक्षेत्रो मे भी निर्भीक और साहसी वन कर पहुँचे और वहाँ अपनी अहिंसा का परिचय भी दिया। जहाँ उन्होने देखा कि अपने पर कष्टो का पहाड़ गिराने वाले व्यक्ति को इन्द्र आदि दण्ड देने लगते है, वहाँ उनकी असीम करणा उन्हे वैसा करने से रोकती है। यहाँ तक कि गोशालक के उद्दण्ड स्वभाव के कारण जव वैश्यायन वालतपस्वी क्रुद्ध होकर उस पर तेजोलेश्या छोडता है और उसके तीव्र ताप से गोशालक के प्रज्वलित होने मे कोई कसर नही थी, तभी भ० महावीर की अनुकम्पा प्रवल हो उठी, उन्होने गोशालक को शीतलेश्या छोड कर वचाया, उसका दाह शान्त किया।

भ० महावीर की दृष्टि मे अहिंसा केवल निषेधात्मक ही नही थी, विधेयात्मक भी थी। समाज मे जव चारो ओर हिंसा-मानवहिंसा प्रवृत्त हो रही हो, मनुष्य-मनुष्य को अपना दास (गुलाम) वना कर उसके स्वत्व का हनन करता हो, उससे मनमाना काम लेता हो, उस पर अत्याचार कर रहा हो, उस समय अहिंसा के आचरण करने-करवाने के लिए समाज व राष्ट्र को प्रेरित करना भी अहिंसा-

महाव्रती का कर्त्तव्य है, कृत, कारित और अनुमोदितरूप से उसकी विधेयात्मक अहिंसा महाव्रतरूपेण आचरित हो सकती है। बल्कि अज्ञान और अन्धविश्वास मे पडे हुए असभ्य एव बर्बर मानवो के बीच ही नही, पशुओ के बीच रह कर भी उन्हें सत्पथ पर लाने का पुरुपार्थ करना, वात्सल्यभाव से प्रेरित हो कर उन्हे नीति और धर्म के मार्ग पर प्रेरित करना अहिंसा का उत्कृष्ट विधेयात्मक रूप है। भ० महावीर का अनार्यदेश मे विचरण, चण्डकौशिक सर्प को प्रतिबोध, आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। यही कारण है कि जब भगवान् महावीर ने कौशाम्बी आदि क्षेत्रो मे दास-दासी का सरेआम क्रय-विक्रय होते देखा और भद्र घरो मे उन पर अमानुषिक अत्याचार होते देखा तो उनकी आत्मा इस सामाजिक हिंसा से तिलमिला उठी। परन्तु जब उन्होने नारीजाति पर और भी विशेष अत्याचार होते देखे-सुने तो उनका सवेदनशील हृदय द्रवित हो उठा। और इन अन्यायो-अत्याचारो का राज्य द्वारा समर्थन तो उन्हे और भी अधिक खटका। फलत भगवान् महावीर ने इस प्रकार की सामाजिक हिंसाओ के निवारण के लिए स्वय बीडा उठाया। उन्होने इसी प्रकार की राजघराने की और अन्यायपीडित दशा को प्राप्त[1] दासी के हाथ से आहार लेने का कठोर सकल्प (अभिग्रह) किया। अहिंसक प्रतीकार मे व्यक्ति समाज की गलती को अपनी गलती समझ कर उसे दूर करने के लिए वात्सल्यभाव से प्रवृत्त होता है, निराहार रह कर वह समाज का ध्यान खीचता है, उस दोप की ओर। यही कारण था कि भगवान् महावीर को इस भयकर सामाजिक हिंसा के निवारण के लिए ५ महीने २५ दिन की तपस्या करनी पडी। उनका अभिग्रह फलित हुआ। चन्दनबाला नाम की दासी बनी हुई राजकुमारी के हाथ से उनका पारणा हुआ। उस अभिग्रह का इतनी तेजी से चारो ओर प्रभाव पडा कि उसके बाद दास-दासी का अमानुषिक व्यापार या मानव के प्रति मानव द्वारा अत्याचार प्राय बद हो गया। यह विश्ववत्सल प्रभु की अहिंसा की उत्कृष्ट साधना थी, जिसे निर्वाण-प्राप्ति के लिए उन्होंने आवश्यक समझी थी।

यही कारण है कि निर्वाण-साधना मे स्वकल्याण के साथ-साथ परकल्याण की साधना बाधक नही है, बल्कि अनिवार्य है। क्योकि तभी षट्कायिक जीवो (प्राणिमात्र) के रक्षक, पालक, माता-पिता और विश्ववत्सल का विरुद पूर्ण हो सकता है। अपने निमित्त से किसी को दु ख न देना, दिलाना, इतना ही नही, (अज्ञान, मोह या पूर्वकर्मवश) दु ख पाते हुए जीवो के दु ख-निवारण के लिए अहिंसक सात्त्विक प्रयत्न करना, उपाय बताना और समाज को उस उपाय की ओर प्रेरित करना भी निर्वाणसाधना के लिए। अपेक्षित है। इसे आधुनिक युग की भाषा मे समाजसेवा या समाज का नवनिर्माण कहा जा सकता है, परन्तु ऐसी समाजसेवा या समाजनिर्माण के पीछे किसी प्रकार का अहकार, स्वार्थ, प्रसिद्धि की कामना आदि विकार नही होने चाहिए। भ० महावीर के जीवन को इस कसौटी पर कसते हैं तो उनका जीवन इन विकारो से कोसो दूर था। उन्होंने इतनी लम्बी तपस्या और घोर कष्टसहन करके भी समाजसेवा करने या समाज-निर्माता होने का कभी दावा नही किया। अहशून्यता ही तो साधक को निर्वाण के निकट ले जाती है।

●

---

१. कल्पसूत्र सू० ९४

निर्वाण-साधना में बाह्यक्रिया और मनोभावों का स्थान



— पं. दलसुख मालवणिया



[पं० दलसुखभाई मालवणिया सुप्रसिद्ध समन्वयवादी दार्शनिक हैं, आप वाराणसी में वर्षों जैनदर्शन के शोधप्रबन्धकारो के मार्गनिर्देशक प्राध्यापक रहे। आजकल आप अहमदाबाद में इ डोलोजी रिसर्च इन्स्टीट्यूट के निर्देशक हैं। आपका श्रमणसंस्कृति का गहरा अध्ययन हैं। प्रस्तुत लेख भी आपकी समन्वयशीलता का परिचायक है—सं०]

पालीपिटक मे भ० महावीर के सिद्धान्तो की चर्चा के दौरान एक शका उठाई गई है कि मन, वचन और काया, इन तीनो प्रकार के दण्डो मे प्रबल दण्ड[1] कौन-सा है ? उस सन्दर्भ मे भगवान् महावीर का दृष्टिकोण यह बताया गया है कि उक्त तीनो दण्डो मे कायदण्ड[2] ही अधिक पापजनक है जबकि भ० बुद्ध के अभिप्राय मे[3] मनोदण्ड ही तीनो मे प्रबल है।

देखना यह है कि भ० बुद्ध ने जिस रूप मे भ० महावीर का मत दिया है क्या वह उचित है ? ऐसे मत के निर्देश का क्या कारण हो सकता है ?

डॉ० याकोवी ने पालिपिटक-निर्दिष्ट मत को उचित ही माना है। डॉ० मुनि नगराजजी ने याकोवी के इस मत को उचित नही माना। किन्तु उसकी विस्तृत चर्चा नही की।

दण्ड और कर्म-शब्द एकार्थक हैं या भिन्नार्थक ?

भ० बुद्ध इसी चर्चा के सन्दर्भ मे यह बताते हैं कि "निग्गंथ नायपुत्त (महावीर) कर्म को पापजनक नही बताते। उनके मत से दंड ही पापजनक हैं और वे दड तीन हैं—मन, अमन और काय। निगथ नायपुत्त इन तीनो मे कायदड को ही सर्वाधिक प्रबल कहते हैं।"

देखें—१ मज्झिमनिकाय उपालिसुत तथा उसका अवतरण
२ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पृ० ५४१
३ अनुवाद के लिये, वही पृ० ४०८

देखना यह है कि क्या जैन-आगम कर्म की अपेक्षा दड शब्द को प्राधान्य देते हैं ? यह सच है कि जैनागमो मे 'दड'[४] और 'कर्म'[५] दोनो शब्दो का प्रयोग यत्र-तत्र मिलता है।

आचारागसूत्र, स्थानागसूत्र, सूत्रकृताग एव उत्तराध्ययनसूत्र आदि आगमो मे 'कर्म' एव दड' दोनो शब्दो का अनेक जगह प्रयोग किया गया है और ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि कर्म और दड दोनो एकार्थक हैं। क्योकि दण्ड यदि मन-वचन-काय से होते हैं तो कर्म भी मनवचनकाय से होते हैं। यहाँ तक जैनदर्शन एव बौद्ध-दर्शन के तात्पर्य मे भी कोई अन्तर नही है।

अतएव 'निग्गथ नायपुत्त दड कहते हैं, कर्म नही, यह आक्षेप उचित नही जचता।

मन, वचन, काय में किसका प्राधान्य ?

मन, वचन और काय तीनो मे पाप के लिए प्रधान कौन हैं ? इसे बौद्ध-आगमो और जैनागमो की कसौटी पर कसा जाय तो प्रतीत होगा कि दोनो मे खास कोई मतभेद नही है। बौद्धत्रिपिटिक मे मनोदड को प्रधानता दी गई है, वह बात **'मनो पुव्वगमा धम्मा'** आदि धम्मपद मे किये हुए उल्लेख से स्पष्ट है। कुशल-अकुशल जो कुछ भी किया जाता है, वह मन पूर्वक होता है, यह उल्लेख भी इसी मत की ओर सकेत है।

जैनागम उत्तराध्ययन सूत्र मे स्पष्ट उल्लेख है—

रागो य दोसो विय कम्मबीय
कम्म च मोहप्पभव वयति —उत्तराध्ययन ३१ अ ७ गा

---

४ **कम्मसमारंभे अपरिन्नायकम्मे**—आचाराग १ १ ५, १ १ ७, १ १ ६।
आरभी अपरिन्नायकम्मे—आचाराग २ ५ १
कम्मसमारभ—आचाराग २ ५ १
उवरओ पावकम्मेहि—वही ३ १ ३
कम्मुणा उवाही जायइ—वही ३ १ ४
पावकम्म—वही ३ १ ४ तथा उत्तराध्ययनसूत्र
कम्म परिन्नाय—आचाराग ४ ३ २, **पावेहि कम्मेहि**—वही ४.३ ३
कुराइ कम्माइ ५ १ १ **वेदति कम्माइ पुरेकडाइ**—सूत्र कृ० ५ २ १

५ **दड समायाण**—आचाराग २ २ ३, **दड समारभेज्जा**, वही २.२ ३ और ८ १ ४, निक्खित्तदड—वही ४ ३ १, ६ १ १
नो दडभी दंड समारभेज्जासि—वही ८ १ ४, निहाय दड पाणेहि—वही ६ ३ ७, निहाय दडपाणेहि पाव कम्म अकुव्वमाणे—वही ८ ३ १ मिच्छा-दड पउ जइ-उत्तराध्ययन। **सव्वेहि दडेहि पुराकर्एहि**-सूत्रकृताग ५ १ १९

अगर भ० महावीर को कायदण्ड का ही प्राधान्य अभिप्रेत होता तो वे पाप-कर्म के कारणों में राग और द्वेष को क्यों बताते ?

इसी तरह बौद्ध आगम—अंगुत्तरनिकाय[६] में कर्म का समुदाय लोभज, दोसज (द्वेषज) और मोहज माना है।

इन दोनों मन्तव्यों को देखते हुए दोनों में कोई तात्विक मतभेद नजर नहीं आता।

कर्मबन्ध का मुख्य कारण—मनोभाव

भगवान् महावीर द्वारा निर्दिष्ट कर्मवाद पर जब सूक्ष्म-विचारणा हुई और उसके फलस्वरूप विस्तृत साहित्य लिखा गया, तब तो भ० महावीर का वह दृष्टिकोण और अधिक स्पष्ट हो गया। कर्म के चार प्रकार के बन्धों में स्थिति और विपाक का मुख्य कारण कषाय को माना है तथा प्रकृति और प्रदेशबन्ध का कारण माना है—योग को। इससे भी यह संकेत मिलता है कि कायदंड की अपेक्षा मनोदंड ही पाप-कर्म का मुख्य कारण है।

भ० महावीर ने 'प्रमाद'[७] को भी कर्मरूप माना है, इससे भी स्पष्ट द्योतित होता है कि कर्म का मुख्य कारण मानसिक भाव है न कि कायिक बाह्यक्रिया।

आचार्य उमास्वाती ने[८] कर्मबन्ध का मुख्य कारण 'कषाय' को माना है। वहाँ यह स्पष्ट बताया गया है कि योग कर्म के आश्रव का कारण होते हुए भी यदि वह[९] सकषाय है तो साम्परायिक आश्रव है और अकषाय है तो ईर्यापथ-आश्रव है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ईर्यापथ-आश्रव से नाममात्र का कर्मबन्ध होता है, उसका कोई विपाक नहीं होता। कर्म आते हैं और चले जाते हैं। इससे भी सिद्ध हो जाता है कर्मबन्ध में कायिक (बाह्य) क्रिया का विशेष महत्व नहीं है।

भ० बुद्ध द्वारा अभिव्यक्त अभिमत का तात्पर्य

यह सच है कि कर्मबन्ध और दण्ड में मुख्य कारण मन को मानते हुए भी भ० महावीर ने बाह्याचार में स्वयं कठोरता अपनाई है, अपने अनुगामी साधकों के लिए भी कठोर नियम बताये हैं। इन कठोर नियमों तथा कठोर तपश्चर्याओं को देख कर शायद भ० बुद्ध द्वारा यह अभिमत व्यक्त किया गया हो कि निग्गंथ नायपुत्त कायदंड को महत्त्व देते हैं। परन्तु केवल कठोर क्रियाएँ और कठोर नियम-संयम

देखें—६ अंगुत्तरनिकाय ३. ३३१
७ 'पमायं कम्ममाहंसु'—सूत्रकृतांग, १ ८ ३
८ तत्वार्थसूत्र अ ८ सू २
९ तत्वार्थसूत्र अ ६ सू ५

देख कर उक्त आक्षेप करना उचित नही जचता। क्योकि भ० महावीर ने बाह्य तप की अपेक्षा आभ्यन्तर तप को महत्व दिया है। प्रायश्चित्त विधि मे तपश्चरणक्रिया के साथ-साथ शुद्ध मन से आलोचना, निन्दना (पश्चात्ताप), गर्हणा भी आवश्यक बताई है। बाह्यक्रिया के साथ **'पढम नाणं तओ दया'** की दृष्टि से ज्ञान को प्राथमिकता दी है, जिसका सम्बन्ध मन से ही है।

भ० महावीर द्वारा कठोर बाह्याचार अपनाने का कारण

आमतौर पर किसी के मानसिक भावो का अल्पज्ञ लोगो को पता नही चलता, वाणी और शारीरिक क्रिया के आधार पर ही कोई निर्णय कर सकता है। और फिर भ० महावीर ने यह भी देखा कि पचमकाल के साधको मे वक्रजडता अधिक होगी, इसलिए बाह्याचार मे जरा भी शिथिलता फैली तो सघ का पतन होते देर न लगेगी। इसलिए बाह्याचार मे कठोरता अपनाने के साथ ही उन्होने आन्तरिक भावो को जोडने की प्रत्येक साधक को सलाह दी है। सामायिक की क्रिया के साथ-साथ सामायिक मे मनोदुष्प्रणिधान को दोष बताया है। बाह्याचार कठोर होने से पतन एव स्खलन की सभावना कम रहती है, नियम शिथिल होते हैं तो वे बढते हैं। बौद्धो के बाह्याचार का शैथिल्य ही भारत से उनके सघ की समाप्ति का कारण हुआ है और आचार की कठोरता ने ही जैनसघ को आज तक जीवित रखा है।

बाह्याचार और मनोभावो मे सतुलन न होने से

वास्तव मे बाह्याचार और मनोभाव दोनो का सतुलन आवश्यक है। इनके सतुलन न होने से एकान्तवाद और उसके फलस्वरूप मान्यताओ की खीचातानी, सघर्ष वगैरह अनिष्ट पैदा होते हैं। आन्तरिक भावो का बाह्य-आचार के रूप मे प्रतिबिम्ब पडना ही चाहिए, यह एक एकान्त है, और आन्तरिक भावो का बाह्याचार के रूप मे प्रतिबिम्ब पडना आवश्यक नही है, यह दूसरा एकान्त है।

दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायो के बीच वस्त्रचर्चा इन्ही दोनो एकान्तो का परिणाम है। दिगम्बर-सम्प्रदाय का कथन है—बाह्यवस्त्रो का ग्रहण, भले ही धर्मोपकरण की दृष्टि से किया गया हो, वहाँ आन्तरिक परिग्रह है ही। अर्थात् मूर्च्छा-ममत्व के बिना वस्त्रग्रहण हो नही सकता। इसके उत्तर मे श्वेताम्बर-सम्प्रदाय कहता है—वस्त्रग्रहण के साथ मूर्च्छा का अविनाभावी सम्बन्ध नही है। मूर्च्छा नही भी हो सकती है। अगर वस्त्रग्रहण मूर्च्छाभाव का कारण है तो मोरपिच्छी और कमण्डलु भी मूर्च्छाभाव का कारण हो सकता है। शरीर भी मूर्च्छा का कारण हो सकता है। कर्मपुद्गलो का ग्रहण और आहारग्रहण भी परिग्रह के अन्तर्गत हो सकता है।

इसलिए शरीर तो मूर्च्छा होने पर परिग्रह है। यद्यपि उसे छोड़ना नही पडता, समय आने पर वह अपने आप छूट जाता है, तव तक धर्मपालन के लिए उसे निभाना पडता है। आहारग्रहण भी मूर्च्छा हो तो परिग्रह है, परन्तु शरीर को धर्म पालन-हेतु आहार देना जरूरी हो जाता है। जैसे वस्त्र के सिवाय शरीरादि अन्य पदार्थों पर मूर्च्छा सम्भव है और नही भी है, वैसे ही वस्त्र के विषय मे मान लिया जाय तो क्या हर्ज है ?

वास्तव मे देखा जाय तो श्रमण, मुनि या भिक्षु वनते ही कोई वीतराग या मूर्च्छाविहीन नही हो जाता। वह उस मार्ग का—उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधनापथ का-पथिक होता है। यदि उस समय वह सर्वथा वस्त्र छोड देता है तो वह केवल वाह्याचार होगा, मूर्च्छाविहीनता का द्योतक नही। यदि वह सचमुच मूर्च्छा-विहीन हो गया है, तव तो उसमे और वीतराग मे कोई भेद नही रह जायगा। फिर तो उसे साधना की भी क्या आवश्यकता रह जायगी ? इसलिए यह सिद्ध होता है कि जिसे सर्वथा मूर्च्छात्याग अभिप्रेत है, वह वस्त्रत्याग से उसका प्रारम्भ करता है, वह उसी समय मूर्च्छाविहीन नही हो जाता। इसी तरह यदि कोई अल्पवस्त्र रख कर मूर्च्छात्याग की शुरूआत करता है तो वह भी तत्काल मूर्च्छाविहीन नही हो जाता। दोनो उसी मार्ग के पथिक हैं। मजिल दोनो ने नही प्राप्त की।

जव किसी भी पदार्थ पर मूर्च्छा नही रहती, तव शरीर पर वस्त्र या साथ मे अन्य उपकरण हो या न हो, इससे कोई मतलव नही। क्योकि ऐसा मूर्च्छाहीन साधक शरीर से सर्वथा ममत्व छोड कर अपनी आत्मा मे ही लीन हो जाता है। इसलिए यह एकान्तिक रूप से जरूरी नही कि मन मे मूर्च्छा होने से ही वस्त्रादि वस्तुओं का ग्रहण होता है अथवा मन मे मूर्च्छा नही तो वस्त्रादि वाह्यपदार्थ-त्याग होना ही चाहिए। वस्तुस्थिति तो यह है कि वीतराग हो जाने पर उसकी सभी वस्तुओ पर से मूर्च्छा (आसक्ति) तो छूट जाती है, लेकिन सभी वस्तुएँ नही छूटती। जैसे वीतराग हो जाने पर भी उस साधक को आहार ग्रहण करना पडता है, शरीर धारण करना पडता है, संघ का सहयोग ग्रहण करना पड़ता है, उसी प्रकार धर्मो-पकरण भी सयम-पालन करने हेतु रखने पडते हैं। इसी आशय से श्वेताम्वरो ने पार्श्वनाथ आदि कई तीर्थंकरो को सवस्त्र होते हुए भी वुद्ध की तरह वीतराग माने हैं और दिगम्वरो ने अपने एकान्त आग्रह के कारण सभी को नग्न ही माना है।

यदि यह कहा जाय कि शरीर का ग्रहण कर्मवश होता है, तो क्या वस्त्र का ग्रहण विना कर्म के होता है ? एक अदृश्य कर्म है, दूसरा है दृश्यकर्म। इतना-सा अन्तर है। कर्म तो कर्म ही हैं। ऐसी दशा मे धर्मोपकरण के रूप मे सयम-पालन हेतु वस्त्रग्रहण को भी एकान्त मूर्च्छाजन्य माने तो वाह्य दृष्टि से देखने पर वीतराग की भी वहुत-सी क्रिया मूर्च्छाजन्य कहनी पडेगी, परन्तु वे मूर्च्छाजन्य होती नही। और

जब तक कोई पूर्ण वीतरागी नही हुआ तब तक वस्त्ररहित होने से ही उसे सर्वथा मूर्च्छाविहीन कैसे कहा जा सकता है ? क्योकि पूर्वोक्त कथनानुसार निर्वस्त्र और सवस्त्र दोनो ही कोटि के साधु जब तक वीतराग नही हो जाते, तब तक मूर्च्छा-त्याग के पथिकमात्र हैं।

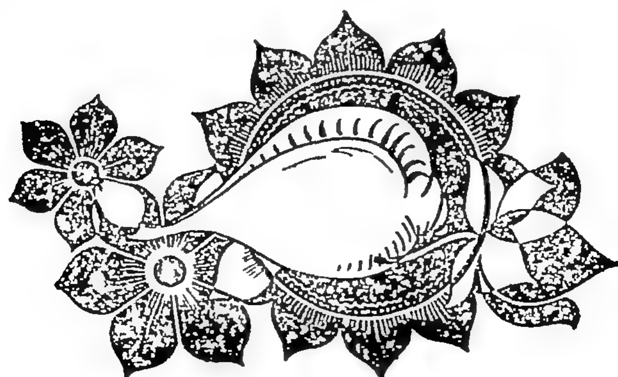
ऐसी स्थिति मे दिगम्बरो और श्वेताम्बरो का वस्त्र को ले कर सघर्ष कोई विशेष माने नही रखता। दिगम्बरो ने वस्त्र का त्याग निभाया, किन्तु अन्य कई वस्तुओ को इतना अधिक ग्रहण कर लिया, जिनका निर्वस्त्रता से कोई मेल नही खाता। इधर श्वेताम्बरो ने भी वस्त्र के स्वीकार के साथ उसकी मात्रा की ओर कोई ध्यान नही दिया, दूसरी भी कई प्रकार की रियायतें ली। दोनो एक-दूसरे को निकट से आत्मीयतापूर्वक समझने का प्रयाप्त करें, यही श्रेयोमार्ग है।

बाह्याचार और आन्तरिक भावों में सामंजस्य

आन्तरिक विशुद्धि का प्रभाव बाह्य-आकार मे स्वाभाविक रूप से परिलक्षित होना चाहिए, किन्तु उसकी कुछ सीमाएँ होती हैं। उन सीमाओ को सर्वथा तोडना या अपनाना तो वीतराग के वश की बात है। जब तक शरीर रहता है, तब तक वे कुछ सीमाओ का स्वीकार अनिवार्यरूप से करते हैं, लेकिन इससे उनकी वीतरागता मे कोई कमी नही आती।

यह सच है कि बाह्याचार के कारण विवेकी पुरुष का प्रस्थान विशुद्धि की ओर होता है, इसलिए बाह्याचार को सर्वथा निरर्थक तो नही कहा जा सकता, परन्तु बाह्याचार और आन्तरिक भावो का सन्तुलन जरूरी है, जिसे भगवान् महावीर ने अपने प्रवचनो मे स्पष्ट किया है।

इसलिए भ० महावीर की दृष्टि से निर्वाण-साधना मे बाह्याचार और आन्तरिक आचार मे सामजस्य जरूरी है, और वह कदाग्रह से नही, किन्तु विवेकबुद्धि से ही हो सकता है।



निर्वाण-साधना की दृष्टि से—



समाजनिर्माण का दायित्व

—शान्तिचन्द्र मेहता, एडवोकेट, चित्तौड़गढ़



मानवीय सस्कृति एव सभ्यता के विकास का वैज्ञानिक इतिहास इस सत्य को अवश्य ही उजागर करता है कि मनुष्य सतत प्रगतिशील घटक रहा है। किसी समयावधि के लिये विमूढतावश वह भले ही स्थगन (Stagnation) की विवशता से पीडित रहा हो, किन्तु उसकी गतिशीलता कभी अवरुद्ध नही हुई। प्रगतिशीलता के उसके गुण ने ही महावीर के मुख से मनुष्य-जीवन को 'दुल्लहे खलु माणुसे भवे' (मनुष्य जीवन अवश्य ही दुर्लभ है) कहलाया तो आधुनिक युग मे कार्ल मार्क्स ने भी मनुष्य को प्रगति का मूल (Root of progress) कहा है। मानव-जीवन की प्रबुद्धता ही समाज-निर्माण का दायित्व झेलती है, जो निर्वाण-साधना की चरम स्थिति तक भी पहुँचती है।

व्यक्ति और समाज की शक्तियाँ

परम्परागत विचारदृष्टि से तो ऐसा अनुभव होगा कि निर्वाण-साधना और समाज-निर्माण—ये दोनो कार्य परस्पर विरोधी हैं। निर्वाण-साधना को आप व्यक्तिगत कार्य कहेगे कि एक साधक एकाकी साधना से अपना उच्चतम विकास साधे—ससार से विरागी बन कर और अपने अन्त करण मे डूब कर। किन्तु जहाँ तक समाज-निर्माण के अपने दायित्व को पूरा करने का प्रश्न है, वह तो व्यक्ति को ससार से सलग्न बनाता है और उसे समूह से जोडता है। तो प्रश्न है कि क्या वास्तव मे ये दोनो कार्य परस्पर विरोधी हैं अथवा परम्परा की रूढता मे गिरने से हमारी ऐसी भ्रान्त धारणा बन गई है ?

मेरा विचार यही है कि इन दोनो कार्यों मे परस्पर-विरोध की धारणा अवश्य ही भ्रान्त है। मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि इन दोनो कार्यों मे भरपूर सामंजस्य ही नही है, बल्कि दोनो अन्योन्याश्रित भी हैं। इसके लिये पिछली दो शताब्दियो मे व्यक्ति एव समाज के सम्बन्धो की मान्यता मे जो परिवर्तन आया है, उसे ध्यान मे रखना होगा।

व्यक्ति एकाकी होता है और व्यक्ति-व्यक्ति से ही समाज का निर्माण होता है। समाज व्यक्ति से पृथक नही, फिर भी क्या व्यक्ति की शक्ति ही समाज की शक्ति बनती है ? क्या सामाजिक शक्ति का स्वतन्त्र अस्तित्व नही होता ? १९ वी सदी तक हमारी धारणाएँ अधिकाशत व्यक्तिवादी थी, किन्तु विज्ञान के आश्चर्यजनक विकास ने जब सम्पूर्ण मानवजाति के बीच की दूरी घटा दी तो एक नये दृष्टिकोण ने जन्म लिया, जिसे हम सामान्यतया समाजवाद कहते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति की अपनी शक्ति होती है, किन्तु जब कुछ व्यक्ति मिल कर किसी सविधान एव नियमोपनियमो के साथ एक सस्था की रचना करते हैं और अपने को उससे सम्बद्ध बनाते हैं तो उस सविधान आदि की आधारशिला पर सस्था की नई शक्ति बनती है, जिसके आगे व्यक्ति की शक्ति को झुकना पडता है। ऐसी ही शक्ति समाज की होती है, जो व्यक्ति से गठित होती हैं। किन्तु वह होती है—व्यक्ति की शक्ति से ऊपर और वही शक्ति व्यक्ति को अनुशासित बनाती है। व्यक्ति एव समाज की शक्तियो को इसी परिप्रेक्ष्य मे देख कर जीवन के साथ उनके प्रभाव का अकन करना चाहिये।

सामंजस्य एवं सहयोग की शृंखला

पाँवो को व्यक्ति का रूप मानिये तो समाज को धरातल। चलने वाले अवश्य ही पाव होते है, किन्तु उनकी गति सदा ही धरातल पर आधारित होती है। यदि धरातल समतल और साफ हुआ तो वे पांव उग्रगति से आगे बढ सकेंगे एव अपने गन्तव्य तक पहुँच सकेंगे। किन्तु इसके विपरीत यदि धरातल उबड-खाबड व कंटकाकीर्ण हुआ तो सशक्त पाव भी रुक जायेंगे, धीमे हो जायेंगे एव थक जायेंगे। पावो और धरातल के बीच यदि सामजस्य एव सहयोग की शृखला जुडी हुई हो तो निश्चय ही प्रगति निर्बाध हो सकेगी।

व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के अनुसार हमको अब तक यही समझाया गया है कि धर्म और ससार (समाज) के क्षेत्र पृथक्-पृथक् है तथा धर्मसाधना की पुष्टि के लिये ससार-त्याग आवश्यक है। तब ससार मे रह कर ससार को बदलने का विचार जन्मा नही था। व्यक्ति ही ससार से अलग हो तो वह अपनी आत्मा को निर्वाणगामी बना सकता है—यही विचार फैला हुआ था। इसमे सन्देह नही कि इस विचार मे बहुत बडा सत्याश था और है, परन्तु यह नही कहा जा सकता कि आज के समाजवादी विचार मे सत्याश नही है, बल्कि यह शोध का विषय है कि सभवत इस विचार मे उससे भी बडा सत्याश रहा हुआ हो।

अब व्यक्ति को समाज से तोड कर नही, उससे जोड कर देखने का युग है और यही दृष्टि दोनो को सामजस्य एवं सहयोग की शृखला से जोडती है।

निर्वाणसाधना एव समाजनिर्माण परस्पर पूरक

निश्चय ही निर्वाण-साधना व्यक्ति का व्यक्तिगत चरम है, किन्तु क्या इस चरम की उपलब्धि साधारणत. बिना समुचित समाजनिर्माण के सम्भव बन सकती

है ? वर्तमान वैज्ञानिक युग मे मनुष्य शत-प्रतिशत रूप से सामाजिक प्राणी वन गया है। चाहे आध्यात्मिक गुणो की अवाप्ति का प्रश्न हो अथवा भौतिक साधनो की प्राप्ति का—सभवतः व्यक्ति सामाजिक प्रभावो से एक क्षण के लिये भी मुक्ति नही पाता है। आपकी दिनचर्या को ही देखिये—कौनसा काम आप सामाजिक सहकार के अभाव मे पूरा कर पाते हैं ? पग-पग पर जव व्यक्ति और समाज जुडकर चल रहे हैं तो यही स्थिति समीचीन मानी जानी चाहिये कि व्यक्ति सामूहिक प्रयत्नो से ऐसे स्वस्थ समाज का निर्माण करे जिसके समतल धरातल पर चल कर वह निर्वाणसाधना को सफल वना सके। इस प्रकाश मे यदि व्यक्तिगत एव सामाजिक समस्याओ को देखने का एव उनके समाधान खोजने का प्रयास किया जायगा तो निश्चय ही निर्वाणसाधना एव समाजनिर्माण के लक्ष्य परस्पर पूरक ही प्रतीत होगे।

समाज-निर्माण का दायित्व किस रूप मे पूरा किया जा सकता है—इसे निर्वाण-साधना के लक्ष्य के सन्दर्भ मे देखना एव वनाना चाहिये। निर्वाण-साधना व्यक्ति का उच्चतम साध्य माना गया है तो समाज-निर्वाण को उसके अनुकूल साधन के रूप मे देखना होगा। निर्वाण-साधना क्या है और वह महावीर की दृष्टि मे क्या है—यह गम्भीर एव विस्तृत दार्शनिक विषय है, किन्तु इसे सक्षेप मे यो कह सकते हैं कि निर्वाण-साधना ममता के विरुद्ध समता की साधना है—परिग्रह की मूर्च्छा से हट कर आत्मा को उन्मुक्त वनाने की साधना है। इस साधना का अन्तिम परिणाम मानवीय सस्कृति एव सभ्यता के श्रेष्ठतम रूप मे ही प्रकट होता है।

साधन को पहले सशक्त बनाइये !

साध्य की सिद्धि साधन की सशक्तता पर निर्भर करती है, इस कारण पहले साधन को सशक्त वनाने की आवश्यकता है। साधन तभी सशक्त होगा, जव वह साध्य की प्राप्ति के अनुकूल हो, वल्कि उसमे सहायक हो। निर्वाण-साधना की सिद्धि तभी प्राप्त हो सकेगी, जव उसके अनुकूल समाज का निर्माण किया जाय। ऐसे समाज-निर्माण के दायित्व का वीडा आज उन सभी निर्वाण-साधको को उठाने के लिये आगे आना चाहिये, जिसमे से शोपण, दमन एव उत्पीडन के मूल रोग समाप्त हो कर मानवीय सद्गुणो का सम्यक् रीति से विकास हो चुका हो।

मानवीय धरातल पर ही मानव निर्वाण की ओर सफलतापूर्वक अग्रगामी वन सकेगा। अत समाजनिर्माण का दायित्व निर्वाणसाधना से भी पहले आता है, जिसके लिये व्यक्ति एव समाज की सारी शक्ति निष्ठापूर्वक एकजुट वननी चाहिये, ताकि स्वस्थ समाज के निर्माण के साथ एक व्यक्ति के लिये ही नही, सभी विकासोन्मुख व्यक्तियो के लिये निर्वाणसाधना को सहज वनाई जा सके।




उपदेश
तृतीय
खण्ड
श्री अमर भारती, भगवान महावीर निर्वाण विशेषांक



उतने पर अधिकार तुम्हारा

—शर्मनलाल 'सरस' सकरार (झांसी)



समय कह रहा बडे वेग से, है यह मानवता का नारा,
जितने कम से गुजर हो सके, उतने पर अधिकार तुम्हारा,

●

हिंसा झूठ और चोरी से, मिटे आज आदर्श पुराने,
इतने कलुपित हृदय हो गए, लगा स्वयं इतिहास लजाने,
कैसे कहूँ दया है हम मे, हम भी दया बात वाले है ?,
हिंसक पशुओ से अब ज्यादा, हिंसक मनुज जात वाले है,
उर को कब्रिस्तान बनाने से होगा, क्या भला तुम्हारा ?,
जितने कम से गुजर हो सके, उतने पर अधिकार तुम्हारा,

●

कैसे कहे यही वह भारत, जिसका लक्ष्मण से नाता है,
आज गली हर चौराहो पर, सीता को टोका जाता है,
देखो वह देखो आँसू भर, किसकी कौन चली आती है,
दिन दोपहर कितनी बहनो की, अब साडी खीची जाती है,
कितना कटु सत्य है इसमे कभी आपने नही विचारा,
जितने कम से गुज़र हो सके, उतने पर अधिकार तुम्हारा ?

●

अधिक काम ले कर कम देना, खुले आम यह दानवता है,
आज इन्ही पैसो वालो से, लज्जित सारी मानवता है,
क्या कारण है कही नग्न तन, कही बिछी रेशम डोरी है,
अधिक जरूरत से रख लेना, सरे आम समझो चोरी है,
ऐसो को समझाना होगा, बधु वीर का पावन नारा,
जितने कम से गुजर हो सके, उतने पर अधिकार तुम्हारा,




भगवान महावीर

वर्तमान युग मे सुख-शान्तिदाता .

भगवान् महावीर का उपदेश

—परिपूर्णानन्द वर्मा



आज ससार मे जितनी अव्यवस्था, अशान्ति तथा हाय-हाय की आँधी ने प्रत्येक वर्ग, समुदाय तथा मानवमात्र को त्रस्त कर रखा है, उससे बचने का कोई उपाय नही दिखाई पडता। धनी से धनी और निर्धन से निर्धन देश मे न किसी को मानसिक सुख है या शान्ति है। जो जितना ही धनी देश है, वहाँ सामाजिक विघटन उतना ही भीषण है। इधर आत्महत्या मे वृद्धि का एक कारण यह भी कहा जा रहा है कि लोग सुख, समृद्धि, भोग, विलास से ऊब कर जान दे रहे हैं। ऐसी स्थिति मे क्या मानवता के लिये कोई सहारा नही है ?

सहारा तथा उपाय है। यदि भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण-दिवस पर हम उनके उपदेशो का कुछ भी अश ग्रहण कर सकें, हृदयगम कर सकें तो समाज मे फिर से आशा तथा स्थिरता की एक नयी ज्योति जाग सकती है और उससे जगत् मात्र आलोकित हो सकता है। ससार की विपत्ति की जड है—हरएक की असीमित, अपरिमित इच्छा, माँग तथा परिग्रह की कामना। हम चाहते है कि जितना जो कुछ हो सके, हमे मिल जाय। यही नही, दूसरे का जितना जो कुछ अपहरण कर सकें, उतनी ही तृप्ति होगी। मानव के इसी स्वभाव को देख कर भ० महावीर ने कहा था—

> सुव्वण्णप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असखया।
> नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि, इच्छा हु आगाससमा अणतया॥

—उत्तराध्ययन सूत्र

सोने और चाँदी के कैलाशपर्वत के समान असख्य पर्वत (ढेर) हो जाय, तो भी (तृष्णावान) मनुष्य को उससे कुछ भी तृप्ति नही होती। क्योकि इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।

आज अपार धन वाले देश और व्यक्ति दु:खी हैं, चिन्तित हैं। क्यो ? इसलिए कि वे धन से त्राण और सुख की आशा लगाए बैठे हैं मगर धन से सुख नही है। जब तक जगत् इच्छा के जाल मे पागल हो। हम यह भूल जाते हैं कि जीवन कुछ ही वर्षों के लिये है। मरने के बाद क्या होगा, इसका पता किसे है।

इसलिये कुछ वर्ष के इस सासारिक जीवन को असली सुख व शान्ति से क्यो वचित करें। इच्छा के बन्धन मे जकडे रहने से मनुष्य को कदापि सुख व शान्ति नही मिल सकती। इसीलिये भगवान महावीर ने कहा—

छंदो-निरोहेण उवेइ मोक्ख

अर्थात् इच्छा को जीतो। स्वच्छन्दता को रोकने पर ही व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त करता है। स्वतन्त्र बन जाओ। यदि इच्छा को जीत लोगे तो आत्मा की, आपकी रक्षा हो जायगी। ध्यान रखना होगा कि धन आदि कभी विपत्ति मे हमारी रक्षा नही कर सकता। धर्म ही एकमात्र हमारी रक्षा कर सकता है। इसी बात को भगवान् महावीर ने यो कहा—

'एगो हु धम्मो नरदेव ताण', 'वित्तेण ताणं लभे पमत्त'

एकमात्र धर्म ही ऐसा तत्व है, जो व्यक्ति की रक्षा कर सकता है, प्रमादी व्यक्ति धन से अपनी रक्षा नही कर पाता। अपनी आत्मा की रक्षा करनी है तो— 'भारडपक्खीव चर अपमत्तो' (भारडपक्षी की तरह अप्रमत्र बन कर चल।) अभी तो जवानी है। अभी तो इच्छाओ की पूर्ति कर लें, फिर आत्मा की रक्षा कर लेंगे तो यह हमारी भूल है, क्योकि एक क्षण का भी प्रमाद घातक होता है। एक क्षण का प्रमाद जीवन का समूचा भविष्य नष्ट कर सकता है। इसीलिए भ० महावीर की यह उक्ति अत्यन्त मर्मस्पर्शी है—

'समय गोयम ! मा पमाइए'

'गौतम ! एक क्षण के लिये भी प्रमाद मत करो।' इच्छा और आशा का सगी बहन का साथ है। दोनो साथ-साथ चलती है। जिसने आशा की, आशा के जाल मे अपने को फसा लिया, उसकी बडी दुर्गति होती है। गुरु अष्टावक्र ने अपनी गीता मे लिखा है —

"आशा या ये दासास्ते दासा सर्वलोकस्य।
आशा येपा दासी तेपा दासायते लोक:" ॥

जो आशा का दास बन जाता है, वह ससार का दास बन जाता है। जिसने आशा को छोड दिया, जो किसी से कुछ आशा नही करता, वह ससारभर को अपना दास बना लेता है। अतएव हमे निर्णय करना है कि क्या हम ससार की दासता करें, या ससार के स्वामी बन जायँ ? यह सोचना घोर मूर्खता है कि अभी हमारे मे शक्ति

है, बल है, हम ससार को जीत सकते हैं। हमे ससार क्या दास बनायेगा ? इसीलिए भ० महावीर ने चेतावनी दी है—

'घोरा मुहुत्ता अबलं सरीर'

अर्थात् "समय बडा निर्मम है और शरीर बडा निर्बल है।" उसके भरोसे रहने से काम नही चलेगा। जीवन का कोई ठिकाना नही। देखने मे जरा-सी चीज इस शरीर को निर्बल और निकम्मा बना देती है। भ० महावीर ने कहा था—

चइत्ताण इम देह गतव्वमवसस्स ते

"इस शरीर को छोड कर एक दिन निश्चित ही तुम्हे चले जाना है।" इसीलिये केवल धन के पीछे पागल बना हुआ आज का समाज मिथ्यामोह और अन्धकार मे है। "वियाणिया दुक्खविवद्धण धण।' धन दुःख बढ़ाने वाला है, इस बात को विशेष रूप से जान कर धर्ममार्ग पर चलो।

कामनाओ के जाल मे मत फसो, इसीलिये भ० महावीर ने सावधान किया है .—

सल्लं कामा विस कामा कामा आसीविसोवमा।
कामे पत्थेमाणा आकामा जति दोग्गई ॥

"काम-भोग शल्य हैं, विप हैं और आशीविप सर्प के तुल्य है। काम-भोग की इच्छा करने वाले, उनका सेवन न करते हुए भी दुर्गति को प्राप्त करते है।'

विपयो मे आसक्ति ही आज ससार के दु ख का कारण है। आचार्य कुन्दकुन्द ने स्पष्ट कहा है—

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुक्ख वियाण सब्भाव।
जदि त णहि सब्भाव वावारो णात्थ विसयत्थ ॥

"जिनकी इन्द्रिया विपयो मे आसक्त हैं, उनको स्वाभाविक दु खी समझना चाहिये। क्योकि यदि उन्हे स्वाभाविक दु ख नही होता तो विषयो की प्राप्ति के लिये यत्न क्यो करते।"

अन्धे-बहरे

आज का समाज अन्धा और बहरा हो रहा है। आदि शकराचार्य ने अपनी प्रश्नोत्तरी मे लिखा है—

कोऽन्धो योऽकार्यरत
    को बधिरो यः श्रृणोति न हितानि।
को मूको य. काले
    प्रियाणि वक्तु न जानाति ॥

अन्धा कौन है—जो न करने योग्य बुरे कामो मे लीन रहता है। बहरा कौन है—जो हित की बात नही सुनता। गूंगा कौन है—जो समय पर प्रिय वचन बोलना नही जानता।

हम आज ऐसे ही हो रहे हैं। सन्त भूधरदास ने ठीक ही लिखा है—

राग उदै जग अन्ध भयो सहजहिं सब लोगन लाज गँवाई।
सीख विना नर सीखत है विषयादिक सेवन की सुरघाई॥
तापर और रचें रस काव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अन्ध असूझन की अखियान मे डारत हैं रज राम दुहाई।

शान्ति चाहिये

आज का मानव परेशान है, इसलिये कि वह सब कुछ होते हुए भी, विज्ञान तथा वैभव से सब कुछ प्राप्त करने पर भी, शान्ति नही पा रहा है। अशान्ति आज सबसे बडा अभिशाप है। जिस धर्म, जिस उपदेश, जिस मार्ग से शान्ति मिले, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। धार्मिक तथा राजनैतिक विवाद मे न पड कर हमे केवल शान्ति का मार्ग ढूँढना है। भगवान् महावीर ने शान्ति का राजमार्ग त्याग को ही बताया है—

'चइत्ता भारह वास चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
सति सतिकरे लोए पत्तो गईमणुत्तर ॥'

भारतवर्ष का सारा चक्रवर्ती की ऋद्धि से युक्त राज्य का सर्प कचुकी की तरह क्षणभर मे त्याग कर दिया। लोक मे शान्ति करने वाले वे शान्तिनाथ प्रभु अनुत्तर गति (निर्वाण=मुक्ति) को प्राप्त हुए।

इसीलिए भगवद्गीता मे कहा गया—

'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'

त्याग करने के बाद ही तुरन्त शान्ति मिलती है।
इसीलिए उन्होने शान्ति को स्थायित्व प्रदान करने हेतु कहा—

'धम्मे हरए बभे सतितित्थे।'
जहिं सिणाओ विमलो विसुद्धो।

धर्म ह्रद (सरोवर) है। ब्रह्मचर्य शान्ति तीर्थ है।
जहाँ स्नान करने से आत्मा निर्मल और शुद्ध बन जाती है।



लगा। भगवान् महावीर ने अपने ७२ वर्षीय जीवन मे श्रमण-सस्कृति को पुन प्रतिष्ठित किया। तत्कालीन समाजव्यवस्था मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। यदि यह भी कहा जाये कि भगवान पार्श्वनाथ द्वारा उपदेशित मार्ग तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार परिवर्धित तथा परिष्कृत रूप मे मानवसमाज को दिया, उसमे और भी क्रान्तिकारी परिवर्तन किए तो अत्युक्ति नही। भगवान् महावीर ने तत्कालीन प्रचलित विभिन्न मत-मतान्तरवाद का समन्वय करने के लिए मानवसमाज को 'अनेकान्तदृष्टि' का उपदेश दिया। इस प्रकार उन्होंने सर्वधर्मसमन्वय का मार्ग प्रशस्त किया। भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट मार्ग को सक्षेप मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि—

(१) विचार मे अनेकान्त, (२) वाणी मे स्याद्वाद,
(३) आचार मे अहिंसा, (४) सामाजिक न्याय मे अपरिग्रह।

वास्तव मे भगवान् महावीर को 'श्रमण-संस्कृति' को पुन· प्रतिष्ठित करने मे अत्यन्त कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करना पडा। भगवान् महावीर के समय मे प्रतिकूल परिस्थिति काफी सवल थी, किन्तु उनकी साधनापूर्ण तपस्या तथा जीवन ने मार्ग को प्रशस्त कर दिया। उसके परिणामस्वरूप श्रमण तथा श्रावक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र प्रत्येक प्रकार का मानव दीक्षित होने लगा। उच्चशिक्षित वेदपाठी ब्राह्मण विद्वान, राजा, महाराजा, धनिक, निर्धन सब दीक्षित होने लगे। भगवान् महावीर के समय मे पूर्ववर्ती भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी श्रमण सघ व श्रावक-सघ विद्यमान था। दोनो महापुरुषो द्वारा उपदेशित मार्ग मे कुछ साधारण-सा अन्तर था। इस कारण भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी 'केशीमुनि' तथा भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य 'गौतम गणधर' मे चर्चा हुई। भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्श 'अनेकान्त दृष्टि' का ही यह प्रताप था कि वह चर्चा अत्यन्त शान्त वातावरण मे हुई एव 'समन्वय' हो सका। इस प्रकार भगवान् पार्श्वनाथ तथा महावीर द्वारा परिष्कृत श्रमण-सस्कृति आज लगभग तीन हजार वर्षों से अपना कार्य कर रही है तथा मानव की आत्मा को संस्कृत करने मे योगदान दे रही है।

इसमे सन्देह नही है कि श्रमण-सस्कृति को भगवान् महावीर के समकालीन भगवान बुद्ध का भी पर्याप्त योगदान मिला है। भगवान् बुद्ध स्वयं एक क्षत्रिय राजपुत्र थे तथा भगवान् महावीर से आयु मे कुछ कम थे। भगवान बुद्ध ने अपने प्रमुख-शिष्य 'सारिपुत्र' से अपने बोध-प्राप्ति से पूर्व की जीवन-चर्या के सम्बन्ध मे तथ्य बताए हैं। उक्त चर्चा पर विचार करने से यह कहा जा सकता है कि यह चर्चा जैन स्थविर मुनियो तथा जिनकल्पित जैनसाधुओ की है। इस पर से कुछ विद्वानो का अनुमान है कि भगवान बुद्ध ने पूर्ववर्ती भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा या अन्य श्रमण सघ की परम्परा मे साधु-जीवन व्यतीत किया होगा। क्योकि भगवान बुद्ध के पूर्व बौद्ध धर्म की परम्परा भारतवर्ष मे रही हो, ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण

उपलब्ध नही हो सकता है। इस पर से यह अनुमान निकलता है कि भगवान बुद्ध ने उक्त जीवन कुछ वर्षो तक व्यतीत किया, उसके पश्चात् उन्होने मध्यममार्ग निरूपित किया। इस सम्बन्ध मे केवल एक विद्वान बौद्ध भिक्षुक स्वर्गीय श्री धर्मानन्द कौशाम्बी द्वारा लिखित पुस्तक 'भगवान बुद्ध' (पृष्ठ ६) मे पण्डित धर्मानिन्द कोशाम्बी का परिचय आदरणीय काका कालेलकर के शब्दो मे उद्धृत करना उचित होगा—

"धर्मानन्दजी इस निर्णय पर पहुँचे कि पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म मे से ही बौद्ध और जैन यह दो धाराएँ निकली हैं। उनका यह भी अभिप्राय था कि बौद्ध और जैन विचार-पद्धति की बुनियाद मे जो दार्शनिक जीवनदृष्टि है, उसके स्वीकार करने से ही समाजवाद और साम्यवाद कृतार्थ हो सकेंगे और मानवजाति का कल्याण करने की साधना आज के मानव के हाथ मे आएगी।"

भगवान् महावीर तथा भगवान् बुद्ध के उपदेशो का अनुशीलन किया जाय तो यह तथ्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि उनके उपदेशो मे विशेष अन्तर नही है। उनके द्वारा उपदेशित आचार तथा उसकी भूमिका लगभग एक-सी है। यही कारण है कि उत्तराध्ययनसूत्र तथा धम्मपद की कुछ गाथाएँ लगभग समान हैं। ब्रह्मचारी शीतल-प्रसाद जी ने अपने द्वारा लिखित पुस्तक "जैन-बौद्ध-तत्वज्ञान" मे यह निरूपित किया है कि दोनो महापुरुषो द्वारा प्ररूपित तत्वज्ञान मे विशेष अन्तर नही है। यह प्रश्न अधिक गवेषणा का विषय है। जहाँ तक आचार की भूमिका का सम्बन्ध है, दोनो ने उच्च आधार लिया था। यह स्पष्ट है कि श्रमण-सस्कृति दोनो महापुरुषो के विचारो तथा जीवन से पल्लवित हुई है और समग्र विश्व का कल्याण श्रमण-सस्कृति के उन्नयन से ही हो सकता है। यदि जैन तथा बौद्ध समाज अपने आचार तथा अमल के द्वारा विश्व मे दोनो महापुरुषो द्वारा उपदिष्ट उच्च आदर्श का प्रचार करें तो निश्चित रूप से विश्व वर्तमान स्थिति से उभर सकता है। आज के युग की वर्तमान विषमता, घृणा, नफरत का वातावरण प्रेम तथा स्नेह के वातावरण मे बदल सकता है। सिद्धान्तो के प्रचार का सबसे उत्तम माध्यम "अमल" होता है। "अमल" के विना केवल वाणी का प्रचार प्रभावपूर्ण नही हो सकता। यही कारण है कि इतने उच्च सिद्धान्तो के प्रचुर प्रचार के बावजूद विश्व मे वर्तमान विषमता, घृणा का स्थान स्नेह तथा प्रेम नही ले सकता।

भगवान् महावीर तथा भगवान् बुद्ध के जन्म के साथ अन्य देशो मे भी कुछ प्रभावशाली हस्तियो ने जन्म लिया। उदाहरण के रूप मे यूनान मे सुकरात, फारस मे जरथुस्त, चीन मे लाओत्से तथा कन्फ्यूशियस का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने तत्कालीन समाज मे वैचारिक क्रान्ति की। भगवान महावीर के निर्वाण दिवस के अवसर पर यह आशा करना अनुचित न होगा कि जैन समाज अपनी ओर से 'अमल' के जरिये श्रमण-सस्कृति के प्रचार, प्रसार का पूर्ण प्रयत्न करेगा।



भगवान महावीर द्वारा—



श्रमण संस्कृति की पुनःप्रतिष्ठा

सौभाग्यमल जैन



आधुनिक इतिहासकार की दृष्टि आज से लगभग पांच हजार वर्षों से पूर्व नही जाती। यदि हम इतिहास की ओर दृष्टिपात करें तो हमे इस परिणाम पर पहुँचना होगा कि आज से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व केवल भारतवर्ष मे ही नही, समस्त विश्व मे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि मानवसमाज अपने किसी उद्धारक की खोज की आवश्यकता अनुभव करता था। वात वास्तव मे यही थी कि मानवसमाज की आन्तरिक क्षुधा केवल यज्ञ-यागादिपूर्ण वैदिक सस्कृति से तृप्त नही हो रही थी। वेदकालीन ब्राह्मणसस्कृति मे अधिकतर प्रकृतिपूजा थी। मानव अपनी भौतिक समृद्धि के लिए मन्त्रो द्वारा प्रार्थना किया करता था। उसका लक्ष्य भौतिक साधनो की प्राप्ति था। उसके पश्चात् मानवसमाज ने कुछ प्रगति की और उपनिषद्काल मे उसने आध्यात्मिक विचार प्राप्त किए। वेद तथा उपनिषद्कालीन ब्राह्मणसस्कृति का मार्ग प्रवृत्ति-सूचक था। उससे मानव पूर्ण सतुष्ट नही था। ब्राह्मणसस्कृति के अग्रदूत ऋषि, मुनि स्वय भी प्रवृत्तिमार्ग अपनाते तथा सासारिक जीवन व्यतीत करते थे। उस समय मानवसमाज को निवृत्ति-सूचक मार्ग का कोई उपदेष्टा प्राप्त नही था। ब्राह्मणसस्कृति के उस युग मे ब्राह्मणो की ही श्रेष्ठता थी। वह अन्य वर्ण को अपने से निम्नकोटि का मानता था। शूद्रो को अत्यन्त नीच मान कर उन्हे वेद-श्रवण तक का अधिकार स्वीकार नही किया जाता था। दास-प्रथा वर्तमान थी। वाजार मे दास, दासियो का क्रय-विक्रय होता था। महिलाओ की स्थिति दयनीय थी, उन्हे कोई सामाजिक अधिकार प्राप्त नही थे। धर्म के नाम पर पशुवलि दी जाती थी। धर्म केवल रूढियो का ककालमात्र था। ऐसी विषम

परिस्थिति मे मानव-समाज अपने किसी मसीहा, उद्धारक की खोज मे था। इस परिस्थिति के परिणाम-स्वरूप ही श्रमण-सस्कृति की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। श्रमण-सस्कृति पूर्व मे भी थी, किन्तु कालप्रभाव से उस पर आवरण हो रहा था। उसके उद्धार की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी थी। ऐसे समय मे भगवान् पार्श्वनाथ ने वाराणसी मे आज से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व एक क्षत्रियकुल से जन्म ले कर इस आवश्यकता की पूर्ति की। उन्होने श्रमण-सस्कृति को परिष्कृत किया। धर्म के ककालमात्र रूढियो पर प्रहार किया। मानवसमाज को निवृत्तिमार्ग का उपदेश दिया तथा मानवमात्र की बराबरी का अधिकार स्वीकार किया। उन्होंने बतलाया कि मानव किसी विशेष कुल, जाति मे उत्पन्न होने से ही वह उच्च, नीच नही हो सकता, अपितु अपने कर्मों से ही उच्च-नीच, होता है। इस प्रकार उन्होने जन्मना उच्च, नीच के विचार पर आक्रमण करके तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। दासदासियो का क्रय-विक्रय सामाजिक पाप प्ररूपित किया। यज्ञ की परिभापा बदल दी। उन्होने मानव को सदेश दिया कि 'यज्ञ' स्वय का करो। आत्मयज्ञ तुम्हे आत्मशान्ति देगा। अपनी इच्छाओ की आहुति दे कर आत्मा को प्रगतिपथ पर ले जाना, मानव के लिए श्रेयस्कर है। भगवान् पार्श्वनाथ ने अपने शतायुपूर्ण जीवन मे निवृत्ति-प्रधान सस्कृति का खूब विचार किया। उसके परिणाम स्वरूप उनके कई अनुयायी गृहस्थ-जीवन त्याग कर सन्यासी हो गए। जिनको 'श्रमण' नाम से अभिहित किया गया। भारतवर्ष मे श्रमण-सस्कृति दिन-प्रतिदिन पल्लवित होने लगी।

भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाण के पश्चात् श्रमण-सस्कृति ने देश मे निवृत्ति-प्रधान मार्ग का विकास किया। वास्तव मे 'सस्कृति' के द्वारा ही मानव अपनी आत्मा को सस्कृत कर सकता है। आत्मा को सस्कृत करने का अर्थ यही है कि मानव अपनी आत्मा को सद्गुणो से संस्कृत करके अबाधसुख की प्राप्ति करे, आवागमन रहित मुक्ति प्राप्त करे। मानवसमाज को इसकी पूर्ति प्रवृत्तिप्रधान मार्ग मे दिखलाई नही पडी, इसी के परिणामस्वरूप भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा परिष्कृत श्रमण-सस्कृति तथा उनका उपदेशित 'चातुर्याम धर्म' का देश मे खूब प्रचार हुआ। प्रत्येक वर्ग के मानव उसमे दाखिल हुए। सर्व-साधारण से ले कर तत्कालीन राजा, महाराजा ने भी उससे लाभ उठाया। भगवान् पार्श्वनाथ के निर्वाण के पश्चात् २५० वर्ष तक यही क्रम चलता रहा किन्तु कालप्रभाव से पुन· पूर्व परिस्थिति उत्पन्न होने के लक्षण प्रकट होने लगे। मानवसमाज पुन ब्राह्मण-सस्कृति से ऊबने लगा। मानव समाज सामाजिक अत्याचारो से पीडित होने लगा। हिंसापूर्ण यज्ञ-यागादि का पुन प्रचार होने लगा। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति मे भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायी मगध देश के क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ के यहाँ आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व 'वर्द्धमान' का जन्म हुआ। अत्यन्त साहसपूर्ण कार्य करने के कारण उनको 'म ावीर' कहा जाने

लगा। भगवान् महावीर ने अपने ७२ वर्षीय जीवन से श्रमण-संस्कृति को पुन प्रतिष्ठित किया। तत्कालीन समाजव्यवस्था मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। यदि यह भी कहा जाये कि भगवान पार्श्वनाथ द्वारा उपदेशित मार्ग तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार परिवर्धित तथा परिष्कृत रूप मे मानवसमाज को दिया, उसमे और भी क्रान्तिकारी परिवर्तन किए तो अत्युक्ति नही। भगवान् महावीर ने तत्कालीन प्रचलित विभिन्न मत-मतान्तरवाद का समन्वय करने के लिए मानवसमाज को 'अनेकान्तदृष्टि' का उपदेश दिया। इस प्रकार उन्होने सर्वधर्मसमन्वय का मार्ग प्रशस्त किया। भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट मार्ग को सक्षेप मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि—

(१) विचार मे अनेकान्त, (२) वाणी मे स्याद्वाद,
(३) आचार मे अहिंसा, (४) सामाजिक न्याय मे अपरिग्रह।

वास्तव मे भगवान् महावीर को 'श्रमण-संस्कृति' को पुन प्रतिष्ठित करने मे अत्यन्त कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करना पडा। भगवान् महावीर के समय मे प्रतिकूल परिस्थिति काफी सबल थी, किन्तु उनकी साधनापूर्ण तपस्या तथा जीवन ने मार्ग को प्रशस्त कर दिया। उसके परिणामस्वरूप श्रमण तथा श्रावक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र प्रत्येक प्रकार का मानव दीक्षित होने लगा। उच्चशिक्षित वेदपाठी ब्राह्मण विद्वान, राजा, महाराजा, धनिक, निर्धन सब दीक्षित होने लगे। भगवान् महावीर के समय मे पूर्ववर्ती भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी श्रमण सघ व श्रावक-सघ विद्यमान था। दोनो महापुरुषो द्वारा उपदेशित मार्ग मे कुछ साधारण-सा अन्तर था। इस कारण भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी 'केशीमुनि' तथा भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य 'गौतम गणधर' मे चर्चा हुई। भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट 'अनेकान्त दृष्टि' का ही यह प्रताप था कि वह चर्चा अत्यन्त शान्त वातावरण मे हुई एव 'समन्वय' हो सका। इस प्रकार भगवान् पार्श्वनाथ तथा महावीर द्वारा परिष्कृत श्रमण-सस्कृति आज लगभग तीन हजार वर्षों से अपना कार्य कर रही है तथा मानव की आत्मा को संस्कृत करने मे योगदान दे रही है।

इसमे सन्देह नही है कि श्रमण-सस्कृति को भगवान् महावीर के समकालीन भगवान बुद्ध का भी पर्याप्त योगदान मिला है। भगवान् बुद्ध स्वय एक क्षत्रिय राजपुत्र थे तथा भगवान् महावीर से आयु मे कुछ कम थे। भगवान बुद्ध ने अपने प्रमुख-शिष्य 'सारिपुत्र' से अपने बोध-प्राप्ति से पूर्व की जीवन-चर्या के सम्बन्ध मे तथ्य बताए हैं। उक्त चर्चा पर विचार करने से यह कहा जा सकता है कि यह चर्चा जैन स्थविर मुनियो तथा जिनकल्पित जैनसाधुओ की है। इस पर से कुछ विद्वानो का अनुमान है कि भगवान बुद्ध ने पूर्ववर्ती भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा या अन्य श्रमण सघ की परम्परा मे साधु-जीवन व्यतीत किया होगा। क्योकि भगवान बुद्ध के पूर्व बौद्ध धर्म की परम्परा भारतवर्ष मे रही हो, ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण

उपलब्ध नही हो सकता है। इस पर से यह अनुमान निकलता है कि भगवान बुद्ध ने उक्त जीवन कुछ वर्षो तक व्यतीत किया, उसके पश्चात् उन्होने मध्यममार्ग निरूपित किया। इस सम्बन्ध मे केवल एक विद्वान बौद्ध भिक्षुक स्वर्गीय श्री धर्मानन्द कौशाम्बी द्वारा लिखित पुस्तक 'भगवान बुद्ध' (पृष्ठ ६) मे पण्डित धर्मानिन्द कोशाम्बी का परिचय आदरणीय काका कालेलकर के शब्दो मे उद्धृत करना उचित होगा—

"धर्मानन्दजी इस निर्णय पर पहुँचे कि पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म मे से ही बौद्ध और जैन यह दो धाराएँ निकली हैं। उनका यह भी अभिप्राय था कि बौद्ध और जैन विचार-पद्धति की बुनियाद मे जो दार्शनिक जीवनदृष्टि है, उसके स्वीकार करने से ही समाजवाद और साम्यवाद कृतार्थ हो सकेंगे और मानवजाति का कल्याण करने की साधना आज के मानव के हाथ मे आएगी।"

भगवान् महावीर तथा भगवान् बुद्ध के उपदेशो का अनुशीलन किया जाय तो यह तथ्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि उनके उपदेशो मे विशेप अन्तर नही है। उनके द्वारा उपदेशित आचार तथा उसकी भूमिका लगभग एक-सी है। यही कारण है कि उत्तराध्ययनसूत्र तथा धम्मपद की कुछ गाथाएँ लगभग समान हैं। ब्रह्मचारी शीतल-प्रसाद जी ने अपने द्वारा लिखित पुस्तक "जैन-बौद्ध-तत्वज्ञान" मे यह निरूपित किया है कि दोनो महापुरुपो द्वारा प्ररूपित तत्वज्ञान मे विशेप अन्तर नही है। यह प्रश्न अधिक गवेषणा का विपय है। जहाँ तक आचार की भूमिका का सम्बन्ध है, दोनो ने उच्च आधार लिया था। यह स्पष्ट है कि श्रमण-सस्कृति दोनो महापुरुषो के विचारो तथा जीवन से पल्लवित हुई है और समग्र विश्व का कल्याण श्रमण-सस्कृति के उन्नयन से ही हो सकता है। यदि जैन तथा बौद्ध समाज अपने आचार तथा अमल के द्वारा विश्व मे दोनो महापुरुषो द्वारा उपदिष्ट उच्च आदर्श का प्रचार करें तो निश्चित रूप से विश्व वर्तमान स्थिति से उभर सकता है। आज के युग की वर्तमान विपमता, घृणा, नफरत का वातावरण प्रेम तथा स्नेह के वातावरण मे बदल सकता है। सिद्धान्तो के प्रचार का सबसे उत्तम माध्यम "अमल" होता है। "अमल" के विना केवल वाणी का प्रचार प्रभावपूर्ण नही हो सकता। यही कारण है कि इतने उच्च सिद्धान्तो के प्रचुर प्रचार के बावजूद विश्व मे वर्तमान विपमता, घृणा का स्थान स्नेह तथा प्रेम नही ले सकता।

भगवान् महावीर तथा भगवान् बुद्ध के जन्म के साथ अन्य देशो मे भी कुछ प्रभावशाली हस्तियो ने जन्म लिया। उदाहरण के रूप मे यूनान मे सुकरात, फारस मे जरथुस्त, चीन मे लाओत्से तथा कन्फ्यूशियस का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने तत्कालीन समाज मे वैचारिक क्रान्ति की। भगवान महावीर के निर्वाण दिवस के अवसर पर यह आशा करना अनुचित न होगा कि जैन समाज अपनी ओर से 'अमल' के जरिये श्रमण-सस्कृति के प्रचार, प्रसार का पूर्ण प्रयत्न करेगा।



महावीर–वाणी की सार्वकालिक एवं सार्वत्रिक उपयोगिता



डॉ० उम्मेदमल मुनोत



डॉ० उम्मेदमल जी मुनोत (लखनऊ) महावीर निर्वाण समिति, उ० प्र० सरकार के सदस्य हैं। आप वर्तमान भौतिक अन्धतम वातावरण में समाज में आध्यात्मिकता एवं नैतिकता लाने एवं युवकों में धर्मक्रान्ति लाने के लिए प्रयत्नशील हैं। आप श्री अमरभारती के पुराने पाठक तथा युगलक्षी विचारक हैं।—सं० ●

वैदिक परम्परा मे वताया गया है कि शब्द ब्रह्म[1] है, वह अजर-अमर है। इसका अभिप्राय यह है कि शब्द का विनाश नही होता, वाणी सदैव अमर रहती है। तव प्रश्न हो सकता है कि जव शब्द का विनाश नही होता, वाणी सदैव अमर रहती है, तव तो कोई भी शब्द क्यो न हो, कोई भी वाणी क्यो न हो, चाहे वह महान् पुरुषो की हो अथवा अधमजनो की, भगवान् की हो, अथवा पामर-प्राणियो की, दोनो ही अमर होने के नाते परस्पर टकराती रहेंगी, उनका कोलाहल मचा ही रहेगा। फिर वर्तमान मे उससे हमे क्या लाभ? भारतीय संस्कृति मे एक वहुत वड़ी वात कही गई है कि पाप पर पुण्य की, असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की, शैतान पर इन्सान की और दानव पर देव की सदैव विजय हुआ करती है। 'सत्यमेव जयते' भारतीय सस्कृति का पावन सिद्धान्तवाक्य है। इससे यह वात स्पष्ट हो जाती है कि यद्यपि देव और दानव दोनो की वाणियो का शब्दशः विनाश नही होता, किन्तु जय-पराजय की दृष्टि से दुष्ट दानव की या पामरप्राणी की वाणी सर्वकाल और सर्वक्षेत्र में जन-कल्याणकारी न होने से लोक मे अमरता प्राप्त नही कर सकती, जवकि महान् आत्माओं की वाणी, जोकि मुख्यत. सर्वक्षेत्र और सर्वकाल मे लोक-कल्याणार्थ ही नि सृत हुआ करती है, लोक मे मर्यादित, प्रतिष्ठित एवं अमर होती है।

---

१. 'शब्द ब्रह्मेति व्यजानात्'—उपनिषद ।

भगवान् महावीर की वाणी, भी उस युग मे उत्पीडन के बीच सार्वजनिक सर्वक्षेत्रीय कल्याणस्वरूप निस्सृत हुई थी, अत. वह युगान्तरकारी एव अजर-अमर है। भगवान् महावीर की वाणी का, उनके अमृतोपम सदेश का शब्द-शब्द एव अक्षर-अक्षर प्रत्येक युग मे और प्रत्येक क्षेत्र मे लोक-कल्याण-कारक है। कोटिश· समस्याओ के जाल मे उलझे मानवो के लिये प्राणदायी है। चाहे हम इसे आध्यात्मिक या दार्शनिक रूप मे लें अथवा भौतिक या जागतिक रूप मे, यह सर्वतोभावेन सर्वज्ञत्व-मर्यादा-समन्विता वाणी है। किसी युगविशेष के लिये नही, अपितु युगो-युगो के लिये समानरूप से उपादेय है।

इसे स्पष्ट करने के लिये हमे भगवान् के मगलमय उपदेशो की गहराई मे गोते लगाना होगा, उसके मर्म को समझना होगा, उसका युग-सापेक्ष एवं समीचीनता की दृष्टि से विश्लेषण करना होगा। इस लोक मे भगवान् महावीर का आविर्भाव (उत्तार) आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व हुआ था। तब की और अब की मान्यताओ, परम्पराओ, रूढियो, रीतियो, जीवन-स्तरीय समस्याओ, युगीन परिस्थितियो मे पर्याप्त अन्तर है। आधुनिक युग की भिन्न समस्याएँ हैं, भिन्न मापदण्ड हैं, आचार-विचार मे भिन्नता है, फिर भगवान् महावीर के उन प्राचीनतम सिद्धान्तो का आज के युग मे क्या कुछ महत्व हो सकता है ? वे हमे किस भाँति समस्याओ के दलदल से बाहर निकाल सकते हैं ?

यहाँ विचारणीय यह है कि मानव का बाह्य आवरण बदल जाने से मानव नही बदल जाता। मानव अन्तत. मानव ही रहता है। ठीक उसी प्रकार समस्याओ के बाहरी कलेवर बदल जाने से समस्याएँ बदल जाती हैं, ऐसा नही समझा जाता। भले ही समस्याओ को सोचने, समझने और जीवन मे देखने की दृष्टि मे परिवर्तन आ जाये, किन्तु मानव की समस्याएँ यथावत् बनी हुई है। उसके रहन-सहन, आचार-विचार के तौर-तरीके चाहे बदल गये हैं, किन्तु मानव की मौलिक समस्याएँ—भोजन, वस्त्र, आवास एव शिक्षा—जिस प्रकार प्राचीन काल मे थी, आधुनिक काल मे भी वैसी ही हैं। अलबत्ता, क्रमश बढती हुई मँहगाई, औद्योगिक एव तकनीकी क्षेत्रो मे राष्ट्रो की बेतहाशा भागती हुई होड अवश्य बढ गई है। और सबसे बडी बात तो यह है कि आज की कशमकश स्थिति मे भगवान् महावीर की वाणी का मूल्य और भी बढ़ गया है। तब एक महावीर थे, आज समस्त मानवो को महावीर बनने का समय आ गया है। इसी मे लोक-कल्याण है, अन्य मे नही।

भगवान् महावीर के लोक-कल्याणार्थ जो उपदेश थे—उनमे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—इन पच-महाव्रतो (और गृहस्थ के लिए ५ अणुव्रतो) के जीवनव्यवहार मे सक्रिय परिपालन पर मुख्यरूप से बल देना होगा। और इन्ही पाँच व्रतो के सिद्धान्तो मे, चाहे समरसतावाद हो, समतावाद हो, सर्वोदयवाद हो अथवा आधुनिक समाजवाद हो—सबका स्वत समावेश हो जाता है।

यहाँ हम भगवान् की वाणी का इन पचव्रतो के परिप्रेक्ष्य मे युगसापेक्ष विवेचन करेंगे।

अहिंसा—अहिंसा के विपय मे भगवान् महावीर का कथन है—किसी भी जीव को त्रास (कष्ट) नही देना चाहिये।[२] सभी सचेतन प्राणियो को अपना जीवन प्रिय है, सुख सवको ही अच्छा लगता है और दु.ख बुरा। वध सबको अप्रिय है और जीवन प्रिय। अतः किसी प्राणी की हिंसा नही करनी चाहिये।[३] परपीडा मे लगे हुए जीव एक तो अधकार की ओर जाते हैं,[४] और दूसरे, इस प्रकार वैर की परम्परा चल पडती है। वैर-वृत्ति वाला व्यक्ति सदैव वैर ही करता रहता है। वह एक के वाद एक किये जाने वाले वैर से वैर को वढाते रहने मे ही दिलचस्पी रखता है।[५] जो भय और वैर से उपरत हैं, युक्त है, वे किसी भी प्राणी की हिंसा नही करते।[६] मानव-जाति की जितनी भी ध्वसमूलक विकृतियां हैं जैसे—वैर, वैमनस्य, कलह, घृणा, ईर्ष्या-द्वेप, दु सकल्प, दुर्वचन, क्रोध, अभिमान, दम्भ, लोभ, लालच, शोपण-दमन आदि—इन सवो को दूर करने का अहिंसा का व्यापक सिद्धान्त है कि क्रोध को क्रोध से नही, क्षमा से जीतो। दंभ को दभ से नही, सरलता और निश्छलता से जीतो। लोभ को लोभ से नही, सतोप से जीतो, उदारता से जीतो। इसी प्रकार भय को अभय से, घृणा को प्रेम से जीतना चाहिये। अहिंसा प्रकाश की अन्धकार पर, प्रेम की घृणा पर, सद्भाव की वैर पर तथा अच्छाई की वुराई पर विजय का अमोघ अस्त्र है। यह वही पथ है, जिस पर चल कर मानव, मानव को मानव समझ सकता है। इसके साथ ही यह विश्व के समग्र-चेतन्य को एक धरातल पर ला खडी करती है। अहिंसा समग्र प्राणियो मे एकता एव समानता स्थापित करती है।

अहिंसा का जितना वडा महत्व प्राचीनकाल मे था, उतना ही, वलिक उससे कही ज्यादा महत्व आज के युग मे है, आज की परिस्थितियो मे हैं। आज आवश्यकताएँ अनन्तमुखी हो चली हैं, जवकि उनकी पूर्ति के साधन सीमित हो चले हैं। ऐसी स्थिति मे आज के वदले हुए युग मे भगवान् महावीर की अहिंसा सम्मत वाणी का महत्व और

---

२ न य वित्तासए पर।—उत्तराध्ययन २/२

३ (क) सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया दूह-पडिकुला पियजीविणो, जीविउकामा,
सव्वेंसि जीविय पियं, नाइवाएज्ज कचन। —आचाराग १/२/३

(ख) सव्वे जीवा वि इच्छ ति, जीविउ न मरिज्जिउ।
तम्हा पाणिवह घोर, निग्गथा वज्जयति ण॥
—दशवैकालिक ६/११

४ तमाओ ते तम जति मदा आरभनिस्सिया। —सूत्रकृताग १/१/१/१२

५ वेराइं कुव्वइ वेरी, तओ वेरेहि रज्जति। —सूत्रकृताग १/८/७

६ न हणे पाणिणो पाणे, भयवेराओ उवरए। —उत्तराध्ययन ६/७

भी बढ जाता है। अहिंसा का यह व्यापक सिद्धान्त सार्वकालिक है। यह प्राचीन युग मे भी आवश्यक था, वर्तमान मे उससे भी बढकर आवश्यक है, और भविष्य मे इससे भी ज्यादा आवश्यक रहेगा।

मानवजीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रो की, और समस्त राष्ट्रो की समस्याओ, झगडो, प्रश्नो एव मसलो को स्थायी रूप से हल करने के लिए अहिंसा अमोघ साधन है।

सत्य—सत्य जीवन का बहुत वडा आधार है। इसे भगवान् महावीर ने 'त सच्च खु भगव' कहा है। इसकी प्राप्ति के लिये व्यक्ति को आत्मा की गहराई मे उतरना पडता है। सत्य का ऐसा आचरण करने वाला आत्मस्थ व्यक्ति साक्षात् निर्विकार निरानन्द परमात्मस्वरूप हो जाता है। उसे किसी भी प्रकार का राग-द्वेष, हर्ष-विषाद अपने बाहुपाश मे आवद्ध नही कर पाता।

सत्य की धुरी पर यह जड-चेतनमय विश्व स्थित है। इसकी प्रक्रिया मे थोडा-सा भी जब व्यतिक्रम हो जाता है, तो भीषण सहार शुरू हो जाता है। यह सत्य है कि विश्व के समस्त नियम एव विधान सत्य पर ही प्रतिष्ठित हैं।

भगवान् महावीर के दर्शन मे सबसे बडी क्रान्ति, सत्य के विषय मे यह रही है कि वे वाणी के सत्य की अपेक्षा मन के सत्य को अधिक महत्त्व देते थे। जब तक मन मे सत्य की प्रतिष्ठा नही हो जाती, मन सत्य के प्रति आग्रहशील नही बन जाता, उसमे झूठ, छल, कपट-भरे होते हैं—तव तक वाणी का सत्य, सत्य नही माना जा सकता। सत्य का प्रथम सोपान मानसिक पवित्रता और दूसरा वचन की पवित्रता है। इन दोनो से सयुक्त आचरण का व्यक्ति सत्य का सच्चा पुजारी होता है। उसका प्रत्येक आचरण कल्याणकारी होता है।

उदारता और क्षमा सत्य के आचरण के ही दो पहलू हैं। इस प्रकार विनम्र-भाव से विश्व की सेवा करने वाला व्यक्ति सत्य का सच्चा साधक है। सत्य का ऐसा आचरण करने वाला व्यक्ति सत्य के उज्ज्वलतम प्रकाश से उद्भासित होता हुआ, सत्य के वास्तविक लोक मे पहुँच जाता है। सत्य की इस विराट् भूमि पर पहुँच कर साध्य स्वय सत्यमय किंवा सत्यस्वरूप बन जाता है।

ऊपर के इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि भगवान् महावीर के सत्य के अर्थ को किसी दर्शन के विगूढ पर्याय मे न देख कर विश्व-कल्याणक व्यवहारक्षम पर्याय मे देखा और उसे जनमानस मे प्रतिष्ठित किया जाय। अतएव भगवान् महावीर की इस सत्य की शाश्वत् वाणी की उपादेयता सार्वयुगीन है, अनन्तकाल-पर्यन्त लोकोपकारी रहेगी।

अस्तेय—कोई भी वस्तु, चाहे वह सजीव हो अथवा निर्जीव, उसके स्वामी

के आदेश के विना उसे कदापि नही लेना चाहिये। दाँत कुरेदने का तिनका भी विना आज्ञा के नही लिया जा सकता।[७]

चोरी के वहुत से कारण हैं, जिनमे चार कारण मुख्य हैं। इनमे प्रथम कारण है—वेरोजगारी। काम-धन्धा नही मिलने से, बेकार हो जाने से और अपना जीवन नही चला पाने से कितने ही व्यक्ति चोरी करना शुरू कर देते हैं। इनमे जो सुसभ्य एव सुसस्कृत मनुष्य होते हैं, वे तो मरण पसन्द कर सकते हैं, किन्तु चोरी का आचरण नही अपना सकते। किन्तु ऐसे व्यक्ति स्वल्प ही होते हैं।

चोरी अपव्यय करना भी सिखाती है। अनेक मनुष्य विवाह, मृतभोज, अथवा अन्य यज्ञादि मे अपना पूर्ण शान-शौकत दिखाने के लिये बेशुमार धन, कर्ज ले कर खर्च कर डालते हैं, जिसे बाद मे, अपनी सीमित आमदनी से चुका नही पाने के कारण चोरी का रास्ता अपनाते है।

कुछ लोग कुशिक्षा, कुसस्कार एव कुसगति के कारण भी चोरी करने लग जाते हैं। अतएव अस्तेय का महत्व भी सार्वकालिक एव जीवनव्यवहार मे शाश्वत है। इसका महत्व कदापि कम नही हो सकता।

ब्रह्मचर्य—"ब्रह्म" का अर्थ है—आत्मा का शुद्ध भाव, परमात्मभाव और 'चर्य' का अर्थ है—चलना, गति करना, आचरण करना। आत्मा को विकारी भावो से हटा कर शुद्ध परिणति मे केन्द्रित करना—ब्रह्मचर्य का पालना करना है। आत्मा की शुद्ध परिणति ही परमात्म-ज्योति है, परब्रह्म है, और इसे प्राप्त करने की साधना का नाम ही ब्रह्मचर्य है तथा इस प्रकार की साधना करने वाले का नाम है—ब्रह्मचारी।

कतिपय व्यक्ति ब्रह्मचर्य का अर्थ स्त्री-ससर्ग से दूर होना—बताते हैं। किन्तु जैनधर्म ब्रह्मचर्य का इतना सीमित अर्थ नही लेता। ब्रह्मचारी होने का अर्थ है कि स्त्री का स्पर्श करने से मन मे किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो, जिस तरह कागज पर छपे सुन्दर रमणी के चित्र को स्पर्श करने से नही होता। अतर्मन मे सच्ची निर्विकारता हो तो स्पर्श करने पर भी विकार पैदा नही होता। अन्तर्मन की निर्विकार दशा ही वस्तुत सच्चा ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य किसी प्रकार का वाहरी दवाव या वधन नही, अपितु मन का संयम है। जैनागमो मे इस सयम को सर्वोपरि महत्व देते हुए असीम कामनाओ को सीमित करने हेतु विवाह को स्वीकार किया है। इसमे कहा है—विवाह पूर्ण सयम की ओर अग्रसर होने का महत्वपूर्ण चरण है और पाशविक जीवन से निकल कर नीतिपूर्ण मर्यादित मानव-जीवन को अगीकार करने का साधन है। किन्तु इसमे वेश्या-गमन,

---

७ चित्तमतमचित्तं वा, अप्प वा जइ वा वहु।
दंत-सोहणमेत्त पि उग्गहसि अजाइया॥

एवं परदारसेवन के लिये कोई स्थान नही है बल्कि मैथुनसेवन[८] को अधर्म का मूल और बडे-बडे दोषो को बढाने वाला कहा है। इस रूप मे भगवान महावीर ने जन-चेतना के समक्ष ब्रह्मचर्य का एक महान् आदर्श उपस्थित किया है, जोकि नैतिकता पर सर्वाशतः आधारित है। इसके बिना मानव का जीवन तेजोहीन, ओजहीन, कातिहीन एव एक प्रकार से निष्प्राण हो जाएगा। अत भगवान् महावीर की ब्रह्मचर्य-सम्मतवाणी भी सार्वकालिक है, इसमे कोई सशय नही।

अपरिग्रह—किसी भी वस्तु के प्रति मूर्च्छा का भाव ही परिग्रह का मूल कारण है। परिग्रह का अर्थ है—सग्रह (Hoarding) और अपरिग्रह का अर्थ है-त्याग, किसी वस्तु का अनावश्यक सग्रह न करके उसका जन-कल्याणहेतु वितरण कर देना। कारण यह भी मनुष्य को अहकार एव मोहरूपी अंधेरे अथाह भवर मे डुबो देने वाला होता है। यह अर्थ (सम्पत्ति) अनित्य है—चचल है, बडे-बडे अनर्थों का जनक है।[९] धन की परिग्रह-वृत्ति काम, क्रोध, मान और लोभ की उद्‌भाविका है। धर्मरूपी कल्पवृक्ष को जला देने वाली है। यह न्याय, क्षमा, सन्तोप, नम्रता आदि सद्‌गुणो को खा जाने वाला कीडा है। परिग्रह बोधिवीज (सम्यक्त्व) का विनाशक है और संयम, सवर तथा ब्रह्मचर्य का घातक है। चिन्ता और शोकरूप सागर को बढाने वाला, तृष्णारूपी विष-बेल को सीचने वाला, कूट-कपट का भण्डार और क्लेश का आगार है।

ज्ञानी पुरुप सयमसाधक उपकरणो को लेने और रखने मे कही भी किसी प्रकार का भी ममत्व नही करते। और तो क्या, अपने शरीर तक के प्रति भी ममत्वभाव नही रखते।[१०] जो पुरुप सम्पूर्ण कामो (इच्छाकामो और मदनकामो) का त्याग कर ममत्वरहित व अहकार रहित निस्पृह जीवन बिताता है, वह स्थितप्रज्ञ है।[११] वही अखण्ड शान्ति को प्राप्त करके ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर लेता है। अत अपरिग्रह एक महान् व्रत है, जिसका आज के युग मे जनकल्याण की दृष्टि से और भी अधिक महत्व है, क्योकि वर्तमान युग मे परिग्रहलालसा बहुत बढ़ी हुई है।

भगवान् महावीर ने अपरिग्रह के विपय मे एक बहुत ही बडी बात कही है कि अपरिग्रह किसी वस्तु के त्याग का नाम नही, अपितु किसी वस्तु मे निहित ममत्व-मूर्च्छा के त्याग को अपरिग्रह कहते हैं। जडचेतन, प्राप्त-अप्राप्त दृष्ट-अदृष्ट,

---

८. मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सय।
तम्हा मेहुणससग्ग निग्गथा वज्जयंति ण॥ दशवैकालिक

९ अर्थमनर्थं भावय नित्यम्।—शकराचार्य

१० अवि अप्पणोवि देहमि।—दशवैकालिक
नायरति ममाइय॥

११ विहाय कामान्य सर्वान्पुमाश्चरति नि स्पृह।
निर्ममो निरंहकार स शातिमधिगच्छति॥—गीता, २, ७

श्रुत-अश्रुत वस्तु के प्रति ममता, लालसा, तृष्णा व कामना वनी रहती है। तव तक वाह्यत्याग सही माने मे त्याग नही कहा जा सकता। क्योकि किसी परिस्थिति विशेप मे विवश हो कर भी किसी वस्तु का त्याग किया जा सकता है। किन्तु उसके प्रति निहित ममत्व का त्याग नही हो पाता। यही ममत्व सत्रास का कारण है।[१२] यदि लोग वस्तु के अनावश्यक सग्रह को रोकना चाहते हैं, उसका उन्मूलन करना चाहते हैं, तो वस्तु के त्याग से पूर्व वस्तु मे निहित ममत्व के त्याग को अपनाना होगा और ऐसा किये विना अपरिग्रह का पालन न हो पायेगा, इसी कारण भगवान् महावीर ने गृहस्थश्रावको के लिए परिग्रह-परिमाणव्रत वताया गया है। विश्व के वहुसख्यक अभावग्रस्त प्राणी त्राण पा सकते हैं।

उपसंहार—ऊपर मैंने भगवान् महावीर के सार्वजनीन, सार्वभौम वाणियो का विहगम विवेचन किया है। उस विवेचन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि भगवान् महावीर की वाणियो की शाश्वत महत्व है, चाहे हम उसे आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य मे देखें, चाहे सामाजिक एव राजनीतिक परिप्रेक्ष्य मे देखें अथवा सास्कृतिक एव आर्थिक परिप्रेक्ष्य मे देखें। युग वदल जाए, युग की मान्यताओ एव मूल्यो मे परिवर्तन आ जाये; किन्तु भगवान् महावीर की वाणी का महत्व सदैव अक्षुण्ण रहेगा।

जहाँ तक आज के वदलते सामाजिक मूल्यो के वीच भगवान् महावीर की वाणी की भूमिका का प्रश्न है, आज के युग के लिये तो भगवान् महावीर की वाणी कल्पवृक्ष की भाँति महत्वपूर्ण है। भगवान महावीर ने ऐसा कुछ भी नही कहा, जिसका सिर्फ तत्कालीन परिस्थितियो मे ही महत्व हो, वल्कि उन्होंने जो कुछ भी कहा उसका महत्व सार्वकालिक है।

इसी कारण उनकी वाणी का और उनके कार्यों का युगो-युगो तक, असख्य पीढियो तक स्थायी महत्व है। जिस प्रकार हर अन्धकार के लिये प्रकाश का मूल्य सदैव एक समान होता है, ठीक उसी प्रकार आगे आने वाली पीढियाँ जव भी अन्धकार के साये मे ग्रस्त हो पडती है, इन महापुरुपो की दिव्यप्रभापूर्ण वाणियाँ ही, उनके लिये प्रकाशस्तम्भ वनती है, उनका मार्ग प्रशस्त करती है।

आज के सत्रास, कुण्ठा एव अगणित अभावो से ग्रस्त युग के वीच भगवान् महावीर वाणी का वडा ही महत्वपूर्ण स्थान है। आज की इस घुटनभरी परिस्थिति मे भगवान महावीर की वाणी त्राण का अमोघ अस्त्र है। अत. आज के युग के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि यह भगवान महावीर की वाणियो को जीवन व्यवहार मे अपना कर विश्ववन्धुत्व, वसुधैव कुटुम्वकम् एव समता किंवा समाजवादी आदर्श सिद्धान्त को सफल वनाएँ। इसके विना वर्तमान युग का कल्याण सम्भव नही।



---

१२ वित्तेण ताण न लभे पमत्ते।



भगवान् महावीर के कुछ दिव्य उपदेश

हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, व्यावर



भगवान् महावीर ने कैवल्य-प्राप्ति के पश्चात् भारतवर्ष के विभिन्न भागो मे विहार कर ३० वर्ष पर्यन्त धर्मोपदेश दिया। उन्होने अपने उपदेशो मे पुरुषार्थ पर ही सबसे अधिक जोर दिया है। उनका स्पष्ट कथन था कि आत्म-विकास की सर्वोच्च अवस्था का नाम ही ईश्वर है और इसलिए प्रत्येक प्राणी अपने को सासारिक बन्धनो से मुक्त और अपने आपको आत्मिक गुणो से युक्त कर नर से नारायण और आत्मा से परमात्मा बन सकता है। इसी सिलसिले मे उन्होने बताया कि उक्त प्रकार के परमात्मा या परमेश्वर को ससार की सृष्टि या सहार करने के प्रपचो मे पडने की कोई आवश्यकता नही रह जाती है। जो यह मानते हैं कि कोई एक अनादि-निधन ईश्वर है, और वही जगत का कर्त्ता, हर्त्ता एव व्यवस्थापक है, उसके सम्बन्ध मे भगवान् महावीर ने बताया कि प्रथम तो ऐसा कोई ईश्वर किसी भी युक्ति से सिद्ध ही नही होता है। फिर यदि थोडी देर के लिए वैसे ईश्वर की कल्पना भी कर ली जाय तो वह दयालु है या क्रूर? यदि ईश्वर दयालु है, सर्वज्ञ है, तो फिर उसकी सृष्टि मे अन्याय और उत्पीडन क्यो होता है? क्यो सब प्राणी सुख और शान्ति से नही रहते? फिर यही क्यो न माना जाय कि मनुष्य अपने-अपने कर्मों का फल भोगता है, जो जैसा करता है, वह वैसा पाता है। ईश्वर को कर्त्ता मानने से हम दैववादी बन जाते हैं। अच्छा होता है, तो ईश्वर करता है, बुरा होता है, तो ईश्वर करता है, आदि विचार मनुष्य को पुरुषार्थहीन बना कर जनहित से विमुख कर देते हैं। अतएव भगवान् महावीर ने स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की—

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्त च दुप्पट्ठिय-सुपट्ठिओ॥

आत्मा ही अपने दुखो का कर्त्ता तथा भोक्ता है। अच्छे मार्ग पर चलने वाला अपना आत्मा ही मित्र है और बुरे मार्ग पर चलने वाला अपना आत्मा ही शत्रु है।

इसलिए दूसरे को तुम्हारा भला या बुरा करने वाला मानना ही मिथ्यात्व है, अज्ञान है। तुम्हे दूसरे को सुख-दुख देने वाला नही मान कर अपनी भली-बुरी प्रवृत्तियो को ही सुख-दु ख का देने वाला मानना चाहिये। इसके लिये उन्होने समस्त प्राणिमात्र को सम्बोधन करके कहा—

अप्पा चेव दमेयव्वो अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य ॥

बुरे विचारो वाली अपनी आत्मा का ही दमन करना चाहिये । अपने बुरे विचारो को दमन करने से ही आत्मा इस लोक और परलोक दोनो मे सुखी होता है । उन्होने बतलाया—

अप्पाणमेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पणामेव अप्पाणं जइत्ता सुहमेहए ॥

विकृत विचारों वाली अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिए, बाहरी दुनियावी शत्रुओ के साथ युद्ध करने से लाभ ? अपनी आत्मा को जीतने वाला ही वास्तव मे पूर्ण सुख को प्राप्त करता है ।

आत्मा की व्याख्या करते हुए भगवान् महावीर ने बताया—

केवलणाणसहावो केवलदसण-सहाव-सुहमइओ ।
केवलसत्तिसहावो सोहं इदि चिंतए णाणी ॥

आत्मा एक मात्र-केवल ज्ञान और केवल दर्शन-स्वरूप है, अर्थात् ससार के सर्व पदार्थों को जानने-देखने वाला है । वह स्वभावत' अनन्तशक्ति का धारक और अनन्तसुखमय है ।

परमात्मा की व्याख्या भगवान् महावीर ने इस प्रकार की—

मलरहिओ कलचत्तो अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा ।
परमप्पा परमजिणो सिवकरो सासओ सिद्धो ॥

जो सर्वदोप-रहित है, शरीर-विमुक्त है, इन्द्रियो से अगोचर है, और सर्व अन्तरग-बहिरग मलो से मुक्त हो कर विशुद्ध स्वरूप का धारक है, ऐसा परम निरंजन शिवकर, शाश्वत सिद्ध आत्मा ही परमात्मा कहलाता है ।

वह परमात्मा कहाँ रहता है, इसका उत्तर उन्होंने दिया—

णविएहिं जं णविज्जइ, झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं ।
थुव्वंतेहिं थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह ॥

जो बड़े-बडे इन्द्र, चन्द्रादि से नमस्कृत है, ध्यानियो के द्वारा निरन्तर ध्याया जाता है और स्तुतिकारो के द्वारा स्तुति किया जाता है, वह परमात्मा कही इधर-उधर बाहिर नही है, किन्तु अपने इसी शरीर के भीतर रह रहा है ।

भावार्थ—वह परमात्मा दूसरा और कोई नही है, किन्तु आत्मा ही अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेने पर परमात्मा हो जाता है । अत तू अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करने का प्रयत्न कर ।

वह शुद्ध परमात्म-स्वरूप कैसे प्राप्त होता है, इस विषय मे भगवान् महावीर ने कहा—

कम्म पुराइउ जो खवइ अहिणव वेसु ण देइ ।
परम णिरजणु जो णवइ सो परमप्प उ होइ ॥

जो अपने पुराने कर्मों को—राग, द्वेष, मोह आदि विकारी भावो को दूर देता है, नवीन विकारो को अपने भीतर प्रवेश नही करने देता है और सदा परम निरजन आत्मा का चिन्तन करता है, वह स्वय ही आत्मा से परमात्मा बन जाता है।

भावार्थ—जैन सिद्धान्त के अनुसार केवल दूसरे की सेवा-उपासना से आत्मा परमात्मपद नही पाता किन्तु अपने ही अनुभवन और चिन्तन से परमात्मपद को प्राप्त करता है।

ससार मे प्रचलित सर्वधर्मों के प्रति समभाव रखने का उपदेश देते हुए भगवान् महावीर ने कहा—

जो ण करेदि जुगुप्पं चेदा सव्वेसिमेव धम्माण ।
सो खलु णिव्विदिगिच्छो सम्माइट्ठी मुणेयव्वो ॥

जो किसी भी धर्म के प्रति ग्लानि या घृणा नही करता, किन्तु सभी धर्मों मे समभाव रखता है, वह निर्विचिकित्सित सम्यग्दृष्टि यथार्थ वस्तु-दर्शी जानना चाहिए।

सर्वधर्मों के प्रति समभाव रखने के निमित्त भगवान् महावीर ने नयवाद, अनेकान्तवाद या समन्वयवाद का उपदेश दिया और कहा—

जावतो वयणवहा तावतो वा णया वि सद्दाओ ।
ते चेंव य परसमया सम्मत्त समुदिया सव्वे ॥

जितने भी वचन-मार्ग भिन्न-भिन्न पथ-ससार मे दिखाई दे रहे हैं, उतने ही नय हैं और वे ही परसमय या मत हैं। वे सब अपने-अपने दृष्टिकोणो से ठीक हैं और उन सबका समुदाय ही सम्यक्त्व है यानी सत्य का यथार्थ या तात्विक स्वरूप है।

इस एक सूत्र के द्वारा ही भगवान् महावीर ने अपने समय की ही नही, बल्कि भूत और भविष्य काल मे भी उपस्थित होने वाली असख्य समस्याओ का समाधान प्रस्तुत कर दिया। पहला और सबसे बडा हल तो उन्होने अपने समय के कर्मकाण्डी क्रिया-प्रधान वैदिक और अध्यात्मवादी वैदिकतर सम्प्रदाय वालो का किया और कहा—

हत ज्ञान क्रियाहीन हता चाज्ञानिना क्रिया ।
धावन् किलान्धको दग्धः पश्यन्नपि च पंगुल. ॥

क्रिया या सदाचार के बिना ज्ञान बेकार है, कोरा ज्ञान सिद्धि को नही दे सकता। और अज्ञानियो की क्रियाएँ भी निरर्थक हैं, वे भी आत्मसुख को नही दे

सकती। जैसे किसी वीहड जंगल मे आग लग जाने पर चारो ओर भागता हुआ अंधा पुरुप जल कर विनाश को प्राप्त होता है और पगु-लंगडा आदमी वचने का मार्ग देखते हुए भी मारा जाता है।

भगवान महावीर ने दोनो प्रकार के लोगो को सम्वोधित करते हुए कहा—

संयोगमेवेह वदन्ति तज्ज्ञ न ह्येकचक्रेण रथ.प्रयाति।
अन्धश्च पगुश्च वने प्रविष्टौ तौ संप्रयुक्तौ नगर प्रविष्टौ।

ज्ञान और क्रिया का सयोग ही सिद्धि का साधक होता है, क्योकि एक चक्र से रथ कभी नही चल सकता। यदि दावाग्नि मे चलते हुए वे अन्धे और लगडे दोनो पुरुप मिल जाते है, और अन्धा, जिसे कि दीखता नही, किन्तु चलने की शक्ति है, वह यदि चलने की शक्ति से रहित, किन्तु दृष्टि-सम्पन्न पंगु को अपने कधे पर विठा लेता है तो वे दोनो दावाग्नि से निकल कर अपने प्राण वचा लेते हैं। क्योकि अन्धे के कन्धे पर वैठा पंगु मनुष्य चलने मे समर्थ अन्धे को वचने का सुरक्षित मार्ग वतलाता जाता है और अन्धा उस निरापद मार्ग पर चलता जाता है और इस प्रकार दोनो नगर को पहुँच जाते हैं और दोनो वच जाते हैं।

इस प्रकार परस्पर मे समन्वय करने से जैसे अंध और पगु की जीवन-रक्षा हुई, उसी प्रकार भगवान् महावीर के इस समन्वयवाद ने सर्व दिशाओ मे फैल कर उलझी हुई असख्य समस्याओं को सुलझाने और परस्पर मे सौहार्दभाव वढाने मे लोकोत्तर कार्य किया।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने परस्पर विरोधी अनेक धर्मों का समन्वय किया। उनके इस सर्व धर्मसमभावी समन्वय के जनक अनेकान्तवाद से प्रभावित हो कर एक महान आचार्य ने कहा है—

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगतवायस्स॥

जिसके विना लोक का दुनियादारी-व्यवहार भी अच्छी तरह नही चल सकता, उस लोक के अद्वितीय गुरु अनेकान्तवाद को नमस्कार है।

भगवान् महावीर ने धर्म के व्यवहारिक रूप अहिंसावाद का उपदेश देते हुए कहा—

सव्वे पाणा पियाउआ सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पिय-वहा।
पियजीविणो जीविउकामा णातिवाएज्ज किंचण॥

सर्व प्राणियो को अपना जीवन प्यारा है, सव ही सुख की इच्छा करते हैं, और कोई दु:ख नही चाहता। मरना सवको अप्रिय है और सव जीने की कामना करते हैं। अतएव किसी भी प्राणी को जरा भी दु.ख न दो और न उन्हे सताओ।

उच्च-नीच की प्रचलित मान्यता के विरुद्ध भगवान् महावीर ने कहा—

जम्म-मत्तेण उच्चो वा णीचो वा ण वि को हवे ।
सुहासुहकम्मकारी जो उच्चो णीचो य सो हवे २ ॥

ऊँची जाति या उच्च कुल मे जन्म लेने मात्र से कोई उच्च नही हो जाता है। जो अच्छे कार्य करता है, वह उच्च है और जो बुरे कार्य करता है, वह नीच है।

इसी प्रकार वर्णवाद का विरोध करते हुए भी उन्होंने कहा किसी वर्ण-विशेष मे जन्म लेने मात्र से मनुष्य उस वर्ण का नही माना जा सकता। किन्तु—

कम्मुणा बभणो होई, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥

मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और शूद्र भी अपने किये कर्म से होता है।

भगवान् महावीर ने केवल जाति या वर्ण का भेद करने वालो को ही नही, किन्तु साधु सस्था के सदस्यो तक को फटकारा—

ण वि मुंडिएण समणो ण ओकारेण बभणो ।
ण मुणी रण्णवासेण ण कुसचीरेण तापसो ॥

सिर मुण्डा लेने मात्र से कोई श्रमण या साधु नही कहला सकता, ओकार के उच्चारण करने से कोई ब्राह्मण नही माना जा सकता, निर्जन वन मे रहने मात्र से कोई मुनि नही बन जाता, और न कुशा (डाभ) से बने वस्त्र पहिनने से कोई तपस्वी कहला सकता है। किन्तु—

समयाए समणो होइ, बभचेरेण बभणो ।
णाणेणम्य मुणी होइ, तवेण होइ तापसो ॥

जो प्राणिमात्र पर साम्यभाव रखता है, वह श्रमण या साधु कहलाता है, जो ब्रह्मचर्य धारण करता है, वह ब्राह्मण कहलाता है। जो ज्ञानवान है, वह मुनि है और जो इन्द्रिय-दमन एव कषाय-निग्रह करता है, वह तपस्वी है।

अन्त में भगवान् महावीर ने जाति-कुल-मदान्ध लोगो से कहा—

कासु समाहि करहु को अचउ, छोपु अछोपु भणिवि को वचउ ।
हल सहि कलह केण सम्माणउ, जहि-जहि जोवहु तहि अप्पाणउ ॥

ससार के जाति-कुल-मदान्ध हे भोले प्राणियो, तुम किसे छूत या बडा मान कर पूजते हो और किसे अछूत मान कर अपमानित करते हो ? किसे मित्र मान कर सम्मानित करते हो और शत्रु मान कर किसके साथ कलह करते हो ? हे देवानाप्रिय मेरे भव्यो, जहाँ-जहाँ भी मैं देखता हूँ, वहाँ-वहाँ सब मुझे आत्मित्व ही-अपनापन ही दिखाई देता है।

भगवान् महावीर के समय मे एक ओर लोग धन-वैभव का संग्रह कर अपने को वडा मानने लगे थे और अहर्निश उसके उपार्जन मे लग रहे थे। दूसरी ओर गरीव लोग आजीविका के लिए मारे-मारे फिर रहे थे। गरीवो की सन्तानें गाय-भैंसो के समान वाजारो मे वेची जाने लगी थी और वनिक लोग उन्हे खरीद कर और अपना दासी-दास वना कर उन पर मनमाना जुल्म और अत्याचार करते थे। भगवान् महावीर ने लोगो की इस प्रकार दिन पर दिन वढ़ती हुई भोगलालसा और धन-तृष्णा की मनोतृप्ति को देख कर कहा—

जह इंधणेहिं अग्गी लवणसमुद्दो णदी-सहस्सेहिं।
तह जीवस्स ण तित्ती अत्थि तिलोगे वि लद्धम्मि॥

जिस प्रकार अग्नि इन्धन से तृप्त नही होती है, और जिस प्रकार समुद्र हजारो नदियो को पा कर भी नही अघाता है, उसी प्रकार तीन लोक की सम्पदा के मिल जाने पर भी जीव की इच्छाएँ कभी तृप्त नहीं हो सकती हैं।

इसलिए हे ससारी प्राणियो, यदि तुम आत्मा के वास्तविक सुख को प्राप्त करना चाहते हो, तो समस्त परिग्रह का परित्याग करो। क्योकि—

सव्वग्गयविमुक्को सीदीभूदो पसण्णचित्तो य।
ज पावइ पीइसुह ण चक्कवट्टी वि तं लहदि॥

सर्व प्रकार के परिग्रह से विमुक्त होने पर शान्त एवं प्रसन्नचित्त साधु जो निराकुलता-जनित अनुपम आनन्द प्राप्त करता है, वह सुख अतुलवैभव के धारक चक्रवर्ती को नहीं मिल सकता है।

यदि तुम सर्व परिग्रह छोड़ने मे अपने को असमर्थ पाते हो, तो कमसे कम जितने मे तुम्हारा जीवन-निर्वाह चल सकता है, उतने को रख कर शेप के संग्रह की तृष्णा का तो परित्याग करो। इस प्रकार भगवान् महावीर ने ससार मे विपमता को दूर करने और समता का प्रसार करने के लिए अपरिग्रहवाद का उपदेश दिया।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने लगातार ३० वर्षों तक अपने दिव्य उपदेशो के द्वारा उस समय फैले हुए अज्ञान और अधर्म को दूर कर सद्ज्ञान और सद्धर्म का प्रसार किया। अन्त मे आज से २५०० वर्ष पूर्व कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रातः-कालीन पुण्यवेला मे उन्होंने पावा से निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान् महावीर के अमृतमय उपदेशो का ही यह प्रभाव था कि आज भारतवर्ष से याज्ञिकी हिसा सदा के लिए वद हो गई, लोगो से छुआछूत का भूत भगा और समन्वयकारक अनेकान्त-रूप सूर्य का उदय हुआ। और इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति आदि वडे-वडे वैदिक विद्वानो ने अपने सैंकडो शिष्यो के साथ भगवान् का शिष्यत्व स्वीकार किया।



महावीर के उपदेश का स्वरूप-दर्शन

—मिट्ठालाल मुरडिया 'साहित्यरत्न'



उपदेश देने की आवश्यकता उस समय उपस्थित होती है, जब व्यक्ति अपने सामने प्रत्यक्षरूप से अन्याय, अत्याचार, शोषण, पाखण्ड, सकीर्णता, अन्धविश्वास, हिंसा, धोखेबाजी, स्वार्थसिद्धि और लूटपाट का नग्न नृत्य देखता है तो उसकी अन्तरात्मा तडफ उठती है। उस हितोपदेश मे जनता का कल्याण निहित होता है।

जिस उपदेश से जीवन बदलता है, ऐसा प्रभावशाली उपदेश लोकनायक या महामानव ही दे सकता है। शासको के उपदेश आतक से मनवाये और पलवाये जाते हैं, किन्तु वीरात्माओ के उपदेश बिना किसी भय से दिल पर अधिकार करते हैं, मानस बदल देते हैं। उससे भोगी, त्यागी बन जाते हैं, रागी, विरागी हो जाते हैं और अन्यायी, न्यायी हो जाते हैं।

उपदेश क्या है ? उपदेश से क्या होता है ? उपदेश किसे और कहाँ देना चाहिए ? उपदेश का अर्थ है—हित वचन, अच्छी बात और नसीहत। उपदेश शान्ति और सतोष का च्यवनप्रास है, जिससे लाभ ही लाभ होता है। उपदेश चित्त की वह अन्तरालवृत्ति है, जिसमे स्वार्थ, पद, प्रतिष्ठा, लालच और मोह का कोई भाव नही रहता है। यह तो निस्वार्थ भाव से लोकहित के लिए अन्तर के स्रोत से फूटता है। उपदेश जीवन का आनन्द है, महामानवो का प्रसाद है, त्यागियो की साधना है। उपदेश मानस की गहरी अनुभूति का उत्स है। उपदेश चलते, फिरते, खाते, पीते उठते, बैठते और सोते हुए और कठिन से कठिन स्थिति मे भी दिया जा सकता है। उपदेश से ज्ञानज्योति जगती है। उपदेश से उन्माद और राग-द्वेष हटता है। उपदेश महात्माओ के गहरे अनुभवो का जीवनदीप होता है, जो निरन्तर जलता रहता है। श्रद्धावान पात्र ही उपदेश का अधिकारी होता है।

कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दे कर माया-मोह के सभी पर्दे दो-टुक कर दिये थे, शिष्य, गुरु के उपदेश से अपना सर्वस्व दे देता है, आचार्य और उपाध्याय का उपदेश सुन कर सुश्रावक धर्ममय जीवन व्यतीत कर धन्य हो जाता है। उपदेशो से देश का, समाज का और धर्म का वहुत भला हुआ है। उपदेश दे-देकर सन्तो ने लाखो व्यक्तियो का जीवन-निर्माण किया है। उपदेश से उन्माद उखडता है, क्रोध हटता है, द्वेष दूर होता है, मोह-माया मिटती है और अभिमान टूटता है। महावीर ने अपने उपदेशो से जनसामान्य मे दया, करुणा, सत्य, सन्तोष, विवेक और धैर्य के भाव भर दिये थे।

महावीर ने उपदेशो से जनता का कल्याण किया है, लोकमानस ऊँचा उठा कर सकीर्णता दूर की है। सत्य-असत्य, दु ख-सुख और हानि-लाभ का ज्ञान कराया है। देशवासियो की नीद उडा कर उनकी आत्मा जगाई है।

महावीर के उपदेश और उनके विचारकण आज भी नभोमण्डल मे लहरा कर तरगित हो रहे है। वे हमे वुराइयो से वचा कर, मार्गदर्शन दे रहे हैं। अणुवम विनाश और हा-हाकार के कारण वनते हैं तो महावीर के उपदेश शान्ति और सन्तोष का सन्देश देते हैं।

जव हम विवेचन की दृष्टि से महावीर की शिक्षाओ के मुख्य विषय पर विचार करते हैं, तब हमे पता चलता है कि महावीर समानता के हिमायती थे, समता के रक्षक थे, समन्वय के उद्घोषक थे, तितिक्षा के साधक थे, विवेक और शान्ति के दूत थे, कष्टसहिष्णुता के उपासक थे, सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह के महाव्रती थे, सौजन्य के वन्धु थे, धर्म के भ्राता थे और इन सबके ऊपर वे वीतरागी थे। रागो के सभी वन्धन तोड चुके थे, काम क्रोध की सभी ग्रन्थियाँ दो-टुक कर चुके थे। इसीलिए उनका चित्त सत्यसाधना मे रमा, तपस्या मे जमा और कष्ट सहिष्णुता मे उनका जाग्रत मानस आगे वढ कर आनन्दमय हो गया। उनका सारत्व सत्, चित् और आनन्द मे गतिशील हो गया। उनकी साधना का सारा कौशल श्रेय से गतिशील हो कर प्रेय वन गया।

महावीर की उदारता और व्यापकता का पता हमे तव चलता है, जव उन्होने म्लेच्छो, चोरो, डाकुओ, मछुओ, और कुम्हारो को अपने धर्म सघ मे दीक्षित कर उनके जाति और कुल को गौरवान्वित किया।

साधनावस्था मे उपदेश देते-देते वे चलते रहे, वडे-वडे गाँवो और नगरो को पार करते रहे, नदी-नालो को लाघते रहे। आपत्तियो और कष्टो को झेलते रहे। सवसे अधिक कष्ट उन्हे वगाल मे उठाना पडा, फिर भी वे निर्भीक हो कर घूम-घूम कर अपने उपदेशो की झडी लगाते रहे। क्या वगाल ? क्या विहार ? क्या उत्तरप्रदेश ?

क्या साकेत ? क्या बनारस ? क्या श्रावस्ती ? और क्या कौशाम्बी। इस बृहत् भ्रमण मे वे जितना उपदेश दे सकते थे, जितना कल्याण कर सकते थे, किया। महावीर ने कहा—'धर्म उत्कृष्ट मगल है, व्यक्ति को युद्ध स्वय अपने से करना चाहिए, परिग्रह कम करना चाहिए, व्यक्ति को प्रतिक्षण जागृत रहना चाहिए, ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की उपलब्धि से ही परमपद प्राप्त होता है। एक के अभाव मे दूसरे की पूर्ति अधूरी रहती है। तीनो ही आवश्यक हैं।

महावीर को उपदेश देने की क्यो आवश्यकता पडी ? क्या उस समय महावीर की कोटि के कोई महात्मा नही थे ? चिह्न से पहिचाने जाने वाले वहुत से व्यक्ति थे। किन्तु कोई मोह-माया मे लिप्त था, कोई दर्द मे चूर था। कोई धन-ऐश्वर्य मे आसक्त था। कोई ऐशो-आराम मे मग्न था, महावीर इन सभी प्रक्रियाओ को पूर्णरूप से त्याग चुके थे। उन्हें न उधो का लेना था और न माधो का देना था। उन्हे न शत्रु से कोई द्वेष था और न मित्रो से कोई अनुराग। जो था, वह सच था। महावीर राग-द्वेष को त्याग कर पूर्ण वीतरागी हो गये थे। उन्हे किसी वस्तु की कोई कामना नही थी। इसीलिए अनेक महात्माओ के होते हुए भी महावीर का ही प्रभाव पडा। कोटि-कोटि जनता के अगुआ महावीर ही बने।

महावीर ने जाति-पाँति और छुआछूत की परम्परा को तोडा। समानता के आधार पर समन्वय का उपदेश दिया। महावीर ने कहा-जो राग-द्वेष को जीतता है वही मानवता की, ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य की सर्वोच्च भूमिका पर पहुँचता है। यह सर्वोच्च भूमि वीतरागता और सर्वज्ञता है।

महावीर अपने जीवननिर्माण के लिए अथवा अपने सुख दु खो के लिए स्वय को ही जिम्मेवार मानते थे, किसी अन्य शक्ति को नही। आत्मबल और आत्मसाधना की अन्तिम परिस्थिति पर विश्वास करते थे। इसीलिए उन्होने कहा कि आत्म-विकास और चारित्र्य (आनन्दमय स्थित प्रज्ञता) की पराकाष्ठा ही वीरत्व है, परमात्मत्व है, परमेश्वरत्व है और ब्रह्मत्व है।

महावीर ने कहा—जो लालसा और तृष्णा का त्याग नही कर सकता है, वह साधना की परमभूमि का निर्वाह नही कर सकता है। मोह, माया, लोभ राग और आसक्ति व्यक्ति को कभी नही छोडती है। व्यक्ति स्वतन्त्र होता हुआ भी इनके बन्धनो से परतन्त्र हो जाता है। व्यक्ति घर, महल, पत्नी, वैभव सब कुछ त्याग सकता है ; मगर मोह और राग-द्वेष, अभिमान और लालसा नही छोड सकता है। किन्तु महावीर के मार्ग मे इन दुर्गुणो ने कभी व्यवधान उपस्थित नही किया। यह सच है कि तृष्णा और आशा कभी समाप्त नही होती है। ज्यो-ज्यो इनकी पूर्ति होती जाती है, त्यो-त्यो ये बढती जाती है। इनका न कोई आदि है, न मध्य है और न कोई अन्त है। ये तो अनन्त हैं।

जिस महावीर ने परिग्रह को पाप कहा, उसी महावीर के उपासक सुवर्ण से लदने मे ही अपना गौरव समझते है। परिग्रह पर परिग्रह बढाते जाते हैं। धन जोड-जोड कर तिजोरी मे भरते जाते हैं और फिर महावीर की जय बोलते हैं जिस महावीर ने अहिंसा के लिए प्राणोत्सर्ग किया, इसी के उपासक अहिंसा को लेन-देन की, व्यवसाय की और व्यवहार की वस्तु नही समझते है। जिस महावीर ने नारीजाति के उत्थान के लिए सर्वप्रथम हिमाकत की थी, उसी के उपासको ने नारीजाति को सोने से लाद कर उसे चलती-फिरती तिजोरी बना रखा है। उसे कही भी जाना हो तो सोने की रक्षा के लिए एक व्यक्ति साथ चाहिए। महावीर का सर्वांगीण जीवन सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह मे ही व्याप्त था। शिव के लिए साधनारत रहे और सुन्दरम् उनका चरम लक्ष्य था। इसीलिए वे अपने लक्ष्य मे सफल हुए।

महावीर ने अहिंसा से जनता का महान् कल्याण किया है। हिंसा न करना, किसी का दिल नही दुखाना और किसी को चोट नही पहुँचाना ही अहिंसा नही है; बल्कि अहिंसा का क्षेत्र तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। वह हिंसा के किसी अश को किसी भी स्थिति मे स्वीकार नही कर सकती है। हिंसा, लूटपाट, कटुवचन, कुदृष्टि, घृणा, भेदभाव और सकीर्णता के साथ अहिंसा का कोई सामञ्जस्य नही है।

आप व्रत कर लें, उपवास कर लें, नेता बन जावें, अपनी ख्याति का प्रदर्शन करते फिरें, माला पहिन कर जुलूस निकलवा लें और अपने ज्ञान की धाक जमा लें। किन्तु अगर आपका दिल पवित्र नही है, भेदभाव, सकीर्णता और स्वार्थ नही छोड सकते हैं तो सत्य और अहिंसा जीवन मे कैसे उतर सकती है ? बाजार मे वस्तु नही है, आपके पास उसका स्टाक है , किन्तु नियत भाव पर आप देना नही चाहते हैं। अवसर का लाभ उठा कर एक-एक के पाँच लेते हैं तो यह सरासर अन्याय है , धोखा है ! यह आपके भाग्य और पुण्य के प्रताप का फल नही है, यह तो आपके लालच और बुद्धि के चक्कर का ही अन्तर है।

महावीर की २५ वी निर्वाणशती के इस पुनीत प्रसग पर हम उनकी शिक्षाओ को जीवन मे उतार कर व्यवहार मे लावें। हमारे पडौसी, हमारे मित्र और हमारे हमराही हमारी उदारता और व्यापकता का लाभ उठा कर जैनत्व को जान सकें, महावीर को पहचान सकें और उनकी शिक्षाओ का दैनिक जीवन मे उपयोग कर सकें।





तीर्थंकर महावीर की अनेकान्तमयी वाणी और उसका प्रभाव

डॉ० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल



महावीर स्वामी स्वयं तीर्थङ्कर बने और उन्होने दूसरो को भी तीर्थङ्कर वनने की प्रेरणा प्रदान की। उन्होने धर्मसाधको के समाज को साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप चतुर्विध सघ के रूप मे सुगठित किया। इन्हें ही चतुर्विध तीर्थ कहा गया। तीर्थ से तात्पर्य है ससार-सागर से पार उतरने के लिए धर्ममय सघ अथवा आध्यात्मिक साधना करने वाला एक धर्ममय सगठन। ससार-सागर से तिराने का कारण होने से इसे तीर्थ कहा जाता है। इसलिए चतुर्विध सघ की वह साधना जो मानव के अन्तरतम मे उत्पन्न हो कर, उसके जीवन मे विकास को प्राप्त कर मोक्ष के रूप मे पर्यवसित होती है, तीर्थकल्प है। यह साधना जिस किसी के हृदय मे उमगित हो रही है, वही तीर्थ है और इस साधना को सिद्ध करने वाला तीर्थङ्कर है।

अनेकान्तमयी दिव्यध्वनि—तीर्थङ्कर की वाणी दिव्यध्वनि कहलाती है। वह अनेकान्तमयी होती है। उनकी सिद्धान्त की प्ररूपणा साधना के अनुरूप होती है। इस प्रकार जो ज्ञान भवसागर को पार करने मे मार्गदर्शक बना है, वही तीर्थ है। कषायो को जीतने का मार्ग तीर्थ है और यह मार्ग शाश्वत है। हमारी साधना ही तीर्थ है, हमारा निर्मल आत्मज्ञान ही तीर्थ है, हमारी निर्मल चैतन्य आत्मा ही तीर्थ है। यह ऐसा तीर्थ है जहाँ जाति, सम्प्रदाय, लिंग आदि से ऊपर उठ कर केवल विशुद्ध आत्मतत्व का निरूपण एव उसकी प्राप्ति ही साध्य बन जाती है। ऐसी साधना का अनुभवयुक्त ज्ञान ही सच्चा तीर्थ है और वह है—द्वादशाग सप्तभगात्मक तीर्थङ्कर की दिव्यध्वनि मे व्यक्त धर्मोपदेश।

दीर्घप्रज्ञ महावीर—महावीर को आगमो मे दीर्घप्रज्ञ कहा गया है। वे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय एव अपरिग्रहरूपी महान् आदर्शों के प्रतीक थे। इन महाव्रतो की अखण्ड साधना से उन्होने जीवन का बुद्धिगम्य मार्ग निर्धारित किया था और भौतिक शरीर के प्रलोभनो से ऊपर उठ कर आध्यात्मभावो की शाश्वत विजय स्थापित की थी। उनकी त्रिगुप्ति (मन, वाणी और कर्म) की साधना उच्च एवं अनन्त जीवन के लिए थी। उन्होने अष्टकर्मों के जड वन्धन को नष्ट किया और

आत्मा (चैतन्य) के प्रकाश मे अपने जीवन को उज्ज्वल बनाया। उनके जीवन मे श्री-सम्पन्न सूर्योदय हुआ।

श्री सूर्योदय से प्रकाशित महावीर—महावीर स्वामी का जीवन उस श्री सूर्योदय' से प्रकाशित हो उठा। उनकी धर्मसभाओ मे वह प्रकाश विकीर्ण हुआ और वहाँ आए हुए प्रत्येक प्राणी के हृदय मे द्वेष, वैर, क्रोध, हिंसा की भावना जाग्रत नही होती थी। अत' सिंह, गाय, चीता, हरिण, बिल्ली, चूहा, सर्प, नेवला आदि जातिविरोधी जीव शान्त व निर्भय हो कर साथ-साथ बैठते थे। समवसरण मे असख्य भव्यजीव तीर्थङ्कर महावीर का दिव्य उपदेश सुनने के लिए बडी उत्कंठा और उत्साह से आते थे और यथास्थान बैठ कर उनकी दिव्यवाणी सुनते थे। उनकी धर्मसभा मे मानव-मानव मे किसी प्रकार का भेदभाव नही था, सभी को समानता से बैठने का अधिकार था।

प्रथम देशना एवं उसकी भाषा—महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि श्रावण वदी प्रतिपदा को खिरी। यह दिन 'वीर शासन के उदय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस दिन को शुभ मान कर जैनधर्मप्रेमी वर्ष का प्रारम्भ मानते हैं।

'नदीश्वर भक्ति' मे लिखा है—

सर्वार्द्धमागधीया भाषा; मैत्री च सर्वजनताविषया।

तीर्थङ्कर का उपदेश साधारण जनता की भाषा मे होता था। प्रत्येक श्रोता उसे सुगमता से समझ लेता था। उस उपदेश मे समस्त तात्विक बातो का विवेचन था, समस्त जगत् का विवरण था, इतिहास का कथन था तथा आत्मा के हितकर, अहितकर, संसार-भ्रमण, कर्म-बन्धन, कर्म-मोचन, धर्म, अधर्म, गृहस्थ-धर्म, मुनि-धर्म, जीव-परिणमन, अजीव-परिणमन, की विशद व्याख्या थी। 'पशुओ को मार कर यज्ञ करना महान् पाप है, उसे धर्म समझना भूल है'—इस विषय को तीर्थङ्कर महावीर ने अच्छे प्रभावशाली ढग से समझाया। जयधवला मे लिखा है—

दिव्वज्झुणीए किमट्ठं तत्थापउत्ती ?
गणिदाभावादो। सोहम्मिदेण चेव
गणिदो किण्ण दो इदो ? ण,
काललव्वीए विणा असहेज्जस्स
देविंदस्य तड्ढोयण सत्तीए अभावादो।'

वीरवाणी साधारण जनता की भाषा मे खिरी क्योकि—

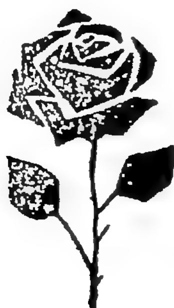
वालस्त्री मन्द मूर्खाणा नृणा चारित्र्यकांक्षिणाम्।
प्रतिबोधनाय तत्वज्ञै' सिद्धान्त. प्राकृतः कृतः॥

प्रभाव—तीर्थङ्कर महावीर के मर्मस्पर्शी उपदेश को सुन कर जनता को धर्म के वास्तविक रूप का ज्ञान हुआ और पशु-यज्ञो के विरोध मे एक व्यापक लहर फैल गई। विपुलाचल पर प्रथम उपदेश हुआ। वहाँ से जहाँ भी महावीर स्वामी का मगलमय विहार हुआ, वहाँ के शासक, मत्री, सेनापति, पुरोहित, विद्वान एव सामान्यजन उनके अनुयायी भक्त बनते गये। जिस प्रकार सूर्योदय से अन्धकार का विनाश हो जाता है, उसी प्रकार महावीर के उपदेश से अज्ञान, भ्रम, अधर्म, अन्याय, हिंसा-कृत्य आदि पापाचार साधारण जनक्षेत्र से दूर होता गया एव निरपराध मूक पशु-जगत् को सरक्षण मिला।

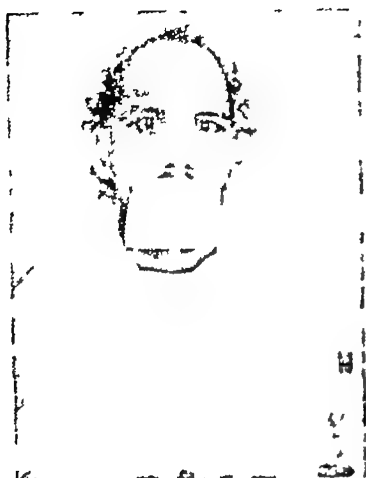
प्रतिष्ठापाठ मे तीर्थङ्कर महावीर के मगल-विहार एव समवशरण के सम्बन्ध मे लिखा है—

इच्छा—विरहित सोऽपि भव्योपुण्यदयेरितः।
विहारमकरोद् देशानार्यान् धर्मोपदेशयन्।
काश्या काश्मीरदेशे कुरुषु च मगधे कौशले कामरूपे।
कच्छे काले कलिगे जनपदमहिते जागलान्ते कुरादौ।
किष्किन्धे मल्लदेशे सुकृतिजनमनस्तोषदे धर्मवृष्टिम्।
कुर्वन् शास्ता जिनेन्द्रो विहरति नियत त य ज्ञेऽह त्रिकालम्।
पाचाले केरले वाऽमृतपदमिहिरोभद्रचेदिदशार्ण—
वगागान्ध्रोलिकोशीनर-मलयविदर्भेषु गौडे सुसह्ये
शीताशुरश्मिजालाऽमृतमिव सभा धर्मपीयूषधारा।
सिंचन योगाभिराम परिणमयति च स्वान्त-शुद्धि जनानाम्॥

उपसंहार निर्वाण—अन्त मे उन्होंने पावानगर मे सरोवरो के मध्य उन्नतभूमि महामणि तले दो दिन योगनिरोध करके अन्तिम गुणस्थान प्राप्त किया और ससार के आवागमन से मुक्ति प्राप्त की।



भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट



एक धर्मपथ : दो राही

जिनेशमुनिजी शास्त्री, आगरा



अनन्तकाल से प्राणी ससार मे मोह और अज्ञान के कारण इधर से उधर चारो गतियो मे परिभ्रमण कर रहा है। मोह का आवरण ही सबसे भयकर और सघन है। उसको तोडे बिना या उसका क्षय और क्षयोपशम किए बिना कोई भी व्यक्ति अपने जीवन का सही विकास कर नही सकता। अज्ञान ही जीव को ससार मे आसक्त बनाता है। गीता मे कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने कहा है—अज्ञान से आवृत ज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान से ही व्यक्ति ससार मे आसक्त बनता है—

"अज्ञानेन आवृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तव.।

जीवन का लक्ष्य :

भ० महावीर ने अपने उपदेश मे मानवजीवन की सबसे महत्वपूर्ण बात यह कही कि जब तक व्यक्ति को अपने स्वरूप का बोध नही होगा, तब तक वह अपने लक्ष्य की ओर आगे नही बढ सकेगा। चाहे वह कितना ही विद्वान् क्यो न हो जाय, सर्वदर्शनो, ज्ञान-विज्ञानो की सर्वशाखाओ मे भी पारंगत क्यो न बन जाय। जब तक सम्बोधि (अपने आप को जानने-समझने का बोध) नही हो जाती, तब तक सब अधूरे हैं। अद्वैतवाद के प्रवर्तक आचार्य शकर ने कहा था कि ब्रह्म के स्वरूप का बोध होने पर ही मुक्ति होती है। सांख्य-दर्शन भी यही कहता है—पुरुष और प्रकृति के यथार्थ स्वरूप को जानने वाला साधक ही बन्धनमुक्त होता है। भगवान् महावीर ने भी इस बात पर जोर दे कर कहा—कि जो "संबुज्झह किं बुज्झह, सबोही खलु पेच्च दुलहा।" अर्थात्—अरे भव्यजीवो ! अपने आप को जानो, समझो, सम्बोध क्यो नही पा रहे हो ? इस लोक मे यदि तुमने अपने आप को जाना-समझा नही, तो परलोक मे तो सम्बोधि बहुत दुर्लभ है।' भ० महावीर के पास गृहस्थ श्रावक बनने आता

---

१. 'दसणमूलो धम्मो'

या साधु बनने आता वे सबसे पहले सम्यक्दृष्टि-सम्बोधि प्राप्त करने का ही उपदेश देते। कोई भी साधक सम्यक्दृष्टि के बिना आगे बढ़ नही सकता। इसे ही धर्मपथ का मूल कहा है।

विकास-पथ .

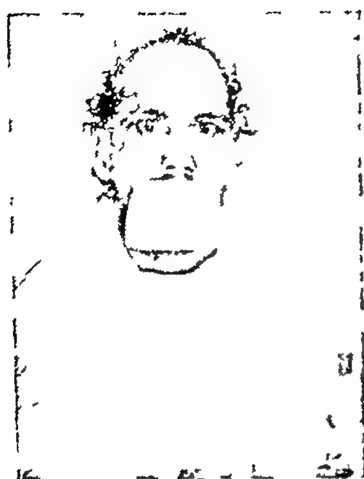
जैन-आगम के अनुसार विकास की सीढी चतुर्थ गुणस्थान से प्रारम्भ हो जाती है। वहाँ पहुँच कर साधक भेदविज्ञान के द्वारा यह जान लेता है कि मेरा स्वरूप कर्म-नोकर्म से सर्वथा भिन्न है। शरीर, इन्द्रियाँ और मन, जड पदार्थ है, मैं इनसे सर्वथा भिन्न हूँ। अज्ञान एव मोह के उदय के कारण जीव जो यह मान रहा था कि यह शरीर मेरा है, परिवार मेरा है, घर मेरा है, धन-वैभव एव अन्य सुख-साधन मेरे अपने हैं। दृष्टि के बदलने पर पर-पदार्थों मे रही हुई अपनत्व बुद्धि नही रहती। स्व और पर के स्वरूप को और दोनो के भेद तथा सयोग-वियोग के कारण को वह जान लेता है। अपनी दृष्टि को बाहर से हटा कर अपने अन्दर केन्द्रित करने का प्रयत्न करता है। ससार मे अपने साथ घटने वाली घटनाओ मे कर्त्ता बन कर नही, द्रष्टा बन कर रहने का प्रयास करता है। अज्ञान का आवरण हट जाने से उसके सामने लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। अब उसे मार्ग के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का भ्रम एव सन्देह नही रह जाता है। त्यागपथ पर भले ही वह बढ नही पाता हो, उस पर गति करने का सकल्प तो जागृत हो ही जाता है। यह दृष्टि ही उसके साधन-पथ को प्रशस्त एव सम्यक् बनाती है। और सम्यक्दृष्टि का प्राप्त होना ही जीवन मे सब-कुछ प्राप्त कर लेना है।

साधना का पथ :

दृष्टि के सम्यक् होते ही गति भी सम्यक् हो जाती है। विचार की सम्यक् पर्याय होते ही आचार की सम्यक् परिणति हो जाती है, साधना का मार्ग प्रशस्त होता है और उस पर चल करके साधक अपने साध्य को प्राप्त कर लेता है।

वास्तव मे पर मे स्वबुद्धि का होना, उनमे ममत्वभाव रखना ही मिथ्यात्व है, पाप है। जो पदार्थ अपने नही हैं, उन्हे अपना समझना अथवा अपने स्वरूप का सही बोध नही होना ही अज्ञान है। इसलिए निश्चय-दृष्टि से अपने ही द्वारा अपने स्वरूप का बोध होना, सम्यक्-ज्ञान है, उस पर श्रद्धा एव विश्वास होना, सम्यक्-दर्शन है और बाहर से हट कर अपने स्वरूप मे स्थित होना अथवा शारीरिक क्रियाओ एव व्यवहार के चलते हुए भी उन क्रियाओ मे न रह कर अपने मे रहना ही सम्यक्-चारित्र है। पदार्थों का अस्तित्व अनादिकाल से रहा है और अनन्त भविष्य मे भी रहेगा। पदार्थों का रहना या होना कोई पाप नही है, परन्तु उनमे ममत्वभाव रखना, उनमे ममता और आसक्ति रखना पाप है। पदार्थों मे आसक्ति नही रखना और वीतराग भाव मे स्थिर रहना ही निश्चयदृष्टि से पूर्ण चरित्र है।

भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट



एक धर्मपथ : दो राही

जिनेशमुनिजी शास्त्री, आगरा



अनन्तकाल से प्राणी ससार मे मोह और अज्ञान के कारण इधर से उधर चारो गतियो मे परिभ्रमण कर रहा है। मोह का आवरण ही सबसे भयकर और सघन है। उसको तोडे विना या उसका क्षय और क्षयोपशम किए विना कोई भी व्यक्ति अपने जीवन का सही विकास कर नही सकता। अज्ञान ही जीव को ससार मे आसक्त वनाता है। गीता मे कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने कहा है—अज्ञान से आवृत ज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान से ही व्यक्ति ससार मे आसक्त वनता है—

"अज्ञानेन आवृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तव ।

जीवन का लक्ष्य .

भ० महावीर ने अपने उपदेश मे मानवजीवन की सवसे महत्त्वपूर्ण वात यह कही कि जव तक व्यक्ति को अपने स्वरूप का वोव नही होगा, तव तक वह अपने लक्ष्य की ओर आगे नही वढ़ सकेगा। चाहे वह कितना ही विद्वान् क्यो न हो जाय, सर्वदर्शनो, ज्ञान-विज्ञानो की सर्वशाखाओ मे भी पारगत क्यो न वन जाय। जव तक सम्वोधि (अपने आप को जानने-समझने का वोव) नही हो जाती, तव तक सव अधूरे है। अद्वैतवाद के प्रवर्तक आचार्य शकर ने कहा था कि ब्रह्म के स्वरूप का वोध होने पर ही मुक्ति होती है। साख्य-दर्शन भी यही कहता है—पुरुष और प्रकृति के यथार्थ स्वरूप को जानने वाला साधक ही वन्धनमुक्त होता है। भगवान् महावीर ने भी इस वात पर जोर दे कर कहा—कि जो "सवुज्झह किं वुज्झह, सवोही खलु पेच्च दुलहा।" अर्थात्—अरे भव्यजीवो! अपने आप को जानो, समझो, सम्वोध क्यो नही पा रहे हो? इस लोक मे यदि तुमने अपने आप को जाना-समझा नही, तो परलोक मे तो सम्वोधि वहुत दुर्लभ है।' भ० महावीर के पास गृहस्थ श्रावक वनने आता

१. 'दसणमूलो धम्मो'

या साधु बनने आता वे सबसे पहले सम्यक्‌दृष्टि-सम्बोधि प्राप्त करने का ही उपदेश देते। कोई भी साधक सम्यक्‌दृष्टि के बिना आगे बढ़ नही सकता। इसे ही धर्मपथ का मूल कहा है।

विकास-पथ .

जैन-आगम के अनुसार विकास की सीढी चतुर्थ गुणस्थान से प्रारम्भ हो जाती है। वहाँ पहुँच कर साधक भेदविज्ञान के द्वारा यह जान लेता है कि मेरा स्वरूप कर्म-नोकर्म से सर्वथा भिन्न है। शरीर, इन्द्रियाँ और मन, जड पदार्थ हैं, मैं इनसे सर्वथा भिन्न हूँ। अज्ञान एव मोह के उदय के कारण जीव जो यह मान रहा था कि यह शरीर मेरा है, परिवार मेरा है, घर मेरा है, धन-वैभव एव अन्य सुख-साधन मेरे अपने हैं। दृष्टि के बदलने पर पर-पदार्थों मे रही हुई अपनत्व बुद्धि नही रहती। स्व और पर के स्वरूप को और दोनो के भेद तथा सयोग-वियोग के कारण को वह जान लेता है। अपनी दृष्टि को बाहर से हटा कर अपने अन्दर केन्द्रित करने का प्रयत्न करता है। ससार मे अपने साथ घटने वाली घटनाओ मे कर्त्ता बन कर नही, द्रष्टा बन कर रहने का प्रयास करता है। अज्ञान का आवरण हट जाने से उसके सामने लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। अब उसे मार्ग के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का भ्रम एव सन्देह नही रह जाता है। त्यागपथ पर भले ही वह बढ़ नही पाता हो, उस पर गति करने का सकल्प तो जागृत हो ही जाता है। यह दृष्टि ही उसके साधन-पथ को प्रशस्त एव सम्यक् बनाती है। और सम्यक्‌दृष्टि का प्राप्त होना ही जीवन मे सब-कुछ प्राप्त कर लेना है।

साधना का पथ :

दृष्टि के सम्यक् होते ही गति भी सम्यक् हो जाती है। विचार की सम्यक् पर्याय होते ही आचार की सम्यक् परिणति हो जाती है, साधना का मार्ग प्रशस्त होता है और उस पर चल करके साधक अपने साध्य को प्राप्त कर लेता है।

वास्तव मे पर मे स्वबुद्धि का होना, उनमे ममत्वभाव रखना ही मिथ्यात्व है, पाप है। जो पदार्थ अपने नही हैं, उन्हें अपना समझना अथवा अपने स्वरूप का सही बोध नही होना ही अज्ञान है। इसलिए निश्चय-दृष्टि से अपने ही द्वारा अपने स्वरूप का बोध होना, सम्यक्-ज्ञान है, उस पर श्रद्धा एव विश्वास होना, सम्यक्-दर्शन है और बाहर से हट कर अपने स्वरूप मे स्थित होना अथवा शारीरिक क्रियाओ एवं व्यवहार के चलते हुए भी उन क्रियाओ मे न रह कर अपने मे रहना ही सम्यक्-चारित्र है। पदार्थों का अस्तित्व अनादिकाल से रहा है और अनन्त भविष्य मे भी रहेगा। पदार्थों का रहना या होना कोई पाप नही है, परन्तु उनमे ममत्वभाव रखना, उनमे ममता और आसक्ति रखना पाप है। पदार्थों मे आसक्ति नही रखना और वीतराग भाव मे स्थिर रहना ही निश्चयदृष्टि से पूर्ण चरित्र है।

वह सब व्यवहार और क्रिया-काण्ड सम्यक् कहा गया है, जो वीतरागभाव मे स्थिर होने मे अथवा स्व-स्वरूप मे रमण करने मे सहायक होता है। इस अपेक्षा से पच महाव्रत, समिति-गुप्ति एव अणुव्रतो को सम्यक्-आचार कहा है। क्योकि अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की साधना साधक को विषमभाव से हटा कर समभाव की ओर ले जाती है।

अणुव्रत और महाव्रत

वैसे देखें तो लक्ष्य और धर्मपथ की दृष्टि से गृहस्थ और साधु मे कोई भेद नही है। सब का लक्ष्य एक है—कर्म-बन्धन से मुक्त होना। सब का धर्मपथ है—सम्यक्-दृष्टि। सम्यक्-दर्शन, श्रद्धा, निष्ठा एव विश्वास का ही एक रूप है। उसके बिना कोई भी साधक कितना ही बडा क्यो न हो, सम्यक्-चारित्र या साधना के पथ पर नही बढ सकता। इसलिए दृष्टि का परिवर्तन होना और सम्यक्त्व को प्राप्त करना ही ससारसागर से पार होने का मार्ग है। सभी साधक एक ही धर्म पथ के पथिक हैं। अन्तर राह का नही, राह पर चलने की गति का है। एक मन्द गति से चलता है, तो दूसरा तीव्र गति से और तीसरा तीव्रतम वेग से बढ रहा है। इसी दृष्टि से आगम मे मोक्षमार्ग के साधको को दो भागो मे विभक्त किया गया है। एक देशव्रत को स्वीकार करने वाला आगारी श्रावक (गृहस्थ) और दूसरा सर्वव्रत स्वीकार करने वाला अनगार-साधु।

भावपूर्वक किया गया कोई भी त्याग छोटा नही है। साधक की कुछ सीमाएँ होती हैं। कुछ साधक सम्पूर्ण रूप से हिंसा, असत्य, अस्तेय, विषय-वासना-अब्रह्मचर्य और परिग्रह का परित्याग करके अध्यात्म-साधना मे सलग्न हो जाते है। कुछ गृहस्थ के दायित्व का पालन करते हुए साधना-पथ पर गतिशील रहते हैं। वे भी दोषो का त्याग करते हैं, एक देश से अथवा कुछ अश मे। उन्हें अपने जीवननिर्वाह के साथ परिवार, समाज एव राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वो को निभाने के लिए कुछ कार्य करने पडते हैं। इस अपेक्षा से साधु के व्रतो को महाव्रत और श्रावक (गृहस्थ) के व्रतो को अणुव्रत कहा गया है।

दोनो प्रकार के साधको का लक्ष्य एक ही है। और साधना का मार्ग भी एक है—सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चरित्र की आराधना दोनो ही अपनी-अपनी शक्ति के अनुरूप अथवा अपने-अपने क्षयोपशम के अनुसार गति करते हैं। इनके मार्ग मे कोई अन्तर नही है, अन्तर है केवल गति का। पथ पर गतिशील साधक गन्तव्य स्थान पर पहुँचेगा अवश्य।





महावीर-निर्वाण

और सामाजिक क्रान्ति

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल,
एम०ए० पी० एच० डी० शास्त्री



भगवान महावीर को १२ वर्ष की तप साधना एव कैवल्य के पश्चात ३० वर्ष तक देश के विभिन्न प्रदेशो मे बिहार करने के पश्चात् निर्वाण प्राप्त हुआ। ३० वर्ष तक सर्वज्ञ महावीर ने देश को विभिन्न क्रान्तियो के माध्यम मे नवजीवन एव नवीन दिशा प्रदान की। उन्होने देश मे अहिंसक क्रान्ति का सूत्रपात किया, इसके माध्यम से अहिंसा की प्राधान्यता को प्रतिष्ठित किया। मानवमात्र को ही नही, पशु-पक्षी को भी जीवन मे अहिंसा उतारने पर बल दिया। अहिंसा को धर्म का रूप देकर उसके महत्व को प्रस्तुत किया और जीवन के प्रत्येक कार्य मे उसकी आवश्यकता पर जोर दिया। सामाजिक एव आर्थिक क्रान्ति मे भी मुख्यरूप से अहिंसा का ही पुट रहा। उनका अनेकान्त एव अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त सामाजिक एव आर्थिक क्रान्ति का ही तो दूसरा रूप है। अनेकान्त सिद्धान्त के माध्यम से उन्होंने सर्व-धर्म समभाव के सिद्धान्त का प्रचार किया। समाज मे व्याप्त अशान्ति, साम्प्रदायिकता एव पारस्परिक मनोमालिन्य को समाप्त किया, और सब मे सह-अस्तित्व की भावना पैदा की। जन्मना जातिवाद का भगवान् महावीर ने डट कर विरोध किया था। चारो ही वर्णों के व्यक्तियो को उन्होने अपने साधु-साध्वी श्रावक-श्राविकारूप चतुर्विध सघ मे स्थान दिया। और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को महाव्रत और अणुव्रत के रूप मे धर्म को जीवन मे उतारना आवश्यक बताया। कर्मों के अनुसार ही आपने व्यक्ति का मूल्याकन करने का उपदेश दिया था। आपने समवसरण मे मनुष्य-मात्र को ही नही, पशु-पक्षी तक को प्रवेश करने और बराबरी के स्थान का अधिकार दिया, वहाँ छूत-अछूत का, ऊँच-नीच का कोई भेदभाव नही था। उनकी धर्मसभा मे न कोई राजा था, न रंक। उनका समवसरण वर्गहीन था। उनकी धर्मसभा मे जहाँ

राजा श्रेणिक था, वहां उनके राज्य का छोटे से छोटा मनुष्य भी उन्ही के साथ बैठता था। यह प्रथम अवसर था। जब एक सर्वोच्च धर्माचार्य ने किसी शूद्र को गले लगाया हो, और उसे धार्मिक वाणी सुनने का अवसर प्रदान किया हो।

आज उनके २५०० वें निर्वाण महोत्सव पर देश मे उनके सिद्धान्तो की व सामाजिक क्रान्ति की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी उस युग मे थी।

लेकिन यह सामाजिक क्रान्ति कोई सरल कार्य नही है। इसके लिये साधुओ को आगे आना पडेगा तथा श्रावक एव श्राविकाओ को एक दिशा तक जीवन की उच्छृखलताओ को त्यागना पडेगा।

सामाजिक क्रान्ति के लिये आज के युग का नारा होना चाहिये **'सब महावीर के अनुयायी एक हो जाओ।'** यह नारा हमारी सामाजिक क्रान्ति का एक अग हो और इसके माध्यम से हम सारे जैनसमाज को एक सूत्र मे बांध सकें। यह नारा किसी राजनीति से प्रेरित नही हो, किन्तु शुद्ध सामाजिक क्रान्ति का सूत्र-पात करने वाला हो। यदि इस वर्ष समस्त जैन समाज अपने मनोमालिन्य एव पारस्परिक झगडो को समाप्त कर भगवान् महावीर के उपदेशो को अपने जीवन मे उतार कर औरो के समक्ष नजीर रख सके तभी जा कर हमारा महावीरनिर्वाणशताब्दिसमारोह मनाना सार्थक होगा।

आज देश भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट समाज का नव-निर्माण करना चाहता है, जिसमे कोई भी व्यक्ति देश एव समाज के हितो की उपेक्षा नही कर सके। आज तो मानवमात्र को गले लगाने से पूर्ण अहिंसक समाज का निर्माण करने से, तथा ५ अणुव्रतो को जीवन मे उतारने से ही उसकी रचना हो सकेगी। ऐसी सामाजिक क्रान्ति के लिये भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव वर्ष से अच्छा कौन-सा वर्ष होगा? यदि इस शताब्दिवर्ष मे समस्त जैन अपने भेदो को भुला कर एक हो सके तथा अपना जीवन भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट वचनो के आधार पर निर्माण कर सके तो देश मे सामाजिक क्रान्ति का पुन. सूत्रपात किया जा सकता है और हमारे देश की भी कायापलट की जा सकती है।



●

निर्वाण के पूर्व

महावीर के उद्गार





मुनि नरेन्द्रकुमार 'विशारद'
जालना

एक बार गणनायक गौतम स्वामी ने सविनय पूछा—"भन्ते ! जबू-द्वीप के भरतखण्ड मे इस समय अवसर्पिणी-काल चल रहा है। इस अवसर्पिणी-काल मे भगवान् के मुखारविंद से प्रकथित अर्हंद्धर्म कितने काल पर्यन्त गतिमान रहेगा ?"

समाधान के तौर पर साधनारत प्रभु महावीर ने कहा—'गौतम ! मेरे निर्वाण होने के पश्चात् भी इसी जम्बू-द्वीप के इस भरतखण्ड मे प्रचलित अवसर्पिणी काल मे बिना व्यवधान के मेरे द्वारा व्यवस्थापित यह चतुर्विध सघ एव धर्म इक्कीस हजार वर्ष तक गतिमान रहेगा। अर्थात् "दुषम" नामक इस पचम काल की अतिम घडियो तक जिनधर्म के प्रतिनिधि के रूप मे एकभवावतारी 'दुपस्सह' नामक अनगार फाल्गुनी साध्वी, 'जिनदास' श्रमणोपासक एव 'नागश्री' नामक की श्रमणोपासिका विद्यमान रहेगीं, जिनकी अन्तरात्मा रत्नत्रय से आलोकित रहेगी।

माना कि दुषम काल मे मिथ्यावाद का अत्यधिक विस्तार एव फैलाव रहेगा, इस कारण यदा-कदा बीच-बीच मे चतुर्विध सघ मे शिथिलता का आना स्वाभाविक है। तथापि सघ की व्यवस्था विशृ खलित नही होगी। वीतराग-प्ररूपित यह जिनधर्म भारतवर्ष मे बिलकुल लुप्त हो जाय, ऐसा कभी नही सोचना चाहिए।"[१]



---

१ जबूद्दीवे ण भते ! दीवे भारहे वासे इमी से ओसप्पिणीए—
देवाणुप्पियाण केवतिय काल तित्थे अणुसज्जिस्सति ?
गोयमा ! जम्बूद्दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए—
मम एगवीस वास सहस्साइ तित्थे अणुसज्जिस्सति ॥

(भगवतीसूत्र)

महावीर ने कहा—जानो और भोगो : भोगो और जानो। जो-जो त्याज्य है, अयोग्य है, वर्जित है, वह स्वय ही छूट जायेगा। बाद मे उन्होंने कहा—भोगो और भूल जाओ। भूलोगे नही तो भोग खडित हो जायेगा। जो कुछ तुम भोग चुके, उसका पर्याय तो तभी विर्जित विर्सजित हो गया था।

महावीर ने कहा—

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते इमम्मि लोए अदुवा परत्था,
दीवप्पणट्ठे व अणतमोहे नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव।

(उतरा० ४-५)

अर्थात्—प्रमादी पुरुप लोक अथवा परलोक मे कही भी धन से अपना रक्षण नही कर सकता। मोही जीव का विवेकरूपी दीपक बुझ जाता है, जिससे न्यायमार्ग मे देख कर भी प्रवृत्त नही होता।

तभी महावीर ने अपने प्रमुख शिष्य गौतम को वार-वार सम्वोधित किया है—इसी से कहता हूँ गौतम कि एक क्षण के लिये भी प्रमाद न कर। प्रशिक्षण अप्रमत्तभाव से विचरण कर अर्थात् मिथ्या के मद मे आ कर स्वयं को अभिभूत न कर और हर पल जागरूक रह कर जीवनयापन कर।

महावीर कहते हैं कि वस्तु अपने आप मे ठीक जैसी है, वैसी ही देखो और जानो। उसके उस स्वभाव की सगति मे ही उसके साथ सम्वन्ध स्थापित करो। क्या यह नितान्त आज के आदर्शवादी कहे जाने वाले मन की ही भापा नही है? आज का आदमी, इन्द्रियो और मन से ग्रहण होने वाली वस्तु की सतही स्थिति को ही सत्य समझ वैठा है। युवा-वर्ग मे विद्रोह—शव्द अतिप्रचलित है। यौवन मात्र देह की अवस्था नही, वह वस्तु का यथार्थ स्वभाव है। सत्य युवकोचित ऐसी ही पुरातनता, जडता, रूढ़िता के खिलाफ विद्रोह करता है। उसका अन्तर्मन चाहता है कि वह यथार्थ की वखिया उधेड कर स्वतन्त्र पथ का अनुसरण करे। महावीर ने ब्रह्मचर्य की निम्न परिभापा दी—अपने और सर्व के अखण्ड भोग मे जीओ। जो पहले स्वरूप मे अभग आत्मरक्षण करना सीख जायेगा, वही सर्व मे सम्पूर्ण, अभग, अटूट और रमण कर सकेगा।

यह हर्प का विपय है कि आधुनिक इतिहासकारो ने महावीर को युगनायक माना है और केन्द्रीय सरकार ने महावीर का २५०० वा परिनिर्वाणदिवस केन्द्रीय स्तर पर मनाने का निश्चय किया है। यह राष्ट्रीय सरकार की उदारता है कि उन्होंने निर्वाण महोत्सव को अहिसक दिन घोपित कर, उस दिव्यपुंज को सच्ची श्रद्धाजलि दी है। यही नही, कई राज्यसरकारो ने नवम्वर, १६७४ से नवम्वर ७५ तक अहिसक वर्प घोपित करके, लोकनायक महावीर के पथ पर श्रद्धापुष्प समर्पित किये है। महावीर की शिक्षाएँ शोपणविहीन समाज की स्थापना करने मे प्रेरणास्तम्भ वनेंगी।

महावीर भीतर-वाहर, आदर्श-यथार्थ और आचार-विचार की सारी दीवारो और पर्दों को तोड कर वेनकाव करने हेतु सडको पर नग्न निकल पड़े। युग के इस उन्मुक्त, अक्षुब्ध, निर्वाणप्राप्त एकाकी पुरुप को मैं कोटिश. नमस्कार करता हूँ।

—o—



—मदनलाल जैन, जालंधर



(१) करुणामूर्ति प्रभु महावीर इसी भारतवर्ष की पवित्र भूमि मे अवितरित हुए थे। अपनी आत्मसाधना के फलस्वरूप उन्होने केवलज्ञान प्राप्त किया। वे लोक मे प्रकाशस्तम्भ, ज्ञानरूपी नेत्रो के दाता, धर्म के महान् उपदेशक, राग-द्वेष के विजेता, सर्वदर्शी, कल्याण कारक और अहिंसा, सयम व अपरिग्रह के प्रतीक थे। उन्होंने कठोर साधना और तपस्या करके लोककल्याण के लिए जो उपदेश दिये, उनकी उपादेयता एव आवश्यकता जितनी उस समय थी, आज उससे भी कही अधिक है। आज विश्व मे घोर हिंसा का जो ताडवनृत्य देखने मे आ रहा है, व्यक्ति-व्यक्ति मे जो वैमनस्य व कलह दिखाई देता है, उसके निराकरण के लिए भगवान् महावीर ने अहिंसा को ही एक मात्र उपाय बतलाया था।

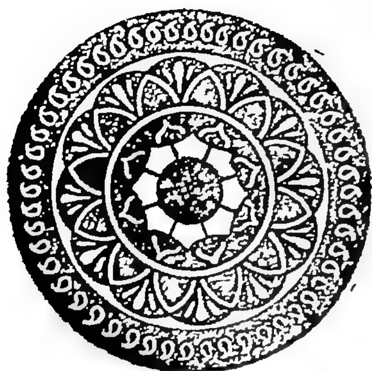
(२) आपसी युद्ध से शत्रु नष्ट हो सकते हैं—परन्तु शत्रुता नष्ट नही होती है, अर्थात् हिंसा को हिंसा से नही मिटाया जा सकता। आज से हजारो वर्ष पूर्व महावीर स्वामी ने ससार के सामने यह बात रखी थी। भगवान् महावीर ने जब जन्म लिया उस समय देश मे मंत्रवाद, तत्रवाद, हिंसक यज्ञो तथा अग्नितपो की कु-प्रथाओ का बोल-बाला था। इन सबको महावीर ने मिथ्या बतलाया और कहा कि धर्म का रहस्य सत्य, अहिंसा, प्रेम, सेवा, और मैत्री भाव के साथ जीवन को व्यतीत करने मे ही है। धर्म दीन-दुखियो की सेवा मे है, धर्म अहिंसा मे है। विश्व के जितने भी प्राणी है, उन सबको अपनी आत्मा के तुल्य जानो। इन्द्रियो का दमन तथा इच्छाओ का निरोध करो।

(३) आत्मा के साथ ही युद्ध करो। बाहरी शत्रुओ के साथ जूझने से क्या लाभ ? आत्मा द्वारा आत्मा को ही जीतने वाला सुखी होता है। सभी प्राणियो मे एक जैसी आत्मा है और सभी प्राणियो को अपना-अपना जीवन प्यारा है। इसलिये भय और वैर की भावना का परित्याग कर किसी भी प्राणी को न तो मारा जाय और न ही उसे किसी प्रकार का कष्ट दिया जाय।

(४) 'दूसरो के लिए दुख सहो-अपने लिए दूसरो को दुख मत दो' यही श्रेष्ठ धर्म है। अगर जुल्म करना पाप है—तो जुल्म को सहना भी महापाप है। इस

✓

भगवान् महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण दिवस पर



समाज को बदलने वाले महावीर के क्रान्तिकारी उपदेश

प्रमोद मधुर, अम्बाला



महात्मा गाँधी ने भगवान महावीर को अहिंसा का लाल कह कर याद किया है। वह दिव्य आत्मा उस समय पृथ्वी पर आई, जबकि हर ओर पाखण्ड, छल-कपट तथा ऊँच-नीच की ऊबड-खाबड घाटियां जन-जन मे अपना अस्तित्व बनाये अडिग खडी थी। महावीर ने इस चट्टान को चुनौती दी तथा इन्ही ऊबड-खाबड घाटियो मे विचरण किया। नगे पाव, भूखे और प्यासे रह कर वे अपने विचारो का उद्घोप करते रहे। उन्होंने शोपण के विरुद्ध आवाज उठाई। वे पहले मनुष्य थे, जिन्होंने पण्डितो की भाषा को पाखण्ड बतलाया तथा जी भर कर भर्त्सना की। उनके विचारो की क्रान्ति ने ऐसी स्वर्णमयी धारा बहाई, जिसने सदैव के लिये भगवान् महावीर को अमर बना दिया। उन्होने जो कुछ कहा—पहले स्वय उसका मनन किया। अपने अनुभवों को उन्होंने जीवन मे उतारा तथा वे इन्सान से भगवान् कहलाने लगे। यह घटना उस समय की है, जब पूँजीवाद पनप रहा था। हर ओर भय और क्रन्दन का वातावरण था। तभी भगवान् महावीर अभयहस्त ले कर अवतरित हुए कि सम्पूर्ण मानव-जाति एकमत होकर उनके ध्वज के नीचे आ गई। भगवान् महावीर का अपरिग्रहवाद आज भी उतना ही आधुनिक है, जितना उस समय था। महावीर ने कहा था—अपने उपयोग से अधिक वस्तुओ का सग्रह पाप है। व्यर्थ का दिखावा करना पाप है। अपने अधिकारो के लिये दूसरो के अधिकारो का हनन करना पाप है। वे शोषण के विरुद्ध लडने वाले प्रथम पुरुप थे। वे इन्द्रियजयी एव स्थितप्रज्ञ पुरुप थे।

महावीर जान-बूझकर आजीवन खतरो मे विचरे। उन्होने संकटो को स्वय ही न्यौता दिया। उनका कहना था कि स्वतन्त्रता भीख मे प्राप्त होने वाली वस्तु नही है, जिसे प्राप्त किया जा सके। भला, महावीर से बडा क्रान्तिकारी कौन होगा! उन्होंने स्पष्ट कहा "जीवहत्या घोर पाप है।"

मार्क्स ने भी राजनैतिक साम्यवाद को अपनाया, जबकि आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व मे महावीर ने साम्ययोग (समतावाद) चुना था। दोनो मे से महावीर इस माने मे अधिक सफल रहे। दोनो के लक्ष्य एक होते हुए भी विचारो मे भिन्नता थी। मार्क्स का मत था कि व्यक्ति परिस्थिति के बदलने से स्वय सुधर जायेगा। वे परिस्थिति पर मनुष्य को निर्भर करते थे। मगर महावीर का कहना था कि व्यक्ति के बदलने से परिस्थितिया स्वयं ही बदल जायेंगी, अर्थात् मनुष्य परिस्थितियो का दास नही बल्कि वे उसकी दासी हैं। मनुष्य अपना व्यक्तित्व स्वय बनाता है, हालात नही बनाते। जिस प्रकार कमल कीचड मे रह कर भी पवित्र रहता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य यदि चाहे तो अपना भाग्य स्वय बना सकता हैं। यह विचार कितने आधुनिक प्रतीत होते हैं ? यही कारण था कि महावीर मार्क्स से इस व्यवस्था मे अधिक सजग थे। मार्क्स के गुरु हीगेल की भी यही मान्यता थी कि क्रान्ति के स्रोत विचार हैं। उन्हे बदलने पर ही व्यक्ति बदलेगा तथा उसके साथ ही व्यवस्था एवं परिस्थितियाँ स्वय ही बदल जावेंगी।

महावीर ने कहा—

दुप्परिच्चया इमे कामा नो सुजहा अधीर पुरिसेंहि
अह सति सुवया साहू जे तरति अतर वणिया वा।'

अर्थात्—कामभोग मुश्किल से छूटते हैं। अधीर तो इन्हे सहसा छोड भी नही सकते। परन्तु जो महाव्रतो जैसे सुन्दर व्रतो का पालन करने वाले साधु पुरुष हैं, वे ही इस दुस्तर भोगसमुद्र को तैर कर पार होते हैं—जैसे व्यापारी वणिक समुद्र को।

महावीर शोषण को एक वृत्ति मानते थे, परिस्थिति नही ; जबकि मार्क्स शोषण को परिस्थिति मान कर चला। यही कारण है कि उनके विचारो की अभिव्यक्ति मे महावीर अधिक सफल रहे। महावीर ने श्रावक के जीवन की जो आदर्श परिकल्पना की थी , वह एक शोपण-रहित समाज के स्वरूप को अपने मे निहित किये थी।

महावीर जैसा अहिंसक क्रान्तिकारी इतिहास मे शायद ही कोई मिले। फिर भी इतिहास के भाल पर आज भी महावीर सारे निषेधो, मर्यादाओ को चूर-चूर करता हुआ नगे पाव अभी विचर रहा है। महावीर ने भीतर के सारे जहरीले आवरण फाड कर समाज एव राज्य की व्यवस्था को चुनौती दी। महावीर ने राजा की सुख-शय्या, भोग-विलास का परित्याग करके भयानक जगलो मे विचरण किया। राजसी ठाठवाट का त्याग करके वे वनो मे भूखे विचरे। उन्होंने भूख का वरण किया तथा भोजन का अजस्र अमृतस्रोत भीतर ही पा लिया। महावीर ने अपनी हर समकालीन जड़ीभूत व्यवस्था को ऐसी तेजस्विता से ललकारा और तोडा कि भारत के पोषित चौराहे पर लोग पत्थर ले कर खडे थे, मगर इस विचारशुद्ध नौजवान का हर कदम खामोश विप्लव और विस्फोट ले कर आया।

महावीर ने कहा—जानो और भोगो : भोगो और जानो। जो-जो त्याज्य है, अयोग्य है, वर्जित है, वह स्वय ही छूट जायेगा। बाद मे उन्होने कहा—भोगो और भूल जाओ। भूलोगे नही तो भोग खडित हो जायेगा। जो कुछ तुम भोग चुके, उसका पर्याय तो तभी विजित विसर्जित हो गया था।

महावीर ने कहा—

वित्तेण ताण न लभे पमत्ते इमम्मि लोए अदुवा परत्था,
दीवप्पणट्ठे व अणतमोहे नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव।

(उतरा० ४-५)

अर्थात्—प्रमादी पुरुप लोक अथवा परलोक मे कही भी धन से अपना रक्षण नही कर सकता। मोही जीव का विवेकरूपी दीपक बुझ जाता है, जिससे न्यायमार्ग मे देख कर भी प्रवृत्त नही होता।

तभी महावीर ने अपने प्रमुख शिष्य गौतम को बार-बार सम्बोधित किया है—इसी से कहता हूँ गौतम कि एक क्षण के लिये भी प्रमाद न कर। प्रशिक्षण अप्रमत्तभाव से विचरण कर अर्थात् मिथ्या के मद मे आ कर स्वय को अभिभूत न कर और हर पल जागरूक रह कर जीवनयापन कर।

महावीर कहते हैं कि वस्तु अपने आप मे ठीक जैसी है, वैसी ही देखो और जानो। उसके उस स्वभाव की सगति मे ही उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करो। क्या यह नितान्त आज के आदर्शवादी कहे जाने वाले मन की ही भाषा नही है ? आज का आदमी, इन्द्रियो और मन से ग्रहण होने वाली वस्तु की सतही स्थिति को ही सत्य समझ बैठा है। युवा-वर्ग मे विद्रोह—शब्द अतिप्रचलित है। यौवन मात्र देह की अवस्था नही, वह वस्तु का यथार्थ स्वभाव है। सत्य युवकोचित ऐसी ही पुरातनता, जडता, रूढिता के खिलाफ विद्रोह करता है। उसका अन्तर्मन चाहता है कि वह यथार्थ की बखिया उधेड कर स्वतन्त्र पथ का अनुसरण करे। महावीर ने ब्रह्मचर्य की निम्न परिभाषा दी—अपने और सर्व के अखण्ड भोग मे जीओ। जो पहले स्वरूप मे अभग आत्मरक्षण करना सीख जायेगा, वही सर्व मे सम्पूर्ण, अभग, अटूट और रमण कर सकेगा।

यह हर्ष का विषय है कि आधुनिक इतिहासकारो ने महावीर को युगनायक माना है और केन्द्रीय सरकार ने महावीर का २५०० वा परिनिर्वाणदिवस केन्द्रीय स्तर पर मनाने का निश्चय किया है। यह राष्ट्रीय सरकार की उदारता है कि उन्होंने निर्वाण महोत्सव को अहिंसक दिन घोषित कर, उस दिव्यपुंज को सच्ची श्रद्धाजलि दी है। यही नही, कई राज्यसरकारो ने नवम्बर, १९७४ से नवम्बर ७५ तक अहिंसक वर्ष घोषित करके, लोकनायक महावीर के पथ पर श्रद्धापुष्प समर्पित किये हैं। महावीर की शिक्षाएँ शोषणविहीन समाज की स्थापना करने मे प्रेरणास्तम्भ बनेंगी।

महावीर भीतर-बाहर, आदर्श-यथार्थ और आचार-विचार की सारी दीवारो और पर्दों को तोड कर बेनकाब करने हेतु सडको पर नग्न निकल पड़े। युग के इस उन्मुक्त, अक्षुब्ध, निर्वाणप्राप्त एकाकी पुरुष को मैं कोटिश नमस्कार करता हूँ।

——o——



—मदनलाल जैन, जालंधर



(१) करुणामूर्ति प्रभु महावीर इसी भारतवर्ष की पवित्र भूमि मे अवितरित हुए थे। अपनी आत्मसाधना के फलस्वरूप उन्होने केवलज्ञान प्राप्त किया। वे लोक मे प्रकाशस्तम्भ, ज्ञानरूपी नेत्रो के दाता, धर्म के महान् उपदेशक, राग-द्वेष के विजेता, सर्वदर्शी, कल्याण कारक और अहिसा, सयम व अपरिग्रह के प्रतीक थे। उन्होने कठोर साधना और तपस्या करके लोककल्याण के लिए जो उपदेश दिये, उनकी उपादेयता एव आवश्यकता जितनी उस समय थी, आज उससे भी कही अधिक है। आज विश्व मे घोर हिंसा का जो ताडवनृत्य देखने मे आ रहा है, व्यक्ति-व्यक्ति मे जो वैमनस्य व कलह दिखाई देता है, उसके निराकरण के लिए भगवान् महावीर ने अहिसा को ही एक मात्र उपाय बतलाया था।

(२) आपसी युद्ध से शत्रु नष्ट हो सकते हैं—परन्तु शत्रुता नष्ट नही होती है, अर्थात् हिंसा को हिंसा से नही मिटाया जा सकता। आज से हजारो वर्ष पूर्व महावीर स्वामी ने ससार के सामने यह बात रखी थी। भगवान् महावीर ने जब जन्म लिया उस समय देश मे मंत्रवाद, तत्रवाद, हिंसक यज्ञो तथा अग्नितपो की कु-प्रथाओ का बोल-बाला था। इन सबको महावीर ने मिथ्या बतलाया और कहा कि धर्म का रहस्य सत्य, अहिसा, प्रेम, सेवा, और मैत्री भाव के साथ जीवन को व्यतीत करने मे ही है। धर्म दीन-दुखियो की सेवा मे है, धर्म अहिसा मे है। विश्व के जितने भी प्राणी हैं, उन सबको अपनी आत्मा के तुल्य जानो। इन्द्रियो का दमन तथा इच्छाओ का निरोध करो।

(३) आत्मा के साथ ही युद्ध करो। बाहरी शत्रुओ के साथ जूझने से क्या लाभ ? आत्मा द्वारा आत्मा को ही जीतने वाला सुखी होता है। सभी प्राणियो मे एक जैसी आत्मा है और सभी प्राणियो को अपना-अपना जीवन प्यारा है। इसलिये भय और वैर की भावना का परित्याग कर किसी भी प्राणी को न तो मारा जाय और न ही उसे किसी प्रकार का कष्ट दिया जाय।

(४) 'दूसरो के लिए दु ख सहो-अपने लिए दूसरो को दु ख मत दो' यही श्रेष्ठ धर्म है। अगर जुल्म करना पाप है—तो जुल्म को सहना भी महापाप है। इस

अमर सदेश अहिंसा से विश्वभर के प्राणियो को सुख का अनुभव कराया; धर्म के नाम पर मारे जाने वाले लाखो मूक पशुओ की जानें बची, और संसारी लोग भोग से त्याग की ओर झुके। महावीर ने नारा बुलन्द करते हुए कहा, "घृणा पाप से करो, पापी से घृणा मत करो, क्योकि उसकी आत्मा पवित्र है। वह कभी भी पाप से रहित हो सकती है। अतः दूसरे के प्रति श्रद्धा सुमन बरसाओ, हनन की भावना मत रखो।" जो मनुष्य अपना हित चाहता है, वह पाप को बढ़ाने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारो दोषो को सदैव के लिए छोड दे। सुख पाने का मार्ग है—सुख देना।

(५) भगवान् महावीर ने घोषणा करते हुए बताया कि तुम जो चाहो बन सकते हो, अपने भाग्य के विधाता तुम स्वयं ही हो, अन्धश्रद्धा (Blind faith) को छोड कर आगे बढते चलो। स्त्रीजाति का सम्मान करना आप सबका परम कर्तव्य है। स्त्रीजाति का मान करना देश का मान करना है। भगवान् महावीर, जिन्होंने भौतिकवाद का त्याग कर आध्यात्मिकवाद को अपनाया, जीवन के बहुत ऊँचे आदर्श मानव के सामने रखे। उनकी अमर वाणी मे न्याय, एकता और सब प्रकार के भेद-भाव को मिटाने के लिये एक विशेष प्रभाव था।

(६) महावीर ने भारत के विचार को उदारता और आचार को पवित्रता दी, नारीजाति के गौरव को बढाया, इन्सान और इन्सान के भेद-भावो को मिटाया, उसे परमात्मपद की बुलन्दी तक पहुँचाया। ऐसे महान क्षमामूर्ति देवता को हमारा शत-शत वन्दन।



भगवान् महावीर की अनेकान्तमयी उपदेशशैली

श्रीमती रेखा जैन एम० ए० शोधछात्रा



भगवान् महावीर की उपदेशशैली अनेकान्तमयी होती थी। यदि विचारो मे कही मतभेद होता तो उसका विरोध करके वे नही समझाते थे। वे मानते थे कि हर एक के पास सत्यांश होता है, किन्तु वह उसी के लिए पूर्णसत्य का दावा करता है। अत' हर एक से एक-एक सत्याश ग्रहण करना और फिर पूर्णसत्य का सशोधन करना—ऐसी उनकी उपदेशशैली थी। हर एक से वे कहते थे—तुम्हारे कथन मे भी सार है। तुम्हारे कथन मे भी अमुक दृष्टि से सत्याश है। इसीलिए महावीर का यह उपदेश है कि हर एक से सत्याश ले कर पूर्ण सत्य की शोध करने का प्रयत्न करो। यह मत समझो कि हमारे पास ही पूरा सत्य है। जब हर कोई यह कहेगा कि मेरा सत्य ही सत्य है, तो उसमे से सघर्ष पैदा होगे। इसलिए विरोध या संघर्ष बढ़ाने के वजाय, दूसरो के दृष्टिकोणो को भी समझो और उसमे निहित सत्य को अपनाओ। ठोस सत्य तभी हाथ आयगा, तभी वैचारिक अहिंसा प्रस्फुटित होगी, तभी विश्व मे विविध वादो, मतो, पथो, दर्शनो एव समुदायो मे होने वाले आपसी सघर्ष, वैमनस्य और विरोध समाप्त होगे; विचारो मे सन्तुलन आयेगा। प्रत्येक विषय पर अनेक दृष्टियो से सोचा जा सकता है। हो सकता है कि एक दृष्टि से वह एकरूप मे प्रतीत हो और दूसरी दृष्टि से दूसरे रूप मे। अत विचारशील मनुष्य का काम है कि वह विषय का सभी ओर से परीक्षण करे और प्रत्येक पहलू से उसकी मर्यादा का पता लगावे किन्तु एक ही दृष्टि से प्रभावित हो कर उसी दृष्टि को सच मानने का आग्रह रखने मे सन्तुलन की कमी होती है। दूसरे पक्ष की दृष्टि को समझने का प्रयत्न करना और उस पक्ष की दृष्टि का खण्डन करने का आग्रह रखने के बदले इस बात का पता लगाने की कोशिश करना कि किस दृष्टि से उसका कहना सच हो सकता है। इस तरह समन्वय की व्यापक दृष्टि से सत्यशोधन मे इस वृत्ति का होना जरूरी है। यही सम्यग्दर्शन है। इसी से विश्वराज्य होगा।

साथ ही स्यादवाद का अर्थ यह ही नही कि मनुष्य किसी भी विषय पर किसी प्रकार का कोई निश्चय ही न करे, वल्कि उसका अर्थ यह है कि किसी मर्यादित सिद्धान्त को अमर्यादित समझने की भूल न की जाय। बहुत से विचारक और आचारक मर्यादा का अतिरेक करते हैं, या उसको अस्वीकार। फलस्वरूप परस्पर सघर्ष और मतभेद पैदा होते हैं।

भ० महावीर ने अनेकान्त का उपदेश दे कर ससार को समता के पथ पर ...स किया।



महावीर-निर्वाण के बाद अहिंसा-प्रचार

श्री अगरचन्द नाहटा



जैनधर्म अहिंसा-प्रधान है। भगवान् महावीर ने सब प्राणियो को अपने समान मानते हुए कहा किसी को भी कष्ट नही दिया जाय, मारा नही जाय, क्योकि सभी प्राणी जीना चाहते हैं, सुख चाहते हैं, इस बात को विशेषरूप से प्रचारित किया। अत. भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण-महोत्सव के उपलक्ष्य मे जैन समाज और भारत सरकार का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि बढ़ती हुई हिंसा को रोका जाय और अहिंसा का अधिकाधिक प्रचार किया जाय, सारे विश्व मे निर्वाण-महोत्सव के वर्ष को अहिंसा-वर्ष या 'प्राणि-हत्या-निषेध—वर्ष' घोषित करवाया जाय, जिससे विश्व के लोगो को यह मालूम हो कि भगवान् महावीर का मुख्य सिद्धान्त या उपदेश अहिंसा था। अतः यथाशक्य सब अहिंसाप्रेमी मानव इस ओर प्रयत्नशील हो।

महात्मा गान्धी के समय मे अहिंसा का विश्वव्यापी प्रभाव बना था, सारे विश्व के लोग अहिंसा से स्वराज्य—प्राप्ति असम्भव मानते थे, उसे महात्मा गान्धी जैसे युग-पुरुष ने अपने जीवन मे ही सम्भव कर दिखाया। हिंसात्मक बडी शक्ति के सामने उन्होने अहिंसा और सत्य का जो आदर्श रखा और सफलता प्राप्त की, वह विश्व के इतिहास मे—अद्भुत है। इससे अहिंसा का एक सुन्दर वातावरण बना था। यदि वह कायम रहता और उसे अधिक महत्व दे कर सुन्दर बनाया जाता तो भारत का बहुत अधिक गौरव बढता, पर खेद है, गान्धीजी की भावना, स्वराज्य—प्राप्ति के बाद, उनके ही अनुयायियो मे बनी नही रह सकी। भारतीय जनता बहुत जल्दी अहिंसा के चमत्कार और आदर्श को भूल गई। भारत सरकार ने भी हिंसा को बहुत बढावा दिया। मासाहार का प्रचार दिनो-दिन बढता जा रहा है, बडे-बडे यान्त्रिक कारखाने हजारो-लाखो प्राणियो की हत्या के लिये खोले जा रहे हैं, मछली और अडो की उत्पादनवृद्धि के लिये लाखो रुपये खर्च किये जा रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है

कि पाश्चात्य देशो मे शाकाहार का प्रचार बढता जा रहा है और भारत मे मासाहार का, जिससे जैनी भी नही बचे रह सके।

भगवान् महावीर के समय मे यज्ञो मे पशुबलि और मासाहार का काफी प्रचार था। परन्तु जैनधर्म और बौद्धधर्म के प्रचार एव प्रभाव से यज्ञ तो बद हो गये, पर देवी-देवताओ के आगे पशुबलि अब तक भी चालू है। जैनाचार्यों ने एक बहुत बडा काम यह किया कि लाखो मासाहारियो और शिकारियो को उपदेश दे कर जैन बना दिया। इससे करोडो प्राणियो को अभयदान मिला, जो जैनी नही भी बनें, वे भी अहिंसा-प्रेमी बन गये। मासाहार एव पशुबलि और शिकार को लाखो जैनेतर व्यक्तियो ने ही सदा के लिये छोड दिया। इस कार्य मे—वैष्णवधर्म के प्रचार का भी काफी हाथ है, वैष्णवभक्त भी हिंसा का निषेध करते हैं। भगवान् बुद्ध ने तो एक थोडी-सी छूट दे दी कि बौद्ध अपने लिये मारे हुए प्राणियो का मास नही लेते। स्वय प्राणिवध नही करते, पर मासाहारी लोग जो मास का भोजन अपने लिये तैयार करते उसे वे ले लेते हैं। इसलिये बौद्धभिक्षु मासाहार का निषेध नही कर पाए। और विदेशो मे जहाँ-जहाँ बौद्धधर्म का प्रचार हुआ, वहाँ मासाहार जिस रूप मे प्रचलित था, चलता ही रहा। जैनो और वैष्णवो ने मासाहार-निषेध का प्रचार बहुत अच्छे रूप मे किया, फलत राजस्थान, गुजरात आदि कई प्रदेशो मे तो अहिंसा जन-जीवन मे प्रतिष्ठित हो गई। मुसलमानो और निम्नजातियो मे मासाहार चालू रहा।

जैनाचार्यों का हिन्दू-शासको पर ही नही, मुसलमान बादशाहो पर भी अच्छा प्रभाव रहा। क्योकि विद्वत्ता और प्रचार दोनो बातो मे वे बहुत श्रेष्ठ थे। सम्राट् अकबर जैसे ने तो अपने समस्त राज्य मे करीब ६ महीने की अमारि उद्घोषणा करवा दी थी, उसने इसके लिए कई फरमान भेज कर अपने अधीन प्रान्तो मे प्रचारित किया कि अमुक-अमुक दिन कोई भी जीवहिंसा नही करें। खभात की खाडी व समुद्र आदि की मछलियो को भी पकडने का निषेध किया गया। यह जैनाचार्यों के महान् प्रभाव का ही सुपरिणाम था। सन्त-सप्रदायो पर भी जैनधर्म की अहिंसा का बहुत प्रभाव रहा है, यह उन सप्रदाय के साहित्य से और प्रचारित नियमो से भली-भाँति स्पष्ट है। जैनाचार्यों ने सप्त कुव्यसन के निषेध पर बहुत बल दिया, जिसमे मास-मदिरा, शिकार, जुआ, पर-स्त्री-गमन, वैश्यागमन और चोरी को कुव्यसन बतलाते हुए जैनमात्र को तो इन कुव्यसनो से दूर रहने का उपदेश दिया गया। इससे जैनाचार की बहुत अधिक प्रतिष्ठा बढी। सर्वसाधारण से जैनगृहस्थो का आचार बहुत ऊँचा था, तो मुनियो की तो बात ही क्या? भगवान् महावीर और उनके अनुयायी जैनसाधु-साध्वियो ने अहिंसा को जिस रूप मे अपनाया और प्रचार किया, वह सारे विश्व के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। उस गौरव को बनाये रखना, बहुत ही जरूरी है।

मानवहृदय मे सद्-भावनाओ का स्रोत निरन्तर प्रवाहित रहता है। आवश्यकता है, उस ओर ध्यान दे कर सुप्त शक्तियो को जागृत करने की। यदि ठीक से

प्रभावशाली व्यक्ति समझावें तो हृदयपरिवर्तन होने मे देर नही लगती, घोर पापी और हिंसक भी धर्मात्मा और अहिंसक वन सकते हैं। सदा से महापुरुषो ने यही काम किया है और उसका परिणाम भी वहुत अच्छा रहा। कोई कारण नही कि सत्प्रयत्न निष्फल हो। इस युग मे भी हमारे सामने ऐसे अनेक दृष्टात हैं, जिनमे से कुछ की चर्चा यहाँ पर कर देना आवश्यक समझता हूँ।

महामना विनोवा भावे और जयप्रकाशजी के प्रयत्न से मध्यप्रदेश के अनेक कुख्यात डाकुओ ने आत्म-समर्पण करते हुए सात्विक जीवन विताने का निर्णय किया और वैसा ही वे कर भी रहे हैं, इधर समीरमुनिजी के उपदेश से हजारो खटीको ने जैनधर्म को अपना लिया, जिनके घरो मे निरन्तर पशुहत्या होती और मांस पकता व विकता था, वे आज पूरे शाकाहारी वन गये हैं। आचार्य नानालालजी के उपदेश से वलाईजाति वालो ने हजारो की सख्या मे अहिंसा धर्म अपना लिया है, गुजरात के वोडेली क्षेत्र मे हजारो क्षत्रिय परमारो ने मास-भक्षण और शिकार आदि छोड कर अहिंसाधर्म को अपनाया है। आचार्य तुलसी आदि के उपदेश से हजारों व्यक्ति आज भी दुर्व्यसनो से मुक्त हो रहे हैं, हरिजन आदि वहुत से लोग सात्विक संस्कारो से प्रभावित हो रहे हैं। मुनि जनकविजयजी पंजाव-हरियाणा मे मद्यमासनिषेध का वडा अच्छा काम कर रहे हैं, अव भी वहुत से व्यक्ति अहिंसाधर्म को अपनाने के लिये तैयार-से हैं, त्यागी मुनियो के उपदेश की अपेक्षा है।

कुछ वर्ष पहले वम्वई मे चित्रभानुजी ने वहाँ के नगरपालिका के अध्यक्ष और सदस्यो को प्रभावित करके वर्ष मे कुछ दिन पशु-हत्या वन्द करवा दी थी, मध्यकाल मे जैनो के प्रयत्न से कई राज्यो और नगरो मे 'अगतो' का पालन किया जाता था। उन दिनो पशु-हत्या तो दूर, लोहार आदि भट्टिया भी नही जलाते थे। पर्युषण आदि मे तो १० दिन तक पशुहत्या वहुत से स्थानो मे वन्द थी। आज भी प्रयत्न किया जाय तो अनेक राज्यो मे वर्षभर मे २०-३० दिन कसाई-वाडे वन्द करवाये जा सकते हैं, क्योंकि अनेक राज्यो के नेता, मन्त्री और सदस्य इसके समर्थक मिल जायेंगे। लाखो हिन्दू भी इस पवित्र कार्य मे साथ देंगे, वहुत से मुसलमानो का सहयोग मिल सकता है, क्योंकि उन सव के हृदय मे 'पशु-पक्षी-हत्या महान् पाप है' यह सस्कार तो वना हुआ ही है। वम्वई से प्रकाशित 'जिन सदेश' मे एक सिन्धी की आत्मकथा छपी थी, उसमे जो वहुत वडा मासाहारी था और मास वेचता था, वह जैन मुनियो के उपदेश से कैसे पक्का जैन वन गया, इसका प्रसग छपा था, भारत के कई प्रान्तो मे इन सिन्धियो के कारण पशुहत्या और मासाहार वढ़ा है। यदि जैन मुनि मासाहारी व्यक्तियों के घर-घर मे घूमे तो हजारो लाखो व्यक्ति अवश्य ही मासाहार छोड देंगे, इससे लाखों प्राणियो को सहज ही अभय दान मिलेगा।

शिकार के दुर्व्यसन से भी प्रतिवर्ष लाखो पशु-पक्षी मारे जाते हैं। कई पशु-

पक्षियो की तो जातिया ही समाप्त हो रही है। अत. वन-सरक्षक-विभाग उन पशु-पक्षियों की हिंसा नही की जाय, इस तरह का प्रचार कर रहा है।

अभी-अभी 'प्रबुद्धजीवन, मे इलेस्ट्रेटेड वीकली से—एक समाचार खुशवर्शासिह ने उद्धृत किया है कि गुजरात के मुख्यप्रधान चिमन भाई पटेल से उनके मित्र मिले, और मुख्यमन्त्री से कहा कि भगवान् महावीर का २५००वां निर्वाण-महोत्सव आ रहा है। इस उपलक्ष्य मे आप गुजरात सरकार से सन् १९७४ का वर्ष 'अहिंसावर्ष, के रूप मे घोषित करें, बहुत से व्यक्ति जो बन्दूको आदि से पशु-पक्षियो का शिकार करते हैं, उन पर तो प्रतिबन्ध लगा दिया जाय, रेस्टोरो मे शिकार की बानगी के रूप मे तीतर-हिरन आदि का मास परोसा जाता है, उस पर भी प्रतिबन्ध लगाया जाय। गुजराती लोग बहुत बडे अश मे निर्मासाहारी ही हैं। जैनधर्म का वहाँ पर काफी प्रभाव है। गान्धीजी भी वही के थे। अत हिंसा-निवारण के सम्बन्ध मे गुजरात सरकार पहल करें। उसका अनुकरण अन्य राज्य भी करेंगे, अपने मित्र की इस शुभ-प्रेरणा से उन्होंने अपने साथियो से परामर्श करके १९७४ के वर्ष मे शिकार पर प्रतिबन्ध की योजना स्वीकृत की है, एक व्यक्ति की थोडी-सी प्रेरणा से यह काफी अच्छा काम हो गया, पशुबलि तो वहाँ बन्द हो ही गई है। हमारे आचार्यों, मुनियो और प्रभावशाली श्रावको को अपने सम्पर्क और प्रभाव का उपयोग करके सब प्रान्तो और व्यक्तियो से पशु-पक्षी-हत्या पर प्रतिबन्ध लगवा देना चाहिये और १९७४ का वर्ष विश्वभर मे 'अहिंसा वर्ष' के रूप मे मान्य करवाने का प्रयत्न करें। कुछ स्थानो मे सम्भव है इस कार्य मे पूरी सफलता नही मिलेगी। पर जितनी भी मिल सके, उसके लिये तो पूरा प्रयत्न होना ही चाहिये। अभी से सारा जैनसघ इस कार्य मे पूरी शक्ति लगाये, तो अवश्य ही महावीर को यह सच्ची श्रद्धाजलि अर्पित होगी। इससे करोडो प्राणियो की रक्षा होगी। लाखो व्यक्ति मांस-मदिरा आदि छोड कर आत्म-कल्याण के भागी बनेंगे।





मृत्युजयी महावीर का
निर्वाण के सन्दर्भ में सन्देश

सुरेश 'सरल' जबलपुर



तुम्हारे कलुषित कार्यकलाप, करायेगे जब तुम्हें विलाप।
तुम्हारे मन के सारे पुण्य, न भरमा पायेंगे सन्ताप ॥

तुम्हारे मधुर-मधुर व्यवहार
तुम्हारे वचनो का व्यापार
धरा रह जायेगा उस रोज
मृत्यु का जब होगा आहार।

तुम्हारे गोपनीय वे काम
तुम्हारे बहुचर्चित श्री नाम
एक दिन उध्दृत होगे सहज
किसी के नाम, किसी के काम।

तुम्हारी दुनियाँ के सब लोग
दीन या भोग रहे जो भोग
सभी को एक धार वहना
तटो का त्याग हृदय से लोभ।

तुम्हारे रिश्तो के सव नाप
अरे नप जावेंगे चुपचाप
न होगा कोई किसी का मीत
समझ जायेगा सब जग आप।

दैहिक बन ठन मे तल्लीन, तुम्हे क्या देगी दुनिया दीन।
तुम्हे होगा तब प्राणाधार एक पल प्रभु-वन्दन मे लीन ॥




वीरायतन
चतुर्थ खण्ड
श्री अमर भारती भगवान महावीर निर्वाण विशेषांक

मे, प्राचीन मौलिक संस्कृति की भावना को ध्यान मे रखते हुए युगानुसारी चिन्तन के आलोक मे, जीवन के समस्त पहलुओ का स्पर्श करने वाली विचारपद्धति के आधार पर वीरायतन का कार्य होगा।

लगभग आठ-दस वर्ष से निर्वाण-महोत्सव के सम्वन्ध मे चर्चा चल रही थी। समितियो के निर्माण की चहल-पहल भी हो रही थी, पर कुछ हुआ नही था। ऐसे समय मे **वीरायतन योजना**, जो जन-कल्याणी महत्वपूर्ण योजना है, एतदर्थं सर्वप्रथम स्पष्ट रूप-रेखा के साथ जनता के समक्ष आई है। यह अपने आप मे एक सर्वांगीण स्थायी रचनात्मक योजना हैं। यही कारण है कि जैन तथा जैनेतर जनता मे इसे आदर, आकर्षण तथा सहयोग मिला है, मिल रहा है।

वीरायतन का उद्देश्य

आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और जागतिक विकास, अभ्युदय एव निःश्रेयस के लिए सर्वतोमुखी प्रयत्न।

आध्यात्मिक विकास

- सभी धर्म-परम्पराओ का समन्वयात्मक शैली से उच्च स्तरीय अध्ययन।
- प्राचीन योग और आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोज के आधार पर ध्यान और समाधि के प्रभावकारी प्रयोग।
- मनोविश्लेषण के आधार पर अन्तर्वृत्तियो का सशोधन।
- आध्यात्मिक एव सास्कृतिक जीवन के विकास हेतु प्रभावशाली योग्य प्रचारक, शिक्षक एव साधको के लिए ट्रेनिंग कालेज।
- व्रत, नियम, तप, उपासना एव योग-साधना के लिए अद्यतन-साधन-सम्पन्न एक विराट् साधनाकेन्द्र।

सामाजिक विकास ·

- प्राकृत, सस्कृत एव अपभ्रंश आदि भाषाओ के महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथो अद्यतन पद्धति से अनुसधान, सपादन, सशोधन तथा प्रकाशन।
- सर्वसाधारण जनता के हितार्थ सरल सुवोध नैतिक एव सास्कृतिक साहित्य तथा चिकित्सा-केन्द्रो का निर्माण।
- केन्द्रीय स्तर का विशाल ज्ञान-मन्दिर, ग्रन्थालय।
- भारत की सास्कृतिक जीवनधारा के अनुकूल वालक-वालिकाओ को सस्कारी शिक्षण देने के लिए छात्रावास एवं आदर्श विद्याकेन्द्रो की उपयुक्त व्यवस्था, जहाँ वालक-वालिकाएँ प्रारम्भ से ही निर्मल एव मुक्त वातावरण मे जीवनोपयोगी शिक्षा के साथ उच्च सस्कार प्राप्त कर सकें।

- भ्रष्टाचार, दुर्व्यसन, माँस-मद्य, पशुबलि तथा अन्धविश्वास आदि का धार्मिक, सामाजिक एव राजकीय स्तर पर निराकरण।
- जैन-अजैन परम्पराओ मे परस्पर सौहार्द, प्रेम, सद्भाव एवं सहयोग-भावना का प्रसार।
- साधुओ एवं साध्वियो को अतीत के साथ वर्तमान तथा भविष्य को भलीभाति स्पर्श करने वाले शिक्षण और प्रशिक्षण देने की योग्य व्यवस्था।
- धर्म तथा समाज के अपेक्षानुकूल एक ऐसे प्रभावशाली प्रशिक्षणप्राप्त त्यागीवर्ग का गठन, जो साधु और गृहस्थ के बीच की महत्वपूर्ण कडी बन सके और जो स्वय के जीवन मे धार्मिक विचार एव आचार का विकास करने के साथ-साथ यत्रतत्र देश-विदेश मे भी धार्मिक तथा नैतिक आदर्शों का प्रभावोत्पादक प्रचार करने मे सक्षम हो।
- प्रशासन, शिक्षण तथा व्यापार आदि क्षेत्रो से अवकाशप्राप्त (रिटायर्ड) लोगो के लिये एक ऐसे सेवा-साधना-केन्द्र का निर्माण, जहाँ निवृत्त जीवनसम्बन्धी उचित शान्तिलाभ के साथ, वे समाज को भी अपने परिपक्व ज्ञान एव अनुभव का न्यायोचित लाभ दे सके।
- सर्वसाधारण जनता को स्वाश्रयी जीवन-यात्रा के लिये समयानुकूल शिल्प एव कला आदि का प्रशिक्षण।

राष्ट्रीय विकास :

- प्रान्तीयता, जातीयता एव साम्प्रदायिकता आदि से सम्बन्धित सकीर्णता एव उत्तेजना के विरुद्ध आध्यात्मिक तथा नैतिक स्तर का विवेकपूर्ण शान्ति-अभियान।
- समग्रराष्ट्र मे भावनात्मक एकता के लिये अखण्ड सास्कृतिक मूल्यो की प्रस्थापना।
- राष्ट्र के मध्य एव निम्नवर्ग मे व्याप्त प्रभाव, गरीबी और बेकारी के निरसन हेतु रचनात्मक प्रयत्न।
- कारागार (जेल) तथा प्राणदण्ड आदि से सम्बन्धित जघन्य अपराधो की मनोवृत्ति को बदलने का प्रयास।

जागतिक विकास :

- विश्वहित की दृष्टि से किए जाने वाले वैज्ञानिक, सामाजिक एवं सास्कृतिक आदि अनुसन्धानो के प्रचार-प्रसार मे सक्रिय सहयोग।
- लोकतन्त्र के व्यापक अर्थ मे स्वतन्त्रता एवं सुरक्षा के लिये जन-भावना का निर्माण।
- युद्ध तथा अनियन्त्रित शस्त्रनिर्माण आदि जनसहारक प्रवृत्तियो पर योग्य

वीरायतन :
एक परिचय

पं० विजयमुनि शास्त्री, राजगृह



वीरायतन का स्वरूप

'वीर' और 'आयतन'—इन दो शब्दो से वीरायतन एक शब्द बना है। इसमे 'वीर', भगवान् महावीर का नाम है और शब्दकोश (प्राचीन आगम-साहित्य मे 'सिद्धायतन' भी ऐसा ही एक शब्द-प्रयोग है) की दृष्टि से आयतन का अभिधा-जन्य अर्थ है—पवित्र स्थान। मिल कर अर्थ हुआ—भगवान् महावीर का पवित्र स्थान, उनकी पुण्यभूमि। वीरायतन का अन्तर्निहित लाक्षणिक अर्थ है—निर्वाण शताब्दी के अवसर पर भगवान् महावीर की पुण्य-स्मृति मे हमारी श्रद्धा का प्रतीकात्मक एक आदर्श ज्योतिकेन्द्र, जो धर्म, सस्कृति, समाज, राष्ट्र एव विश्व की समस्याओ के समाधान मे भगवान् महावीर के जीवनदर्शन की दृष्टि से यथोचित योगदान दे सके। यदि वह बढ़ता जाए, 'यदि' को निकाल दीजिए, विश्वास है बढता ही जाएगा, तो एक दिन वीरायतन का पाडीचेरी, शान्ति-निकेतन, हिन्दू यूनिवर्सिटी, शारदाग्राम आदि की भाँति ही विशिष्ट महत्त्व होगा। वीरायतन निर्वाण-शताब्दी की एक ऐसी चिर-स्मरणीय ऐतिहासिक उपलब्धि होगी, जो भविष्य की अनेक शताब्दियो तक जन-जीवन को ज्योतिर्मय बना सकेगी और वीरशासन का गौरव जन-जन के मन मे निष्ठा के साथ प्रतिष्ठित कर सकेगी।

विज्ञान की नई स्थापनाओ की छाया मे प्राचीन गौरवमयी अनेक धारणाएँ धूमिल होती जा रही हैं। पुरातन-परम्पराओ का मूल्य गिर रहा है। निर्माणकारी नवीन परम्पराओं का निर्माण नही हो रहा है। अहिंसक समाजरचना के परिवेश

मे, प्राचीन मौलिक संस्कृति की भावना को ध्यान मे रखते हुए युगानुसारी चिन्तन के आलोक मे, जीवन के समस्त पहलुओ को स्पर्श करने वाली विचारपद्धति के आधार पर वीरायतन का कार्य होगा।

लगभग आठ-दस वर्ष से निर्वाण-महोत्सव के सम्बन्ध मे चर्चा चल रही थी। समितियो के निर्माण की चहल-पहल भी हो रही थी, पर कुछ हुआ नही था। ऐसे समय मे **वीरायतन योजना**, जो जन-कल्याणी महत्वपूर्ण योजना है, एतदर्थ सर्वप्रथम स्पष्ट रूप-रेखा के साथ जनता के समक्ष आई है। यह अपने आप मे एक सर्वांगीण स्थायी रचनात्मक योजना है। यही कारण है कि जैन तथा जैनेतर जनता मे इसे आदर, आकर्षण तथा सहयोग मिला है, मिल रहा है।

वीरायतन का उद्देश्य

आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और जागतिक विकास, अभ्युदय एव नि.श्रेयस के लिए सर्वतोमुखी प्रयत्न।

आध्यात्मिक विकास

- सभी धर्म-परम्पराओ का समन्वयात्मक शैली से उच्च स्तरीय अध्ययन।
- प्राचीन योग और आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोज के आधार पर ध्यान और समाधि के प्रभावकारी प्रयोग।
- मनोविश्लेषण के आधार पर अन्तर्वृत्तियो का संशोधन।
- आध्यात्मिक एव सांस्कृतिक जीवन के विकास हेतु प्रभावशाली योग्य प्रचारक, शिक्षक एव साधको के लिए ट्रेनिंग कालेज।
- व्रत, नियम, तप, उपासना एव योग-साधना के लिए अद्यतन-साधन-सम्पन्न एक विराट् साधनाकेन्द्र।

सामाजिक विकास ·

- प्राकृत, सस्कृत एव अपभ्रंश आदि भाषाओ के महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रथो अद्यतन पद्धति से अनुसधान, सपादन, सशोधन तथा प्रकाशन।
- सर्वसाधारण जनता के हितार्थ सरल सुबोध नैतिक एव सास्कृतिक साहित्य तथा चिकित्सा-केन्द्रो का निर्माण।
- केन्द्रीय स्तर का विशाल ज्ञान-मन्दिर, ग्रन्थालय।
- भारत की सास्कृतिक जीवनधारा के अनुकूल बालक-बालिकाओ को संस्कारी शिक्षण देने के लिए छात्रावास एवं आदर्श विद्याकेन्द्रो की उपयुक्त व्यवस्था, जहाँ बालक-बालिकाएँ प्रारम्भ से ही निर्मल एवं मुक्त वातावरण मे जीवनोपयोगी शिक्षा के साथ उच्च सस्कार प्राप्त कर सकें।

- भ्रष्टाचार, दुर्व्यसन, मांस-मद्य, पशुबलि तथा अन्धविश्वास आदि का धार्मिक, सामाजिक एव राजकीय स्तर पर निराकरण।
- जैन-अजैन परम्पराओ मे परस्पर सौहार्द, प्रेम, सद्भाव एवं सहयोग-भावना का प्रसार।
- साधुओ एवं साध्वियो को अतीत के साथ वर्तमान तथा भविष्य को भली-भाति स्पर्श करने वाले शिक्षण और प्रशिक्षण देने की योग्य व्यवस्था।
- धर्म तथा समाज के अपेक्षानुकूल एक ऐसे प्रभावशाली प्रशिक्षणप्राप्त त्यागीवर्ग का गठन, जो साधु और गृहस्थ के बीच की महत्वपूर्ण कडी बन सके और जो स्वय के जीवन मे धार्मिक विचार एव आचार का विकास करने के साथ-साथ यत्रतत्र देश-विदेश मे भी धार्मिक तथा नैतिक आदर्शों का प्रभावोत्पादक प्रचार करने मे सक्षम हो।
- प्रशासन, शिक्षण तथा व्यापार आदि क्षेत्रो से अवकाशप्राप्त (रिटायर्ड) लोगो के लिये एक ऐसे सेवा-साधना-केन्द्र का निर्माण, जहाँ निवृत्त जीवनसम्बन्धी उचित शान्तिलाभ के साथ, वे समाज को भी अपने परिपक्व ज्ञान एव अनुभव का न्यायोचित लाभ दे सके।
- सर्वसाधारण जनता को स्वाश्रयी जीवन-यात्रा के लिये समयानुकूल शिल्प एव कला आदि का प्रशिक्षण।

राष्ट्रीय विकास :

- प्रान्तीयता, जातीयता एव साम्प्रदायिकता आदि से सम्बन्धित सकीर्णता एव उत्तेजना के विरुद्ध आध्यात्मिक तथा नैतिक स्तर का विवेकपूर्ण शान्ति-अभियान।
- समग्रराष्ट्र मे भावनात्मक एकता के लिये अखण्ड सास्कृतिक मूल्यो की प्रस्थापना।
- राष्ट्र के मध्य एव निम्नवर्ग मे व्याप्त प्रभाव, गरीबी और बेकारी के निरसन हेतु रचनात्मक प्रयत्न।
- कारागार (जेल) तथा प्राणदण्ड आदि से सम्बन्धित जघन्य अपराधो की मनोवृत्ति को बदलने का प्रयास।

जागतिक विकास :

- विश्वहित की दृष्टि से किए जाने वाले वैज्ञानिक, सामाजिक एव सास्कृतिक आदि अनुसन्धानो के प्रचार-प्रसार मे सक्रिय सहयोग।
- लोकतन्त्र के व्यापक अर्थ मे स्वतन्त्रता एवं सुरक्षा के लिये जन-भावना का निर्माण।
- युद्ध तथा अनियन्त्रित शस्त्रनिर्माण आदि जनसहारक प्रवृत्तियो पर योग्य

प्रतिबन्ध के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के सक्रिय प्रयत्न तथा प्रसंगवश ऐसा ही अन्य भी कुछ !

वीरायतन की २१ कार्यधाराएँ :

वीरायतन की सभावित मुख्य २१ कार्य-धाराएँ हैं। चिन्तन चल रहा है। स्वप्न लम्बे देखे जा रहे हैं। समाज मे यदि कोई नया विभ्रम न खडा हुआ और मुक्त सहयोग मिलता रहा, तो बहुत कुछ करने के सकल्प हैं।

(१) प्राथमिक पाठशाला
(२) स्कूल लडको के लिए
(३) स्कूल लडकियो के लिए
(४) कॉलिज लडको के लिये
(५) कॉलिज लडकियो के लिये
(६) छात्रावास लडको के लिये
(७) छात्रावास लडकियो के लिये
(८) प्राकृत यूनिवर्सिटी
(९) साधना-केन्द्र
(१०) स्वाध्याय-मन्दिर (पुस्तकालय)
(११) आगम-प्रकाशन
(१२) जीवनोपयोगी सुगमसाहित्य प्रकाशन-केन्द्र
(१३) शोध-संस्थान
(१४) आगम-मन्दिर
(१५) पुरातत्व-सग्रहालय
(१६) निवृत्ति-आश्रम
(१७) धर्मपरम्पराओ का तुलनात्मक अध्ययन
(१८) गोसदन (मूक प्राणिरक्षा केन्द्र)
(१९) उद्योगकेन्द्र
(२०) कलाकेन्द्र
(२१) चिकित्सालय (हॉस्पिटल)

कार्य-विस्तार के साथ सस्था को और भी विकसित किया जा सकेगा। उपरि-निर्दिष्ट कार्यक्रम मे समयानुसार उचित सशोधन भी संभव है।

स्कूल, कॉलिज या छात्रावास आदि अब तक के घिसे-पिटे पुराने संस्करण नही होंगे, अपितु पुराने और नये के सगम पर कुछ नया ही सृजनात्मक रूप लेंगे। वर्तमान शिक्षणपद्धति के दोषो से बच कर एक सचेतन सास्कृतिक चेतना जगाना ही उक्त शिक्षणसस्थाओ का मूल उद्देश्य होगा। इसके लिये समय पर देश के मूर्द्धन्य शिक्षा-शास्त्रियों से सम्पर्क साधा जाएगा।

कार्य-संचालन पद्धति की रूपरेखा :

कार्य-संचालन के सम्बन्ध मे काफी गहराई से सोचा जा रहा है। क्या करना है, यह तो निश्चित हो गया है, परन्तु कैसे करना है, यह अभी विचारमथन की स्थिति मे है। हम चाहते हैं, वह केवल आदर्श-मात्र ही न रहे, अपितु ठोस व्यावहारिक रूप ले। काट-छाट हो रही है। फिर भी ऐसा कुछ निश्चित हो रहा है कि एक केन्द्रीय सघ होगा, जिसमे भारत के विभिन्न स्थानो के प्रमुख व्यक्ति होगे। सस्था के सविधान के अनुसार यह सघ कार्य-सचालन करेगा। वीरायतन के अन्तरग स्थिति एव कार्य-नीति निश्चित करने का दायित्व भी इसी सघ का होगा। सस्थाओ पर नियन्त्रण, निरीक्षण और अन्तिम निर्देशन एव आर्थिक प्रबन्ध आदि केन्द्रीय संघ के अधीन होंगे। सुविधानुसार स्वतन्त्र तदर्थ कार्यवाहक समितियाँ भी कार्य करेंगी।

वीरायतन का केन्द्र · राजगृह में

वीरायतन के लिए स्थान भगवान् महावीर से सर्वाधिक सम्बन्धित पुरातन मगध और आज के बिहारप्रदेश मे स्थित 'राजगृह' को चुना है। राजगृह भगवान् महावीर की तपोभूमि, साधनाभूमि और धर्मप्रचारकभूमि है। श्री इन्द्रभूमि गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी, अन्य सभी गणधर, अतिमुक्तकुमार, शालिभद्र, धन्ना, स्कन्दक अनेक साधको की यह निर्वाणभूमि हैं।

ऐतिहासिक, भौगोलिक, सास्कृतिक, धार्मिक एव आध्यात्मिक कई दृष्टियो से राजगृह को वीरायतन के लिए उपयुक्त समझा गया है। वही इसका प्रमुख स्थान रहेगा।



वीरायतन की भूमि का दृश्य

प्रतिबन्ध के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के सक्रिय प्रयत्न तथा प्रसंगवश ऐसा ही अन्य भी कुछ !

वीरायतन की २१ कार्यधाराएँ

वीरायतन की संभावित मुख्य २१ कार्य-धाराएँ हैं। चिन्तन चल रहा है। स्वप्न लम्बे देखे जा रहे हैं। समाज मे यदि कोई नया विभ्रम न खडा हुआ और मुक्त सहयोग मिलता रहा, तो बहुत कुछ करने के सकल्प हैं।

(१) प्राथमिक पाठशाला
(२) स्कूल लडको के लिए
(३) स्कूल लडकियो के लिए
(४) कॉलेज लडको के लिये
(५) कॉलेज लडकियो के लिये
(६) छात्रावास लडको के लिये
(७) छात्रावास लडकियो के लिये
(८) प्राकृत यूनिवर्सिटी
(९) साधना-केन्द्र
(१०) स्वाध्याय-मन्दिर (पुस्तकालय)
(११) आगम-प्रकाशन
(१२) जीवनोपयोगी सुगमसाहित्य प्रकाशन-केन्द्र
(१३) शोध-सस्थान
(१४) आगम-मन्दिर
(१५) पुरातत्व-सग्रहालय
(१६) निवृत्ति-आश्रम
(१७) धर्मपरम्पराओ का तुलनात्मक अध्ययन
(१८) गोसदन (मूक प्राणिरक्षा केन्द्र)
(१९) उद्योगकेन्द्र
(२०) कलाकेन्द्र
(२१) चिकित्सालय (हॉस्पिटल)

कार्य-विस्तार के साथ सस्था को और भी विकसित किया जा सकेगा। उपरिनिर्दिष्ट कार्यक्रम मे समयानुसार उचित सशोधन भी संभव है।

स्कूल, कॉलेज या छात्रावास आदि अब तक के घिसे-पिटे पुराने सस्करण नही होगे, अपितु पुराने और नये के सगम पर कुछ नया ही सृजनात्मक रूप लेंगे। वर्तमान शिक्षणपद्धति के दोषो से वच कर एक सचेतन सास्कृतिक चेतना जगाना ही उक्त शिक्षणसस्थाओ का मूल उद्देश्य होगा। इसके लिये समय पर देश के मूर्द्धन्य शिक्षा-शास्त्रियो से सम्पर्क साधा जाएगा।

कार्य-संचालन पद्धति की रूपरेखा :

कार्य-सचालन के सम्बन्ध मे काफी गहराई से सोचा जा रहा है। क्या करना है, यह तो निश्चित हो गया है, परन्तु कैसे करना है, यह अभी विचारमथन की स्थिति मे है। हम चाहते है, वह केवल आदर्श-मात्र ही न रहे, अपितु ठोस व्यावहारिक रूप लें। काट-छाट हो रही है। फिर भी ऐसा कुछ निश्चित हो रहा है कि एक केन्द्रीय सघ होगा, जिसमे भारत के विभिन्न स्थानो के प्रमुख व्यक्ति होगे। सस्था के सविधान के अनुसार यह सघ कार्य-सचालन करेगा। वीरायतन के अन्तरग स्थिति एव कार्य-नीति निश्चित करने का दायित्व भी इसी सघ का होगा। सस्थाओ पर नियन्त्रण, निरीक्षण और अन्तिम निर्देशन एव आर्थिक प्रबन्ध आदि केन्द्रीय संघ के अधीन होगे। सुविधानुसार स्वतन्त्र तदर्थ कार्यवाहक समितियाँ भी कार्य करेंगी।

वीरायतन का केन्द्र राजगृह में

वीरायतन के लिए स्थान भगवान् महावीर से सर्वाधिक सम्बन्धित पुरातन मगध और आज के बिहारप्रदेश मे स्थित 'राजगृह' को चुना है। राजगृह भगवान् महावीर की तपोभूमि, साधनाभूमि और धर्मप्रचारकभूमि है। श्री इन्द्रभूमि गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी, अन्य सभी गणधर, अतिमुक्तकुमार, शालिभद्र, धन्ना, स्कन्दक अनेक साधको की यह निर्वाणभूमि हैं।

ऐतिहासिक, भौगोलिक, सास्कृतिक, धार्मिक एव आध्यात्मिक कई दृष्टियो से राजगृह को वीरायतन के लिए उपयुक्त समझा गया है। वही इसका प्रमुख स्थान रहेगा।



वीरायतन की भूमि का दृश्य



एक भव्य योजना, अभियान एवं आह्वान

—अजित मुनि 'निर्मल' इन्दौर



पानी की कुछ सचित बूँदो से उसकी विराट्ता का मूल्याकन किया जा सकता है। इसी प्रकार योजना की कार्यान्वितिरूप बिन्दुओ से उसकी विराट्ता एव व्यापकता का विहगावलोकन किया जा सकता है; बशर्ते कि उस योजना की प्रक्रिया तथा उसकी ऊर्जा के स्रोत उत्तम हो। इसी तथ्य-सूत्र के सदर्भ मे एक सर्वागीण सर्वक्षेत्रस्पर्शी व्यापक योजना को विराट्रूप देने हेतु हम सबको विचार करना है और निष्ठा के साथ जुटना है।

योजना की व्यापकता एवं कार्यान्विति

भ० महावीर के २५०० वें वार्षिकी पर्व पर समग्र जैन-समाजकीय एवं राजकीय स्तर पर अनेकविध योजनाएँ बनी हैं और उन पर यथाशक्ति रचनात्मक कार्य भी हो रहे हैं। किन्तु ठोस उपलब्धि की ओर अभी तक किसी का ध्यान नही गया है। भव्य योजना वही जो समाज मे आमूलचूल परिवर्तन कर दे, समाज का कायाकल्प कर दे।

राष्ट्रसत श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म० ने विश्व के सभी वर्गों के लिए वटबीज के रूप मे वीरायतन योजना की अमरपीठ का श्रीगणेश किया है। वीरायतन बालिका सघ ने इस योजना को अधिकाधिक प्रचारित-प्रसारित करने मे अब तक भगीरथ पुरुषार्थ किया है, इसके फलस्वरूप वीरायतन-योजना ने बालक, युवक, वृद्ध, बालिका, युवती एव महिला आदि सभी वर्ग के लोगो के हृदय मे स्थान पा लिया है, सबने इसका सम्मान किया है, परन्तु अभी इसे विश्वजनीन रूप देना शेष है, जिसके लिये हम सभी को अपनी-अपनी कर्तव्य-सीमा मे दायित्व लेकर कार्यरत होना पड़ेगा। वैसे तो राजगृही की तीर्थंकरीय भूमि पर साध्वीगण द्वारा वीरायतन-वटवृक्ष का सिंचनकार्य प्रारम्भ हो चुका है, मगर इतने भर से कार्य परिणत नही हो जाता है। अभी तो पथ बनाते चलना है। मार्ग लम्बा है। लक्ष्य पर पहुँच कर ही हमे दम लेना है। तभी वीरायतन का वटबीज विराट्ता मे पल्लवित होगा और उसका लाभ सर्वागीण, सार्वदेशिक एव सार्वजनीन होगा।

अभियानक्रम एवं आह्वान

वैसे तो उपाध्यायजी म० ने अपने व्यापक चिन्तन का नवनीत 'वीरायतन योजना' के रूप मे दिया है और श्री अमरभारती ने इस योजना का प्रारूप आम जनता के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। किन्तु फिलहाल तो इस योजना को मूर्तरूप देने के लिए कुछ साधु-साध्वियां, कुछ श्रावक-श्राविकाएं, वीरायतन बालिका सघ एव श्री अमरभारती व सम्मति ज्ञानपीठ आदि जुटे हुए हैं। अत. मेरी राय मे लक्ष्य तक पहुंचने मे अभियानक्रम प्रथमत इस प्रकार हो—

(१) सम्मतिज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य के अल्पमूल्यीय सस्करणो का वृहद् जत्था जन-जन के हाथो मे पहुंचाने का सकल्प किया जाए।

(२) उपाध्यायश्रीजी के प्रवचनो एव विचारो के विशेष प्रकाशनो का मुद्रण हो, एवं महत्त्वपूर्ण साहित्य का पुनर्मुद्रण हो।

(३) ज्ञानपीठ के माध्यम से लोकभोग्य व सस्कारप्रेरक साहित्यमाला की नयी सिरीज प्रकाशित की जाए।

(४) वीरायतन योजना मे उल्लिखित तमाम सेवाकार्यों का व्यवस्थित ढग से संचालन किया जाए।

इन और ऐसे अभियानो मे सक्रियता लाने के लिये निम्नलिखित वर्गों को खासतौर से हमारा आह्वान है—

(१) स्वपर-कल्याण-साधना के लिये उद्यत साधु-साध्वी लगन के साथ अपना उत्तरदायित्व संभा लें।

(२) अपनी आत्मसाधना के साथ-साथ समाज-कल्याण एव प्रचार-प्रसार के लिये आजीवन समर्पणकर्ता भाई-बहन या व्रतबद्ध जनसेवक-सेविका तैयार हो।

(३) प्रबुद्ध विचारक युवक-युवतियां इसे सफल बनाने मे तन्मयता के साथ जुट पड़ें।

(४) समाज के उदार धर्मप्रेमी भाई-बहन मुक्तहस्त से 'सम्मतिज्ञानपीठ-प्रकाशन कोष' और 'वीरायतन-कोष' मे दान दें।

(५) वीरायतनयोजना की प्रत्येक गतिविधि एव कार्यकलापो की जानकारी देने हेतु प्रबल माध्यम—'श्री अमरभारती' को प्राणप्रण से चिरजीवी रखने हेतु अर्थदातावर्ग को सचेष्ट होना है। वर्तमान मे छपाई एव कागजो की भीषण महगाई एव दुर्लभता कही हमारे उपर्युक्त शुभ अभियान मे बाधक न बन जाए।

आशा है, इस धर्म-सस्कारमय जीवननिर्माणयज्ञ मे अपनी पूर्णत· आहुति दे कर इस योजना के प्रत्येक अग को सुदृढ़ बनाएं। इस धर्मकार्य मे अपनी अपेक्षित सहयोग-सेवाएँ तत्परता के साथ दे कर भगवान् महावीर के प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय दें। तभी सबके जीवन का वैचारिक आचारिक दृष्टि से सुन्दर निर्माण होगा, इसके माध्यम से।

—.०.—

निर्वाण की स्थायी स्मृति में ऐतिहासिक चरण:



वीरायतन

—कु० सुधा जैन एम० ए० बी० एड०
वाराणसी



तीर्थंकर महावीर का निर्वाण २५०० वर्ष पूर्व हुआ था और उसी निर्वाण की स्मृति मे हम लोग प्रतिवर्ष दीपावली-पर्व मनाते हैं। चौदस की रात और अमावस की प्रभात वेला मे ही महावीर के ज्ञान-पुंज का उर्ध्व-गमन हो गया था और उसी स्मृति मे जनता ने ज्ञान-पुंज के स्थान पर दीप-पुंज जलाया था। दीप-पुंज दीपावली पर्व के रूप मे प्रचलित हुआ, जिसे देश के प्रत्येक भाग के व्यक्ति अपने-अपने सम्प्रदाय के देवताओ और नेताओ से सम्बन्धित वतलाने लगे व मनाने लगे। भगवान् महावीर के इसी निर्वाण को—ज्ञान-पुञ्ज को स्थायी रूप देने के लिये ही 'वीरायतन' की स्थापना की गयी है। 'वीरायतन' एक ऐसी सस्था है जो मनुष्य की आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और जागतिक विकास, अभ्युदय तथा नि.श्रेयस की प्राप्ति के उद्देश्य को लेकर वनाई गई है। महावीर का काल इतिहास का एक क्रातिकाल था, उसी तरह 'वीरायतन' भी एक महान् दृष्टि और उच्च आदर्श को लेकर स्थापित किया गया है, जिसमे जाति-पाति, ऊँच-नीच, अमीर-गरीव और साम्प्रदायिकता तथा राष्ट्रीयता वाधक नही है। सभी मानव समानरूप से इस सस्था द्वारा अपना आध्यात्मिक, मानसिक और सांस्कृतिक विकास स्वतन्त्ररूप मे कर सकते हैं।

भगवान् महावीर ने करुणा से भी ऊपर मैत्री को स्थान दिया था, क्योकि करुणा करते समय जिसके प्रति करुणा की जा रही है, उसके प्रति कुछ हीनता की भावना और करुणा करने वाले के मन मे स्वयं के प्रति उन्चता की भावना का



देहली (हरिजन आश्रम) मे गाँधीजी ने कविश्री अमरमुनिजी से ऐतिहासिक भेंट की ।

उदय होता है, किन्तु मैत्री एक ऐसा रिश्ता है; जहां पर दोनो पक्ष मे कही भी उच्चता-हीनता का स्थान नही रहता, वहां कृष्ण-सुदामा दोनो के मन मे एक ही भाव रहता है। वीरायतन का उद्देश्य भी इसी मैत्री-भाव से ओत-प्रोत है।

मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति उसकी बौद्धिक उन्नति पर आधारित है। बौद्धिक उन्नति ज्ञान से सम्बन्धित है और ज्ञान हमे विभिन्न विषयो की पुस्तको और विभिन्न व्यक्तियो के सत्संग से प्राप्त होता है। ज्ञान की उपासना के द्वारा ही मानव अपनी नैतिक और सास्कृतिक उन्नति करता है, सुसस्कृत होता है तथा समाज और देश का कल्याण करता है। इन उद्देश्यो की पूर्ति को ध्यान मे रखते हुए, 'वीरायतन' का निर्माण किया गया है।

जब तीर्थंकर को केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है उसके बाद लोक-कल्याण की भावना से ही तीर्थंकर समवसरण मे उपदेश देते हैं। यही कारण है कि स्व-कल्याणसाधना के साथ-साथ परकल्याण की साधना मे प्रवृत्त होता है। उच्चकोटि का साधक स्व और पर का भेद भूल कर सर्वभूतात्मभूत बन जाता है, तब उसकी दृष्टि से परकल्याण भी स्वकल्याण हो जाता है। इसीलिये महावीर, बुद्ध, राम-कृष्ण परमहस सभी ने आत्म-कल्याण के साथ-साथ पर-कल्याण के लिये देश-विदेश भ्रमण किया और अपने उपदेशो द्वारा जनता को आत्म-कल्याण करने की प्रेरणा प्रदान की। इसी दृष्टि को ध्यान मे रख कर **वीरायतन** मे साधनाकेन्द्र का निर्माण किया है।

देश मे नाना प्रकार के भ्रष्टाचार फैले हैं। पहले तो केवल दूध मे ही पानी की मिलावट की जाती थी, किन्तु अब तो अन्य खाद्य-पदार्थों मे थोडे से पैसो के लिये ऐसी-ऐसी वस्तुओ की मिलावट कर देते हैं, जो कभी-कभी प्राणघातक सिद्ध होती है। कहने को भारत स्वतन्त्र राष्ट्र है किन्तु देश हित का चिन्तन जनता मे नाम-मात्र का ही दिखाई देता है। स्कूल-कॉलिज, विश्व-विद्यालय, नगर-पालिका, न्याय-पालिका आदि सभी जगहो मे राजनीति बिखरी पडी है। सात्त्विकता और नैतिकता को अपनाने वाले निरे सीधे व बेवकूफ हैं। उपरोक्त भावनाओ के पनपने का कारण है सास्कृतिक-शिक्षा का अभाव। शिक्षा मे विज्ञान ने सस्कृति को नगण्य ही नही किया, वरन् उसका एक प्रकार से बहिष्कार ही कर दिया है। देश की उन्नति के लिये मानव मे सास्कृतिक-शिक्षा की विशेष आवश्यकता है और वीरायतन योजना मे इस ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

गाधीजी ने कहा था—पापी से नही, पाप से घृणा करो।' किन्तु आज तो उल्टा हो रहा है। सभी लोग पाप से नही, बल्कि पापी से घृणा करते हैं। कारण बिलकुल स्पष्ट है। प्रत्येक मनुष्य स्वय बहुत अधिक छल-कपट, हिंसा-चोरी आदि करता है केवल उनके करने के तरीको मे अन्तर रहता है और जिसका भेद खुल गया वही पापी, नही तो शेष जीव अपने को पुण्यात्मा ही समझते है और जेल से

छूटे हुए व्यक्ति को ऐसी घृणा की निगाहो से देखते हैं। मानो वह सातवें नरक से हो कर आया हो और उससे दुर्गन्ध आ रही हो। ऐसा सोचते समय मानव का दृष्टिकोण कितना सीमित हो जाता है। कारागार तो एक ऐसा चिकित्सालय है, जिसमे पापी की असामाजिक और अनैतिक आदतो को छुडा कर उसके स्थान पर उसे नैतिक और सामाजिक आदतो का अभ्यासी बनाया जाता है। 'पापी से नही, बल्कि पाप से घृणा करने का स्रोत ही वीरायतन है।

शिल्प व चित्रकला मे भी हमारा देश भारत बहुत आगे बढ़ा हुआ था, जिसका प्रमाण अजन्ता, ऐलोरा, एलीफेण्टा व बादामी की गुफाएँ हैं। वीरायतन मे इन दोनो ही कलाओ के माध्यम द्वारा मनुष्य को स्वावलम्बी बनाने का प्रयास है।

वर्तमान युग मे युवा-वर्ग द्वारा प्रबुद्ध और अवकाशप्राप्त वर्ग कितना उपेक्षित और अवहेलित है। इसका अनुभव प्रत्येक समाज कर रहा है। वीरायतन मे ऐसे अवकाशप्राप्त वर्ग के लिये ध्यान दे कर उन्हे एक सम्माननीय पद देने का निश्चय किया गया है, जोकि निश्चित रूप से वीरायतन का एक सराहनीय और प्रशसनीय कार्य है।

'वीरायतन' अपने इन्ही उद्देश्यो के साथ लोकतत्र के व्यापक अर्थ मे स्वतन्त्रता एव सुरक्षा के लिये जन-भावना का निर्माण कर उसको सदैव सीचता रहे, जिससे वह भावना उत्तरोतर विकसित होती हुई ऊँची होकर अपनी छाया मे सभी देश के लोगो को विश्राम दे सके, यही मेरी शुभकामना है।



वीरायतन-भूमि पर वीरायतन बालिकासघ की बालिकाएँ

——o——



वीरायतन के अरुणोदय से

—खुशालमुनि, राजगृह



मैंने देखा, इक्षुदण्ड मे सिर से पैर तक रस ही रस छलक रहा है। मधुर, अतिमधुर !

मैंने देखा, उडते जुगनू को, अनन्त गगन के अन्धकार मे एक झिलमिलाती प्रकाश ज्योति की रेखा खिंच जाती।

मैंने देखा, एक सरिता को, जो बहती ही जा रही थी, अपनी जलराशि को लिए गन्तव्य लक्ष्य की ओर।

इक्षुदण्ड मे जब-जब गाठ आई, तब-तब नीरस, शुष्क और कडवा। जुगनू ने जब-जब उडना बन्द कर दिया, अन्धकार और अन्धकार !! एक भयावना भयकर वातावरण छा जाता। जल ने ज्यो ही बन्द कर दिया बहना, एक घिनौना, गन्दा तलैया का रूप। मैं जब जीवन पर चिन्तन करता हूँ, लगता है जीवन कितना मगलमय है। जीवन के सारे रूप सामने आ जाते हैं—ज्योतिर्मय। अमृतमय। सुगन्धमय। सगीतमय। किन्तु जीवन के इक्षु मे ये ग्रन्थियाँ कहाँ से आई ? प्रारम्भिक जीवन का रूप चाहे वह जुगनू जैसा लघु क्यो न हो, उसमे प्रकाश है, ज्योति है तो यह अन्धकार कहाँ से छा गया ? जीवन एक उत्स है। वह बहता है, निर्मल और पवित्र है। किन्तु, यह क्या ! वह रुक गया है, बन्द हो गया है। ये सारी विकृत स्थितियाँ कहाँ से पैदा हुई ?

जीवन मूलरूप मे शुद्ध है। उसमे शक्ति है—प्रस्फुटित होने की, किन्तु ज्यो ही वह श्वास लेने लगता है कि आसपास का वातावरण उसे जीने नही देता। उसके चारो ओर अह खडे हो जाते हैं। परिवार और समाज के अह, सभ्यता और सस्कृति के अह, मतो और पथो के अह। यही कारण है कि यह अहता की शुष्कभूमि, घृणा

और द्वेष की ज्वालाएँ जीवनबीज को अंकुरित एवं पल्लवित नही होने देती। इस अहंता, घृणा और द्वेष की विषमता का उपशमन कर हम समत्व और मैत्रीभाव से किस प्रकार रह सकते हैं? कैसे शांति से जीवन यापन कर सकते हैं? इसका उत्तर होगा—धर्म एक ही ऐसा तत्व है, जिसके आधार पर सौहार्द और समभाव, प्रेम और मैत्री के सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

पर हजारो वर्षों से हम देखते है कि जो धर्म-सम्प्रदाएँ हैं, उनमे भी द्वन्द्व, विग्रह और संघर्ष होते आए है। जो संसार की आग बुझाने के लिए ज्ञान का पानी लेकर चले थे, लगता है उनमे भी आग लग गयी है। धर्मगुरु और धार्मिक स्थल आज भी अन्धविश्वासो, घृणा, द्वेष और राजनीति के अखाडे बने हुए हैं। प्रश्न होता है, कौनसा धर्म श्रेष्ठ और सत्य है? क्या जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव, शाक्त, यहूदी, पारसी, ईसाई और मुस्लिम ये ही धर्म हैं? नही, ये सब धर्म नही, अपितु धर्म के शरीर हैं, सम्प्रदाय और पन्थ हैं। पन्थ और सम्प्रदाय धर्मरूपी आत्मा के शरीर हैं, स्वयं धर्म नही। धर्म के पन्थरूपी शरीर भी नये-नये जन्म लेते रहे हैं और पुराने जीर्ण-शीर्ण हो कर काल के प्रवाह मे विलीन होते रहे है। वृक्ष की पुरानी शाखाएँ टूटती रहती हैं और नयी-नयी शाखाएँ फूटती जाती हैं। किन्तु वृक्ष इस परिवर्तन मे भी स्थिर रहता है। शरीर बदलते रहते हैं, आत्मा स्थिर रहती है। सम्प्रदाएँ बदलती रहती हैं, धर्म स्थिर रहता है।

इस विशाल और विराट् विश्व मे, व्यक्ति, जाति समाज और राष्ट्र मे जो द्वन्द्व एवं संघर्ष दृष्टिगोचर हो रहे हैं इन सबका मूल कारण एक दूसरे को तुच्छ, हीन एवं नगण्य समझने की मनोवृत्ति है। जब हम दूसरो के व्यक्तित्व को ऊपर-ऊपर से केवल व्यवहारपक्ष से ही देखते हैं तो ऊँच-नीच का वैविध्य दिखाई देता है, अच्छे बुरे विकल्पो का मायाजाल फैला हुआ प्रतीत होता है, इस स्थिति मे पारस्परिक घृणा और वैर के विषदंश से कैसे बचा जा सकता है? जहाँ एकता और समता का निवास है, वहाँ विषमता, घृणा और वैर पनप नही सकते। यह भेद और वैषम्य तो औपचारिक और आरोपित है; वह शुद्ध सार्वभौम ज्ञानचेतना के शुद्ध परिणमन से दूर किया जा सकता है। जब हम विषमता को मौलिक मानने से इन्कार कर देते हैं, तब विषमता अपने आप मे मर जाती है। महावीर का आध्यात्म-दर्शन इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की शुद्धता और स्वतन्त्रता के मौलिक अधिकार की घोषणा करता है और समस्त चैतन्य-जगत् मे मैत्रीभाव की, समभाव की स्थापना करता है।

जैनदर्शन समभाव और मैत्री का मौलिक दर्शन हैं। अहिंसा जैनदर्शन का प्राण है, किन्तु अहिंसा का दूसरा पहलू है—अनेकान्त और स्याद्वाद। अनेकान्त का अर्थ है—मन की अहिंसा। दूसरे के दृष्टिकोण समझने की भावना एव विचार को अनेकान्तदर्शन कहते हैं। जब अनेकान्त वाणी का रूप लेता है, भाषा का रूप लेता है, तब स्याद्वाद बन जाता है। अनेकान्त विचार है और विचारो की अभिव्यक्ति का माध्यम

है स्याद्वाद । स्याद्वाद का अर्थ है—विभिन्न दृष्टिकोणो का बिना किसी पक्षपात के तटस्थबुद्धि से समन्वय करना । दूसरो के विचारो के प्रति सहिष्णुता और आदर-भावना के बिना अहिंसा पूर्ण हो नही सकती । एकान्तदृष्टि मे सदा आग्रह रहता है । और आग्रह घृणा, द्वेष और द्वन्द्व का केन्द्रबिन्दु है । जैन-धर्म का मूल तत्व है—समदृष्टि या समता । जैनधर्म की साधना मे सामायिक एक मुख्य अग है । समत्व-मूलक जो भी विचार और आचार है, वह सामायिक मे आ जाता है । इस समता के अनेक रूप हैं—आचार की समता अहिंसा बनती है, विचार की समता अनेकान्त बनता है, समाज की समता अपरिग्रह बनता है और भाषा की समता स्याद्वाद बनता है ।

मानव का स्वस्थ एव व्यापक दृष्टिकोण ही उसे सत्य की ओर ले जाता है । व्यष्टि, समष्टि, और परमेष्टि; यह जीवनविकास की क्रमपद्धति है । जैनदर्शन की सत्योन्मुखी अनेकान्तदृष्टि, जैनधर्म का सर्वसहिष्णु अहिंसासिद्धान्त और जैन-परम्परा का चिरागत समन्वयवाद ये तीनो मिल कर एक ही काम करते हैं और वह यह है कि व्यक्ति अपनी क्षुद्रसीमा मे कैद न हो जाए । समष्टि व्यक्ति के विकास-मार्ग मे चट्टान बन कर उसके विकास को अवरुद्ध न करे, अपितु एक दूसरे से समझौता कर दोनो परमेष्टि के रूप मे परिणत हो जाएँ । अस्तु, महावीर निर्वाणशताब्दी हमारे सामने है । अब समय आ गया है कि हम इस शुभकर, सर्वहितकर विशाल दृष्टिकोण का प्रचार-प्रसार करने हेतु व्यक्ति, समाज एव विभिन्न धर्म-सम्प्रदायो मे किस प्रकार प्रेम, मैत्री और समभाव के सूत्र जोडें, जिससे मानवजाति शाति की साँस ले सके । प्रेम, मैत्री और समता के सूत्र जोडने के लिए हम सभी के बीच आज **वीरायतन** सस्थान खडा हो रहा है । उसका आकार-प्रकार दृष्टि के समक्ष आ रहा है ।

क्या, वीरायतन का स्थल ? हाँ, यह है वीरायतन का स्थल, ऐतिहासिक धार्मिक, सास्कृतिक नगर राजगृह मे । प्रकृति के प्रागण मे लहलहाती हरीभरी पर्वत शृखलाओ की गोद मे । झरनो का मधुर कलकल-छलछल निनाद ! लताओ से लिपटे तरुगण, विहगो का नृत्यपूर्ण कलरव ! विपुलाचल और वैभारगिरि आदि पर्वतमालाओ पर विभिन्न धर्मावलम्बियो के गगनचुम्बी धवलमन्दिरो के शिखर ! ये बहारें, ये निखारें—ये सब एक साथ ही वीरायतन का सौन्दर्य बढा रहे हैं । आज भी इन नीरव पर्वतो से, मन्दिरो से, निर्झरो के निनादो से, विहगो के कलरवो से एव इस धर्म-भूमि, साधनाभूमि एव सत्क्रान्ति की तपोभूमि से अतीत की वह महावीरध्वनि गूँज रही है ।

वीरायतन ! कितना महिमामय ! कितना अद्भुत !! काल-प्रवाह मे एक नूतन हलचल ! एक नयी तरग ! इतिहास मे एक नयी क्रान्ति घटित होने का स्वप्न और सम्भावना ! स्वप्न देख रहे थे हम वीरायतन का । हाँ, उस स्वप्न के प्रकाश-

पुञ्ज की प्रथम किरण उतर चुकी है, राजगृही के वैभारगिरी की तलहटी मे। इस पहली किरण मे सबने देखा, स्थूलरूप से वीरायतन को। किन्तु सूक्ष्मरूप अब हम देखेंगे।

अब अपेक्षा है—वीरायतन के उद्‌भावक प्रेरणास्रोतो से, जिनके आधार पर वीरायतन-कल्पवृक्ष का सिंचन होने वाला है, लहलहाने वाला है, वे जीर्ण-शीर्ण पत्तो को झकझोर कर कूडे-कर्कट के बोझिल गट्‌ठर को दूर फेंक कर एक स्वच्छ सुखद समाज का निर्माण करें, ताकि प्रगति का नूतन प्रभात आ सके और अपेक्षा है, उन सहयोगियो से जिन्हे वीरायतन मे तन-मन-धन से सेवा का स्वर्ण अवसर प्राप्त होने वाला है।

आइए, हम सब वीरायतन मे प्रेम, मैत्री और समभाव के दीपो को प्रज्ज्वलित करने के लिए और अभिनव सत्य-क्रान्ति के स्वप्न पूर्ण करने के लिए जुट जाएँ।

"राजगृही के भव्य क्षितिज पर,
एक नया सूरज आया।
वीरायतन की पुण्य भूमिपर
मंगलमय जागरण लाया।"





वीरायतन का स्वप्नद्रष्टा : उपाध्याय अमरमुनि

—रामनारायन जैन, झाँसी



वीरायतन-योजना कविरत्न उपाध्याय श्री अमरमुनिजी द्वारा राजगृह मे आरम्भ की जा चुकी है। कविजी महाराज ने सन् १९६२ मे राजगृह मे चातुर्मास किया था और वहाँ की गुफाओ मे तपस्या भी की थी, जिसके कारण कविजी के मन मे राजगृह मे कुछ करने की प्रेरणा जगी और तभी से इस ओर निरन्तर लगे रहे। आज भी वे सक्रिय हैं। कविजी महाराज की वीरायतन योजना आज साकार रूप ले रही है और योजना की ओर भारत की जनता का ध्यान आकर्षित हुआ है। मुख्यत. जैन समाज का इस योजना की ओर विशेप ध्यान आकर्षित हुआ है।

राजगृह की अपनी विशेपताएँ हैं। राजगृह अपनी ऐतिहासिक धार्मिक परपरा के लिये जगत्-प्रसिद्ध है। यह महावीर स्वामी की तपोभूमि, साधनाभूमि व धर्म-प्रचारभूमि रही है। यहाँ भगवान् महावीर के अनेको चातुर्मास हुए हैं। महावीर स्वामी के अलावा अन्य बहुत से साधक जैसे इन्द्रभूमि, गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी धन्ना-शालिभद्र इत्यादि की निर्वाणभूमि है। महावीरस्वामी की अनेक शिष्य शिष्याएँ भी राजगृह से सम्बन्धित रही हैं। दिगम्बर-परम्परा के अनुसार भगवान् महावीर की सवप्रथम धर्मदेशना भी राजगृह मे ही हुई थी। राजगृह बौद्ध-परम्परा का भी मुख्य केन्द्र रहा है। वैष्णव-परम्परा का भी केन्द्र रह चुका है।

राजगृह का प्राकृतिक सौन्दर्य भी देखने योग्य है। विपुलाचल, वैभारगिरि आदि अनेक पर्वत, सप्तपर्णी, स्वर्णभद्र इत्यादि ऐतिहासिक गुफाओ, निरन्तर बहने वाले

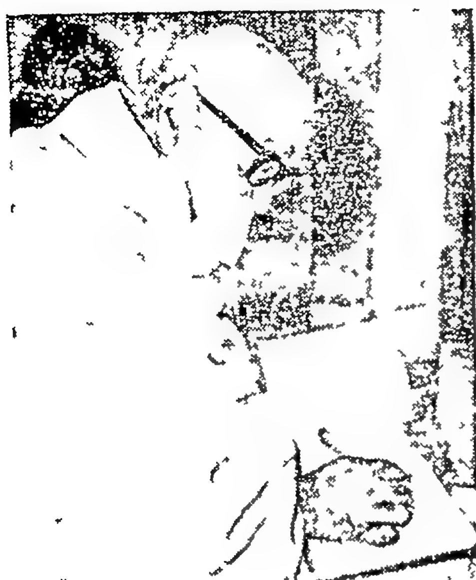
पुञ्ज की प्रथम किरण उतर चुकी है, राजगृही के वैभारगिरी की तलहटी मे। इस पहली किरण मे सबने देखा, स्थूलरूप से वीरायतन को। किन्तु सूक्ष्मरूप अब हम देखेंगे।

अब अपेक्षा है—वीरायतन के उद्‌भावक प्रेरणास्रोतों से, जिनके आधार पर वीरायतन-कल्पवृक्ष का सिंचन होने वाला है, लहलहाने वाला है, वे जीर्ण-शीर्ण पत्तो को झकझोर कर कूडे-कर्कट के बोझिल गट्ठर को दूर फेंक कर एक स्वच्छ सुखद समाज का निर्माण करें, ताकि प्रगति का नूतन प्रभात आ सके और अपेक्षा है, उन सहयोगियो से जिन्हे वीरायतन मे तन-मन-धन से सेवा का स्वर्ण अवसर प्राप्त होने वाला है।

आइए, हम सब वीरायतन मे प्रेम, मैत्री और समभाव के दीपो को प्रज्ज्वलित करने के लिए और अभिनव सत्य-क्रान्ति के स्वप्न पूर्ण करने के लिए जुट जाएँ।

"राजगृही के भव्य क्षितिज पर,
एक नया सूरज आया।
वीरायतन की पुण्य भूमिपर
मंगलमय जागरण लाया।"





वीरायतन का स्वप्नद्रष्टा : उपाध्याय अमरमुनि

—रामनारायन जैन, झाँसी



वीरायतन-योजना कविरत्न उपाध्याय श्री अमरमुनिजी द्वारा राजगृह मे आरम्भ की जा चुकी है। कविजी महाराज ने सन् १९६२ मे राजगृह मे चातुर्मास किया था और वहाँ की गुफाओ मे तपस्या भी की थी, जिसके कारण कविजी के मन मे राजगृह मे कुछ करने की प्रेरणा जगी और तभी से इस ओर निरन्तर लगे रहे। आज भी वे सक्रिय हैं। कविजी महाराज की वीरायतन योजना आज साकार रूप ले रही है और योजना की ओर भारत की जनता का ध्यान आर्कापित हुआ है। मुख्यत. जैन समाज का इस योजना की ओर विशेप ध्यान आकर्षित हुआ है।

राजगृह की अपनी विशेषताएँ हैं। राजगृह अपनी ऐतिहासिक धार्मिक परपरा के लिये जगत्-प्रसिद्ध है। यह महावीर स्वामी की तपोभूमि, साधनाभूमि व धर्म-प्रचारभूमि रही है। यहाँ भगवान् महावीर के अनेको चातुर्मास हुए हैं। महावीर स्वामी के अलावा अन्य वहुत से सावक जैसे इन्द्रभूमि, गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी धन्ना-शालिभद्र इत्यादि की निर्वाणभूमि है। महावीरस्वामी की अनेक शिष्य शिष्याएँ भी राजगृह से सम्वन्धित रही हैं। दिगम्वर-परम्परा के अनुसार भगवान् महावीर की सवप्रथम धर्मदेशना भी राजगृह मे ही हुई थी। राजगृह बौद्ध-परम्परा का भी मुख्य केन्द्र रहा है। वैष्णव-परम्परा का भी केन्द्र रह चुका है।

राजगृह का प्राकृतिक सौन्दर्य भी देखने योग्य है। विपुलाचल, वैभारगिरि आदि अनेक पर्वत, सप्तपर्णी, स्वर्णभद्र इत्यादि ऐतिहासिक गुफाओ, निरन्तर वहने वाले

पुञ्ज की प्रथम किरण उतर चुकी है, राजगृही के वैभारगिरी की तलहटी मे। इस पहली किरण मे सबने देखा, स्थूलरूप से वीरायतन को। किन्तु सूक्ष्मरूप अब हम देखेंगे।

अब अपेक्षा है—वीरायतन के उद्भावक प्रेरणास्रोतो से, जिनके आधार पर वीरायतन-कल्पवृक्ष का सिंचन होने वाला है, लहलहाने वाला है, वे जीर्ण-शीर्ण पत्तो को झकझोर कर कूडे-कर्कट के बोझिल गट्ठर को दूर फेंक कर एक स्वच्छ सुखद समाज का निर्माण करें, ताकि प्रगति का नूतन प्रभात आ सके और अपेक्षा है, उन सहयोगियो से जिन्हे वीरायतन मे तन-मन-धन से सेवा का स्वर्ण अवसर प्राप्त होने वाला है।

आइए, हम सब वीरायतन मे प्रेम, मैत्री और समभाव के दीपो को प्रज्ज्वलित करने के लिए और अभिनव सत्य-क्रान्ति के स्वप्न पूर्ण करने के लिए जुट जाएँ।

"राजगृही के भव्य क्षितिज पर,
एक नया सूरज आया।
वीरायतन की पुण्य भूमिपर
मगलमय जागरण लाया।"





वीरायतन का स्वप्नद्रष्टा : उपाध्याय अमरमुनि

—रामनारायन जैन, झाँसी



वीरायतन-योजना कविरत्न उपाध्याय श्री अमरमुनिजी द्वारा राजगृह मे आरम्भ की जा चुकी है। कविजी महाराज ने सन् १९६२ मे राजगृह मे चातुर्मास किया था और वहाँ की गुफाओ मे तपस्या भी की थी, जिसके कारण कविजी के मन मे राजगृह मे कुछ करने की प्रेरणा जगी और तभी से इस ओर निरन्तर लगे रहे। आज भी वे सक्रिय हैं। कविजी महाराज की वीरायतन योजना आज साकार रूप ले रही है और योजना की ओर भारत की जनता का ध्यान आकर्पित हुआ है। मुख्यत जैन समाज का इस योजना की ओर विशेप ध्यान आकर्षित हुआ है।

राजगृह की अपनी विशेपताए हैं। राजगृह अपनी ऐतिहासिक धार्मिक परपरा के लिये जगत्-प्रसिद्ध है। यह महावीर स्वामी की तपोभूमि, साधनाभूमि व धर्म-प्रचारभूमि रही है। यहाँ भगवान् महावीर के अनेको चातुर्मास हुए हैं। महावीर स्वामी के अलावा अन्य वहुत से साधक जैसे इन्द्रभूमि, गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी धन्ना-शालिभद्र इत्यादि की निर्वाणभूमि है। महावीरस्वामी की अनेक शिष्य शिष्याएँ भी राजगृह से सम्वन्धित रही हैं। दिगम्वर-परम्परा के अनुसार भगवान् महावीर की सर्वप्रथम धर्मदेशना भी राजगृह मे ही हुई थी। राजगृह वौद्ध-परम्परा का भी मुख्य केन्द्र रहा है। वैष्णव-परम्परा का भी केन्द्र रह चुका है।

राजगृह का प्राकृतिक सौन्दर्य भी देखने योग्य है। विपुलाचल, वैभारगिरि आदि अनेक पर्वत, सप्तपर्णी, स्वर्णभद्र इत्यादि ऐतिहासिक गुफाओ, निरन्तर वहने वाले

गर्म जल के झरने, जिनका उल्लेख जैन आगमो, वौद्ध त्रिपिटक और वैदिक पुराणो में मिलता है, से राजगृह का महत्व जाना जा सकता है। राजगृह के पास मे पावापुरी है, जो भगवान् महावीर की निर्वाणभूमि है। इस प्रकार राजगृह मे तीन धाराओ का समावेश है, जिसे त्रिवेणी कहा जा सकता है।

कविजी की वीरायतन-योजना एक वृहत् योजना है, जिसके द्वारा मानव-समाज का कल्याण होगा। केवल जैन ही लाभ उठा सकें, ऐसी वात नही है। कवि जी के जितने विचार विशाल हैं, हृदय भी उतना विशाल है। उनके हृदय मे मानव के प्रति प्रेम व निष्ठा है। वह भगवान् महावीर की वाणी को साकार रूप देना चाहते हैं। वीरायतन-योजना के अन्तर्गत मानव-समाज की सव प्रकार की सेवा हो, सवको लाभ हो। जो दुखित-व्यथित एव त्रस्त हो, ऐसे मनुष्यो को सात्वना मिले। समाज का प्रत्येक वर्ग किसी न किसी रूप मे लाभ उठाता रहे और भगवान् महावीर की जय जयकार करता रहे। कविजी भगवान् महावीर की धरोहर कुछ व्यक्तियो की सम्पत्ति न मान कर आम जनता की करना चाहते है। भगवान् महावीर के अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह जैसे विश्वमगलकारी सिद्धान्तो को अपने घर की चहारदीवारी के अन्दर गीत गा लेने और उसमे अपनी सफलता मान लेने से क्या २५०० वां निर्वाण दिवस सफल होगा।

निश्चय ही आज वीरायतन जैसे अध्यात्मसाधनाकेन्द्र की आवश्यकता है, जहाँ हर एक अशान्त मन को सात्वना मिल सके और वह भगवान् महावीर की वाणी को अपने जीवन मे उतार सके तथा हर मानव अपना जीवन सार्थक कर सके। इसमे कोई सन्देह नही कि कविजी की वीरायतनयोजना भविष्य मे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करेगी ही। वीरायतनयोजना मानवसमाज का मार्गदर्शन करेगी और सदैव भगवान् महावीर की वाणी का जयघोप होता रहेगा। कविजी ने वीरायतन योजना का जो स्वप्न सजोया है, साकार होगा और मानवसमाज उससे प्रेरणा लेगा, तव न शोपितवर्ग होगा, न शोपक होगा। एक वर्गहीनसमाज की रचना होगी और सही रूप मे समाजवाद का अभ्युदय वीरायतन द्वारा होगा। इससे भारत की जनता लाभ उठायेगी व प्रेरणा लेगी। परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि उपाध्याय अमरमुनिजी ने जो स्वप्न संजोया है, वह वास्तविक रूप धारण करे।



—०—



प्रकृति के सुरम्य क्रीडास्थल कैलाश मे उन्मुक्त प्राकृतिक आनन्द मे विभोर श्री अमरमुनिजी ।



वीरायतन के स्वप्नद्रष्टा

—रामस्वरूप जैन, आगरा

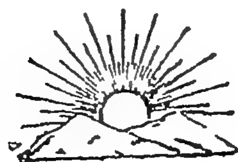


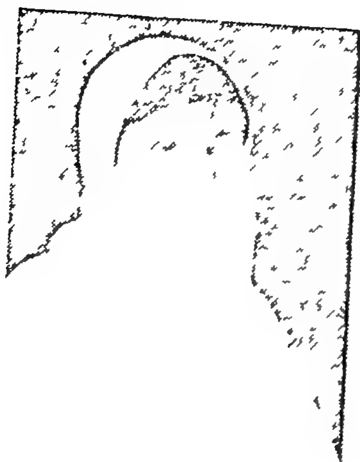
वीरायतन के स्वप्नद्रष्टा, 'उपाध्याय श्रीअमरमुनि'।
'नमो उवज्झायाण' जग मे जैनसत श्रीअमरमुनि ॥

वर्द्धमान ने आत्मज्योति से जन-जीवन को ध्वनित किया।
सत्य, अहिंसा, आत्मज्ञान का, अमरदीप प्रज्ज्वलित किया ॥
दीन-दुखी जीवो को अपनी करुणा से उपकृत किया।
सर्वभूतात्मभूत-दृष्टि से, अखिल जगत जागृत किया ॥

त्रिशलानन्दन के सपनो को आ, कविजी ने साकार किया।
राजगृह के अंचल मे वीरायतन को आकार दिया ॥
शतशत वन्दन है, अभिनन्दन भागीरथ प्रयास किया।
पुलकित है चेतनस्वरूप मन, अभिनव एक प्रकाश दिया ॥

महावीर निर्वाण शताब्दी पर्व पै, श्रद्धासुमन समर्पित।
हे वीर आपके चरणो मे, शुभ भावाजलि सादर अर्पित ॥





राजगृह और वीरायतन

—साध्वी श्रीचन्दना दर्शनाचार्या



[जैनजगत् की तेजस्विनी आर्या तथा वीरायतन कार्यक्रम की प्राणवाहिका साध्वी चन्दनाजी से आज कौन अपरिचित है?—सं०]

वर्तमान युग मे कोई भी सिद्धान्त या वाद तव तक जनजीवन तक नही पहुँचता, जव तक कि उसका व्यवहार मे प्रयोग न हो जाय। सिद्धान्तो या आदर्शों का पता भी आम जनता को तभी लगता है, जव वह उन्हे व्यवहार के धरातल पर उतरते हुए देखती है। जो सिद्धान्त, आदर्श या वाद व्यवहार की कसौटी पर खरे नही उतरते, उन्हें जनता उपेक्षा की दृष्टि से देखती है या कुछ वर्षों वाद सर्वथा भूल जाती है। श्रमणसंस्कृति अतिप्राचीनकाल से भारतीय जनजीवन मे घुलीमिली हुई थी, परन्तु वीच-वीच मे दुष्काल, भूकम्प, या राज्यपरिवर्तन आदि थपेडो के कारण वह धुधली होने लगी। होते-होते उसे जनता इतनी विस्मृत हो गई कि जिस प्रान्त व जनपद मे वह वहुत अधिक पल्लवित-पुष्पित हुई थी, वहाँ भी लोगो के दिलदिमागो से वह लुप्त-सी होने लगी।

मगधदेश, जिसे श्रमणसंस्कृति को पल्लवित-पुष्पित करने का गौरव प्राप्त है, राजगृह, जिसे जैन, वौद्ध और वैदिक तीनो सस्कृतियो के प्रचार-प्रसार का मौका मिला है, आज वहाँ न तो लोग श्रमणसस्कृति को जानते हैं, न भगवान् महावीर या तथागत वुद्ध के ही प्रकाशमय जीवन के विषय मे उन्हें कुछ परिचय है, क्योंकि उधर जैनश्रमणो और श्रमणियो का परिभ्रमण (विहार) वहुत ही कम हो गया। कोई साधुसाध्वी सम्मेतशिखर या राजगृही-पावापुरी आदि तीर्थयात्रा के लिए जाते, वे वहाँ

उन तीर्थों के अवलोकन के बाद शीघ्र ही वहाँ से लौट जाते, इससे न तो वहाँ की स्थानीय जनता से उनका कोई सम्पर्क होता और न धर्म या सस्कृति के सम्बन्ध मे उन्हे कोई उपदेश अथवा प्रेरणा ही उसे दी जाती। सिद्धान्तो या वादो का प्रयोग तो वर्षों उसी प्रदेश मे विचरण करने पर ही हो सकता है। जनता के जीवन मे किसी सिद्धान्त को सामूहिक रूप से उतरवाने के लिए वर्षों तक लगातार प्रयत्न करना पडता है। तब जा कर वह धर्म या सस्कृति, सिद्धान्त या वाद जनता के जीवन-सस्कार के रूप मे सुदृढ होते हैं। मध्ययुग मे बिहारप्रदेश मे तो वह एक तरह से अज्ञात और अनेक कठिनाइयो से युक्त बन गया था। यही कारण था—भगवान् महावीर के धर्मसिद्धान्तो या श्रमणसस्कृति को बिहार की जनता द्वारा विस्मृत होने का।

यो तो बीच-बीच मे किसी-किसी साधु द्वारा व्यक्तिगत छुटपुट प्रयत्न सराक जाति मे धर्म प्रचार-प्रसार के हेतु होते रहे। पर वे इतने अपर्याप्त थे कि उनसे बिहार की जनता तो क्या, सराक जाति के ही सभी लोग परिचित नही हो पाए।

सन् १९६२ मे राष्ट्रसत कविरत्न उपाध्याय श्री अमर मुनिजी का श्रमण-सस्कृति के ऐतिहासिक गढ, भगवान् महावीर आदि अनेक महाश्रमणो की तपोभूमि, साधनाभूमि और विहारभूमि—राजगृह मे चातुर्मास हुआ। चातुर्मासकाल मे ध्यान, तप और मौन की अनेक साधनाएँ की। उसी दौरान उनकी दृष्टि मे राजगृह नगर भगवान् महावीर के धर्मसिद्धान्तो एव श्रमणसस्कृति को जनजीवन मे सस्कार-बद्ध करने हेतु सभी दृष्टियो से प्रयोगक्षेत्र के योग्य जच गया। उस समय से ही उपाध्यायश्रीजी म० को कुछ ऐसा मानसिक आभास होने लगा कि इस क्षेत्र मे कुछ करना चाहिए।

राजगृह : वीरायतन के लिए प्रयोगक्षेत्र

राजगृह को वीरायतन की प्रयोगभूमि बनाने के कई कारण थे। पहला कारण तो यह है कि राजगृह पुरातन मगध और उसमे भी वैशाली, पावापुरी, नालदा आदि क्षेत्रो के निकट होने के कारण भगवान् महावीर के जीवन से सर्वाधिक सम्बन्धित रहा है। वैशाली और उसके अन्तर्गत क्षत्रियकुड (कुडग्राम), जो भगवान् महावीर की जन्मभूमि है, वह भी राजगृह के पास ही है, भगवान् महावीर ने प्राचीन राजगृही के अन्तर्गत नालदापाडा मे सर्वाधिक चातुर्मास किए थे।

दिगम्बरपरम्परा के अनुसार तो भगवान् महावीर की सर्वप्रथम धर्म—देशना भी राजगृह के विपुलाचल पर हुई थी। राजगृह मे भगवान् महावीर का कई बार कई निमित्तो से पदार्पण हुआ है, यहाँ के कण-कण मे भगवान् महावीर के वे विचार-बीज प्रसुप्त हैं। वैभारगिरि की सप्तपर्णी गुफा मे तथा अन्य गुफाओ मे भगवान् महावीर ने कई बार तपश्चर्या भी की है, इसलिए यह उनकी तपोभूमि भी रही है। धर्म प्रचारभूमि तो थी ही। भगवान् महावीर का निर्वाण और देहसस्कार भी राजगृह

के निकट पावापुरी मे हुआ था, जो एक तरह से प्राचीन राजगृह का ही एक अग है। इसलिए इसे निर्वाणभूमि भी कहे तो कोई अत्युक्ति न होगी।

दूसरा कारण यह था कि इन्द्रभूति गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी व अन्य सभी गणधरो ने वैभारगिरि पर तथा अतिमुक्तककुमार, शालिभद्र, धन्ना, स्कन्दक, आदि ने विपुलाचल पर निर्वाण प्राप्त किया था। अन्तकृद्दशाग सूत्र मे तो राजगृह के विपुलाचल पर्वत से मुक्त होने वाले साधको के वर्णन मे 'जाव विउले सिद्धे' की एक झडी लग गई है। इस प्रकार राजगृह अनेक साधुसाध्वियो का सिद्धक्षेत्र, निर्वाण-भूमि, साधनाभूमि और तपोभूमि रहा है।

सन् १९६२ मे उपाध्याय श्रीअमर मुनिजी भगवान् ने राजगृह वर्षावास के समय यहाँ की सप्तपर्णी गुफा मे ध्यान साधना की थी।

सन्१९६७ मे महान तपोधन पू० श्रीजगजीवनजी महाराज ने ४५ दिन का दीर्घ अनशनपूर्वक संथारा (समाधिमरण) यही उदयगिरि पर्वत की तलहटी मे किया था, जो इस युग मे राजगृह के इतिहास की एक विशिष्ट घटना है। प्राचीन पारसीक देश (वर्तमान मे ईरान) का राजकुमार आर्द्रक राजगृह मे ही आ कर भगवान् महावीर के पास दीक्षित हुआ था। नियतिवादी गोशालक तथा अजितकेशकम्बली आदि महावीर बुद्ध-युगीन धर्मप्रवर्तको के धर्मप्रचार का मुख्य केन्द्र राजगृह ही था। कर्मयोग के महान् उपदेष्टा श्रीकृष्ण भी राजगृह को पावन कर चुके हैं।

राजगृह के अन्तर्गत वैभारगिरि की सप्तपर्णी गुफा तथा अन्य गुफाओ मे तथागत बुद्ध ने भी ध्यानयोगसाधना तथा तपश्चर्या काफी समय तक की थी। उन्होंने अपने जीवन के अनेक वर्ष यहाँ व्यतीत किये थे।

बौद्धधर्म की महायानशाखा का उद्भव सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र के अनुसार राज-गृह है। जैनइतिहास की दृष्टि से बीसवें तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रत स्वामी का जन्म, दीक्षा और कैवल्य भी राजगृह मे हुआ था। सुप्रसिद्ध शालिभद्र, अन्तिमकेवली जम्बू-कुमार, महामात्य अभयकुमार, राजकुमार मेघ आदि भी राजगृह के ही थे।

इसी प्रकार मगधसम्राट् श्रेणिक बिम्बसार, महाशतक श्रावक, सेवाव्रती नदिषेण, महारानी चेलणा, रोहिणी, सुलसा आदि भगवान् महावीर के सैकडो अनन्य धर्मशिष्य और शिष्याएँ राजगृह से ही सम्बन्धित थे। अनाथीमुनि भी यही ध्यान-मुद्रा मे रहे थे।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी राजगृह प्राचीनकाल से लेकर आज तक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

भगवान् बुद्ध के निर्वाण के बाद बौद्धो की प्रथम सगीति यही पर आयोजित की गई थी, जिसमे भगवान् बुद्ध के प्रिय शिष्य आनन्द भी उपस्थित थे।

मुस्लिम फकीर मखदूम शाह ने इसी स्थल को साधना और तपस्या के लिए उपयुक्त समझा था।

कुछ इतिहासकारो के मत से जीसस क्राइस्ट (ईसा मसीह) भी छह वर्ष तक राजगृह मे रहे थे और भारतीय साधना का शिक्षण प्राप्त किया था।

राजगृह के पास ही जैनपरम्परा के अनुसार राजगृह का ही एक पाटक (उपनगर) नालन्दा है, जो जैन और बौद्ध सस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। नालन्दा मे लगभग सात सौ वर्षों तक अन्तर्राष्ट्रीय रूप मे विश्वविद्यालय चलता रहा है, जहाँ ह्वेनसाग जैसे हजारो विदेशी युवक शिक्षण लेने आते रहे हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसाग ने अपने जीवन के महत्वपूर्ण १२ वर्ष एक विद्यार्थी और शिक्षक के रूप मे यहाँ व्यतीत किए थे। इसी नालदा मे प्रसिद्ध बौद्धभिक्षु सारिपुत्र का जन्म हुआ था। भगवान् महावीर के प्रमुख गणधर गौतम नालदा के पास के ही थे। जैन परम्परा का इतिहास तो यहाँ के कण-कण मे बिखरा पडा है, आवश्यकता है, उसे सकलित और व्यवस्थित करने की।

प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से बिहार दर्शनीय माना जाता है। राजगृह की प्राकृतिक छवि भी मनमोहक है। यहाँ विपुलगिरि, रत्नगिरि, उदयगिरि और वैभारगिरि ये पाच सुरम्यपर्वत हैं, जिनकी चित्ताकर्षक छटा मन को लुभाने वाली है। सप्तपर्णी, स्वर्णभद्र आदि अनेक गुफाएँ, सतत बहने वाले गरम पानी के ऐतिहासिक झरने (निर्झर) हैं, जो आज भी पर्यटको एव तीर्थयात्रियो के लिए आकर्षणकेन्द्र बने हुए हैं। इनका उल्लेख जैन भगवतीसूत्र, बौद्ध त्रिपिटक तथा वैदिक पुराणो मे मिलता है।

तीर्थयात्रा की दृष्टि से भी राजगृह जैन, बौद्ध और वैदिक धर्मों के अलावा इस्लाम और सिक्खसम्प्रदाय का भी 'पवित्र' तीर्थस्थान है। राजगृह मे बौद्धो और जैनो के तो कई मन्दिर बने हुए हैं। वैष्णवो तथा अन्य सम्प्रदायो के भी मन्दिर, गुरुद्वारा या सत्सगभवन आदि हैं। यहाँ के महत्वपूर्ण दर्शनीय स्थान हैं—विपुलाचल आदि पच पर्वत, वेणुवन, करन्द सरोवर, सप्तधारा, गर्मजल के झरने, सप्तपर्णी गुफा, स्वर्णभडार, मणियारमठ, जरासन्ध का अखाडा, बिम्बसार का कारागार, रत्नगिरि और गृध्रकूटपर्वत तथा जीवक आम्रवन आदि। गृध्रकूटपर्वत पर जापान के बौद्धसघ के महान् आचार्य श्रीफ्यूजी गुरुजी की प्रेरणा से एक अतिभव्य विश्व-शान्तिस्तूप का निर्माण हुआ है। पर्वत पर जाने के लिए आकाशीय विद्युत्‌रज्जुपथ (चेयरलिफ्ट) परियोजना भी चालू की गई है। यहाँ के अनेक प्राचीन स्मारक दर्शनीय है।

दक्षिण पूर्वी एशिया के तथा भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तो से हजारो पर्यटक बोधगया, राजगृह, पावा, नालदा आदि प्रसिद्ध तीर्थों की यात्रा के लिए प्रतिवर्ष आते रहते है। राजगृह से ४० मील स्थित बोधगया तो सारे ससार के बौद्धो का

सवसे महान् केन्द्र है, जहाँ भगवान् वुद्ध को परमवोधि प्राप्त हुई थी। इसी प्रकार समस्त जैन भी राजगृह के समीप ही प्रसिद्ध तीर्थ पावापुरी (भगवान् महावीर की निर्वाणभूमि) है, जहाँ जैनो के विशालकाय मन्दिर और विशाल वर्मशालाएँ हैं। यहाँ सगमरमर से निर्मित जलमन्दिर भी वडा आकर्षक है, जहाँ मध्य मे भव्यकमल-सरोवर है। दीपावलीपर्व पर प्रतिवर्ष यहाँ मेला लगता है। क्षत्रियकुण्ड (भ० म० की जन्मभूमि), सम्मेतशिखर (अनेक तीर्थंकरो की, खासतौर से भ० पार्श्वनाथ की साधनाभूमि एवं निर्वाणभूमि) एव राजगृह (साधना और देशनाभूमि) आदि जैन तीर्थों की यात्रा पर प्रतिवर्ष आते रहते हैं। वैदिक परम्परा की दृष्टि से भी राजगृह के समीप गयातीर्थ है, जहाँ विष्णुपद मन्दिर है। राजगृह मे भी प्रतिवर्ष वैष्णवमेला लगता है। प्रसिद्ध वैद्यनाथधाम मे शिवमन्दिर है, इसलिए यहाँ वैदिक यात्री भी प्रति-वर्ष आते हैं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी राजगृह वहुत उत्तम स्थान है। यहाँ की आवहवा वहुत ही अच्छी है, पर्वतो एवं झरनो के कारण यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यवर्द्धक है। पर्वतो से घिरा हुआ यह नगर देश भर मे शीतकालीन आरोग्य-स्थल के रूप मे प्रसिद्ध है।

राजनैतिक दृष्टि से भी राजगृह का प्राचीनकाल मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। राजगृह, जिसे आज राजगिर कहते हैं, मगध की प्राचीन राजधानी रहा है। मगध सम्राट् श्रेणिक विम्वसार एव अजातशत्रु कोणिक के समय मगध की सम्पूर्ण समृद्धि राजगृह मे केन्द्रित थी। पाटलिपुत्र की नीव पडने से वहुत पहले ही यह नगर अत्यन्त समृद्ध तथा उत्कर्ष के शिखर पर था।

इसी प्रकार संसारभर मे उत्कृष्ट गणतन्त्रीय राज्य-प्रणाली की नीव वैशाली मे डाली गई थी, जो राजगृह के अत्यन्त निकट है।

भौगोलिक दृष्टि से भी राजगृह का महत्त्व कम नही है। भौगोलिक दृष्टि से विहार मुख्यत दो भागो मे विभक्त है—उत्तरी विहार और दक्षिणी विहार। एक ओर है—गगा की तराई और दूसरी ओर है—छोटा नागपुर का पठार। गंगा यहाँ की मुख्य नदी है, जो हिन्दू वर्म मे वहुत पवित्र नदी के रूप मे प्रसिद्ध है। इस राज्य मे यह नदी पश्चिम से पूर्व की ओर लगभग ३५० मील मे प्रवाहित होती है। विहार की राजवानी पटना राजगृह से लगभग ६४ मील है। राजगृह से २५ किलोमीटर पर मुस्लिमवर्म का तीर्थ विहारशरीफ है। और विहार शरीफ से १२ किलोमीटर आगे तथा राजगृह से १३ किलोमीटर पीछे नालदा है, जो वौद्ध विश्वविद्यालय के कारण अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त स्थल है।

इन सव दृष्टियो से 'वीरायतन' के लिए अन्य स्थानो की अपेक्षा राजगृह ही सवसे उपयुक्त स्थान जचा। प्राचीन युग मे जिस प्रकार महावीर और वुद्ध ने अपना

कार्यक्षेत्र राजगृह को चुना था, उसी प्रकार वर्तमान युग के महामनीषी राष्ट्रसत उपाध्याय श्री अमरमुनिजी एव उनकी प्रेरणा से मैंने भी वीरायतन के लिए राजगृह को चुना है।

राजगृह मे वीरायतन का स्थान

वर्तमान राजगृहनगर से कुछ दूरी पर ही **वीरायतन** का अत्यन्त सुरम्य, चित्ताकर्षक और प्राकृतिक दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर स्थान है, जहाँ अभी निर्माण कार्य चालू है। **वीरायतनस्थल** वैभारगिरि की तलहटी मे राजगृह के प्राचीन आकर्षककेन्द्र-गर्मपानी के कुण्ड के निकट से चार फर्लांग दूर है। वीरायतन के स्थल से दक्षिण की ओर **वैभारगिरिपर्वत** है, जो काफी दूर तक लम्बा चला गया है। इन सुरम्य एव हरे-भरे पर्वतो की यह शृखला 'गया' तक पहुँच गई है।

वैभारगिरि की उपत्यका मे **सप्तपर्णी** गुफा के ठीक नीचे भगवान् महावीर के समवसरण-स्थान के रूप मे उद्भावित **गुणशीलक चैत्य-उद्यान** है, जहाँ वनविभाग अधिकारियो के सहयोग से एक सुन्दर उपवन बनाने की योजना प्रारम्भ हो चुकी है। यह **गुणशीलक चैत्य-उद्यान** पहाड के बराबर मे चलता हुआ काफी लम्बे क्षेत्र मे है। वनविभाग के पथ को पार करते ही वीरायतन की भूमि प्रारम्भ हो जाती है, जो दक्षिण से उत्तर की ओर और पूर्व से पश्चिम की ओर पर्याप्त व्यास मे फैली हुई है। अभी तक वीरायतन की ओर से वहाँ पाँच भवनो का निर्माणकार्य सम्पन्न हो चुका है। इनके अतिरिक्त वहाँ एक **आगममन्दिर** तथा दो **उपाश्रयो** का निर्माण कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ होने वाला है। वीरायतन की सीमा से कुछ दूरी पर एक छोटी-सी टेकरी है, जहाँ पर तथागत बुद्ध ने अपना प्रथम प्रवचन दिया था। वीरायतन की सीमा से लगा हुआ **'कार्यानन्द'** ग्राम है, जो पश्चिम की ओर है। उत्तर की ओर कुछ-कुछ फासले पर **सबलपुर** एव **बस्तीपुर** आदि छोटे-बडे मिला कर लगभग ७-८ ग्राम हैं। वीरायतन की भूमि और इन गाँवो के मध्य मे दूर-दूर तक खेतो की हरियाली दर्शको के चित्त को सहज ही आकर्षित कर लेती है। वीरायतन से पूर्व दिशा की ओर कुछ ही दूरी पर गर्मजल के कुण्ड हैं। बिहार सरकार की योजना के अनुसार वीरायतन के उत्तरी भाग और पूर्वी भाग मे नूतन राजगृहनगर बसाने की योजना विचाराधीन है। सरकारी सूत्रो के अनुसार सरकार उसे शीघ्र ही क्रियान्वित करना चाहती है।

इस प्रकार प्राकृतिक दृष्टि से और भौगोलिक दृष्टि से वीरायतन की भूमि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। और निकट भविष्य मे ही वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।

वीरायतन योजना . उद्देश्य और सहयोग

वीरायतन-योजना—अपने आप मे एक सर्वांगीण, जन-कल्याणी, स्थायी एव विराट् रचनात्मक योजना है। इस विराट् योजना के अन्तगत मानवजीवन के सभी

सबसे महान् केन्द्र है, जहाँ भगवान् बुद्ध को
समस्त जैन भी राजगृह के समीप ही प्रसि
निर्वाणभूमि) है, जहाँ जैनो के विशालकाय
यहाँ सगमरमर से निर्मित जलमन्दिर भी द
सरोवर है। दीपावलीपर्व पर प्रतिवर्ष यह
की जन्मभूमि), सम्मेतशिखर (अनेक तीर्थ
साधनाभूमि एव निर्वाणभूमि) एव राज
तीर्थों की यात्रा पर प्रतिवर्ष आते रहते हे
के समीप गयातीर्थ है, जहाँ विष्णुपद म
लगता है। प्रसिद्ध वैद्यनाथधाम मे शिव
वर्ष आते हैं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी राज
बहुत ही अच्छी है, पर्वतो एवं झरन
है। पर्वतो से घिरा हुआ यह नगर
प्रसिद्ध है।

राजनैतिक दृष्टि से भी राज
रहा है। राजगृह, जिसे आज राजगि
मगध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार एव
समृद्धि राजगृह मे केन्द्रित थी। पाट
अत्यन्त समृद्ध तथा उत्कर्ष के शिखर

इसी प्रकार ससारभर मे
मे डाली गई थी, जो राजगृह के अ

भौगोलिक दृष्टि से भी राज
बिहार मुख्यत दो भागो मे विभ
ओर है—गगा की तराई और दूस
की मुख्य नदी है, जो हिन्दू धर्म मे
मे यह नदी पश्चिम से पूर्व की ओर
की राजधानी पटना राजगृह से लग
पर मुस्लिमधर्म का तीर्थ बिहारशरीफ
आगे तथा राजगृह से १३ किलोमीटर
कारण अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त स्थल है।

इन सब दृष्टियो से 'वीरायतन' के
सबसे उपयुक्त स्थान जचा। प्राचीन

क्षेत्रों मे नीति, धर्म और अध्यात्म की दृष्टि से समाजनिर्माण मुख्य रहेगा। इसे आचाररूप मे परिणत करने से पूर्व वैचारिक दृष्टि से भारतीय-सस्कृति, भारतीय धर्म, भारतीय-दर्शन, साहित्य और परम्पराओ का गम्भीर अनुशीलन और परिशीलन करना-कराना आवश्यक होगा। भारत धर्म प्रधान और अध्यात्मप्रधान देश रहा है, वस्तुत. यही भारतीय-संस्कृति की मुख्य विशेषता रही है। विना किसी पक्षपात के सभी धर्मों के सत्य तथा तथ्य का सकलन करके समन्वयात्मक पद्धति से उसे जन-चेतना के समक्ष प्रस्तुत करना भी वीरायतन का एक उद्देश्य रहेगा। भारत के वैदिक एव अवैदिक आदि समग्र दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन करना, भारत की विभिन्न संस्कृतियो मे समन्वयसूत्र की खोज करना, भारत की विभिन्न परम्पराओ मे अनेकान्त के आधार पर सामञ्जस्य प्राप्त करना वीरायतन का प्रारम्भ से अन्त तक लक्ष्य रहेगा। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कुछ अन्य उपयोजनाएँ भी क्रियान्वित करने का सकल्प चल रहा है।

इन समस्त योजनाओ मे वीरायतन के इनेगिने कार्यकर्ताओ का सहयोग ही अपेक्षित नही है, अपितु सर्व-साधारण जनता का सहयोग भी उतना ही अधिक महत्त्वपूर्ण है।

इस योजना मे जैनसमाज का सहयोग तो प्रारम्भ से ही मिलता रहा है और अन्त तक मिलता रहेगा। वास्तव मे वीरायतन-योजना केवल जैनो के लिए नही, सभी धर्मो और सस्कृतियो के अनुयायियो के लिए है। यही कारण है कि इस योजना को जैनजैनेतर जनता मे जो आदर, आकर्षण और सहयोग मिल रहा है, वह अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। खासकर विचारशील प्रवुद्ध जनता तो इस पर मत्रमुग्ध है। भारत के सभी प्रान्तो से, यहाँ तक कि विदेशो से भी प्रभु महावीर के धर्मप्रेमी भक्तो द्वारा योजना के लिए भावभक्तिपूर्ण सन्देश मिल रहे हैं। साथ ही आर्थिक सहयोग भी मिला है, कई महानुभावो ने आर्थिक सहयोग के लिए वचन भी दिये हैं। परन्तु अभी तो इसमे काफी सहयोग की अपेक्षा रहेगी। योजनाएँ अन्यत्र प्रकाशित है। योजनाओ के अनुरूप कुछ कार्य हुआ है, कुछ चल रहा है, कुछ भविष्य मे क्रमश. कार्य होगा।

राजगृह मे वीरायतन की चर्चा घर-घर में होती है। यह चर्चा केवल राजगृह तक सीमित नही रही है, नालन्दा जिले को भी पार करके समग्र विहारप्रान्त मे इसकी चर्चाएँ होने लगी हैं। विहार-सरकार के कर्मचारियो और नेताओ ने वीरायतन के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण रखा है, और साथ ही सहयोग की भावनाएँ भी अभिव्यक्त की हैं, और कुछ क्षेत्रो से सहयोग मिल भी रहा है। राजगृह नगर की सामान्य जनता और आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र की जनता वीरायतन—योजना को अपने हित मे लाभप्रद समझती है। वीरायतन से सभी परिचित हो चुके हैं।

साधुसंस्था के लिए सघन कार्यक्षेत्र

मैं लगभग दो वर्षो से इस क्षेत्र मे कार्य कर रही हूँ। यहाँ की और आस-पास की सामान्य जनता को देखने और परखने का मुझे पर्याप्त अवसर उपलब्ध हुआ

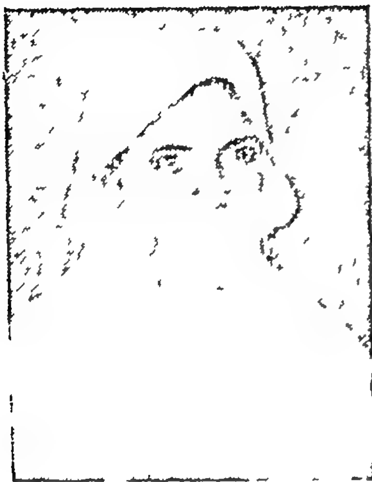


श्री अमरमुनिजी प्रखर प्रवक्ता ही नही, श्रेष्ठ श्रोता भी हैं। मधुरस्मित के साथ ध्यानपूर्वक भक्तो की बाते सुन रहे है।

हैं। मैंने देखा है, कि सामान्य जनता कितनी स्नेहशील एव श्रद्धाशील है। इस क्षेत्र के सभी लोग मुझे 'माताजी' कह कर सम्बोधित करते हैं। मैंने पाया है कि आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् महावीर ने यहाँ की जनता के मानस मे सत्य, अहिंसा और तप के जो सुन्दर बीज वोए थे, वे बीज हजारो वर्ष के वाद भी अपने धुंधले रूप मे, आज भी सामान्यजनो के मानस मे प्रसुप्त पडे हैं। उन्हें जागृत और प्रसारित करने की आवश्यकता है। यदि महावीर प्रभु की स्मृति को ताजा रखना हो, उनके धर्म और दर्शन को व्यापक बनाना हो तो निश्चय ही हमे इधर-उधर के विकल्पो से दूर हट कर अपने समग्र प्रयत्नो का मुख्य केन्द्र वीरायतन के माध्यम से राजगृह नगर को, और उसके माध्यम से समग्र बिहार, वग, उत्कल आदि प्रदेशो को अपना कार्यक्षेत्र निर्धारित करना होगा। विशाल नगरो मे बैठ कर, वहाँ पर बडे-बड़े साधु-साध्वियो के चातुर्मास करा कर, और भाद्रमास मे कुछ लम्बी-लम्बी तपस्याएँ करके भगवान् महावीर के वर्म को जीवित रखने का आज और निकट भविष्य मे भी कोई अवसर नही है। इतने-इतने वर्षों से साध्वीवर्ग और साधु-वर्ग नगरो मे रह कर जागृति और स्फूर्ति उत्पन्न नही कर सके, इसका कुछ कारण तो अवश्य होगा। मैं समझती हूँ, कि धर्म-ह्रास के इन मूल कारणो पर शान्त-मस्तिष्क से एकान्त मे बैठ कर कभी विचार-चिन्तन नही किया। बधी-बधाई शब्दावली मे प्रतिदिन व्याख्यान सुनने से धर्म की आराधना नही हो सकती। अब धर्म-आराधना के आधारो को हमे नूतन परिपेक्ष्य मे जाँचना होगा, देखना होगा, और सही अर्थों मे उसकी समीक्षा करनी होगी।

जैनसमाज सही दृष्टि से सोचे-समझे

सचमुच मुझे बडा आश्चर्य होता है कि भगवान् महावीर की पच्चीसवी निर्वाणशताब्दी जैसे महत्त्वपूर्ण समय के उपस्थित हो जाने पर भी हमारा समग्र समाज प्रसुप्त पडा हुआ है। न उसमे कोई हल-चल है, न उसके पास कोई रूपरेखा है, न अपने कर्तव्य को समझने का कोई स्वस्थ दृष्टिकोण ही है। मुझे आश्चर्य तो इस वात का होता है कि समाज मे यत्र-तत्र, इधर-उधर जो कुछ प्रयत्न हो भी रहे हैं, वे भी अधिकाश विपरीत दिशा मे ही प्रवाहित हैं। जिस प्रभु महावीर ने हमे धर्म के क्षेत्र मे त्रि-रत्न दिए, उच्च जीवन जीने की कला सिखाई, अध्यात्म-साधना का सुरम्य पथ बतलाया, उस प्रभु की जन्मभूमि को विशेषत. वहाँ के निवासियो को भूल कर हम धर्म की आराधना किस प्रकार कर सकेंगे? अतीत मे हमने पर्याप्त भूलें की हैं, परन्तु आज मैं समग्र समाज से नम्र निवेदन करना चाहती हूँ कि कृपया भविष्य मे इन भूलो को दुहराने का प्रयास बन्द कर दें। प्रसुप्ति और अर्द्धमूर्च्छा को छोड कर आज स्वय के जीवन मे, और साथ ही जन-जन के जीवन मे नयी चेतना, नयी-जागृति और नयी-स्फूर्ति लाने का सुअवसर हमे उपलब्ध हुआ है। वीरायतन-योजना के माध्यम से वहुत कुछ किया जा सकता है, आवश्यकता है, सही दिशा मे स्वस्थ्य कदमो को आगे बढाने की।●



वीरायतन :
धर्ममय तीर्थ (समाज) का जीवन-निर्माण—केन्द्र

साध्वी साधना, राजगृह



धर्म और मानवजीवन का अटूट सम्बन्ध

मानवजीवन मे धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्मशून्य जीवन मृतवत् जीवन है, वास्तविक जीवन नही। पशु और मनुष्य मे अगर कोई अन्तर है तो वह धर्माचरण का ही है। **'धर्मेण हीना. पशुभि समाना:'** इस नीतिवाक्य के अनुसार धर्म से हीन जीवन पशुतुल्य जीवन है। वास्तव मे मानव-जीवन के साथ धर्म का अत्यन्त निकट सम्बन्ध है। मानवसमाज मे शुद्ध व्यवहार के लिए, शान्ति और सुव्यवस्था के लिए धर्म की हर युग मे जरूरत रही है और रहेगी। इसीलिए एक विद्वान् ने धर्म को मानवसमाज का सार कहा है। जब-जब मानवसमाज मे धर्म का ह्रास होता गया, अधर्म पनपता गया, पाप बढता गया, तब-तब ससार मे दु ख, हिंसा, अराजकता और परेशानी आदि बढी ही है।

धर्म क्या और किसलिए ?

धर्म मानव के इहलौकिक और पारलौकिक, भौतिक और आध्यात्मिक दोनो प्रकार के अभ्युदय और कल्याण का कारण रहा है। इसीलिए वैशेषिक दर्शन मे धर्म की परिभाषा की गई है—**'यतोऽभ्युदय-निश्रेयससिद्धि स धर्म.'**—जिससे जीवन मे अभ्युदय और नि श्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है। इसी प्रकार महर्षि व्यास ने महाभारत मे धर्म का स्वरूप बताया है—**'धारणाद् धर्म '**—मानव समाज का धारण, पोषण, रक्षण करने के कारण इसे धर्म कहा जाता है। सर्वधर्मसमन्वयवादी उदार जैनाचार्य हरिभद्र सूरि ने धर्म की परिभाषा की है—**'दुर्गतौ प्रपतन्तमात्मानं**

धारयतीति धर्मः' दुर्गति मे गिरते हुए आत्मा को जो धारण करता है, बचाता है, वह धर्म है। आचार्य कुन्दकुन्द ने तो इनसे भी आगे बढ कर धर्म की उदात्त परिभाषा की है—**'वत्थुसहावो धम्मो'** वस्तु का जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है। धर्म की इस व्याख्या के अनुसार **आत्मा का धर्म अपने स्वभाव में स्थिर होना है।** आत्मा जब अपने स्वभाव को—यानी अहिंसा, सत्य आदि आत्म गुणो को—छोड कर क्रोध, मान, माया, लोभ, काम, द्वेष, मोह आदि आत्मविरोधी दुर्गुणो को अपनाता है, तब वह अधर्म की ओर जाता है। मतलब यह है कि धर्म आत्मा को अपने स्वरूप मे स्थिर रखने के लिए है।

भगवान् महावीर से जब यह पूछा गया—'कौन-सा धर्म उत्कृष्ट मगल है?' तो उन्होंने कहा—

'धम्मो मंगलमुक्किट्ठ अहिंसा सजवो तवो'

अहिंसा, सयम और तपरूप धर्म ही उत्कृष्ट मगल है। वस्तुत भगवान् महावीर ने इस गाथा द्वारा यह बता दिया कि किसी भी देश, वेष, धर्म, समुदाय, जाति, लिंग और वर्ग का व्यक्ति क्यो न हो, जो अहिंसा, सयम और तपरूप धर्म की साधना करता है, वह मगलमय वन जाता है, इतना ही नही, धर्म मे ओतप्रोत व्यक्ति लोकमान्य और देवो तक का पूज्य वन जाता है। अहिंसा, सयम और तप ये धर्म-साधना के तीन द्वार हैं।

धर्म वैसे तो सर्वव्यापक है। वह किसी एक क्षेत्र या काल की सीमा मे बधा हुआ नही होता। मानवजीवन के प्रत्येक क्षेत्र तथा प्रत्येक काल मे उसका पालन किया जा सकता है। वह किसी एक वर्ग या व्यक्ति के ठेके मे नही है, अपितु ससार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए है, सुख और शान्ति के लिए, समाज मे सुव्यवस्था और अमन-चैन के लिए है। धर्म की पूर्वोक्त परिभाषाओ मे उसके पालन का उद्देश्य स्पष्ट है। जैनशास्त्र मे धर्मपालन का प्रयोजन अत्यन्त स्पष्ट शब्दो मे बताया गया है—

इहलोगपरलोगहियाए, निस्सेसाए, सुहाए, खम्माए

अर्थात्—धर्म इस लोक के हित के लिए है, परलोक के कल्याण के लिए भी है, मोक्ष और सुखशान्ति के लिए भी है एव साधना के द्वारा अपनी कष्टसहिष्णुता, आत्मशक्ति एवं क्षमता वढाने के लिए है।

इसलिए धर्म केवल मन्दिर, मस्जिद, चर्च या गुरुद्वारे मे ही वन्द नही है, परन्तु मानवजीवन के सभी क्षेत्रो मे व्यापक है। इसीलिए भ० महावीर और भ० वुद्ध दोनो ने मगलपाठ मे धर्म को मगल और उत्तम वता कर उसकी शरण लेने का कहा है।

परन्तु ऐसे धर्म का पालन सहजभाव से होना चाहिए, धर्म सस्कारो मे रम जाना चाहिए, किसी प्रकार के भय और लोभ के वश हो कर धर्म का पालन वालू

की नीव पर आधारित महल के समान हैं। ज्यो ही भय और प्रलोभन चित्त से हट जायेंगे, त्यो ही व्यक्ति खुल कर अधर्म मे प्रवृत्त हो जायगा। इसलिए आवश्यकता इस वात की है कि धर्म को सस्कारो मे ओत-प्रोत कर लिया जाय। इसी कारण स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—'**निर्भयता ही सच्चा धर्म है।**' धर्मात्मा व्यक्ति किसी प्रकार के भय से विचलित नही होता और न ही किसी प्रलोभन से फिसलता है।

वर्तमान मे आसानी से धर्मपालन : संघ द्वारा

यद्यपि धर्म का पालन अपने अन्तर से होता है। परन्तु वर्तमान युग मे अकेले व्यक्ति का धर्मतत्व पर टिका रहना अत्यन्त कठिन होता है। इसीलिए भगवान् महावीर ने धर्ममय सघ (तीर्थ) की रचना की थी। अपने सघ को उन्होने '**तीर्थ**' नाम दिया। और उसे उन्होने धर्म से ओतप्रोत साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकारूप चतुर्विध धर्मतीर्थ कहा। धर्ममय तीर्थ का मतलव था—धर्म के जरिये ससार-सागर को स्वय तिरने और दूसरो को तिराने वाला धर्ममय सघ या सगठन। ऐसे सघ की धर्ममयता के कारण वहुत अधिक महत्ता है, नदीसूत्र मे तो सघ की काफी उच्च शब्दो से स्तुति की है, यहाँ तक कि सघ को भगवान् वताया है। तीर्थङ्कर भी दीक्षा लेने से पूर्व '**नमो तित्थस्स**' कह कर तीर्थ को नमस्कार करते हैं। इससे फलित यह हुआ कि तीर्थ एक अर्थ मे (सघ) तीर्थङ्कर से भी वडा है।

जैनधर्म के महान् दार्शनिक आचार्य समन्तभद्र ने वृहत्स्वयम्भूस्तोत्र मे कहा है—'**सर्वोदय तीर्थमिदं तवैव**'—प्रभो ! आपका यह तीर्थ सर्वोदय है। इसका मतलव यह है कि यह तीर्थ धर्ममय होने के कारण सभी प्राणियो के उदय, कल्याण और मगलभाव तथा मैत्रीभाव को लेकर चल रहा है।

वर्तमान काल मे धर्म का समाजीकरण आवश्यक

वर्तमान काल मे अन्याय, अनीति, भ्रष्टाचार, वेईमानी, रिश्वतखोरी, ठगी, तस्करता आदि बुराइयाँ वहुत तेजी से वढती जा रही हैं। ये बुराइयाँ एक क्षेत्र मे ही नहीं, मानव-जीवन के सभी क्षेत्रो मे पनप रही हैं। क्या सामाजिक, क्या आर्थिक, क्या राजनैतिक, क्या सांस्कृतिक, क्या शैक्षणिक और क्या धर्म-साम्प्रदायिक सभी क्षेत्रो मे पूर्वोक्त बुराइयो ने अपना पजा जमा रखा है, इसलिए बुराइयाँ जिस तेजी से और जिस अनुपात मे वढती जा रही हैं, उन्हें निवारण करने के लिए उतनी ही तेजी से और सामूहिक रूप में उतनी ही तीव्रता से संगठित हो कर धर्मात्मा पुरुषो को उनका सामना करने तथा उनसे लोहा लेने की जरूरत है। अन्यथा, बुराइयाँ आगे वढ जायेंगी, धर्म वहुत पीछे रह जायगा। आज भारतवर्ष मे धर्मात्माओ या धर्मोपदेशको की कमी नही है। इतने धर्मात्मा पुरुषो और धर्मोपदेशको के होते हुए भी ये अनिष्ट रुकते क्यो नही ? क्यो अधिकाधिक पनपते जाते हैं ? इतने उपदेशो के होते हुए भी व्यक्ति वदलता क्यो नही ? इसका कारण है परिस्थिति-परिवर्तन का अभाव।

विचार-परिवर्तन के लिए धर्मोपदेश, लेख आदि साधन हैं। मगर इतने मात्र से व्यक्ति के जीवन मे कोई तब्दीली नही आती। परिस्थिति-परिवर्तन के लिए सबसे पहला काम अलग-अलग भूमिकाओ के लोगो को अलग-अलग सगठित करना और साथ ही उन्हे नीति, धर्म और आध्यात्म के सस्कारो से ओतप्रोत करना। व्यक्ति की व्यक्तिगत साधना भी तभी निरापद एव निर्द्वन्द्व हो सकेगी।

यही कारण है कि भगवान् महावीर या उनसे पूर्व के सभी तीर्थङ्करो ने व्यक्ति की अपेक्षा सघ को महत्त्व दिया है। जैनधर्म सदा से ही सघवादी रहा है, व्यक्तिवादी नही। व्यक्ति की अपेक्षा यहाँ सघ को बडा माना गया है। इसका यह मतलब नही कि व्यक्ति का अपना कोई मूल्य नही। हालाकि तीर्थ की स्थापना कोई एक व्यक्ति करता है। परन्तु वह व्यक्ति स्वय सघ की महत्ता को स्वीकार करता है और दूसरो को भी इसी माध्यम से स्वीकार करने की प्रेरणा देता है।

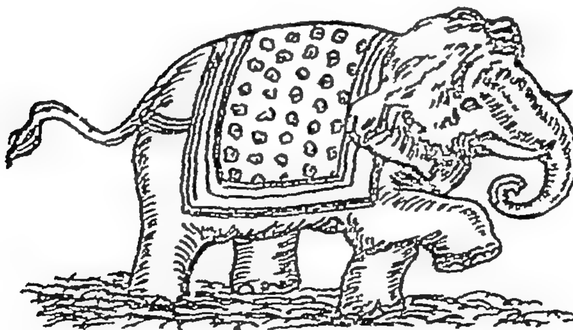
निष्कर्ष यह निकला कि साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चारो ही कोटि के धर्मात्माओ को आज धर्मदृष्टि से सगठित और एकजूट हो कर अनिष्टो और बुराइयो से जूझना होगा और उन पर विजय प्राप्त करनी होगी।

वीरायतन इसी प्रकार की सर्वोदयी धर्ममय समाजरचना के प्रयोग की दिशा मे महत्वपूर्ण कदम है, जिसके माध्यम से मार्गानुसारी और व्रतधारी श्रावक की तरह नीतिनिष्ठ जनसगठन और व्रतबद्ध धर्मनिष्ठ जनसेवक-सगठन, दोनो प्रकार की जनता तैयार की जायगी। जनता के सगठन मे प्रविष्ट होने वालो के लिए सप्त कुव्यसन-त्याग तो अनिवार्य होगे। इसके अलावा तोड-फोड लूट, हत्या, दगा, मारपीट, आगजनी, अन्याय, अत्याचार आदि, नीति-धर्म-विरुद्ध एव मानवता के विरोधी अनिष्टो से भी दूर रहेंगे। अपने झगडे, मसले, समस्याएँ और प्रश्न, आपस मे प्रेम, शान्ति, सद्‌भाव, न्याय और नीतिपूर्वक जनसेवको द्वारा सामूहिक अहिंसक तरीके से निपटाए जाय, सुलझाए जाय। रिश्वतें वापिस लौटवाई जाय। इस प्रकार वीरायतन के माध्यम से व्रती जनसेवक और महाव्रती साधु-साध्वी की शक्तियाँ मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे जनता के सस्कारो मे नीति, न्याय, सत्य, अहिंसा, सयम, तप आदि शुद्ध धर्म को प्रवेश करने एव नैतिक सस्कारो से ओतप्रोत करने का भगीरथ धर्ममय-समाजनिर्माण का प्रयोग वीरायतन के माध्यम से हो सकेगा। इसके लिए वीरायतन के मार्गदर्शक एव प्रेरणास्तम्भ राष्ट्रसत उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० सतत प्रयत्नशील हैं तथा उनकी छत्रछाया मे कतिपय साधु-साध्वीवृन्द भी पुरुषार्थ कर रहा है। उपाध्यायश्रीजी चाहते हैं कि वीरायतन के माध्यम से गाँव-गाँव मे शुद्ध धर्म और नीति की ज्योति जगाई जाय, घर-घर मे व्यसनमुक्ति का अलख जगाया जाय। जनता धर्म से इतनी अभ्यस्त हो जाय कि उसकी कोई भी प्रवृत्ति धर्म के विपरीत न हो, जीवन की तमाम गुत्थियाँ धर्मदृष्टि से सुलझाई जाय। वीरायतन इसी प्रकार का धर्ममय समाजनिर्माणकेन्द्र बनेगा।

वस्तुत. वह एक धर्ममय तीर्थं बनेगा, जिसके माध्यम से नीति से ले कर धर्म और अध्यात्म की व्यक्तिगत और सामूहिक दोनो प्रकार से भलीभाँति साधना हो सकेगी।

वीरायतन एक ऐसा सस्थान होगा, जहाँ शान्त, एकान्त पवित्र वातावरण मे रह कर उच्चकोटि के आध्यात्मिक साधक ध्यान, मौन, तप, जप, अध्ययन आदि द्वारा आत्म-साधना कर सकेंगे। जहाँ वे भौतिक सघर्षो से ऊपर उठ कर अध्यात्म के मधुर वातावरण मे ओतप्रोत हो सकेंगे। जहाँ आधि, व्याधि और उपाधि से दूर रह कर कुछ लोग सेवा, श्रम एवं कर्मयोग की साधना भी करेंगे; इस प्रकार वे अपने जीवन का निरीक्षण-परीक्षण और शोधन करके उसे भलीभाँति माज सकेंगे। अहिंसा, सयम और तप की त्रिवेणी को व्यक्ति और समाज के जीवन मे प्रवाहित कर सकेंगे।

तभी धर्म की पूर्वोक्त (वस्तु-स्वभाव) परिभाषा के अनुसार व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एव विश्व की आत्माएँ वीरायतन के माध्यम से आत्मा के वस्तु-स्वभाव में—सत्य-अहिंसादि गुणो मे स्थिर हो सकेंगी, यानी स्वभाव से विभाव—परभाव मे—क्रोध, मान-माया, लोभ, मोह, घृणा, काम अहकार आदि तथा धन-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद, कुटुम्ब-सम्प्रदाय आदि परभावो से दूर हट कर आत्म-स्वभाव मे लीन हो सकेंगी। और तभी समाज, राष्ट्र और विश्व की आत्माएँ दुर्गति में जाने से तथा बुराइयो मे फँसकर पतित होने से बचाई जा सकेंगी। तभी विश्वात्माओ मे आनन्दकन्द सच्चिदानन्द की परम ज्योति जगाई जा सकेगी।





वीरायतन : साधक-निर्माणस्थली बनें !

शकरलाल जैन एडवोकेट



राष्ट्रीय सत अमरमुनिजी ने भगवान् महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी के अवसर पर वीरायतन-योजना का श्रीगणेश कर एक अभूतपूर्व कदम उठाया है। स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, अरविन्द घोप इत्यादि महान सन्तो की वाणी को अमर वनाने के अनेक प्रयास भारत मे चल रहे हैं। महान् जैनमुनियो के दैनिक जीवन से यह प्रगट है कि उनकी विद्वत्ता वीरवाणी को भी घर-घर मे ले जाने का कार्य कर रही है। किन्तु ऐसा लगता है, वीरपुत्रो के दैनिक जीवन मे और भगवान् महावीर का गुणगान करने वाले साधुओ की चर्या मे जमीन-आसमान का अन्तर है। एक सिर्फ सामायिक करके अपने कर्तव्यो की इतिश्री समझता है, तो दूसरा, ससार के सब झझटो से मुक्त हो कर ओसवाल-पोरवाल-अग्रवाल आदि विशिष्ट समाजो का धर्मोपदेशक बन कर पचमहाव्रतो की प्रतिज्ञा लिये जीवन जी रहा है। एक रात-दिन लक्ष्मी की उपासना मे रत रह कर सहस्रपति से लखपति, लखपति से करोड पति और उसमे भी अपनी तृष्णा का अंत नही समझता है तो दूसरा अपरिग्रहवाद की चरम सीमा तक पहुँच कर एक पैसा भी अपने पास रखना पाप समझता है। दोनो की दूरी इतनी अधिक है कि चातुर्मासकाल मे प्रतिदिन होने वाले तीन-तीन व्याख्यान भी उसे पाट नही सके हैं। इस दृष्टि से महान् उद्देश्य की पूर्ति हेतु वीरायतन योजना का स्वागत है। आज लाखो-करोडो मन्दिर-स्थानक के लिये दान देने वाले मौजूद हैं, गोपालको, चीटीपालको की भी कमी नही है। रातदिन अर्थोपार्जन मे व्यस्त रह कर उपार्जित धन का एक दो फीसदी दे कर 'दानवीर' कहलाने की होड भी लगती हुई दिखाई दे रही है किन्तु योग्य युवको को 'वीर-पुत्र' वना कर भगवान् की वाणी का सही रूप से प्रचार करने के लिये प्रेरणा देने वाला कोई दिखाई नही देता। पाँच पचास आत्मकल्याणक वारह व्रतधारी श्रावक भले ही होंगे, जो स्थानक-मन्दिर-उपाश्रयो मे बैठ कर स्वशुद्धि की वात सोचते होगे, किन्तु उनके शुद्ध जीवन की सुगन्धि दूर-दूर तक नही फैल पाती और वे इसी मे सन्तोप कर बैठते हैं कि उनका जीवन सुधर रहा है, मृत्यु के पश्चात् उनको अच्छी 'गति' मिलेगी। आज आवश्यकता है ऐसे सैकडो-सहस्रो युवको की जो शिक्षित-प्रशिक्षित हो कर सीमित साधनो से सन्तुष्ट हो कर परिग्रह की सीमा निर्धारित कर अपने ओजस्वी जीवन को समाज के चरणो

मे समर्पित कर दें और उसे उसे मानवकल्याण के लिये खपा दे। यह कार्य यदि राष्ट्रसंत की वीरायतन-योजना कर पाई तो लक्ष्मीप्रधान जैनसमाज के लिये यह एक बहुत बडा चमत्कार होगा।

वैशाली मे स्थापित 'वीरायतन' सर्वप्रथम दस-बारह साधक-प्रचारक देश को दे, जो प्रान्तीय राजधानियो मे बैठ कर प्रदेश-स्तर पर चलने वाली जैन गतिविधियो का संगठन करें तथा उनके प्रेरणास्रोत बनें। जो साधक बनने की इच्छा रखते हो, उनके लिये निम्नलिखित शर्तें अनिवार्य मानी जावें :—

(१) कम से कम स्नातक की योग्यता रखते हो, सस्कृत एव प्राकृत भाषा का ज्ञान हो और जैनदर्शन की जानकारी रखते हो।

(२) सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करने के अभिलाषी हो, पारिवारिक दायित्वो से मुक्त हो, यथासभव अविवाहित हो अथवा पति-पत्नी दोनो शिक्षित हो तथा साधक बनने की अभिलाषा रखते हो।

(३) विशाल दृष्टिकोण रखते हो, मानवसेवा का ध्येय लेकर सही अर्थों मे वीर-पुत्र बनने की कामना रखते हो तथा समाज व देश के लिये जीवनसमर्पण करना चाहते हो।

(४) उनमे नेतृत्व करने के गुण विद्यमान हो, वक्ता व लेखक हो तथा साधु-प्रकृति के हो।

(५) पिछला जीवन आदर्श रहा हो, सुसंस्कारी हो तथा समाज से न्यूनतम लेकर अधिकतम देने की भावना रखते हो।

उक्त श्रेणी के कार्यकर्त्ताओ को राजगृही मे समुचित प्रशिक्षण दिया जावे तथा उन्हे समाजसेवा के लिये तैयार किया जावे। महावीर की कर्मस्थली एक तरह से 'साधक-निर्माणस्थली' बन जावे और प्रति दो वर्ष के पश्चात् कम से कम दस सेवाभावी साधक समाज को दे सके, ऐसी योजना बनाई जावे।

योग्य प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् ऐसे साधको को एक समाचारी बनाकर समाजसेवा के लिये प्रस्तुत कर दिया जावे। उनकी वेष-भूषा, जीवनयापन की पद्धति, दिनचर्या इत्यादि सभी सुनिश्चित कर दी जावे तथा वे अनुशासनबद्ध हो कर सेवाभावना से समाज मे विचरण करने लग जावें, ऐसा दृष्टिकोण रखा जावे।

साधक-प्रचारको के सम्बन्ध मे निम्न बातो को केन्द्रीय कार्यालय ध्यान मे रक्खें तथा उनकी पूर्ति की ओर सचेष्ट रहे—

(१) उनकी जीविका सम्मानपूर्वक चलती रहे तथा उन्हे अर्थोपार्जन की कोई चिन्ता नही रहे। समाचारी के अनुसार उनकी न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति होती रहे।



पद्मासनबद्ध स्तुति-मुद्रा के साथ ध्याननिरत !
विपुलाचल की उपत्यकाओ मे उपाध्याय श्रीअमरचन्दजी महाराज !



वीरायतन : महावीर-दृष्टि से योग-साधनाश्रम

साध्वी चेतना

राजगृह (नालंदा)



भारतीय धर्मों और दर्शनो ने आत्मा को केन्द्र मे रख कर महान् पुरुषार्थ किये हैं। यहाँ के विभिन्न साधको ने अध्यात्म-साधना के द्वारा बड़ी-बड़ी शक्तियाँ, सिद्धियाँ और लब्धियाँ प्राप्त की हैं। साथ ही उनसे मन, इन्द्रियो, बुद्धि, चित्त और अन्त करण को निर्मल बनाया है। योगदर्शन इसी तरह का एक भारतीय दर्शन है; जिसका जीवन से सीधा सम्बन्ध है। योग-विद्या, योग-दर्शन, योग की विचार-पद्धति भारत मे अतिप्राचीनकाल से चली आ रही है। योग-पद्धति एक अध्यात्म-पद्धति है, जीवन-सिद्धि का दर्शन है और चित्त-शोधन का मार्ग है। महर्षि पतजलि पहले व्यक्ति हैं, जिन्होने योग-विद्या पर क्रमबद्धरूप से योगसूत्रो की रचना की। पातजल योग-दर्शन मे योग-सम्बन्धी सभी बातें दे दी हैं। योग का मूलाधार परमात्मप्राप्ति है। जैनपरम्परा मे आचार्य हरिभद्र ने योगदृष्टि समुच्चय, योग-विन्दु, योग-शतक और योग-विशति आदि ग्र थो की रचना की है। बौद्धपरम्परा मे योग-विद्या का प्रसिद्ध ग्र थ है—विशुद्धिमार्ग। इस प्रकार भारतीय धर्मो की प्रत्येक शाखा ने योग के सम्बन्ध मे कुछ न कुछ सिद्धान्तो का निरूपण किया है, और उन सिद्धान्तो के साथ ही, उसकी साधना के तरीको की ओर भी कुछ निर्देश किया है।

जैन-परम्परा मे भगवान् पार्श्वनाथ को परम योगी कहा जाता है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने योगशास्त्र मे भगवान् महावीर को योगीनाथ कहा है। भगवान्

पार्श्वनाथ ने तथा भगवान् महावीर ने योग की गहरी साधना की थी। और उस साधना के बल पर ही उन्हे सर्वज्ञता और वीतरागता उपलब्ध हुई थी। जैन-दर्शन के अनुसार मानव-जीवन का उच्चतम आदर्श है—वीतरागता और सर्वज्ञता। यदि जीवन मे वीतरागता प्रगट न हो तो सर्वज्ञता किसी भी प्रकार सम्भव नही है। साधक वीतराग बन कर ही सर्वज्ञ बन सकता है। और वीतरागता की उपलब्धि योग-साधना एव ध्यान-साधना के बिना सम्भव नही है। जैन-परम्परा मे योग की अपेक्षा तप शब्द अधिक प्रचलित है। और तपो के द्वादशभेदो मे अन्तिम भेद ध्यान है। ध्यान की साधना से ही जीवन मे वीतरागता और सर्वज्ञता की ओर साधक बढता है। जैन-परम्परा के प्रत्येक तीर्थंकर ने तप और ध्यान की साधना की है। तप का अर्थ है—इच्छानिरोध और ध्यान का अर्थ है—अपने स्वरूप मे स्थित हो जाना। ध्यान जब पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, तब उसे शुक्लध्यान कहा जाता है। शुक्ल-ध्यान के बिना केवलज्ञान सम्भव नही है।

भगवान् महावीर की पावन जीवनगाथाओ का जब हम अध्ययन, अवलोकन करते हैं, और उनके प्रतिपादित तत्वो का जब हम चिंतन करते हैं, तब हमे ज्ञात होता है, कि भगवान् महावीर ने दीर्घकाल तक तप की आराधना किस प्रकार की थी और ध्यान की साधना किस प्रकार की थी। तप और ध्यान की साधना ही भगवान महावीर को अत्यन्त प्रिय थी। आगमो मे अनेक स्थानो पर उनके दुष्कर तप के तथा निर्मल ध्यान के वर्णन उपलब्ध होते हैं। भगवान् महावीर का साधनामय जीवन इस बात का साक्षी है कि वे केवल योगी ही नही, बल्कि योगीनाथ थे। चित्तवृत्तियो के विकारों को हटा देना ही योग-साधना का चरम लक्ष्य है। जिस व्यक्ति ने योग की साधना करते करते अपने चित्त के विकार और विकल्पो को मिटा दिया, वही व्यक्ति वस्तुत योग-साधना के प्रयोगो मे सफल हो सकता है।

जैन आचार्यों ने योग-विद्या के सम्बन्ध मे बहुत कुछ लिखा है। परन्तु उनका केवल रटन कर लेने से ही योगविद्या हस्तगत नही हो जाती, उसके लिए दीर्घकाल तक अभ्यास अपेक्षित है। साथ ही यह भी अपेक्षित है कि सरल मार्ग और सरल पद्धति से वर्तमान युग के जिज्ञासु साधक को योग, ध्यान और तप के प्रयोग कराये जाएँ भ० महावीर ने जिस प्रकार योगसाधना के सिद्धान्तो को जीवन मे उतारा था, क्रिया मे परिणत करके बताया था, उसी प्रकार उन विलुप्त एवं पोथीपन्नो मे बद्ध सिद्धान्तो को क्रिया मे परिणत किया जाए, साधना मे उतारा जाए। तभी वर्तमान जीवन की समस्याओ को सुलझाने मे कुछ सूत्र उपलब्ध हो सकते हैं।

इसी अपेक्षा को पूर्ण करने के लिए राजगृह मे वीरायतन एक केन्द्र है। वीरा-यतन-सस्थान मे सचमुच योग साधना के लिए जिस पवित्र, सरल वातावरण, शान्त,

(२) उनके निवास की समुचित व्यवस्था हो। निवास-स्थान आश्रम सरीखे शान्त वातावरण मे हो तथा वह आकर्षण का केन्द्र हो तथा साधुमना समाज-सेवक के रहने के लिये सर्वथा अनुकूल हो।

(३) उनके प्रवास, पत्र-व्यवहार एवं प्रचारकार्य की समुचित व्यवस्था कर दी जावे। प्रचारसामग्री केन्द्रीय कार्यालय से भी भेजी जा सकती है।

आज देश मे सहस्रो स्थानक हैं, सैकडो उच्चकोटि के मन्दिर हैं, हजारो सस्थाएँ—शाला-पाठशाला-गुरुकुल-कालेज इत्यादि हैं, किन्तु वे सब बिखरे हुए हैं। उनकी भिन्न-भिन्न प्रबन्धकारिणी भले हो, किन्तु उन्हें प्रेरणा देने वाला महापुरुष कोई अवश्य हो, जो उन्हे अपने प्रान्त मे निकट लाने का काम कर सके, समय-समय पर शिविर-सम्मेलन, कैम्पो का आयोजन कर सके तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्तियो का सही माने मे 'इन्सानियत' की शिक्षा अपने जीवन व वाणी से दे सके। यह कार्य उक्त साधको द्वारा सभव हो सकता है। ऐसे साधको की टोली प्रान्त-प्रान्त मे खडी हो, यह काम अत्यन्त आवश्यक है और उसे हाथ मे लेने का बीडा 'वीरायतन' को शीघ्रातिशीघ्र उठाना है। शाला, विद्यालय, मन्दिर, स्थानक आवश्यक हैं, किन्तु यह काम अति महत्वपूर्ण है इसके बिना अकेली साधुसस्था बदलती हुई दुनिया मे जैनसमाज को मौलिक परिवर्तन की ओर नही ले जा सकती।

आज समाज का ढाचा चरमरा रहा है। हम लक्ष्मीपति होकर भी शोषक, मुनाफाखोर व जमाखोर पहले हैं। हमारी उक्त प्रकार से अप्रतिष्ठा हो रही है, इस पर हमे प्रहार करना है। यह कार्य एक महान् सकल्प के बिना पूरा नही हो सकता। उसके लिये साधुसस्था को ऐसे सैकडो साधुमना अनुभवी प्रशिक्षित युवको की आवश्यकता है, जो भारत के कोने-कोने मे जाकर वीरवाणी का उद्घोष कर सकें। उनका भाषण केवल प्रलाप बन कर नही रह जावे, इसके लिए उनका जाज्वल्यमान, त्यागी, तपस्वी जीवन बोले। हम आशा करें कि 'वीरायतन' का श्रीगणेश हमारी इस आकाक्षा की पूर्ति करेगा।





वीरायतन : महावीर-दृष्टि से योग-साधनाश्रम

साध्वी चेतना

राजगृह (नालदा)



भारतीय धर्मों और दर्शनो ने आत्मा को केन्द्र मे रख कर महान् पुरुषार्थ किये हैं। यहाँ के विभिन्न साधको ने अध्यात्म-साधना के द्वारा बडी-बडी शक्तियाँ, सिद्धियाँ और लब्धियाँ प्राप्त की है। साथ ही उनसे मन, इन्द्रियो, बुद्धि, चित्त और अन्त करण को निर्मल बनाया है। योगदर्शन इसी तरह का एक भारतीय दर्शन है, जिसका जीवन से सीधा सम्बन्ध है। योग-विद्या, योग-दर्शन, योग की विचार-पद्धति भारत मे अतिप्राचीनकाल से चली आ रही है। योग-पद्धति एक अध्यात्म-पद्धति है, जीवन-सिद्धि का दर्शन है और चित्त-शोधन का मार्ग है। महर्षि पतजलि पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने योग-विद्या पर क्रमबद्धरूप से योगसूत्रो की रचना की। पातजल योग-दर्शन मे योग-सम्बन्धी सभी बातें दे दी हैं। योग का मूलाधार परमात्मप्राप्ति है। जैनपरम्परा मे आचार्य हरिभद्र ने योगदृष्टि समुच्चय, योग-बिन्दु, योग-शतक और योग-विंशति आदि ग्रथो की रचना की है। बौद्धपरम्परा मे योग-विद्या का प्रसिद्ध ग्रथ है—विशुद्धिमार्ग। इस प्रकार भारतीय धर्मों की प्रत्येक शाखा ने योग के सम्बन्ध मे कुछ न कुछ सिद्धान्तो का निरूपण किया है, और उन सिद्धान्तो के साथ ही, उनकी साधना के तरीको की ओर भी कुछ निर्देश किया है।

जैन-परम्परा मे भगवान् पार्श्वनाथ को परम योगी कहा जाता है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने योगशास्त्र मे भगवान् महावीर को योगीनाथ कहा है। भगवान्

पार्श्वनाथ ने तथा भगवान् महावीर ने योग की गहरी साधना की थी। और उस साधना के बल पर ही उन्हें सर्वज्ञता और वीतरागता उपलब्ध हुई थी। जैन-दर्शन के अनुसार मानव-जीवन का उच्चतम आदर्श है—वीतरागता और सर्वज्ञता। यदि जीवन मे वीतरागता प्रगट न हो तो सर्वज्ञता किसी भी प्रकार सम्भव नही है। साधक वीतराग बन कर ही सर्वज्ञ बन सकता है। और वीतरागता की उपलब्धि योग-साधना एवं ध्यान-साधना के बिना सम्भव नही है। जैन-परम्परा मे योग की अपेक्षा तप शब्द अधिक प्रचलित है। और तपो के द्वादशभेदो मे अन्तिम भेद ध्यान है। ध्यान की साधना से ही जीवन मे वीतरागता और सर्वज्ञता की ओर साधक बढता है। जैन-परम्परा के प्रत्येक तीर्थंकर ने तप और ध्यान की साधना की है। तप का अर्थ है—इच्छानिरोध और ध्यान का अर्थ है—अपने स्वरूप मे स्थित हो जाना। ध्यान जब पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, तब उसे शुक्लध्यान कहा जाता है। शुक्ल-ध्यान के बिना केवलज्ञान सम्भव नही है।

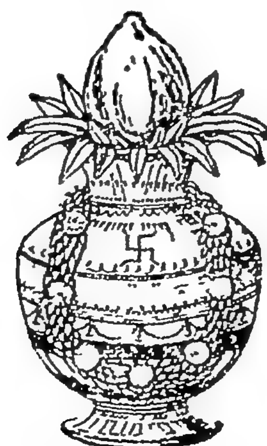
भगवान् महावीर की पावन जीवनगाथाओ का जब हम अध्ययन, अवलोकन करते हैं, और उनके प्रतिपादित तत्वो का जब हम चिंतन करते हैं, तब हमे ज्ञात होता है, कि भगवान् महावीर ने दीर्घकाल तक तप की आराधना किस प्रकार की थी और ध्यान की साधना किस प्रकार की थी। तप और ध्यान की साधना ही भगवान महावीर को अत्यन्त प्रिय थी। आगमो मे अनेक स्थानो पर उनके दुष्कर तप के तथा निर्मल ध्यान के वर्णन उपलब्ध होते हैं। भगवान् महावीर का साधनामय जीवन इस बात का साक्षी है कि वे केवल योगी ही नही, बल्कि योगीनाथ थे। चित्तवृत्तियो के विकारो को हटा देना ही योग-साधना का चरम लक्ष्य है। जिस व्यक्ति ने योग की साधना करते करते अपने चित्त के विकार और विकल्पों को मिटा दिया, वही व्यक्ति वस्तुत. योग-साधना के प्रयोगो मे सफल हो सकता है।

जैन आचार्यों ने योग-विद्या के सम्बन्ध मे बहुत कुछ लिखा है। परन्तु उनका केवल रटन कर लेने से ही योगविद्या हस्तगत नही हो जाती, उसके लिए दीर्घकाल तक अभ्यास अपेक्षित है। साथ ही यह भी अपेक्षित है कि सरल मार्ग और सरल पद्धति से वर्तमान युग के जिज्ञासु साधक को योग, ध्यान और तप के प्रयोग कराये जाएँ भ० महावीर ने जिस प्रकार योगसाधना के सिद्धान्तो को जीवन मे उतारा था, क्रिया मे परिणत करके बताया था, उसी प्रकार उन विलुप्त एवं पोथीपन्नो मे बद सिद्धान्तो को क्रिया मे परिणत किया जाए, साधना मे उतारा जाए। तभी वर्तमान जीवन की समस्याओ को सुलझाने मे कुछ सूत्र उपलब्ध हो सकते हैं।

इसी अपेक्षा को पूर्ण करने के लिए राजगृह मे वीरायतन एक केन्द्र है। वीरायतन-सस्थान मे सचमुच योग साधना के लिए जिस पवित्र, सरल वातावरण, शान्त,

एकान्त स्थान, प्राकृतिक सुषमा और तरुछटा एवं वनसम्पर्क की आवश्यकता है, वह राजगृह स्थित वीरायतन मे उपलब्ध है। इसी वर्ष आगामी नवम्बर मास मे यहाँ ध्यान के प्रयोग किये जा रहे है। वीरायतन का लक्ष्य है—विविध प्रकार की योगपद्धतियो का समन्वय करके साधको के समक्ष सरस और सरल योगपद्धति द्वारा योग-साधना के प्रयोग करके उनके जीवन मे एक नया मोड दिया जाए। अत वीरायतन अध्यात्म-साधना का एक मुख्य केन्द्र रहेगा, जहाँ पर विविध प्रकार की अध्यात्म-साधनाएँ सिद्धान्त के रूप मे और प्रयोगरूप मे साधको को बतलाई जाएगी। जो व्यक्ति वर्तमान भौतिकवादी अशात वातावरण से ऊब चुके हो, उनके लिए वीरायतन के एकान्त वातावरण मे रहकर योगसाधना करना उचित ही होगा। भगवान् महावीर ने ध्यानपद्धति किस प्रकार की बतलाई थी ? बुद्ध ने किस प्रकार ध्यान के प्रयोग किए ? इन सबका समन्वितरूप यदि आज की जन-चेतना के समक्ष रखा जाए, तो कोई कारण नही है, कि लोग उससे लाभान्वित न हो। वीरायतन की अध्यात्म-साधना के अन्तर्गत योग-साधना को प्रधानता की गई है। ध्यान-साधना और योग-साधना के विलुप्त प्रयोग की फिर से खोज करनी होगी और टूटे हुए सम्बन्धो को फिर से जोडने का प्रयास करना होगा। वीरायतन ने इस दिशा मे कुछ कार्य करने का सकल्प किया है, और उसका प्रथम प्रयोग भी कुछ समय बाद वीरायतन की पुण्यभूमि पर किया जा रहा है।

भविष्य मे वीरायतन योगसाधना के माध्यम से स्थायीरूप से व्यक्ति का जीवन शुद्ध एव पवित्र रह सके, इस प्रकार के प्रयोग करेगा, जिससे वर्तमान युग के विपाक्त जीवन की समाप्ति हो और जनजीवन भी शान्त, धर्ममय व शुद्ध बने।





राजगृह में वैभारगिरि पर्वत की सप्तपर्णी गुफा में
ध्यानस्थ उपाध्याय अमरमुनिजी



महावीर के उपदेशो को लोकजीवन मे उतारने का माध्यम :

वीरायतन

—कु० निर्मला गांधी जैन 'अचल'
अध्यक्ष, वीरायतन बालिका सघ, राजगृह



महाश्रमण भगवान् महावीर श्रमण-सस्कृति के सस्थापक नही थे, अपितु वे श्रमण-सस्कृति के उन्नायक अवश्य थे। क्योकि श्रमण-सस्कृति की दीर्घ परम्परा भगवान ऋषभदेव से प्रारम्भ हो कर नेमिनाथ के युग तक परिपुष्ट हो चुकी थी। और भगवान् पार्श्वनाथ के युग मे आ कर वह व्यापक और विराट् भावनाओ से परि-पूर्ण हो कर अपनी समुन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी। भगवान् पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म का प्रभाव बौद्ध-धर्म पर पर्याप्त रूप मे पड चुका था। भगवान् महा-वीर ने अपने पञ्च महाव्रतो का जो परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप जन-चेतना के समक्ष रखा था, उसका मूल रूप भगवान् पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म मे था। इस प्रकार श्रमण-सस्कृति भगवान् महावीर के युग तक इतनी प्रभावक हो चुकी थी, कि वैदिक-परम्परा के साहित्य पर भी इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। भगवान् महावीर ने अपने जीवनकाल मे जिन नैतिक नियमो का उपदेश दिया था, उसे जैन परिभाषा मे अणुव्रत तथा महाव्रत कहा जाता है। भगवान महावीर की देशना जन-जन के मगल के लिए तथा समाज और राष्ट्र सभी के उत्थान के लिए थी। भगवान् महावीर ने ग्राम-धर्म नगर-धर्म राष्ट्र-धर्म आदि का उपदेश दिया था। इस प्रकार भगवान महावीर का उपदेश लोक-कल्याण और लोक-मगल के लिए था। उनके उपदेश की सार्थकता जितनी उनके स्वय के युग मे थी, उससे भी अधिक उनके उपदेश की आवश्यकता आज के मनोविकारग्रस्त व्यक्ति, समाज

और राष्ट्र को है। आज व्यक्ति-व्यक्ति और समाज-समाज मे जो एक प्रकार का वर्ग सघर्ष चल रहा है, निश्चय ही उसके मूल मे मानवीय मन की कलुपित वृत्ति सर्वाधिक करणीभूत है।

प्रश्न उठता है, कि भगवान् महावीर की देशना क्या थी ? उनका उपदेश किस प्रकार का था ? उत्तर मे कहा जा सकता है कि भगवान् महावीर का उपदेश तीन रूपो मे सर्वजनपरिचित विख्यात है—अहिसा, अनेकान्त और अपरिग्रह। यद्यपि अहिसा और अपरिग्रह के सम्वन्ध मे अन्य धर्मों मे भी कुछ नैतिक नियम उपलब्ध होते हैं। किन्तु अनेकान्त के सम्वन्ध मे अन्य परम्पराओ मे कुछ भी नही कहा गया। पर यह सत्य है कि भगवान् महावीर के अनेकान्तवाद का किसी न किसी रूप मे अन्य सभी सम्प्रदायो पर प्रत्यक्ष रूप मे या परोक्षरूप मे व्यापक प्रभाव पडा है। हम देखते हैं, कि अन्य धर्मों ने अपने-अपने सम्प्रदायगत ग्रन्थो मे जहाँ जैन-धर्म का खण्डन किया है, वहाँ अनेकान्तवाद का खण्डन ही उपलब्ध होता है। बौद्ध-दार्शनिको ने तथा वैदिक दार्शनिको ने भगवान् महावीर के अनेकान्तवाद का खण्डन अवश्य ही किया है, दूसरी ओर जैन-परम्परा के समर्थ दार्शनिक आचार्यों ने, जिनमे सिद्धसेन दिवाकर और समन्तभद्र प्रमुख हैं, उन्होने अपनी पूरी शक्ति अनेकान्त के विकास मे, तथा अनेकान्त पर होने वाले आक्षेपो को निवारण करने मे लगाई है।

भगवान् महावीर ने कहा था कि अहिसा जव तक मानव-जीवन के धरातल पर नही उतरेगी, तव तक न वह स्वयं सुखी होगा, और न समाज ही सुखी हो सकेगा। समाज हैं, व्यक्ति मूलक और व्यक्ति है—समाज का घटक। जव व्यक्ति ही अशान्त हो तव समाज शान्त कैसे हो सकता है ? इस समस्या का महावीर ने एक ही समाधान दिया, कि अपने प्रेम को प्राणी-मात्र मे व्याप्त कर दो। अपने प्रेम की परिधि को इतना व्यापक और विस्तृत वना दो, कि उसकी सीमा से वाहर एक भी प्राणी न रह सके, और जव तुम स्वय जगत पर प्रेम की वर्पा करोगे, तो निश्चय ही दूसरो से तुम्हे प्रेम ही उपलब्ध होगा। प्रेम देने से ही प्रेम उपलब्व होता है। महावीर ने कहा था—कुछ पाने का अधिकार उसे ही मिलता है, जिसने कुछ देना सीखा हो। इस जगत मे मनुष्य वह उपलव्व करता है, जो कुछ प्रदान करता है। जो कुछ दिया जाता है, वही हमारे पास लौट कर वापिस आ जाता है। पर्वत ही गहरी कन्दराओ से हम वही प्रतिध्वनि सुनते हैं, जो कुछ हम उसे प्रदान करते हैं। जव कुछ दिया ही नही गया, तव आपके पास कुछ लौट कर भी कैसे आएगा। अतः भगवान् महावीर का अहिसासिद्धान्त सर्व-जनहिताय, सर्व-जनकल्याणाय और सर्व-जनमगलाय था।

भगवान् महावीर के युग का समाज भी वहुत अधिक स्वस्थ समाज नही था। जो विकार, जो परिदोप आज हमे समाज मे दृष्टिगोचर होते हैं, वे ही विकार और

वे ही परिदोष उस युग के समाज मे भी थे। भगवान् महावीर ने कहा था कि पाप का मूल लोभ एव तृष्णा है। जगत मे जहाँ कहीं पापो का जन्म होता है, उनका मूल मनुष्य की लोभदृष्टि मे ही रहता है। इस लोभवृत्ति को अथवा तृष्णा की भावना को क्षीण करने के लिए भगवान् महावीर ने तत्कालीन समाज को अपरिग्रह का उपदेश दिया था। भगवान् महावीर ने अपने प्रवचनो मे कही पर भी यह नही कहा, कि वस्तु परिग्रह है। उन्होने बार-बार एक ही बात कही थी, कि परिग्रह मूर्छा मे है। व्यक्ति जगत् की जिस किसी वस्तु पर मूर्छा करता है, तब वह परिग्रह बन जाता है। जगत मे न वस्तु बुरी है, और न धन बुरा है, बुरी है—मूर्छा। और जो कुछ मूर्छा है—वही परिग्रह है। मूर्छा-भाव का परित्याग ही महावीर के शब्दो मे वास्तविक अपरिग्रह है। महावीर के अपरिग्रहसिद्धान्त मे से दो अन्य सिद्धान्त प्रतिफलित होते हैं—त्याग और दान। त्याग करने से और दान देने से परिग्रह का विष क्षीण हो जाता है।

त्याग का अर्थ है—छोड देना, और दान का अर्थ है—स्वायत्त सम्पत्ति मे से कुछ दे देना। छोडना और देना—दोनो उलझन भरे शब्द हैं। क्या छोडा जाए और क्या दिया जाए ? एक विकट समस्या है। महावीर ने कहा था, कि जगत के पदार्थों पर तुमने जो अपने मन की ममता को बिखेर रखा है, यदि उस ममता को तुम सर्वतोभावेन छोड सको तो, उस स्थिति मे तुम अवश्य ही त्यागी बन सकोगे। अपने मन की दुर्बलता के कारण यदि ममता का परित्याग करने की सम्पूर्ण क्षमता न हो, तो धीरे-धीरे आशिक रूप मे उसका परित्याग करो। धन अथवा अन्य साधन-सामग्री पर जो एक ममता का भाव परिव्याप्त है, उस धन और साधन-सामग्री का आशिक रूप मे जो छोडना है, शास्त्रकारो ने उसे ही दान की सज्ञा प्रदान की है। जिस वस्तु का दान दिया गया, उतने अश मे ममता कम होती गई। कुछ आज दिया, और कुछ कल दिया तथा कुछ आने वाले भविष्य मे दिया गया—इस प्रकार के देने के अभ्यास से धीरे-धीरे व्यक्ति त्याग की ओर अग्रसर होता जाता है। देने से अपरिग्रह प्रारम्भ होता है, और त्याग मे उसकी परिपूर्णता हो जाती है। इस प्रकार त्याग और दान भगवान् महावीर के उपदेश के मुख्य विषय थे। भगवान् महावीर ने स्वय भी दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व दान दिया था, और अन्त मे सर्वत्यागी हो कर वीतरागता और सर्वज्ञता को उपलब्ध किया था।

किन्तु भगवान् महावीर ने इन प्राणवान् उपदेशो को लोकजीवन मे उतारने तथा अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त के पवित्र सिद्धान्तो को सामूहिकरूप से मूर्तरूप देने के लिए किसी न किसी सुदृढ सस्था की आवश्यकता है, जिससे वर्तमान अशान्त एव समस्याकुल जनजीवन मे वे सिद्धान्त और उपदेश साकार हो सकें।

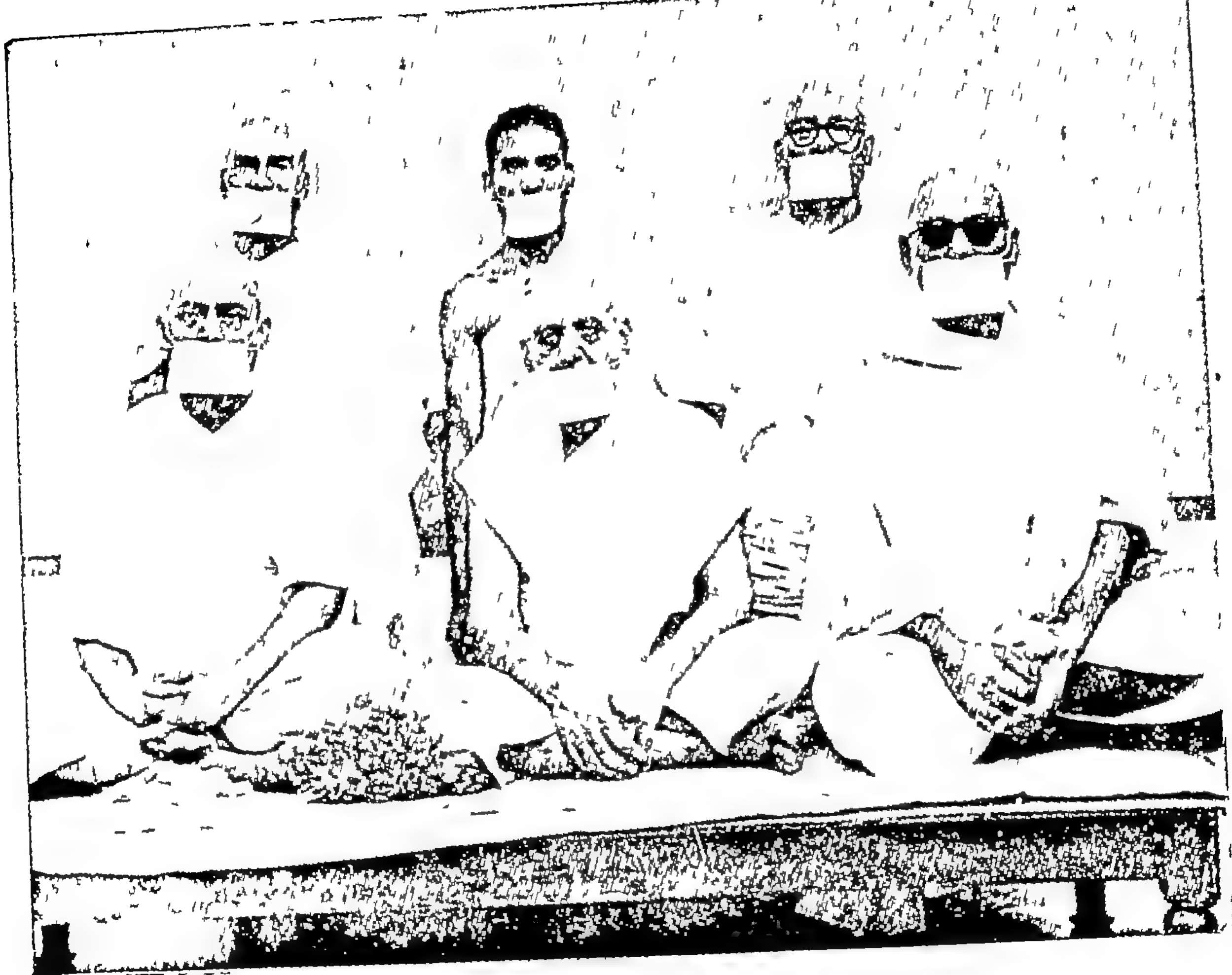
भगवान् महावीर के इन्ही पूर्वोक्त सिद्धान्तो एव उपदेशो को साकाररूप देने के लिए पूज्य गुरुदेव राष्ट्र-सन्त उपाध्याय अमरमुनिजी ने समाज के समक्ष वीरायतन

के रूप एक भव्य योजना प्रस्तुत की है। इस योजना को क्रियान्वित करने के लिए तथा मूर्त रूप देने के लिए दर्शनाचार्या साध्वी चन्दना जी दो वर्षों से निरन्तर समग्र-भाव से परिश्रम कर रही हैं, और आज भी विहार प्रान्त के प्राचीनतम नगर राजगृह मे वे इसी महाउद्देश्य की सपूर्ति के लिए संलग्न है। उनकी छत्रछाया मे मुझे भी वीरायतन की सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। उनके सन्देश को लेकर मैंने अनेक वार पजाव, महाराष्ट्र जैसे सुदूर प्रान्तो की यात्राएँ की हैं। मैंने पाया है, कि समाज के प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति इस पवित्र पर्व पर कुछ महान् कार्य देखना चाहता है। सभी वर्ग के लोगो ने वीरायतनयोजना को खूव-खूव पसन्द किया है, और उसके सहयोग के लिए केवल भावना और अभिवचन ही नही दिए, क्रियान्वित रूप से सहयोग दिया है और भविष्य मे भी सहयोग चालू रखने का सकल्प किया है। हम सवकी यह भावना है, कि हमारा वीरायतन महावीर के उपदेशो को लोकजीवन मे उतारने का माध्यम वने।

अन्त मे, मैं अपनी ओर से समाज के समग्र व्यक्तियो के समक्ष एक वात रखना चाहती हूँ, कि इस वर्ष दीपावली-पर्व पर भगवान् महावीर का निर्वाण शताब्दी वर्ष प्रारम्भ हो रहा है, और आगामी सन् ७५ की दीपावली पर पहुँच कर यह परि-समाप्त होगा।

अत. हम सवको प्रतिज्ञावद्ध हो कर एव अहिंसा आदि व्रतो का सकल्प लेकर अपने एव समाज और राष्ट्र के जीवन को लक्ष्य की दिशा मे ले जाना, पूर्णविकास की मजिल प्राप्त करना है। वीरायतन इस पवित्र कार्य मे हमारा सहायक वनेगा।





एक साथ चार पीढ़ियाँ

मध्य मे प्रवर्तक श्री पृथ्वीचन्दजी महाराज, दाएँ-बाएँ उनके शिष्यरत्न उपाध्याय कविश्री अमरमुनि, सेवाभावी श्री अखिलेशमुनि, पीछे हैं—कविश्रीजी के शिष्य श्रीविजयमुनि, श्रीसुरेशमुनि और मध्य मे उनके शिष्य श्रीजिनेशमुनि



वीरायतन और उसके सहयोगी

कु० शोभना जैन राजगृह
मन्त्री, वीरायतन बालिका संघ



वीरायतन की जिस विशाल योजना की परिचर्चाएँ समाज की चेतना के समक्ष तीन वर्षों से चल रही हैं, वह वीरायतन-योजना क्या है? उसका क्या स्वरूप है? उसके उद्देश्य कितने महान् हैं? इस सम्बन्ध मे मुझ से अनेक प्रान्तो के लोगो ने अनेक बार अनेक प्रश्न पूछे है।

मैंने इन प्रश्नो पर स्वय भी विचार किया है, और यथाशक्य उनका समाधान भी किया है। वीरायतन—योजना के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य को लेकर मैंने महाराष्ट्र और मद्रास जैसे सुदूर प्रान्तो की अनेक बार यात्राएँ की हैं, और समाज के मानस को समझने का प्रयास भी किया हैं। वीरायतन के सम्वन्ध मे समाज के वे व्यक्ति जो इस क्षेत्र से बहुत दूर रहते हैं—इस सम्वन्ध मे वे क्या सोचते हैं, उनके विचार करने की पद्धति क्या है, उनके मन मे क्या-क्या आशकाएँ हैं, और किस प्रकार की कल्पनाएँ हैं? इन यात्राओ मे मैंने सामाजिक-मानस का भली-भाँति अध्ययन किया है।

मैंने अपनी इन तीन लम्वी यात्राओ मे समाज के बुद्धिवादी वर्ग, श्रम-निष्ठ वर्ग ओर पूँजीवादी व्यक्तियो से जो विचार-चर्चाएँ की है, उसका फलित अर्थ यही है, कि मुझे वीरायतन का विरोध कम और सहयोग ही अधिक मिला है। समाज मे अनेक व्यक्ति मुझे इतने भावनाशील मिले, कि वे वीरायतन के लिए सब-कुछ करने को तैयार है। मेरा अपना यह विश्वास रहा है, कि समाज मे सहयोग देने वाले व्यक्तियो की कमी नही है। यदि कमी है, तो केवल सहयोग लेने वालो की। यदि

सामान्य जन-मानस को स्वस्थ एव सही दृष्टिकोण से वीरायतन-योजना के स्वरूप को वताया जाए, तो उनके मुख से सहयोग का स्वर ही नही निकलता, प्रत्युत सक्रिय रूप से पूर्ण सहयोग देने को तैयार रहे है। मैंने अनुभव किया है, कि समाज मे धन-शक्ति, जन-शक्ति और वौद्धिक-शक्ति की कमी नही है। समाज के पास सव कुछ है, वह कुछ करना भी चाहता है, कार्य करने की उसकी भावना कुंठित नही हुई है। परन्तु आवश्यकता इस वात की है कि उसे सही दिशा का निर्देशन मिले।

मैंने वीरायतन के प्रचार के लिए पहली यात्रा महाराष्ट्र के प्रमुख नगर नागपुर से प्रारम्भ की। हमारे यात्रा-दल की अध्यक्षा भावना हेमानी थी। वहाँ के लोगो ने वीरायतन-योजना के सम्वन्ध मे हमारे विचारो को सुन कर सहयोग देने की भावना व्यक्त की, जिसे मैं कदापि विस्मृत नही कर सकूंगी। वीरायतन के उद्देश्य और उसकी भावी योजनाओ के सम्वन्ध मे लोगो ने जिज्ञासा भरे मन से प्रश्न पूछे और पर्याप्त विचार-विनिमय करके भाइयो की अपेक्षा वहनो ने जन-कल्याणप्रद योजना को सक्रिय सहयोग दिया।

मेरी दूसरी यात्रा सौराष्ट्र की थी, जो राजकोट से प्रारम्भ की। राजकोट के सुप्रसिद्ध एव प्रतिष्ठित श्रावक दुर्लभजी भाई वीराणी से मुझे जो स्नेह, सद्भाव और वात्सल्य मिला, उसे मैं कभी भी भुला नही सकती। वीराणी-परिवार एव वहाँ के प्रमुख वहन-भाईयो ने हमारा अच्छा स्वागत-सत्कार किया, जिससे निस्सन्देह वीरायतन वालिका सघ की सदस्याओ का मन उत्साह से भर गया। मैं नही समझती कि उन मधुमय मधुर क्षणो को हम भूल जायेंगी। दुर्लभजी भाई वीराणी की प्रेरणा से और उनके स्नेह भरे आग्रह से मैंने ४० अवधान भी किए, जो वहाँ की जनता की दृष्टि से पूर्णतः सफल रहे। परिणामत वहाँ के स्थानीय पत्रो मे वीरायतन योजना के सम्वन्ध मे पर्याप्त समाचार प्रकाशित हुए। राजकोट का कार्यक्रम पूर्ण करके हम सौराष्ट्र के अन्य प्रसिद्ध नगरो मे गई। हम सौराष्ट्र मे जहाँ-जहाँ गई, खुले हृदय से सहयोग मिला और समय-समय पर वीरायतन को सहयोग देते रहने का आश्वासन भी मिला।

सौराष्ट्र की जनता वीरायतन-योजना से वहुत प्रभावित है। वह अपना पूरा सहयोग देने को तैयार है। यद्यपि वीरायतन का क्षेत्र सौराष्ट्र से वहुत दूर पडता है। परन्तु सस्था का उद्देश्य सुन कर एव जान कर वहाँ के जनमानस मे क्षेत्र की यह दूरी दूरी नही रह गई है। क्षेत्र की दूरी की चिन्ता मे वे लोग पडते हैं, जो कुछ करना नहीं चाहते, कुछ न करने का वहाना ही दूरी के प्रश्न को खडा करता है। आज के साधनसम्पन्न युग मे क्षेत्र की दूरी कुछ भी अर्थ नही रखती। सक्षेप मे मेरी सौराष्ट्र की यात्रा पूर्णतः सफल रही।

मेरी तीसरी यात्रा मद्रास की थी। मद्रास मे राजस्थान एव गुजरात-सौराष्ट्र के जैन काफी वडी सख्या मे रहते हैं। वे सव सम्पन्न एव सुखी है। जैसे ही हम सौ०

प्रेमबाई कटारिया की सरक्षणता मे वीरायतन के प्रचार के लिए मद्रास पहुँची, तो वहाँ के संघ ने हमारा स्वागत किया। वहाँ के संघपति मोहनमलजी चोरडिया, मन्त्री भँवरलालजी गोठी, बच्चूभाई, सुरेन्द्रभाई प्रमुख व्यक्तियो ने आत्मीयता के साथ वीरायतन-योजना की रूप-रेखा एव उद्देश्य को सुना, समझा और अपना सहयोग दे कर हमारा उत्साह बढाया। मद्रास के भाई-बहनो ने जो अपार स्नेह व्यक्त किया, हमारे जीवन के वे विशेष प्रसग सदा स्मृति मे रहेगे।

इस प्रकार मेरी ये तीनो यात्राएँ फलवती रही हैं। इन यात्राओ के समय मुझे अनेक लोगो को वीरायतन के उद्देश्य को समझाने और उनके विचारो को समझने का अवसर मिला। महाराष्ट्र, सौराष्ट्र एव मद्रास मे वीरायतन-योजना और उसके भविष्यगामी परिणामो के सम्बन्ध मे लोगो ने हमारे विचारो को सुना-समझा और उनकी ओर से इस विषय मे जो सुझाव मिले, उन्हें हमने अपनी योजना मे सम्मिलित करने का प्रयास किया। मुझे सर्वत्र वीरायतन के प्रति गहरी सहानुभूति देखने और सुनने को मिली। यद्यपि कुछ लोगो के विरोधी स्वर भी सुनने को मिले। किन्तु वह विरोध वीरायतन एव उसके उद्देश्य के प्रति नही, प्रत्युत इसलिए था कि 'वीरायतन की स्थापना राजगृह मे की है। वह बहुत दूर है। हम मे से बहुत व्यक्तियो ने अभी तक राजगृह देखा ही नही है। उतनी दूर कौन जाएगा ?' इसके उत्तर मे मैंने कहा—'एक दिन आपके पूर्वजो के लिए मद्रास भी बहुत दूर था। परन्तु आज वह आपको राजस्थान से भी अधिक प्यारा हो गया है। राजस्थान से मद्रास जितना दूर है, उतना राजगृह नही है। और यदि आपको भगवान् महावीर की स्मृति मे जन-कल्याण के लिए कुछ करना है, तो सबसे उपयुक्त स्थान राजगृह ही हो सकता है। राजगृह के पीछे दीर्घ-काल का लम्बा इतिहास है, जिससे आप और हम सब जुडे हुए हैं। हमारी सस्कृति और सम्यता के सुन्दर सस्कार राजगृही की धरती मे अन्तर्निहित है, उन्हें खोज निकालना होगा। हमारा धर्म, इतिहास, सस्कृति और शास्त्र-आगम, जो कुछ हमारे पास हैं, वह इस प्राचीन नगरी की ही देन हैं। एक दिन यह मगधदेश की राजधानी थी। राजगृह नगर के कण-कण मे हमारा इतिहास प्रसुप्त है। यदि उसे जागृत करना है, तो क्षेत्र दूर है—इस भय को छोड कर राजगृह आना होगा, और कुछ करना होगा। इसलिए आपको वीरायतन को सहयोग देना चाहिए। मैंने उन प्रश्नकर्ताओ से कहा था, कि यदि कृष्ण को याद रखना है, तो वृन्दावन को भुलाया नही जा सकता। क्या कृष्ण के भक्त वृन्दावन की दूरी का सवाल कभी उठाते हैं ? वे दूरी की शिकायत कभी नही करते। बुद्ध के भक्त एशिया एव विशेषत सुदूर देशो से सारनाथ, बोधगया एव नालन्दा आ कर प्रसन्नता अनुभव करते हैं। परन्तु उन्होने कभी यह शिकायत नही कि सारनाथ, बोधगया एव नालन्दा आदि इतनी दूर हैं, हम कैसे जा पाएँगे ? मैं नही समझती कि महावीर के भक्त एव अनुयायी राजगृह दूर है, यह चिन्ता करते हैं। आप धन कमाने के लिए विश्व के दूर देशो मे जा सकते हैं, तो क्या राजगृह नही

आ सकते। भौतिक एव सासारिक कार्यों के व्यस्त क्षणो मे से कुछ समय निकाल कर राजगृह के शान्त-प्रशान्त वातावरण मे विताएँ, तो आपको अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होगी। मैं आपसे अनुरोध करती हूँ कि आप एक वार राजगृह आएँ, वीरायतन को देखें-परखें, उसके वाद मुझे विश्वास है कि आप स्वय कहेगे कि अध्यात्म-साधना के लिए राजगृह उपयुक्त स्थान है।,

इन यात्राओ के समय मैंने जन-मानस का जो अध्ययन किया, उसके कुछ मधुर सस्मरण लिखने का प्रयत्न करूँगी। अव मैं उन प्रश्नो पर अपने विचार अभिव्यक्त करूँगी, जिनके उत्तर वहाँ के बुद्धिवादी लोगो के पूछने पर मैंने उन्हे दिए थे। यात्रा के समय लोगो से जो विचार-विमर्श हुआ, वह यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ—

सवसे मुख्य वात यह है, कि जव मैंने लोगो से वीरायतन मे सहयोग देने की अपील की, तव किसी ने भी सहयोग देने से इन्कार नही किया। हमारा उत्साह वढाने के लिए उन्होने प्रेमपूर्ण शब्दो मे कहा, कि 'हमारी समाज मे तुम्हारे जैसी वालिकाएँ एक महान और विशाल योजना को ले कर चल रही है, हमे आशा ही नही पूरा विश्वास है, कि तुम अपने कार्य मे सफल रहोगी।' तुम वीरायतन के निर्माण का कार्य प्रारम्भ करो; हम अपना सहयोग अवश्य देंगे। हमारे लिए ये आशाभरे शब्द, तथा समाज के प्रतिष्ठित कार्यकर्ताओ की हमारे प्रति मगलमय भावना हमारे उत्साह मे अभिवृद्धि करने को काफी हैं।

'राजगृह वहुत दूर है, वहाँ जाकर कौन कार्य करेगा ?' इस प्रश्न के उत्तर मे मैंने कहा—'यह आपको सोचना है कि कौन करेगा और किस प्रकार करेगा ? हमारा काम योजना को प्रारम्भ कर देना है। उसके वाद इस कार्य की सपूर्ति कौन करेगा, और कैसा करेगा ? इस विषय मे हमारे से अधिक आपको सोचना है। क्योकि भगवान् महावीर के प्रति श्रद्धा, निष्ठा एव भक्ति आपके मन मे भी है। अत. भगवान् महावीर की स्मृति मे आयोजित इस महान् कार्य से भगवान् महावीर का भक्त अलग रहने की कल्पना कैसे कर सकता है ? आप लोग सिर्फ पैसा दे कर अलग नही हो सकते। इस विशाल कार्य मे धन के साथ-साथ आपके क्रियात्मक सहयोग की भी अपेक्षा रहेगी और इस कार्य को सम्पन्न करना आप जैसे वुजुर्गों का परम कर्तव्य होगा।'

कुछ व्यक्तियो ने मुझ से यह प्रश्न भी किया कि 'वीरायतन की स्थापना राजगृह मे न करके दिल्ली, वम्वई, कलकत्ता और आगरा जैसे शहरो मे क्यो न की जाए ? जहाँ सव तरह सुविधा और स्थानीय कार्यकर्ताओ का सहयोग सहज ही मिल सकता है।' मैंने कहा—'वात आपकी विल्कुल ठीक है। इस विषय मे हम पर्याप्त विचार कर चुके हैं। मैं यह नही समझ पा रही हूँ, कि आपको जव कुछ करना है, तव इतना क्षेत्र एव स्थान का व्यामोह क्यो है ? जहाँ पर आप लोगो की सख्या अधिक हो, वही पर ही कार्य हो और जहाँ पर सख्या कम, नगण्य या विल्कुल न हो,

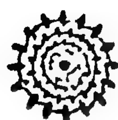
वहाँ पर कार्य न करें-इसका अर्थ यह होगा कि आप सामान्य जनता के लिए कुछ करना नही चाहते। आप धन एव शक्ति का उपयोग केवल अपने समाज के लिए ही करना चाहते हैं। भगवान् महावीर ने इस क्षेत्रव्यामोह की भावना को भी परिग्रह कहा है। इस परिग्रह की दीवार को तोडने के लिए आपको अपने घेरो से वाहर निकलना होगा। भारत के उन सुदूर प्रान्तो मे जाना होगा, जहाँ आज तक भगवान् महावीर का दिव्यसन्देश पहुँच नही पाया है। जब तक आप अपने क्षेत्रो से दूर हट कर कुछ कार्य नही करेंगे, तब तक आप लोगो को जन-जीवन की सही स्थिति का परिज्ञान नही हो सकेगा। प्राचीन युग के मगधदेश और वर्तमान के बिहारप्रान्त मे जहाँ पर कभी लाखो की सख्या मे जैन थे, विलुप्त क्यो हो गए? इसका एक ही कारण है कि हम अपनी सुख-सुविधाओ के चक्कर मे पड गए और सामान्य जनता से हमारा सम्बन्ध टूटता गया। मेरा अपना विचार यह है कि उन टूटे हुए सम्बन्धो को हमे पुन जोडना होगा और उसका माध्यम बन सकता है—**वीरायतन।**

कुछ लोगो ने जिज्ञासाभाव से यह भी पूछा कि निर्माणकार्य पूर्ण होने के वाद उसका भविष्य क्या रहेगा? निस्सन्देह यह प्रश्न अपने आप मे महत्वपूर्ण है। वर्तमान मे जीवित रह कर भी भविष्य के सम्बन्ध मे विचार करना ही चाहिए। भविष्य की ओर से आँखे बन्द नही करनी चाहिए। इतनी विशाल योजना के भविष्य के विषय मे प्रश्न उठना स्वाभाविक है। मैंने उन्हे विनम्र शब्दो मे कहा—आप अपने व्यापार के क्षेत्र मे बहुत वडा Plan तैयार करते हैं। Industries या Factory (कारखाना) लगाते हैं, इसमे कितना खर्च लगेगा, इसका कल्पित मानसिक-चित्र भी तो बनाते हैं, परन्तु मैं आपसे पूछना चाहती हूँ कि आप उस समय सब-कुछ सोच कर भी क्या यह नही सोचते कि भविष्य मे इसे कौन सभालेगा या इसका क्या होगा? निश्चय ही आप अपने मन मे यह निर्णय कर लेते हैं, कि मेरे बाद मेरा पुत्र सभालेगा। मैं आपसे विनम्र निवेदन करना चाहती हूँ कि आप सही दृष्टिकोण वीरायतन के प्रति अपनाइये। वह किसी एक व्यक्ति या एक परिवार की सम्पत्ति तो है नही, यह तो समग्र समाज की है। जब तक आप हैं, तब तक आप संभालें, भविष्य की बात भविष्य मे आने वाली पीढी सोचेगी। यदि वर्तमान मे हम कुछ न कर सके, भविष्य मे आने वाली पीढी के लिए कुछ बना कर न दे सके, तो भावी पीढी सभालेगी क्या? अत. आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान मे हम निश्चिन्त हो कर उपयोगी कार्य कर जाएँ, उसे सभालने वाला उपलब्ध हो जाएगा।

मैंने सर्वत्र वीरायतन के लिए जनता के मानस मे उत्साह, एव गहन जिज्ञासा को देखा। जन-जन के मन मे जिज्ञासा की भावना को जागृत करना ही हमारे प्रचार का एकमात्र उद्देश्य था। जिसमे हम पूज्य-गुरुदेव की कृपा से एव पूज्य महासतीजी के आशीर्वाद से पूर्णत सफल रही हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्य महान् है, शानदार है, और उज्ज्वल है। मैं स्वय और मेरी सहयोगी अन्य बालिकाएँ आज भी पूर्ण आस्था और अचल निष्ठा के साथ इस महान् योजना को क्रियान्वित करने के कार्य मे दर्शनाचार्या साध्वी चन्दनाजी के नेतृत्व मे कार्य कर रही हैं और भविष्य मे भी इस कार्य की सपूर्ति तक हमारा यह प्रयत्न गतिशील ही रहेगा।



कला-प्रदर्शिनी की उपयोगिता



—अगरचन्द नाहटा, बीकानेर



प्रकृति स्वयं कलात्मक है। अनन्त जीवजन्तुओ, पेडपौधो, पहाडो आदि की ओर मानव जब खुली आंखो से देखता है, तो चारो ओर इतने प्रकार और ऐतिहासिक चीजें उसको देखने को मिलती है, जिससे उसको बडी ही प्रेरणा मिलती है, प्रत्येक कार्य मे कुशलता, विशेपता और सुन्दरता ही कला है। गीता मे इसी कर्म की कुशलता को ही कला बतलाया है। जब से मानव ने अपनी बुद्धि का विस्तार एव उपयोग किया, तब से वह निरन्तर कला की ओर अग्रसर होता रहा है, इसीलिए सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का समन्वय हुआ और वही कला है।

जैनधर्म के प्रवर्तक भगवान् ऋषभदेव ही भारतीय सस्कृति और कला के प्रथम पुरस्कर्ता हैं, उससे पहले मानव-जीवन भी पशु-पक्षियो की तरह एक ढांचे से चल रहा था। प्राकृतिक वस्तुओ से जीवननिर्वाह सहजरूप मे हो जाता था, इसलिए कृपि का व्यवहार नही था। जैनग्रन्थो मे उसे यौगलिक काल और भोग-भूमि कहा गया है। प्रकृति के नियमो के अनुसार उत्थान और पतन होता रहता है, अत यौगलिक काल मे भी एक बडा परिवर्तन आया। भगवान् ऋपभदेव का जन्म उसी सन्धि या क्रान्तिकाल मे हुआ। पहिले १० प्रकार के वृक्ष थे, जिनसे भोजन, वस्त्र आदि जीवन की आवश्यकताएँ पूरी हो जाती थी। इसीलिए उन वृक्षो को कल्पवृक्ष का नाम दिया गया है। क्रमश लोगो की आवश्यकताएँ बढी और वृक्षो की फलोत्पादन शक्ति कम होती गई। अत. जीवननिर्वाह मे कठिनाई उपस्थित होने लगी। भगवान् ऋपभदेव ने तत्कालीन आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए लोगो को असि, मसि कृषि तथा कुम्भकार, सुथार आदि की कलाएँ सिखाई। इससे भारतीय सभ्यता का विकास हुआ। जैन आगमो के अनुसार पुरुपो की ७२ और स्त्रियो की ६४ कलाओ को सिखाने वाले भगवान् ऋपभदेव ही हुए।

इन ७२ और ६४ कलाओ के नाम और भेदो पर ध्यान देने से हमे कला के तत्कालीन व्यापक अर्थ-भाव का बोध होता है। आजकल हम कला का शिल्प, साहित्य एव सस्कृति के रूप मे भिन्न-भिन्न अर्थों मे प्रयोग करते हैं, किन्तु तब ये सभी बातें कला के अन्तर्गत ही मानी जाती थी। ज्ञान, विज्ञान और जीवनोपयोगी समस्त

बातो का समावेश उन ७२ और ६४ कलाओ मे प्राय हो जाता है। भगवान् ऋषभदेव ने अपनी बडी पुत्री ब्राह्मी को लिपि लिखना सिखाया, दूसरी पुत्री सुन्दरी को अंकगणित की शिक्षा दी। खेती करना, अनाज आदि को पका कर खाना, मिट्टी के बर्तन बनाना, मकान बनाना आदि बातो की शिक्षा सब लोगो को भगवान् ऋषभदेव ने दी।

आजकल कला के मुख्यत दो भेद माने जाते हैं।—१ उपयोगी कला, २ ललित कला। इनमे से जीवनयापन मे आवश्यक विविध कार्यों को उपयोगी कला और सौन्दर्यप्रधान सृजन-कार्यों को ललितकला माना जाता है। ललितकला मे प्रधानतया साहित्य, काव्य, सगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति, वस्तु आदि आकर्षक और सुचारु निर्माण की जाने वाली कृतियो का समावेश किया जाता है। कला के कुछ प्रकारो को शिल्प एव कारीगरी के नाम से भी कहा जाता है।

कला की उपयोगिता—कला यदि मानवीय सृष्टि का उपनाम है, तो इसका उपयोग जीवन के प्रत्येक कार्यों मे होता है। क्योकि मनुष्य प्रतिसमय कुछ न कुछ सृजन करता ही रहता है। चाहे वह बोलने के रूप मे हो, लिखने के रूप मे हो, या किसी अन्य वस्तु के निर्माण करने के रूप मे हो। इसलिए कला के बिना जीवनयापन दुष्कर है, जो भी काम किये जायें वे कुशलता और सुन्दरतापूर्वक किये जायें तो वे कला की सज्ञा पा जाते हैं।

कला के उत्कर्ष में जैनो का योगदान—जैनसमाज सदा से ही कला का प्रेमी और उसके उत्कर्ष मे प्रगतिशील रहा है। उसके ग्रन्थलेखन की भी एक कला है। जिसमे अक्षरो की सुन्दरता त्रिपाठ, पचपाठ-शैली, अलकरणशैली, स्वर्णाक्षरी और रौप्याक्षरी, ये लेखनकला के विविध प्रकार हैं। उसके सम्बन्ध मे मुनि पुण्य विजयजी का 'भारतीय श्रमण सस्कृति अने लेखन-कला', ग्रथ द्रष्टव्य है। चित्रकला और मूर्तिकला के विषय मे तो जैनसमाज ने बहुत बडा योग दिया है। ताडपत्र चित्र-विज्ञप्ति पत्र, कागज, काष्ठ, वस्त्र, और भित्तिपत्र जैन चित्रकला के सुन्दर नमूने हैं। पीतल और सर्वधातु की तथा पाषाण की प्रतिमाएँ बहुत ही सुन्दर और विविध प्रकार की मिलती हैं। आबू, राणकपुर, देवगढ आदि सैकडो स्थानो मे सुन्दर जैन मूर्तियाँ और मन्दिर जैनसमाज की कलाप्रियता को उजागर कर रहे हैं।

कलात्मक वस्तुओ का प्रदर्शन मानवजीवन को सस्कारित और कलाप्रेमी बनाने मे तथा ज्ञानवृद्धि करने मे बहुत ही सहायक है, इससे बालक से ले कर वृद्ध तक सभी को कलात्मक प्रेरणा मिलती है। सुन्दर सृजन के प्रति उनका आकर्षण बढ़ता है। इसलिए जैसे आयोजन बहुत ही जरूरी है। भ० महावीर के २५ सौ वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष मे स्थान-स्थान पर कलाप्रदर्शनी रखी जानी चाहिए, जिससे जनता को जैनकला का परिचय मिल सके।

—०—



भगवान् महावीर की पच्चीसवीं
निर्वाण-शताब्दी के उपलक्ष में

वीरायतन के द्वारा आयोजित कार्यक्रम

भारत के धर्म और दर्शन के इतिहास मे श्रमण भगवान् महावीर की देन एक अपूर्व देन है। उन्होने अपने दीर्घ-तपोमय जीवन मे अनेकान्त, अहिंसा और अपरिग्रह के जो प्रयोग किये है, वे मानवसभ्यता की सुरक्षा के महान आधारस्तम्भ हैं। श्रमण भगवान् महावीर ने विचार और आचार का जो संतुलित रूप जन-चेतना के समक्ष प्रस्तुत किया था, वह तत्कालीन विभिन्न सम्प्रदायो के आचार्यो के द्वारा तो स्वीकृत किया ही गया था, तदुत्तरकाल मे भी विभिन्न सम्प्रदायो ने उसे किसी न किसी रूप मे स्वीकृत किया है। जीवन-तत्व का जो विश्लेपण भगवान् महावीर ने अपने अनुभव के आधार पर प्रस्तुत किया था, वह समग्र रूप से भारतीय-सस्कृति की विशेप धरोहर है।

भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के २५०० वर्ष पूरे हो रहे हैं। इन २५०० वर्षो मे अजस्र-धारा से भारत की धरती पर कभी तीव्र, तो कभी मन्दगति से अनेकान्त और अहिंसा की सरस-सरिता जन-जीवन को आप्लावित करती आ रही है। प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है, कि वह भगवान् महावीर के द्वारा उपदिष्ट अनेकान्त और अहिंसा की दिव्य-भावना को अपने जीवन मे साकार करने के प्रयोग निष्ठा के साथ करता रहे और साथ ही उपलब्ध सत्य को जन-जीवन मे वितरित करने का सतत सात्विक प्रयास भी। यही उस महातिमहान दिव्य-आत्मा की पावन स्मृति है।

भगवान् महावीर ने अध्यात्म-साधना के फलस्वरूप जिन तत्वो का साक्षात्कार किया, और अपने प्रवचनो मे जिनका निरूपण किया, उनके सकलन को आगम और शास्त्र कहते हैं। आगमो के एक-एक शब्द मे गम्भीर रहस्य अन्तर्निहित है। उस तत्व ज्ञान (रहस्य) को समझने एव हृदयगम करने के लिए स्वाध्याय नितान्त आवश्यक है।



दीक्षा-स्वर्ण जयती पर प्रधानमत्री श्रीमती इ दिरागाधी, उपाध्याय श्री अमरमुनि को 'राष्ट्रसत' के रूप मे सम्मानित कर, खादी की चादर भेंट कर रही हैं। १३ मार्च १६७०, अहिंसाभवन, देहली।

सम्राट् श्रेणिक के शासनकाल मे मगधदेश की इतिहासप्रसिद्ध राजधानी, इसी राजगृही मे २५०० वर्ष पूर्व श्रीगौतम और श्रीसुधर्मा आदि प्रमुख गणधर आगम-वाचन करते थे, और हजारो की सख्या मे राजवश से लेकर सर्वसाधारण प्रजा तक के श्रद्धाशील उपासक तथा उपासिकाएँ श्रोताओ के रूप मे उपस्थित होते थे। प्राचीनकाल के उसी भव्य दृश्य को पुन वीरायतन की भूमि पर साकार करने का अपने मे यह एक अभिनन्दनीय शुभसकल्प एव पावन प्रयत्न है।

श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद प्रथम आगम-वाचना पाटलिपुत्र मे, दूसरी मथुरा मे और तीसरी वल्लभी मे हुई थी। उसके बाद यह परम्परा प्राय लुप्त-सी हो गई। उस विलुप्त परम्परा को पुन क्रियान्वित करने का शुभ सकल्प वीरायतन ने किया है। राष्ट्रसन्त उपाध्याय श्री अमरमुनिजी के सान्निध्य मे ११ नवम्बर ७४ से २५ दिसम्बर ७४ तक ४५ दिन का निर्वाण-शताब्दी का कार्यक्रम रखा है। उसमे प्रति दिन निर्धारित क्रम से एक-एक आगम का अशत स्वाध्याय, उसका सक्षिप्त परिचय, मूलस्पर्शी अर्थ, और अन्त मे उस विषय पर प्रवचन होगे।

कार्य-क्रम

१—सेवा के रूप मे निर्वाण-शताब्दी के अवसर पर विशालरूप मे नेत्र-यज्ञ भी होगा—इसमे कुशल डॉक्टरो के द्वारा नेत्रो की चिकित्सा एव ऑपरेशन किए जाएँगे तथा ऑपरेशन के बाद चश्मा दिया जायगा। इस प्रकार का नेत्र-दान-यज्ञ वीरायतन की भूमि पर पहले भी हो चुका है।

२—इस अवसर पर एक चलते-फिरते औषधालय की भी योजना है। एक डॉक्टर प्रतिदिन जीप से निकट के गाँवो मे जा कर बीमार-व्यक्तियो के रोग का निदान करेगा, और उन्हे औषधि भी देगा।

३—अपग व्यक्तियो को प्रतिदिन भोजन कराने की भी योजना है।

४—इन ४५ दिनो मे शिक्षण के रूप मे छात्र-छात्राओ का एक शिविर भी आयोजित किया जा रहा है—जिसमे दर्शनाचार्या साध्वी श्रीचन्दनाजी छात्र-छात्राओ का धार्मिक एव नैतिक दृष्टि से मार्गदर्शन करेंगी।

५—स्थानीय विद्यालयो के छात्र-छात्राओ को उपहार देने की भी योजना है।

६—प्रतिदिन सास्कृतिक कार्यक्रम एव विचार-गोष्ठी का कार्यक्रम भी रहेगा।

७—२५ दिसम्बर ७४ से ३ जनवरी ७५ तक साधना के रूप मे १० दिवसीय ध्यान (विपश्यना) शिविर भी सुप्रसिद्ध ध्यानयोगी गोयनकाजी मे हो रहा है।

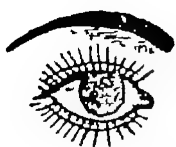
८—वीरायतन की ओर से मनाये जाने वाले निर्वाण-शताब्दी के कार्यक्रम मे सम्मिलित होने वाले सज्जनो के ठहरने एव भोजन की व्यवस्था 'वीरायतन' ने की है। आप अपने एव अपने साथियो के आगमन की सूचना शीघ्र देने की कृपा करें, जिससे व्यवस्था करने मे सुविधा रहे।

निवेदक

खेलशकर दुर्लभजी जौहरी (जयपुर)

अध्यक्ष—'वीरायतन'

पो०-राजगृह, जिला-नालन्दा (विहार)



वीरायतन की प्रगति :
एक नजर में

(१) **दान**—सन् १९७३ से अब तक तथा अभी-अभी ता० ३१ अक्टूबर को शरद्पूर्णिमा को उपाध्यायश्रीजी की जन्मतिथि पर वीरायतन के द्वारा विद्यादान (विद्यालय के रूप मे), नेत्रदानयज्ञ, औषधिदान, वस्त्रदान, अन्नदान (गरीबो एव जरूरतमन्दो को यथावश्यक कपडे व भोजन वितरण) किया गया।

(२) **शील**—इस क्षेत्र के सैंकडो व्यक्तियो ने शराव माँस आदि दुर्व्यसन साधु-साध्वियो की प्रेरणा से छोडे।

(३) **तप**—कई वहनो व साध्वियो ने तेला से ले कर अठाई तक तपस्याएँ की। दिव्या आदि कई वहनो ने शास्त्रस्वाध्याय किया। उत्तराध्ययन सूत्र का प्रकाशन हुआ।

(४) **भाव**—इस क्षेत्र के लोगो का वीरायतन एवं साधुसाध्वी-वर्ग के प्रति अद्भुत श्रद्धा-भक्तिभाव है, उनमे तथा राज्यसरकार के व्यक्तियो मे सहयोग की भावना है। कलकत्ता, आगरा, दिल्ली आदि अनेक क्षेत्रो से लाखो रुपयो के आर्थिक सहयोग एवं सहयोग-वचन प्राप्त हुए है। अभी-अभी विहार सरकार ने वीरायतन को २४ एकड भूमि देने की घोषणा की है। वीरायतन वालिका संघ, ब्राह्मीकलासदन आदि कर्मठ संस्थाएँ भी इसके अन्तर्गत वनी।

(५) **भवननिर्माण**—जो अव तक हो चुका है—

(१) विद्यालय का भवन (२) लघु चिकित्सालय (एक्सरे केन्द्र) (३) कार्यालय भवन, (४) अतिथिभवन, (५) जलकूप, (६) गुणशीलक चैत्य-वन आदि वन चुके हैं। वीरायतन की जमीन के चारो ओर वाउण्डरी खिंच चुकी है, उसी मे उपाश्रय का निर्माणकार्य प्रारम्भ हो चुका है। रेस्टहाउस से वीरायतन तक सडक तथा पुल का निर्माण भी हो चुका है। अव निकट भविष्य मे आगममन्दिर, ध्यानकेन्द्र, कलानिकेतन आदि वनने की सम्भावना है।

वीरायतन के सहयोगियों के लिए—सुअवसर

जो भी धर्मप्रेमी भाई-वहन अपने किसी भी आत्मीयजन की स्मृति मे नामोल्लेख के साथ विशेष निर्माण कराना चाहे तो उनके लिए स्वर्ण अवसर—

१—अतिथिभवन—'मैत्रीविहार' ७१०००)	६—जंगम चिकित्सालय ५१०००)
प्रत्येक कमरा ७ हजार,	७—एक्स-रे-केन्द्र ५१०००)
प्रत्येक फ्लेट १५ हजार,	८—पुस्तकालय-'श्रुतमन्दिर' ५१०००)
२—उपाश्रय—'सर्वतोभद्र' ७१०००)	९—वालकल्याणकेन्द्र २५०००)
'धर्मदीप' ७१०००)	१०—उद्योगकेन्द्र-कला-निकेतन, ३१०००)
३—कार्यालय—'प्रेरणा-तन्त्र' १५०००)	११—कुंआ-'क्षीरोदक' १५०००)
४—चिकित्सालय—'आरोग्यरश्मि' ६१०००)	१२—प्राथमिक विद्यालय ५१०००)
५—नेत्र-चिकित्सालय ३१०००)	

वीरायतन की प्रगति का संक्षिप्त इतिहास

सन् १९७१ का जनवरी का महीना था। उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी म०, साध्वी-रत्न सुमतिकु वरजी, साध्वी श्रीचन्दनाजी के साथ विचारचर्चा मे लीन थे कि भगवान् महावीर की २५वो निर्वाण शताब्दी आ रही है। इसके उपलक्ष्य मे उनके स्वपरकल्याणकारी सिद्धान्तो के अनुरूप कौन-सी उपलब्धि हो सकती है, जो जीवन के मूल्यो को वदल सके। वहुत कुछ मन्थन करने के वाद आपने **'वीरायतन'** नामक योजना प्रस्तुत की। अप्रैल १९७१ के श्री अमरभारती के अक मे सर्वसाधारण के विचारार्थ वह योजना प्रकाशित हुई, जिसमे आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एव जागतिक विकास के विविध कार्यक्रम निहित थे। इस योजना का प्रारूप भी भारत के विविध प्रान्तो मे विचरण करने वाले तेजस्वी विचारक साधु-साध्वियो की सेवा मे विचारविमर्श के हेतु भेजा गया। फलत अधिकाश साधु-साध्वियो के अनुकूल उत्तर मिले, सुझाव भी मिले और कई प्रबुद्ध साधु-साध्वियो ने अपनी समर्पण-भावना भी वताई। कई साधु-साध्वियो तथा धर्मश्रद्धालु भाई-वहिनो ने अपनी ओर से सेवा की भावना भी प्रस्तुत की। वस, यही से **वीरायतन** की गगा प्रादुर्भू त हुई।

सर्वप्रथम अखिल भारतीय स्तर पर एक ऐसा आदर्श केन्द्र वनाने की कल्पना हुई, जो धर्म, सस्कृति, समाज, राष्ट्र, एव विश्व की समस्याओ के समाधान मे यथा-वसर कुछ योगदान दे सके। योजना वहुत लम्बी चौडी जरूर थी, लेकिन ज्यो ही उपाध्यायश्रीजी ने इसे मूर्तरूप देने के लिए आह्वान किया, सर्वत्र इसे समर्थन मिला। सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा के ता० १५-४-७१ के अधिवेशन मे वीरायतन की योजना प्रस्तुत हुई। एक तदर्थ समिति का गठन भी इसे क्रियान्वित करने हेतु किया गया।

कुछ समर्पणपरक उत्साहप्रद पत्र

वीरायतन योजना मे सहयोग के लिए पत्रो का ताता लग गया। साध्वी सरोज ने लिखा—"इस लोकमगलकारी श्रेष्ठ निर्माणयोजना मे मैं सक्रिय सहर्ष सहयोग देने के लिए तैयार हूँ " कु० निर्मला गाँधी ने अपने लिखित उद्गार प्रगट किये ' वीरायतन योजना पढ कर अत्यन्त खुशी हुई। मुझे ही नही, अपितु मुझ-सी सैंकडो लडकियाँ ऐसी होगी, जिन्हें इस योजना को पढ कर पपीहे को पानी मिलने जैसी खुशी हुई होगी। इस योजना मे मैं और मेरी सहयोगिनी अनेक वहने तन-मन समर्पित करने को तैयार हैं। "

धर्मोपदेष्टा श्री पुष्फभिक्खुजी म० की उत्साहप्रद शुभकामना पढिये—

"उवणेत्त　तहापत्तं,　सुत्थाइं　लोयणाइं ।
पढिया　मए　पत्तमि　'वीराययण-जोजणा' ॥
जुगाणुऊला समयाणुसारी, सुसारजुत्ता य विभाइ एसा ।
रोएइ मज्झं सहला य होउ, एसत्थि एका सुहकामणा मे ॥"

आचार्यश्री आनन्दऋषिजी म०, आ० श्री हस्तिमल्लजी म०, आचार्यश्री तुलसीजी, मालवकेसरी श्रीसौभाग्यमलजी म०, भडारी पद्मचन्दजी म०, वाणीभूपण विमलमुनिजी, विश्वधर्मप्रेरक श्रीसुशीलमुनिजी, चन्दनमुनिजी, सुमनमुनिजी, ज्ञानमुनिजी, मुनिश्री सन्तबालजी, मुनिश्री नेमिचन्द्रजी आदि तथा साध्वीश्री उज्ज्वलकुँवरजी, साध्वी सीताजी, सुमतिकुवरजी, चन्दनाजी, श्रीहुकमदेवीजी, श्रीपुष्पवतीजी, कुसुमवतीजी, उमरावकुँवरजी, आदि तथा शादीलालजी जैन बम्बई, खेलशकरभाई सौभाग्यमलजी जैन आदि इस प्रकार के सैकडो ही उत्साहजनक सम्मतियो और विचारो के आधार पर वीरायतन ने व्यापक सम्मान प्राप्त कर लिया ।

सहयोग की उज्ज्वल किरण

विचार के साथ-साथ आचार मे वीरायतन की परिणति की उज्ज्वलरेखा बन कर उस समय फूट पडी, जब अबोहर के श्री एन० के० छाजेड ने अपने साथी-बन्धुओ को प्रेरित करके इस धर्मकार्य को आगे बढाने के लिए सक्रिय सहयोग का आदर्श प्रस्तुत किया । अर्थात् श्रीभगवानदासजी जैन ने सर्वप्रथम ५०१ रु० भेंट किए, तत्पश्चात् ३११ रु० देशराजजी जैन, अबोहर, २०१ रु० एन० के० छाजेड, १०१ रु० धर्मचन्द नरेशकुमार जैन ने भेंट किये । बस, इस प्रकार दान का प्रवाह बह चला, सहयोग के वचनो का सिलसिला जारी हो गया । जो लाखो तक पहुँच गया । श्री खेलशकरभाई कविश्रीजी के दर्शनार्थ आगरा पधारे । वीरायतन योजना से प्रभावित हो कर उन्होंने एक लाख का सहयोगवचन दिया ।

वीरायतन के स्थान और कार्यकर्त्ताओं के प्रश्न पर विचारविमर्श

दिनाक ११ जुलाई १९७१ को जैनभवन, लोहामण्डी मे उपाध्यायश्री अमर मुनिजी के सान्निध्य मे श्वे० स्था० जैन कॉन्फ्रेस की मीटिंग हुई । उसमे कई प्रस्ताव पारित हुए । सातवें प्रस्ताव द्वारा भ० महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य मे राष्ट्रसन्त उपाध्याय अमरमुनिजी द्वारा प्रस्तावित वीरायतन योजना का हार्दिक समर्थन किया गया और उसे क्रियान्वित करने के लिए देश के विभिन्न भागो मे प्रतिनिधिमण्डल भेज कर वीरायतन के व्यापक प्रचार-प्रसार एव अर्थसहयोग आदि का निश्चय किया गया ।

उक्त अवसर पर कविश्रीजी म० ने कॉन्फ्रेस के उपस्थित कार्यकर्त्ताओ को उद्बोधन किया, जिसके मुख्य मुद्दे ये हैं—(१) हम विचारो की भीड मे बहने के

वजाय स्वय कार्यस्फूर्त हो। (२) यह सगठन सुन्दर है, तो काम भी सुन्दर होना चाहिए, वह तभी होगा, जब हम नीचे से—गाँवो से—ऊपर की ओर चलेंगे। (३) कार्यकर्त्ताओ को भरपेट भोजन व सम्मान मिले। (४) काम मे जुट जाइए। (५) समग्र महावीर साहित्य के अध्ययन के लिए वीरायतन अनिवार्य है। (६) सास्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप उपयुक्त स्थान राजगृह ही हो सकता है। (७) छोटे-छोटे कार्यक्रम वना कर जुट जाइए।

वीरायतन में सहयोग के सोपान

व्यक्ति-व्यक्ति के सहयोग से विन्दु से सिन्धु की तरह महान् निर्माण-कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। इस पुनीत कार्य मे भी निम्नोक्त रूप से सहयोग के सोपान तदर्थ समिति ने निश्चित किए—

संस्थापक	एक लाख रुपये	**उपसंरक्षक**	ढाई हजार रुपये
स्तम्भ	पचास हजार रुपये	**वार्षिक सहयोगी**	ढाई सौ रुपये
उपस्तम्भ	पच्चीस हजार रुपये	**मासिक सहयोगी**	पच्चीस रुपये
संरक्षक	ग्यारह हजार रुपये	**दैनिक सहयोगी**	पच्चीस पैसे

साध्वीमंडली का कलकत्ता की ओर विहार

साध्वीरत्नश्री सुमतिकुवरजी, दर्शनाचार्या साध्वी चन्दनाजी आदि के चातुर्मासार्थ कलकत्ता पदार्पण पर उनके सान्निध्य मे पूर्वभारत जैनसम्मेलन हुआ, जिसमे सर्वसम्मति से इस योजना का समर्थन कर सक्रिय सहयोग का आश्वासन दिया गया। वैशाली महासघ एव राजगृही आदि ऐतिहासिक सघो की ओर से भी योजना का हार्दिक स्वागत किया गया, तथा भ० महावीर की साधनाभूमि मे इस योजना द्वारा युगान्तर होने की आशा व्यक्त की।

आगरा मे सहयोग-दान की होड़

आगरा मे राष्ट्रसन्त उपाध्यायश्रीजी की सामान्य प्रेरणाओ से वीरायतन के लिए आगरा जैसे छोटे से सघ मे, पुरुषो और महिलाओ मे सहयोगदान की होड-सी लग गई। सहयोगदान की अर्थराशि ढाई लाख के लगभग पहुँच गई। और भी सहयोग के वचनो की झडी लग गई। वाहर से भी सहयोगवचन मिले।

वीरायतन के द्वारा उत्तराध्ययनसूत्र-प्रकाशन

भ० महावीर के अन्तिम उपदेश-सदेश के रूप मे निधि—यही शास्त्र हैं, यह प्रेरणा विदुषी साध्वी श्रीचन्दनाजी के द्वारा पा कर कलकत्ता की वीरायतनप्रेमी जनता ने इस शास्त्र के प्रकाशन का निश्चय किया। साध्वी श्रीचन्दनाजी ने वहुत ही मनोयोगपूर्वक अनुवादकार्य सिर्फ ४५ दिनो मे सम्पन्न किया। इसका सम्पादन-समापन समारोह भी तारीख ६-१-७२ को कलकत्ता भवानीपुर के कामाणी जैनभवन मे धूम-धाम से हुआ।

वीरायतन सेवा समिति और वीरायतन-बालिकासंघ

वीरायतन के कार्य को द्रुतगति से आगे वढाने के लिए वीरायतन सेवा-समिति का गठन साध्वी-मडली के कलकत्ता-प्रवेश से पहले ही हो चुका था। लेकिन प्रस्तावित कार्यक्रमो को सफल वनाने के लिए उत्साही नवयुवको की तरह कुछ उत्साही वालिकाओ की भी आवश्यकता थी, इसी आशा के फलस्वरूप ता० ९ जनवरी ७२ को साध्वीमडली के सान्निध्य मे श्री जगदीशरायजी जैन (अध्यक्ष, एस० एस० जैनसभा) के हाथो से **'वीरायतन-वालिकासंघ'** का उद्घाटन हुआ। श्री चारु देसाई इस सघ की अध्यक्षा मनोनीत की गई। वालिकाओ के उत्साह का पार नही था। इसी अवसर पर उद्घाटनकर्त्ता महोदय ने वीरायतन के लिए २५०१ रु० प्रदान किये। श्रीउत्तमचन्दभाई पचमिया, नगिनभाई, छोटुभाई, चन्दुभाई शेठ, वाडीभाई भीमाणी आदि महानुभावो ने उत्साहपूर्वक ११००० रु० एव ५००० रु० प्रदान करने के वचन दिए।

प्रारम्भ मे वीरायतन के निम्नलिखित पदाधिकारी इस प्रकार नियुक्त किये गए—**अध्यक्ष**—श्री केशवभाई खडेरिया, **उपाध्यक्ष**—सेठ अचलसिंह जैन एम०-पी०, एव कल्याणदासजी जैन आगरा, **मंत्री**—पद्मचन्दजी जैन आगरा, रसिकभाई कलकत्ता, **कोषाध्यक्ष**—पद्मकुमार जैन आगरा, इसके अतिरिक्त मदनसिंहजी नाहर, सौभाग्यमलजी जैन, छोटेलालजी जैन आगरा, उत्तमचन्द भाई पचमिया, नगिनभाई, छोटुभाई गाँधी आदि २१ सदस्यो की कार्यकारिणी वनी।

वीरायतन का विधान तथा रजिस्ट्रेशन

इधर मदनसिंहजी नाहर आदि ने वीरायतन का एक विधान तैयार किया। वीरायतन की मीटिंग मे उसे पास करवा दिया गया। और सस्था का रजिट्रेशन कराने का तय हुआ। तदनुसार विहार सरकार से सम्पर्क साधा गया। फलत ता० २-३-७२ को महानिरीक्षक निवन्धन (रजिस्ट्रेशन) विहार द्वारा वीरायतन-सस्था के निवन्धन का प्रमाणपत्र (एक्ट २१, १८६० के अन्तर्गत) सख्या ८० वर्ष १९७१-७२ प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् विहार सरकार के आयकर-आयुक्त विभाग विहार पटना से मदनसिंहजी नाहर ने प्रयत्न करके वीरायतन करमुक्ति का प्रमाण-पत्र भी ता० २०-६-१९७२ को प्राप्त किया।

वीरायतन के चक्र को गतिमान करने के लिए . ...

वीरायतन के चक्र को गतिमान करने हेतु कलकत्ता से साध्वी-मडली का आशीर्वाद ले कर वीरायतनबालिकासघ की ७ बालिकाएँ भगवान् महावीर के प्रति श्रद्धा और भक्ति की अन्तर्मन मे दिव्यज्योति जलाए हुए प्रचार-अभियानार्थ श्री कोकिला हेमाणी के नेतृत्व मे निकली। सात वालिकाओ के नाम इस प्रकार थे—१ कोकिला हेमाणी, २ निर्मला गाँधी, ३ आशा लाठिया, ४ ऊषा दोशी, ५

कुमुद वशाणी, ६ चारु देसाई, ७ रजन सघवी। इन्हे वीरायतन-योजना के प्रचार प्रसार मे आशातीत सफलता मिली।

इसके पश्चात् वीरायतन-बालिकासघ के दूसरे ग्रुप ने कलकत्ता से राष्ट्र-व्यापी प्रचारहेतु भावना हेमानी के नेतृत्व मे महासती श्रीसुमतिकु वरजी से मागलिक श्रवण कर प्रचारयात्रा प्रारम्भ की।

आगरा मे बालिकासघ श्री नेम कुमारजी व सौ० सुश्री प्रेमबाई के यहाँ पहुँचा। उन्होने ५००१ रु० दे कर बालिकाओ का उत्साह बढाया। गुरुदेव पू० उपाध्याय श्री अमरमुनिजी के दर्शन करके सभी बालिकाएँ दिल्ली पहुँची और प्रधानमत्री श्री इन्दिरा गाँधी से मिली। वीरायतन का परिचय प्रस्तुत करने के बाद उनसे अनुरोध किया गया कि ५० लाख के प्रस्ताव को एक करोड का कर दिया जाय। इन्दिराजी ने मुस्कराते हुए कहा—तुम-सी छोटी-छोटी लडकियाँ इतनी उत्साह से जुटी हुई हैं, तो यह महान् कार्य अवश्य ही सफल होगा। दिल्ली मे प० मुनिश्री सुशीलकुमारजी व महासती प्रीतिसुधाजी के भी आर्शीवाद मिले। दिल्ली के कार्य को यशस्वी बनाने मे शान्तिदेवीजी, कमलाबहन एव विमलाबहनजी का पर्याप्त सहयोग रहा। मेरठ मे भी एस० एस० जैन सभा आदि से सहयोग मिला।

इसके बाद वीरायतन बालिका सघ की १२ लडकियो का तीसरा ग्रुप कु० मीना गाँधी (लोनावला) की अध्यक्षता मे सुश्री शान्ताबहन की सरक्षकता मे सौराष्ट्र गुजरात मे प्रचार के लिए पहुँचा। राजकोट मे कु० शोभना ने अवधानप्रयोग किया। सौराष्ट्र मे दुर्लभजी भाई वीराणी आदि वीराणी परिवार तथा केशुभाई, मगनभाई ने वीरायतन को उल्लेखनीय सहयोग दिया। सोनगढ मे कानजी स्वामी से भी बालिका-सघ का शिष्टमडल मिला। उन्होने वीरायतन की भूरि-भूरि प्रशसा की।

उसके पश्चात् वीरायतन-बालिकासघ की ५ बालिकाओ का चौथा ग्रुप निर्मला गाँधी के सरक्षण मे पजाब, हरियाणा, राजस्थान एव स्थलीप्रदेश की यात्रा पर गया। पजाब-हरियाणा के जैनसघो का वीरायतन मे उल्लेखनीय अर्थसहयोग प्राप्त हुआ। जगह जगह साधु-साध्वियो के भी आर्शीवाद प्राप्त हुए।

इसके बाद बालिकासघ की ४ बालिकाओ का पाँचवा ग्रुप कु० शोभना जैन के नेतृत्व मे मद्रासयात्रा पर निकला। मद्रास मे श्रीमोहनमलजी चोरडिया, भवरलालजी गोठी, के० जी० कोठारी, अमोलकचदजी गेलडा आदि सज्जनो का बहुत अच्छा सहयोग मिला।

इसके बाद वीरायतन का डेप्यूटेशन आगरा से तैयार हो कर कानपुर गया, जिसमे कल्याणदासजी जैन, पदमचदजी, जगन्नाथजी एव महावीरप्रसादजी जैन प्रभृति सज्जन थे। वहाँ श्री पवनकुमारजी जैन, बच्चुभाई आदि के सहयोग से एक लाख रु० के सहयोग के वचन प्राप्त हुए।

दूसरा डेप्यूटेशन कलकत्ता से श्री केशवभाई खंडेरिया तथा केशवभाई स्पीकर, प० चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी आदि सज्जनों का महाराष्ट्रयात्रा पर निकला। बम्बई मे हरिभाई दोशी ने ११००१ तथा शादीलालजी जैन शेरीफ ने ५ हजार रु० के सहयोग का वचन दिया। बम्बई एव पूना मे भी काफी अच्छा सहयोग रहा।

ता० १३।१।७३ को उपाध्यायश्रीजी के सान्निध्य मे केशवलालभाई खडेरिया की अध्यक्षता मे कार्यकारिणी की बैठक हुई। जिसमे कलकत्ता मे बिहार के मुख्यमत्री श्री केदार पाण्डे से वीरायतन के लिए भूमिसम्बन्धी आश्वासन तथा महासती चदनाजी से अन्य जो भी वार्ता हुई, उसकी जानकारी दी। और कलकत्ता श्रीसघ की आग्रहपूर्ण प्रार्थना पर प्रवर्तकश्रीजी ने प० विजयमुनिशास्त्री को कलकत्ता की ओर विहार की आज्ञा प्रदान की।

अप्रेल १९७३ मे एक दिन सर्वधर्म समभाव के सूत्रधार श्रीचन्द्रस्वामी के साथ बिहार के मुख्यमत्री केदारपाडे एव तिरुपति देवस्थान के मैनेजिंग ट्रस्टी सिद्दैया नायडु उपाध्यायश्रीजी० म० की सेवा मे आए। कविश्री ने उन्हे वीरायतन का परिचय दिया, जिससे अत्यन्त प्रभावित हुए।

वीरायतन सघ ने वैभारगिरि की तलहटी मे पहले ११ बीघा जमीन ले ली थी। इसी बीच बिहार सरकार से एक विशाल भूखण्ड (लगभग २५ एकड का) पाने के लिए चर्चा चल रही थी। उसकी प्राप्ति का आज्ञापत्र मिल चुका था। अत १४/४/७३ को सायकाल ४-३० बजे बिहार प्रान्त के मुख्यमत्री श्री केदारपाडेजी के करकमलो द्वारा शिलान्यास का भव्य कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। कलकत्ता, धनबाद, आगरा, पटना आदि की तथा स्थानीय जनता भी उपस्थित थी। श्री मदनसिंहजी नाहर अपने कारोबार को छोड कर महीनो ही पटना, और राजगृह मे वीरायतन के लिए काम करते रहे। यह उनके हृदय के उदात्तभावो का परिचायक है।

कलकत्ता मे उस समय साध्वीरत्न श्रीसुमतिकुवरजी आदि विराजमान थी। साध्वी चेतना की दीक्षा होने वाली थी। उस प्रसग पर प० विजयमुनिजी शास्त्री भी पधार गए थे। उन्होने सन् १९७३ का चातुर्मास कलकत्ता मे किया। इससे वीरायतन के प्रचार-प्रसार को बहुत प्रोत्साहन मिला।

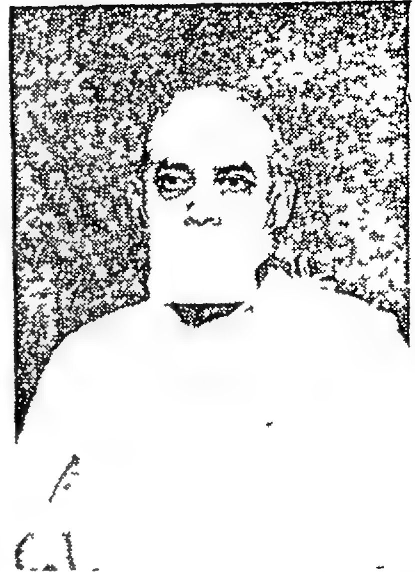
साध्वी श्रीचदनाजी आदि की सेवा मे शान्ता बहन, सुशीला बहन आदि मल्ली-भगवती-महिलामडल की १३० बहनो का सघ कलकत्ता पहुँचा। मडल ने वीरायतन के कार्यो से प्रभावित हो कर ५१०००) रु० के सहयोग का वचन दिया।

साध्वीमडली उत्साह के साथ वीरायतन के कार्य को प्रगति देने हेतु राजगृह चातुर्मासार्थ पधारी। राजगृह और आसपास की जनता ने उनका भावभीना स्वागत किया। साध्वीवृन्द के आगमन से वीरायतन मे एक नई जान आ गई और कार्य दिनो-दिन प्रगति के पथ पर आगे बढता गया। डॉ० नथमलजी टाँटिया, डॉ० महेश तिवारी आदि सबने वीरायतन-योजना की भूरि-भूरि प्रशसा की।

वीरायतन के कर्मठ महारथी

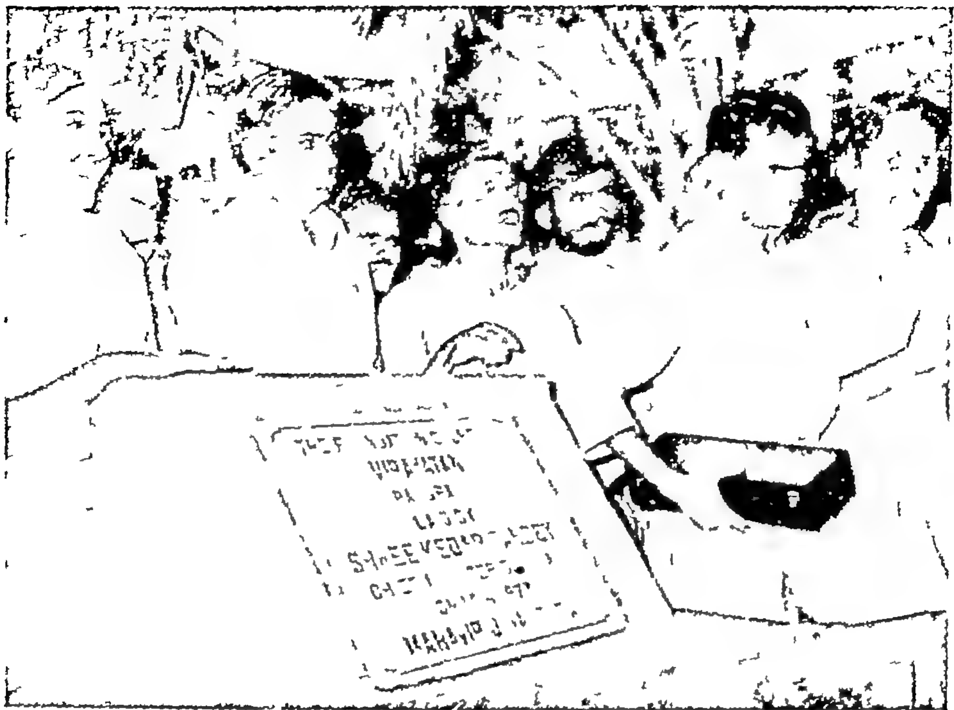


राष्ट्रसत उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी
वीरायतन के प्रेरणास्तम्भ



सेवानिष्ठ श्रीअखिलेशजी महाराज
वीरायतन के मेरुदण्ड

साध्वी श्रीचन्दनाजी, साध्वी सुमतिकुवरजी और साध्वी श्रीयशाजी
वीरायतन के कार्य में सतत प्रयत्नशील



विहारप्रदेश के भू० पू० मुख्यमत्री श्री केदार पाडे १४-४-७३ के दिन राजगृह मे वीरायतन का शिलान्यास कर रहे हैं।



वीरायतन वालिका सघ की वालिकाओं को प्रशिक्षित करने के लिए कलकत्ता मे कामाणी जैन भवन मे साध्वीद्वय के सान्निध्य मे आयोजित वक्तृत्व-प्रतियोगिता



साध्वीरत्न श्रीसुमतिकु वरजी, साध्वी चदनाजी, साध्वी यशाजी और साध्वी साधनाजी वीरायतन की प्रगति के सम्वन्ध मे विचारविमर्श करती हुई ।

वीरायतन की प्रगति के सम्वन्ध मे खेलशकर भाई के साथ वार्तालाप करते हुए प० चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी और श्रीनन्हेवावू ।

वीरायतन के प्रमुख उत्साही कार्यकर्ता श्री केशवलाल खडेरिया, चदु भाई कोठारी, मनसुखभाई हेमाणी, नगीनभाई शाह, भूपतभाई कामाणी, डोलरभाई हेमाणी, श्री तरुणजी आदि महासती श्रीचदनाजी के सान्निध्य मे विहार के भू० पू० मुख्यमत्री श्री केदार पाडेय के साथ वीरायतन के सम्बन्ध मे कलकत्ता मे चर्चा करते हुए ।

वीरायतन बालिका सघ की १२ कर्मठ सदस्याएँ सौराष्ट्र (गुजरात) की प्रचारयात्रा पर कु० मीना गांधी, लोनावला की अध्यक्षता मे । कु० शोभना भी साथ मे है ।

ता० ५, ६ अगस्त १९७३ को राजगृह मे साध्वीरत्न श्री सुमतिकु वरजी, दर्शनाचार्या साध्वी चदनाजी के सान्निध्य मे वीरायतन की जनरल मीटिंग हुई। उसमे वीरायतन के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमो को सम्पन्न करने हेतु राजगृह मे वीरायतन का कार्यालय बनाने का निश्चय किया गया। तथा वास्तुविद से नकशे बनवा कर निर्माणकार्य प्रारम्भ करने हेतु १५ सदस्यो की 'योजना एव निर्माण-उपसमिति' गठित की गई। इसी का ही परिणाम है कि तब से लेकर अव तक ५ भवनो का निर्माण हो चुका है।

इसके साथ ही एक प्रस्ताव द्वारा यह निर्णय भी किया गया कि सरकार से भूमि हस्तारित होने मे काफी विलम्ब लगेगा। अत वैभारगिरि की तलहटी मे जो भूमि खरीदी गई है, वही पर आगममन्दिर, आध्यात्मिक साधनाकेन्द्र, अतिथिभवन, उपाश्रय आदि का निर्माणकार्य प्रारम्भ कराया जाय।

ता० २७। ११। ७३ को सौभाग्यमलजी जैन की अध्यक्षता मे जैनभवन लोहामडी, आगरा मे वीरायतन के सम्वन्ध मे एक विचारगोष्ठी आयोजित की गई। इसमे चिकित्सा आदि वीरायतन की विभिन्न प्रवृत्तियो के सम्पादन के लिए विविध टिकटें छपाने का निर्णय हुआ। शान्तिभाई वनमाली तथा काका कालेलकर ने इस विचारगोष्ठी मे अपने विचार व्यक्त किये। सभी लोग वीरायतन की योजना से प्रभावित हुए। दानपात्र की योजना भी प्रारम्भ की गई।

दिनाक १२ अक्टूबर १९७३ को पू० उपाध्यायश्रीजी के जन्मदिवस शरद पूर्णिमा पर राजगृह मे बिहार के राज्यपाल आर० डी० भडारे द्वारा वीरायतन प्राथमिक विद्यालय का शिलान्यास हुआ। वीरायतन के द्वारा मानवसेवा का प्रथम चरण सम्पन्न हुआ। इसी अवसर पर साध्वीद्वय की प्रेरणा से स्थानीय ७२ परिवार के लोगो ने मासाहार का त्याग किया।

इस प्रकार वीरायतन के द्वारा रचनात्मक कार्यों का सूत्रपात हुआ।

इसी दौरान अमेरिका से एक जिज्ञासुकन्या दिव्या (भारतीय नाम) साध्वीजी से जैनधर्म के अध्ययनार्थ राजगृह आई।

वीरायतन के कार्य मे द्रुतगति से प्रोत्साहन एव मार्गदर्शन देने हेतु राष्ट्रसत उपाध्यायश्री अमरमुनिजी का ता० २७ फरवरी १९७४ को आगरा से, राजगृह की ओर विहार हुआ।

रास्ते मे कानपुर, लखनऊ, रायबरेली, इलाहावाद, वाराणसी, पटना आदि जहाँ-जहाँ भी उपाध्यायश्रीजी पधारे एव वीरायतन का परिचय दिया, लोग अत्यन्त प्रभावित हुए।

ता० २४ फरवरी को राजगृह मे वीरायतन की पवित्रभूमि—वैभारगिरि की तलहटी मे वीरायतन की ओर से नेत्रदानशिविर का शुभारम्भ हुआ। इसमे साध्वी-मडली के अतिरिक्त बौद्धधर्मगुरु फ्यूजी गुरुजी भी बौद्धभिक्षुओ के साथ उपस्थित

थे। स्वास्थ्यमन्त्री केदार पाडेयजी भी अतिथि के रूप मे पधारे थे। इसी दौरान राजगृह मे २०० शय्याओ वाले एक विशाल चिकित्सालय के निर्माण के हेतु बम्बई के एक श्रद्धालु जौहरी ने पूरा सहयोग देने का वचन दिया।

राजगृह मे ही वीरायतन की जनरल मीटिंग साध्वीमडली के सान्निध्य मे हुई। जिसमे वीरायतन की ५१ सदस्यो की एक कार्यकारिणी बनी। पदाधिकारियो का निर्वाचन इस प्रकार हुआ—

१ अध्यक्ष—श्री खेलशकरभाई, जयपुर
२ उपाध्यक्ष—सेठ अचलसिंहजी एम० पी०, आगरा
३ ,, श्री केशवलालजी खडेरिया, कलकत्ता
४ ,, हरिभाई दोशी, बम्बई
५ ,, सौभाग्यमलजी जैन, शुजालपुर
६ ,, सागरमलजी डागा, जयपुर
७ ,, मदनसिंहजी छाजेड, कानपुर
८ प्रधानमन्त्री—ला० कल्याणदासजी जैन, आगरा
९ मन्त्री—श्री पदमचन्दजी जैन, आगरा
१० ,, श्री छोटेलालजी गाँधी, कलकत्ता
११ ,, श्री पवनकुमारजी जैन, कानपुर
१२ ,, श्री उमरावमलजी चौरडिया, जयपुर
१३ ,, श्री केशरीचन्दजी लोढा, दिल्ली
१४ कोषाध्यक्ष—श्री नन्हेबाबूजी जैन, आगरा

उपाध्याय कविश्रीजी महाराज १९७४ के चातुर्मासार्थ राजगृह पधारे। ता० १८-१९ जून को श्री वीरायतन की मीटिंगें हुई। वीरायतन मे नया प्राण आ गया। मानो कविश्रीजी म० के पदार्पण मे वीरायतन सनाथ हो उठा। सबने भावभीना स्वागत किया। और उसके बाद वीरायतन प्रगति के सोपान पर क्रमश चढता ही गया। उसका सक्षिप्त विवरण पहले दिया जा चुका है।

—प० चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी, राजगृह



वीरायतन के परम सहयोगी

श्रीचन्द्रस्वामी की सफल विदेश यात्रा



'सर्वधर्म-समभाव' के सूत्रधार युवा साधक श्री चन्द्र स्वामीजी दिनाक ५-११-७४ को महास्थविर पूज्य श्री पृथ्वीचन्द्रजी म० आदि के दर्शन हेतु आगरा पधारे। यह स्मरणीय है कि श्री चन्द्रस्वामी जी गत जून मे जब विदेश-यात्रा पर रवाना हुए थे तो पूज्यश्री का आशीर्वाद लेने हेतु आगरा आये थे। स्वामी-जी कविश्रीजी के प्रति अनन्य श्रद्धा रखते हैं व राजगृह मे निर्माणाधीन वीरायतन के बहुमुखी विकास हेतु सर्वात्मभाव से सहयोग कर रहे हैं।

श्रीचन्द्रस्वामीजी अफ्रीका, यूरोप आदि राष्ट्रो की ४ मास की सफल यात्रा कर हाल ही मे भारत आये हैं। अफ्रीका मे बसे लाखो प्रवासी भारतीयो एव विशेषकर जैनो को आपने उद्‌बोधित किया। भगवान् महावीर की २५ वी निर्वाणशताब्दी के उपलक्ष्य मे प्रवासी जैनो को एकमत हो कर कार्य करने की प्रेरणा दी। अफ्रीका मे आपके सम्पर्क मे अ० भा० उद्योगपतियो के अतिरिक्त स्थानीय राजनेता एव अफ्रीका के उपराष्ट्रपति भी आये।

यूरोप के अनेक राष्ट्रो की यात्रा कर श्रीचन्द्रस्वामीजी ने लन्दन मे अपना केन्द्र बनाया। वहाँ सर्वधर्मसमभाव केन्द्र की स्थापना की। उसका भवन भी खरीद लिया गया। तथा प्रवासी जैनो का एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय सगठन बनाने की प्रेरणा भी दी। यह प्रसन्नता की बात है कि श्रीचन्द्रस्वामीजी की प्रेरणा से लन्दन मे 'इन्टर नेशनल जैन कान्फ्रेंस' की स्थापना हो गई है। इसके पेटर्न (सरक्षक) का स्थान श्रद्धेय कविश्रीजी को स्वीकार करने का आग्रह किया गया है। कविश्रीजी ने स्वीकृति प्रदान कर दी है। अध्यक्ष श्री चन्द्रस्वामीजी हैं।

राजगृह मे बन रहे वीरायतन कार्यक्रम मे सार्वजनिक चिकित्सालय हेतु श्री चन्द्रस्वामीजी ने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग दिलाने का आश्वासन दिया है। आपके प्रयत्नो से बिहार सरकार तथा केन्द्रीय सरकार इस लोककल्याणकारी योजना मे सराहनीय सहयोग कर रही है।

हम श्री चन्द्रस्वामीजी के 'सर्वधर्मसमभाव' एव 'अन्तर्राष्ट्रीय जैन कान्फ्रेंस' जैसे मानव हितकारी कार्यो की सफलता चाहते हैं।

वीरायतन के मूल आराध्य

महाश्रमण-
महावीर-
चरणेषु



—डा० चन्दनलाल पाराशर

महावीरो धीर प्रणतपरिवीर प्रभुवरः,
सदा दाता ज्ञाता जनहितकरो योऽत्र भुवने।
स त्यागी शान्तात्मा परमहितकारी कृततपा,
दयाशीलो ध्यानी मननमनुगामी प्रियजन.॥

नमश्शान्तायाखिलजन—हितायाद्यगुरवे,
मनो-वाणी-कायैं प्रणतिततय सन्तु सततम्।
जगद्धारी न्यायी "नयनपथगामी भवतु मे,
करोत्वद्यागत्य प्रणतजनकाम हितवहम्॥

महावीरः स्वामी परमपथगामी जयतु सः,
मनोदु:खंहारी प्रतिदिनविहारी भवतु स।
सदा शान्ति कान्ति वितरतु जनेभ्य प्रभुरयम्,
स एको विद्यादो जगति ददता दानमखिलम्॥

बलिष्ठो धर्म्मिष्ठ प्रकृतिसुगमो धृतिमति,
वरिष्ठ कर्म्मिष्ठ. सकलजगतीपावितसृतिः।
जयिष्ठो मेधावी जन-जन-सहायी भृतकृति,
स देवो धर्मात्मा प्रथयतु सुधर्मे मम मति॥

यतियोंगी, ज्ञानी सकलजनसेवी प्रतिपलम्,
जगत्त्राता, धाता, परमधनदाता धनपति.।
मनोवाञ्छां कुर्वे पुनरपि भवन्तं नयनगम्,
कदा पश्याम्यस्मिन् जगति भगवस्त्वामहमहो॥



वीरायतन बालिका सघ की कर्मठ सदस्याएँ वीरायतन की प्रचारयात्रा पर कोकिला हेमाणी के नेतृत्व मे। १—कोकिला हेमाणी, २—निर्मला गांधी, ३—आशा लाठिया, ४—ऊषा दोशी, ५—कुमुद वशाणी, ६—चारु देसाई, ७—रजना सघवी।



कु० शोभना जैन की अध्यक्षता मे वीरायतन वालिका सघ का शिष्टमडल मद्रासयात्रा पर। इसमे हैं—(१) कु० शोभना जैन, (२) भावना नेमिचन्द दोशी, (३) नीरु गांधी, (४) नीला वखारिया, (५) प्रतिभा जगजीवनभाई मेहता।

वीरायतन बालिका संघ की कर्मठ कार्यकर्त्री :

कु० निर्मला गांधी

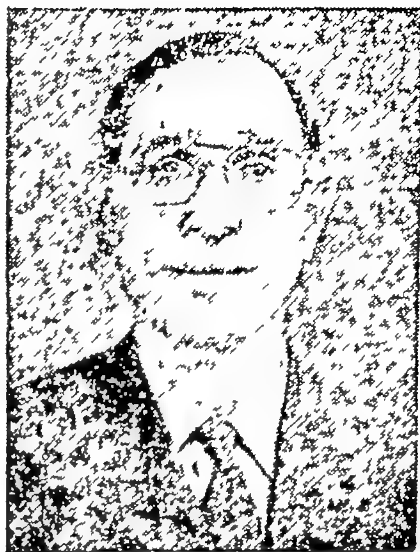
चि० निर्मल, प्रसन्नता है, तुम लुधियाना मे वीरायतन के लिए प्रेरणा ज्योति जगा रही हो। तुम-सी निष्ठावान जिनशासन की पुत्रियाँ हमारे अन्तर्मन को गौरवान्वित कर रही हैं। मान-अपमान की कुछ भी चिन्ता किये बिना द्वार-द्वार पर लक्ष्यसिद्धि के लिए अलख जगाना, कोई साधारण बात नही है। इस अदम्य कर्मप्रेरणा की निर्मल स्मृति वीरायतन के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगी। —उपाध्याय अमरमुनि

प्रिय निम्मा, तुम यात्रा पर हो, वीरायतन के विषय मे लोगो को समझा रही हो और लोग तुम्हारी बात सुन रहे हैं। लोगो का सहयोग भी मिल रहा है। जैनसमाज मुख्यत. दो वर्गों मे बँटा है—साधु और श्रावक। साधुवर्ग अपनी सीमाओ मे बँधा रहने के कारण व्यापक प्रचार नही कर सकता और श्रावकवर्ग व्यापारी होने के कारण अपने क्षेत्र मे साधुवर्ग से अधिक बँधा है। जो थोडे से प्रचारक है, वे वैतनिक रहे, इस कारण उनका अधिक प्रभाव नही पड सका। मैं चाहती हूँ, कुछ ऐसे सेवक, सेविकाएँ हो, जो सयममय जीवन व्यतीत करते हुए, प्रचार का क्षेत्र व्यापक बना सकें। सघमित्रा जैसे बौद्धधर्म के प्रचार के लिए अपरिचित राष्ट्रो मे गई थी, वैसे तुम भी बहुत कुछ कर सकती हो। तुम मे बहुत शक्ति है। अदम्य साहस और उत्साह के साथ आगे बढो। —साध्वी चन्दना, राजगृह

प्रिय निम्मा, आज तक हम सोच रहे थे कि तुझे अपना रास्ता चुन लेना चाहिए, गृहस्थ का या सन्यास का। किन्तु जब से गुरुदेव के आशीर्वाद से एव साध्वी चन्दनाजी की प्रेरणा से तू अपने-आपको वीरायतन मे समर्पित कर चुकी है, तब से हमे अपने आप पर गर्व है कि तू अन्त करण से वीरायतन की सेवा करके परिवार का नाम निर्मल बनायेगी। इसी भावना के साथ " —सम्पत गाँधी एव समस्त गाँधी परिवार

प्रिय पुत्री निम्मा ! वीरायतन के इतिहास मे चन्दनाजी की एव तुम्हारी सेवा अमर रहेगी। सेवापथ पर आगे बढती रहो, गुरुदेव के आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं ही !

—कला जैन 'साहित्यरत्न' जम्मू



वीरायतन के अध्यक्ष :

पद्मश्री खेलशंकरभाई

पदमश्री खेलशकरभाई केवल हीरो के जौहरी ही नही, ममाज के जौहरी भी है। पाँच पीढी से आपके परिवार मे जवाहरात का व्यापार चलता आ रहा है। आपका जन्म सन् १६१२ मे मोरवी मे हुआ था, लेकिन लगभग ७० वर्ष से आपके पिता श्रीदुर्लभजीभाई जयपुर आ कर वस गये, यही अपना पैतृक व्यवसाय फैलाया। श्रीखेलशकरभाई ने १६३२ मे लखनऊ विश्वविद्यालय से वी ए परीक्षा पास की और अपने पैतृक (जवाहरात के) व्यवसाय मे लग गये। सर्वप्रथम व्यवसाय के सिल-सिले मे १६३६ मे आप पेरिस गये। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो जाने से शीघ्र भारत लौटना पडा। उसके वाद आप पुन पेरिस गये और तव से लगा कर अव तक आपने उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका, पेरिस, ब्राजिल और सुदूरपूर्व एशिया आदि विदेशो मे भ्रमण किया है।

अपने व्यावसायिक क्षेत्र को श्रीखेलशकरभाई ने नया मोड दिया। आपने पन्नो के कटिंग और पोलिशिग मे विशेषज्ञता प्राप्त की। धीरे-धीरे आप अपने व्यवसाय मे इतने दक्ष हो गये कि **आल इण्डिया जेम एण्ड ज्वैलर्स एक्सपोर्ट प्रोमोशन कौंसिल** स्थापित हुई, तव उसके १६६६ से १६६८ तक आप चेयरमेन रहे। आपके अथक परिश्रम के कारण भारत सरकार को हीरो पन्नो की आयात-निर्यातनीति वदलनी पडी। इसके फलस्वरूप सन् १६६६ से १६६८ तक १० करोड से २३ करोड तक के रत्न और जवाहरात निर्यात कर सके।

खेलशकरभाई सामाजिक कार्यो मे भी किसी भी राष्ट्रहितैषी या व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से त्यागपरायण व्यक्ति से कम नहीं हैं। महात्मा गाधीजी की

ट्रस्टीशिप की भावना को आपने जीवन मे स्थान दिया, यही कारण है कि आपने कई सार्वजनिक सस्थाओ मे मुक्तहस्त से दान दिया है। वीरायतन को आपने सदा से सर्व-जनोपयोगी सस्था मान कर काफी धन दिया है। इसके अध्यक्ष पद पर रह कर तन और मन से भी सेवा करते हैं। आपने जयपुर मे **गुजराती समाज** की नीव रखी। आप कई सरकारी एव सार्वजनिक सस्थाओ से जुडे हुए हैं। उनमे से कुछ ये हैं—

भू० पू० अध्यक्ष—जयपुर चेम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इडस्ट्री, ज्वैलर्स ऐसोशिएशन, जयपुर गुजराती समाज, सुबोध डिग्री कॉलेज, रोटरी कलब जयपुर।

चेयरमेन—सतोकबा दुर्लभजी ट्रस्ट

भू० पू० उपाध्यक्ष—अमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी

सदस्य—परामर्शदात्री समिति, व्यवसाय पर, भारत सरकार
श्री सोमनाथ मन्दिर की परामर्शदात्री व विकास

अध्यक्ष—राजस्थान चेम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री, तथा वीरायतन

संस्थापक सदस्य—प्रथम रत्नपरीक्षक प्रयोगशाला (भारत मे)

श्री खेलशकर भाई का खास सामाजिक कार्य सन् १९५७ मे अपने माता-पिता की स्मृति मे स्थापित **संतोकबा दुर्लभजी ट्रस्ट** है। इस ट्रस्ट मे से आप निर्धन तेजस्वी छात्रो को छात्रवृत्ति तथा सहायता देते हैं। सर्दियो मे गरीबो को कम्बल बाटते हैं, ट्रस्ट के द्वारा एक एक्सरे तथा पेथोलॉजिकल एव बायोलोजिकल्स निदान केन्द्र स्थापित किया। सन् १९६३ मे क्लीनिक ने एक लाख से अतिरिक्त रोगियो की सेवा की। इसके बाद सन् १९६६ मे ट्रस्ट ने प्रसूतिगृह तथा बालसवर्द्धनगृह बनवाये जनता के द्वारा प्रोत्साहन मिलने पर आवश्यकता देखकर श्री खेलशकर भाई ने उसे 'सतोष दुर्लभजी मेमोरियल हॉस्पिटल का रूप दिया। यह जयपुर एव राजस्थान की जनता के लिए ट्रस्ट की बहुत बडी देन है। इस हॉस्पिटल का राजस्थान मे गौरवपूर्ण स्थान है। इसी मे डॉक्टदो कर्मचारियो आदि के लिए एक तिमजला आवासगृह भी है। अतिथिगृह भी इसके साथ ही बना है, जो बाहर के रोगियो के लिए उपयोगी है। ३०० शय्याएँ इसमे बढा दी गई हैं। प्रतिवर्ष इस पर ट्रस्ट २-४ लाख खर्च करता है। खेलशकरभाई स्वय सुबह-शाम आ कर दिलचस्पी से इसकी देखभाल करते हैं। ता० २८ नवम्बर १९७१ को प्रधानमत्री श्रीइन्दिरागांधी भी इस हॉस्पिटल मे पधारी और बहुत ही प्रभावित हुई हैं। खेलशकर भाई की राष्ट्रीय कार्यों मे भी बहुत दिलचस्पी है। चीन के हमले के समय प्रधानमत्री के युद्ध फड मे आपने ५१०००) रु० दिये हैं। सन् १९७१ मे गणतत्रीय दिवस पर आपकी सेवाओ से प्रभावित होकर राष्ट्रपति ने 'पद्मश्री' का खिताब दिया है श्री खेलशकर भाई वास्तव मे उदार दिल के जीवन के खिलाडी हैं, भारत के सच्चे सपूत हैं। आप तन ,मन और धन से समाज-सेवा मे दत्तचित्त रहते हैं। आपसे समाज और राष्ट्र को बहुत बडी आशाएँ हैं।



वीरायतन के उपाध्यक्ष :

श्री सागरमलजी डागा,

जो अब हमारे बीच नहीं रहे !





सागर सागर ही है। वह अनन्त अतीत से गर्ज रहा है, कभी थका नही, कभी सोया नही, वह विराट् की प्रेरणा देता रहता है। स्व० सागरमलजी डागा भी जयपुर के एक सागर थे। आज से ५८ वर्ष पूर्व २० दिसम्बर १६१७ को जयपुर के एक लब्ध-प्रतिष्ठ परिवार मे श्रीजीवनमलजी डागा के यहाँ उनका जन्म हुआ। आप श्रीजीवन-मलजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। तीन भाइयो मे आज श्रीपारसमलजी रहे हैं।

वचपन मे ही आप पर से पिताजी का साया उठ जाने से आप प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करते ही व्यवसायिक क्षेत्र मे उतर गये। कलकत्ता के वाद मद्रास मे आपने रत्नपारखियो मे शीर्षस्थ ख्याति प्राप्त की।

केवल धन कमाना और ऐश आराम करना ही आपके जीवन का लक्ष्य नही था। परिवारपालन के वाद समाज, धर्मसघ, जाति और राष्ट्र की सेवा के लिए योगदान देना भ० महावीर के अनुयायी सद्गृहस्थ के लिए आवश्यक है। श्रीडागाजी भ० महावीर के एक सच्चे सपूत थे। उन्होंने भ० महावीर के उस उच्च आदर्श को जीवन मे उतारने का प्रयास किया कि **जे गिलाण पडियरइ से ममं पडियरई** जो ग्लान की परिचर्या करता है, वह मेरी परिचर्या करता है। 'श्रीअमर जैन मेडिकल रिलीफ सोसाइटी' के मृत्यु पर्यन्त सस्थापक अध्यक्ष रह कर रुग्णसेवा को प्रोत्साहन देना तथा ज्वैलर्स चेरीटेवल ट्रस्ट के अध्यक्ष पद पर रहते हुए सवाई मानसिह अस्पताल, जयपुर मे १३ काटेज वार्ड वनाना आपकी ग्लानसेवा की भावना का प्रवल प्रमाण है। पीडित और

वीरायतन के पदाधिकारी



अध्यक्ष—खेलशकरभाई, जयपुर

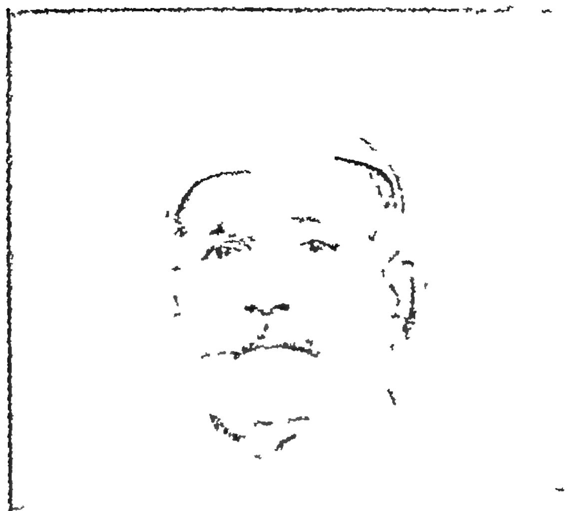


——ला० कल्याणदासजी जैन
प्रधानमत्री



बाबू पदमचदजी जैन
मत्री

वीरायतन के पदाधिकारी



उपाध्यक्ष—सेठ अचलसिंहजी जैन, एम पी



उपाध्यक्ष—सागरमलजी डागा



कोषाध्यक्ष—ला॰ नन्हेबाबू जैन

नोट—वीरायतन के शेष पदाधिकारियो के फोटो समय पर प्राप्त न हो सके। अतः उनके चित्र नही दे सके।

अभावग्रस्त जनता को सस्ती और अद्यतन चिकित्सा उपलब्ध कराने की भावना आप मे कूट-कूट कर भरी थी। आपको समाजसेवा के कार्य मे प्रेरित करने वाले स्व० श्री स्वरूपचन्दजी चौरडिया थे।

चिकित्सा के बाद मानवसमाज की दूसरी आवश्यकता शिक्षा है। स्व० डागाजी सस्ती, सर्वसुलभ और देश की आवश्यकताओ को पूर्ण करने वाली शिक्षा के हिमायती थे। सुबोध-बालिकाविद्यालय के वर्षों तक अध्यक्ष पद पर तथा श्री एस० एस० जैन सुबोध-महाविद्यालय के उपाध्यक्ष पद पर रह कर आपने इन दोनो शिक्षा-सस्थाओ के निर्माण, विकास एव प्रगति मे सक्रिय योगदान दिया। जैन श्वे० स्था० शिक्षा समिति का निर्माण भी आपकी सूझबूझ का परिणाम था।

व्यावसायिक क्षेत्र मे आप ज्वैलर्स एसोसिएशन के सन् ५८ से ६१ तक अध्यक्ष पद पर रहे। व्यावसायिक क्षेत्र मे भी आप निपट निजी स्वार्थ से लिपटे नही रहते थे। आपने अनेक साथियो और तरुणो को आत्मनिर्भर बनाया है। जीवन के अन्तिम क्षणो तक आपका उद्देश्य साधारण जन को ऊँचा उठाने का रहा।

सामाजिक क्षेत्र मे भी आप अपनी सेवाएँ देने मे पीछे नही रहे। आपकी भावना यह थी कि समाज धर्म की मात्रा से ओतप्रोत बनी रहे। साम्प्रदायिक युगबाह्य क्रियाकण्डो के थोथे नारो मे आपका विश्वास नही था। आप चाहते थे कि समाज का शुद्ध धर्मदृष्टि से निर्माण हो, तभी समाज मे सुव्यवस्था, स्वस्थता व सुख-शान्ति बनी रहेगी और यह तभी हो सकता था कि जब धर्म का समग्र जनजीवन मे प्रवेश हो। राष्ट्रसत कविरत्न उपाध्याय श्रीअमरचन्दजी महाराज के सम्पर्क मे आने पर आपको अपने इन विचारो को मूर्तरूप देने का मौका मिला। भगवान् महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य मे जब कविश्रीजी महाराज ने **'वीरायतन'** की स्थापना की, तब उनके आह्वान पर स्व० श्री सागरमलजी ने हृदय से वीरायतन का समर्थन किया, पूरा सहयोग दिया, आप उसके उपाध्यक्ष पद पर रहे। आप अपने सामने ही वीरायतन को अन्तर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक सस्था के रूप मे देखना चाहते थे। आपकी अन्तिम समय तक यही आकाक्षा रही कि वीरायतन एक ऐसी सस्था बने जो धर्म के तत्वो को समग्र जनजीवन मे उतारने का एक प्रबल माध्यम हो, प्राणिमात्र इससे लाभान्वित हो।

आपने पिछले तीन साल से जयपुर के श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रावक सघ के अध्यक्ष पद पर रह कर अपनी सेवाएँ दी। समाज मे प्रचलित कुरूढियो, कुप्रथाओ और गलत परम्पराओ के खिलाफ होने से कई बार मतभेद खडा हो जाता, परन्तु आप इसे मनोमालिन्य का रूप नही हो देते थे। स्पष्टवादिता आपका विशिष्ट गुण था। निर्भीक और नि.शक हो कर आप अपनी बात कह देते थे। इसी कारण अधिक विरोधो और तूफानो के बावजूद भी आप आगे बढते गए। 'अमर भवन' का नवनिर्माण आपके

साहस, सकल्प, उत्साह और दूरदर्शिता का परिचायक है । श्री डागाजी स्वतन्त्रता-आन्दोलन मे भी परोक्षरूप से सक्रिय रहे। उनमे सरलता, सौम्यता, आत्मविश्वास की मात्रा गजब की थी।

इस तरह स्व० श्री सागरमलजी डागा, सागर की तरह अनेक गुणरत्नो के आकर थे। आज डागाजी हमारे वीच नही रहे, लेकिन अपने उत्तमोत्तम गुणो की सौरभ अपने पीछे छोड गए हैं।

स्व० श्री डागा अपने पीछे एक भरापूरा परिवार छोड गए हैं। आपके लघु-भ्राता श्री पारसमलजी डागा भी सेवारत श्रावक हैं, धुन के पक्के और इरादे के धनी हैं। आपके दोनो पुत्र सर्वश्री मोतीचन्द तथा सुमतचन्द्र, आपके स्वभाव और गुणो की प्रतिकृति हैं।

श्री डागाजी के निधन से जैन समाज की ही नही, सारे समाज की, तथा राष्ट्र के एक सपूत की और उसमे भी वढकर भगवान् महावीर के परम श्रद्धालु भक्त की क्षति हुई है, जिसकी पूर्ति निकट भविष्य मे असम्भव है।

वीतरागप्रभु से करवद्ध प्रार्थना है कि उनकी आत्मा जहाँ भी हो, वहाँ उन्हे शान्ति मिले। वीरायतन-परिवार उनके शोकसतप्त परिवार एव ईष्टजनो के प्रति हार्दिक समवेदना प्रगट करता है। —पदमचन्द जैन, मत्री, वीरायतन



शोक-संवेदना

स्व पारसमलजी 'प्रसून'—जैनरत्न माध्यमिक विद्यालय, भोपालगढ (जोधपुर) के वरिष्ठ अध्यापक, प्रसिद्ध वक्ता, समाजसेवी पारसमलजी 'प्रसून' को अचानक हेमरेज एव पक्षाघात हो जाने से ता० ११ सितम्बर को जोधपुर मे देहावसान हो गया। आप जैन समाज के एक होनहार एव लोकप्रिय व्यक्ति थे। समाज के लिए इस क्षति की पूर्ति होना अत्यन्त कठिन है। —कस्तूरचन्द वाफणा, भोपालगढ

स्व सागरमलजी काठेड—नागदा नगर के प्रसिद्ध धार्मिक व्यक्ति श्री सागरमलजी काठेड का ७५ वर्ष की आयु मे सथारे सहित समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ। आप ४० साल से चौविहार व्रत करते थे। आपके निधन से नागदा जैन समाज की अपूरणीय क्षति हुई है। आप अपने पीछे भरापूरा परिवार छोड गये हैं।

—भेरुलाल काठेड जैन, नागदा

धर्मनिष्ठ श्रावक श्री रूपचन्दजी धाकड का दु खद निधन—स्थानकवासी जैनसमाज के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री भवरलाल जी धाकड के लघुभ्राता एव सावतमल के पिता श्री रूपचन्दजी धाकड का ७८ वर्ष की आयु मे सवत्सरी के दिन शाम को दु खद निधन हो गया। आप रामपुरा—निवासी होते हुए भी वर्षो से इदौर रहते थे। आपको शास्त्रो का अच्छा ज्ञान था। जैन समाज की समस्त सस्थाओ द्वारा आपको श्रद्धाजलि अर्पित की गई। —हस्तीमल झेलावत, इदौर



वीरायतन
समाचार

१—वीरायतन की जनरल मीटिंग दो और तीन नवम्बर को राजगृह मे रखी थी। लेकिन श्री जयप्रकाशनारायणजी के नेतृत्व मे बिहार मे आन्दोलन तीव्रतर हो रहा है, इसलिए मीटिंग को स्थगित करना पडा। अब मीटिंग कब रखी जाय, इसका विचार चल रहा है। निश्चित होते ही सभी सदस्यो को सूचित किया जायगा।

२—भगवान् महावीर की पच्चीसवी निर्वाणशताब्दी के उपलक्ष मे ११ नवम्बर से २५ दिसम्बर तक ४५ दिन का विशाल रूप से विशिष्ट कार्यक्रम वीरायतन की ओर से राजगृह मे निश्चित किया गया था। परन्तु जे० पी० के नेतृत्व मे बिहार मे ४ नवबर से आन्दोलन तेज हो रहा है, इसलिए निर्वाणशताब्दी के विशेष आयोजन पूरे निर्वाण वर्ष के लिए यथाप्रसग विस्तृत कर दिये हैं। वर्तमान मे दीपावली से ४५ दिन तक आगमवाचना, ध्यानशिविर, गरीब प्रजा को वस्त्रदान, अन्नदान, नेत्रदानशिविर आदि आयोजन यथाप्रसग होंगे।

३—बिहार-सरकार की ओर से पण्डितपुर के पास वीरायतन को जो २४ एकड जमीन मिलने वाली थी, उसे वीरायतन को देने की स्वीकृति बिहार मन्त्रिमडल ने दे दी है। इस जमीन को प्राप्त करने के लिए बिहार सरकार के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री श्री केदारपाडे के समय से श्रीचन्द्रस्वामीजी और सुरेन्द्रकुमारजी तरुण, राजगृही, तथा श्रीचन्दुभाई कोठारी, कलकत्ता आदि का विशेष प्रयत्न रहा है। अत इसके लिए वीरायतन उनका आभार मानता है।

४—भगवान् महावीर के निर्वाण शताब्दीवर्ष मे राजगृही और पावापुरी के मध्य मे वीरायतन ने २५ लोअर प्राइमरी स्कूल बनाने का निश्चय किया है। स्कूल के भवननिर्माण के लिए जो सज्जन तेरह हजार रुपये का दान देंगे, उनका नाम उस स्कूल भवन पर देने का निर्णय वीरायतन ने किया है। कुछ सज्जनो की इस कार्य के लिए स्वीकृति भी आ चुकी है।

५—शरद् पूर्णिमा को राष्ट्रसंत उपाध्याय कविश्री अमरमुनिजी महाराज की जन्मतिथि के उपलक्ष मे वीरायतन की भूमि पर समारोह था। राजगृह तथा आस-पास के सैकडो व्यक्ति, जिनमे हरिजन अधिक थे, प्रवचन सुनने आए थे। उन सबने मासाहार, शराब और शिकार का त्याग किया। उस दिन ५०० व्यक्तियो को मीठे चावलो का भोजन दिया गया। इस अवसर पर कई बहनो को साडियाँ और पुरुषो को धोतियाँ वितरित की गई। बाहर के जो भाई आए थे, वे इस रचनात्मक कार्य को देख कर गद्गद् हो गए।

वीरायतन द्वारा एक नये चित्र का प्रकाशन

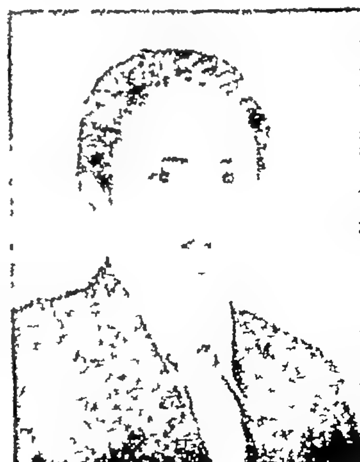
भगवान् महावीर की २५ वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष मे वीरायतन के सौजन्य से सन्मतिज्ञानपीठ ने भगवान् महावीर के जीवन का सुन्दर आकर्षक पचरगे एक चित्र पाँच झाँकियो सहित, १७″×२२″ साइज का प्रकाशित किया है। चित्र प्रकाशित होने से पहले ही लोगो की मांग शुरू हो गई है। अत शीघ्रता करें। मूल्य सिर्फ ५) रुपये डाकखर्च अलग।

मिलने का पता—**सन्मति ज्ञानपीठ**
लोहामण्डी, आगरा-२
(उ० प्र०)

—खेलशकर दुर्लभजी जौहरी
अध्यक्ष, वीरायतन, राजगृह

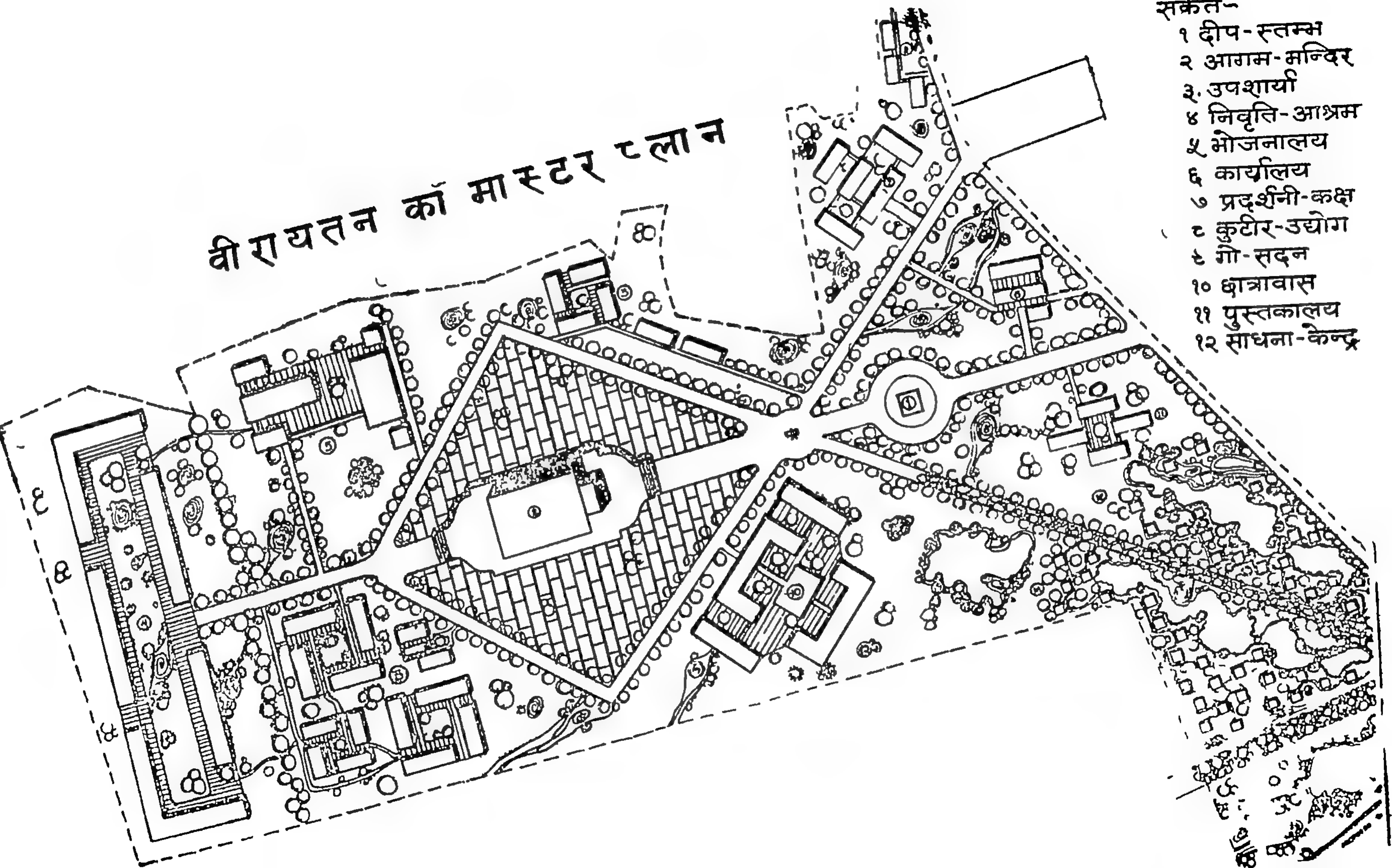


सहयोग दीजिए, ग्राहक बनिए



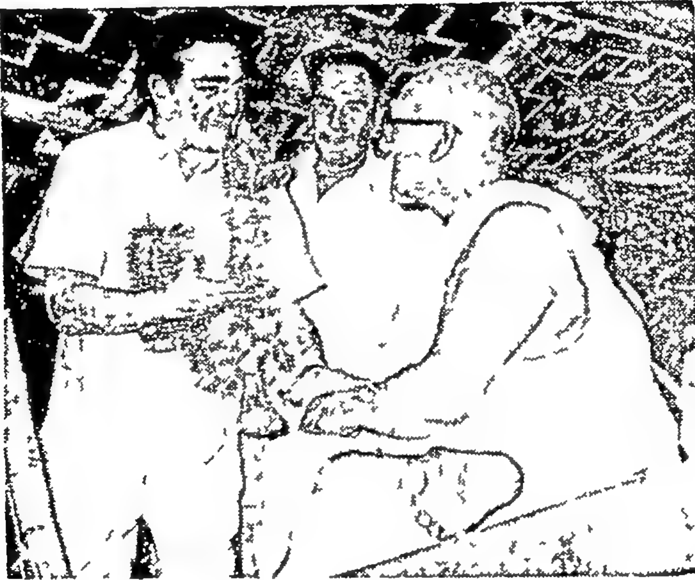
लुधियाना के मुख्यभ्राता श्रीफूलचन्दजी जैन एक धर्मनिष्ठ, पुरुषार्थी एव जैन-सस्कारप्रेरक व्यक्ति है। आपको सन्मति ज्ञानपीठ आगरा ने श्री अमरभारती तथा ज्ञानपीठ से प्रकाशित साहित्य के प्रचारक एव प्रतिनिधि के रूप मे नियुक्त किया है। सभी धर्मप्रेमी भाई-बहन मुख्यभ्राता श्री फूलचन्द जैन को पूरा सहयोग दें।

रामधनशर्मा, बी ए. एल टी
व्यवस्थापक, सन्मति ज्ञानपीठ


वीरायतन का मास्टर प्लान
संकेत–
१ दीप-स्तम्भ
२ आगम-मन्दिर
३. उपशार्या
४ निवृत्ति-आश्रम
५ भोजनालय
६ कार्यालय
७ प्रदर्शनी-कक्ष
८ कुटीर-उद्योग
९ गो-सदन
१० छात्रावास
११ पुस्तकालय
१२ साधना-केन्द्र

समाज-दर्शन









राहों में फ्री डिस्पेंसरी

राहो (जिला—जालधर) मे ता० २६ सितम्बर को आत्म-जयन्ती महोत्सव के शुभ अवसर पर जैन-भूषण श्रद्धेय श्रीज्ञानमुनिजी म० के चरणो मे पजाव के वित्तमत्री पण्डित हसराजजी शर्मा उपस्थित हुए। श्री शर्माजी ने महावीर निर्वाण-शताब्दी के उपलक्ष्य मे पजाव सरकार की ओर से पजाव विश्वविद्यालय मे जैनचेयर के लिए १० लाख रुपये तथा आचार्य श्री आत्माराम जैन फ्री डिस्पेंसरी राहो को दस हजार रुपये देने की घोषणा की।

पंजाबी में महावीर का चरित्र



मोगाविराजित भडारी श्री पद्मचन्दजी म० एव जैनभूषण श्री अमरमुनिजी की प्रेरणा से पजावराज्य की भ० महावीर २५०० वाँ निर्वाण महोत्सवसमिति, मालेरकोटला द्वारा राष्ट्रसन्त उपाध्यायश्री अमरमुनिजी द्वारा लिखित **'महावीर : सिद्धान्त और उपदेश'** का पजावी (गुरुमुखी लिपि) मे अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। अनुवादक हैं—श्री रवीन्द्रकुमार जैन। पृष्ठ सख्या १६५ है। पहले भी आपकी प्रेरणा से उपाध्यायश्रीजी द्वारा लिखित भ० महावीर की वोधकथाएँ आदि पुस्तको का पजावी मे अनुवाद हुआ है।

दीर्घतपस्विनी इचरजकुंवरजी लुणावत का सफल दीर्घतप



जीवन के प्रभात से ही माता-पिता के सरक्षण मे व्रत और तप के अभ्यास से जयपुर-निवासी श्रीमती इचरजकुवर लुणावत, धर्म-पत्नी स्व श्रीगुमानमलजी लुणावत ने दीर्घ तपस्वी भ० महावीर के २५००वे निर्वाण-वर्प के उपलक्ष्य मे दीर्घकालिक खमण तपस्या करके आत्मा मे निहित शक्तियो की अभि-व्यक्ति की है, जनता की आत्मश्रद्धा मे वृद्धि की है। वास्तव मे भौतिक युग के लिए यह चमत्कार है। आप शान्तप्रकृति की धार्मिक महिला है, सकटकाल मे धर्मपथ पर धैर्य के साथ चलती हैं। कुछ वर्पों पूर्व आपने मासखमण तप भी किया था। आपने सन् १९६९ मे ५१ दिन की एव सन् १९७२ मे ६१ दिन की घोर तपस्या की थी। इस वर्प आपने लगभग चार मास की लगातार तपस्या अपनी धर्मक्रियाओ के साथ करके ससार को आश्चर्य मे डाल दिया। जयपुर के स्था० जैन श्रावक सघ ने सघ द्वारा आपका अभिनन्दन करने का निश्चय किया है। तपोनिष्ठ माताजी के तीनो पुत्र—सर्वश्री महेन्द्रकुमार, श्री वीरेन्द्रकुमार एव श्रीदेवेन्द्र कुमार तथा पुत्रवधुएँ एव पुत्री आदि मे भी आपकी शक्ति के सस्कारो का प्रतिविम्व पडा है। तप की सफल पूर्णाहुति के लिए शुभकामनाएँ।

—ज्ञानेन्द्रकुमार लुणावत, जयपुर



भगवान् महावीर की—

पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में

श्रमण भगवान् महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी पर ससार के समस्त जैनो के मन मे उमग है, और कुछ कार्य करने की तमन्ना है। कुछ रचनात्मक प्रवृत्तियो का हम यहाँ उल्लेख कर रहे हैं—

जगह-जगह प्रान्तीय समितियां—२५वी निर्वाण शताब्दी समारोह के लिए लगभग सभी प्रान्तो मे राज्य सरकार की ओर से प्रान्तीय निर्वाण शताब्दी समारोह समिति गठित की गई है, और उनमे जैन सम्प्रदाय के सभी फिरको के प्रतिनिधि लिए गए हैं। इन सबने वर्षभर का अपना-अपना कार्यक्रम घोषित कर दिया है।

जिलास्तर पर समितियां—कई प्रान्तो मे जिलास्तर पर भी कुछ समितियाँ बनी हैं और उसमे उस जिले के जैन प्रतिनिधि तथा राजकीय प्रतिनिधि लिये गए हैं। इनके द्वारा भी कई कार्यक्रमो का आयोजन होगा।

अन्यान्य समाजसेवी सस्थाएं—इन राष्ट्रीय स्तर की समितियो के अलावा कई सार्वजनिक समाजसेवी सस्थाएँ भी सस्थापित हुई हैं, जिन्होने अपने-अपने ढग से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है—

(१) **वीरायतन**—यह राष्ट्रसन्त उपाध्याय श्रीअमरमुनिजी की प्रेरणा से स्थापित सस्था है, जो समाज के सर्वांगीण विकास के लिए कार्य कर रही है। इसकी प्रगति के बारे मे वीरायतन खड मे दिया है।

(२) **जैन विश्वभारती**—अणुव्रतअनुशास्ता युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी के सान्निध्य मे सस्थापित सस्था है, जिसका उद्देश्य जैनविद्याओ के सम्बन्ध मे शोध और साधना करना है। इसकी ओर से जैनशास्त्रो का तुलनात्मक अध्ययन और शोधपूर्वक सपादन-प्रकाशन होगा। कुछ ग्रन्थो का भी विमोचन हुआ है और होगा।

(३) **महावीरनगर : अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र**—विश्ववात्सल्यप्रेरक, धर्ममय समाज-रचना के प्रयोगकार, अनुबन्धप्रेरक, कर्मयोगी मुनिश्री सन्तबालजी की प्रेरणा से स्थापित यह सस्था है। साधुसस्था, जनसेवकसस्था, जनसस्था और विश्वलक्ष्यी

राष्ट्रीय सस्था इन चारो के परस्पर उत्तरोत्तर अकुश से सारे विश्व मे समाज और राष्ट्र का निर्माण शुद्धधर्म की दृष्टि से हो, यह इस सस्था का उद्देश्य है। इसी भावना से विश्ववात्सल्य प्रायोगिक सघ और तदन्तर्गत सतसेवक-समुद्यमपरिषद् बनी है। २५००वें निर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य मे इस सस्था द्वारा चारो सस्थाओ, खासकर सन्तो से अपील की गई है कि वे इस निर्वाणवर्ष मे (पूर्वोक्त तीनो सस्थाओ के सहयोग से) कम से कम एक वर्ष तक अथवा जिन्दगीभर तक शराब, मासाहार, एव शिकार (नरबलि, पशुबलि, पक्षीबलि आदि) के त्याग की प्रतिज्ञा दिलावे। प्रतिज्ञाबद्ध व्यक्तियो की सूची पते सहित महावीर नगर, चिंचणी (वाया बोईसर, जि० थाणा) भेज दे।

(४) **महावीर मिशन**—विश्वधर्मसगम एव विश्वअहिंसासघ के प्रेरक मुनिश्री सुशीलकुमारजी द्वारा स्थापित यह सस्था है। इसके अन्तर्गत वीरसेना, वीरपुत्र, अहिंसा शोधपीठ, आदि अनेकविध कल्याणकारी योजनाएँ है।

(५) **वीरनिर्वाण-गोसदन, दिल्ली**—प्राणिमित्र श्री आनन्दराजजी सुराणा मानद मत्री, अ० भा० स्था० जैन कान्फ्रेंस द्वारा निर्वाणशताब्दी के उपलक्ष मे स्थापित है। गायो को कसाइयो के हाथ से छुडा कर अभयदान दिलाना, इस सस्था का उद्देश्य है।

● **आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० द्वारा उद्बोधित कार्यक्रम**—इस वर्ष को सयमवर्ष के रूप मे मनाया जाय, भगवान् महावीर के सिद्धान्तो का प्रचार-प्रसार किया जाय, धर्म को जीवन मे उतारा जाय, विद्यार्थियो और कार्यकर्त्ताओ को तैयार किया जाय, २५००० तेले सारे भारत मे हो, प्रत्येक क्षेत्र मे युवक-सघ स्थापित हो, श्रावक श्राविका वर्षभर मे कम से कम २५ तप करें, ब्रह्मचर्यपालन अधिकाधिक हो, साधु-साध्वी व्यसनमुक्ति की प्रेरणा दें, भ० महावीर से सम्बन्धित साहित्यरचना हो, श्रावक श्राविकाएँ वर्ष भर मे कम से कम २५०० पृष्ठो का स्वाध्याय अवश्य करें, भ० महावीर की कम से कम २५० मालाओ का जाप करें।

—वर्द्धमान स्था० श्री सघ, कादावाडी, बम्बई

● **आचार्यश्री हस्तीमलजी म० द्वारा प्रेरित कार्यक्रम**—आचार्य श्री हस्तीमलजी म० ने निर्वाण वर्ष के उपलक्ष मे २५०० मासाहारत्यागी, २५०० मद्य त्यागी इसी प्रकार सामायिक, तप, जप, स्वाध्याय आदि के सम्बन्ध मे कुछ लक्ष्य स्थिर किये हैं।

● **आचार्यश्री तुलसी द्वारा उद्बोधित कार्यक्रम**—२५०० वे निर्वाणवर्ष के महोत्सव को मनाने के लिए आचार्यश्री के कुछ सुझाव ये हैं—(१) इसे सयमवर्ष के रूप मे मनाया जाय, इसमे प्रधानमत्री इदिरागांधी ने भी अपनी सहमति बताई है। (२) पच्चीससौ पृष्ठो का स्वाध्याय, (३) तत्त्वज्ञान-प्रशिक्षण, (४) ज्ञानशाला (बालक-बालिकाओ के सस्कारनिर्माण की दृष्टि से), (५) समन्वय के ५ सूत्रो पर अमल करना, (६) २५०० अणुव्रती तैयार करना, (७) सम्यक्त्व-दीक्षा

देना, (८) व्रतदीक्षा २५०० व्यक्तियो को देना, (९) व्यसनमुक्ति-अभियान, (१०) उपासना-कक्ष, (११) साधक-उपासक-योजना, (१२) विसर्जन का अभ्यास करना, (१३) ब्रह्मचर्यधारी वनाए जाय, (१४) तप -साधना पर जोर दिया जाय।

● **वीर निर्वाण भारती द्वारा विद्वान् पुरस्कृत**—तीर्थंकर महावीर के २५०० वर्ष के उपलक्ष्य मे विश्वधर्मप्रेरक मुनि विद्यानन्दजी की प्रेरणा से स्थापित वीर-निर्वाणभारती द्वारा १९७५ की दीपावली तक देश के ५० विद्वानो को पुरस्कृत करने की योजना है। अब तक ८ विद्वान् पुरस्कृत किये जा चुके हैं।

● **अहिंसक समाजरचना की दिशा में ठोस रचनात्मक प्रयोग**—बाबा चेतनदासजी भ० महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी की पुण्यस्मृति मे मिर्जापुर जिले के लालगज प्रखण्ड मे २५ ग्रामो मे सम्पूर्ण व्यसनमुक्ति, सस्कारशुद्धि, महावीर औषधालय, महावीर विद्यालय, घर-घर मे गोपालन, प्रत्येक घर मे अम्बर चरखे पर कताई, खेती के लिए जमीन दिलवाना, अन्न-वस्त्र मे स्वावलम्बी श्रमसाधना का कार्यक्रम चलाना, गृहोद्योग-व्यवस्था आदि कार्यक्रम चलाऐंगे।

● **महावीर के सम्बन्ध में स्मारिका, विशेषांक या ग्रन्थ का प्रकाशन**—निम्नलिखित पत्रिकाओ ने निर्वाणविशेषाक या स्मारिका प्रकाशित करने का निश्चय किया है—(१) श्री अमरभारती, आगरा, (२) जैन जगत्, बम्बई, (३) व्यापारसन्देश कानपुर, (४) जैन प्रकाश, (हिन्दी गुजराती) दिल्ली, वम्बई, (५) श्वेताम्बर जैन, आगरा, (६) आगमपथ, दिल्ली, (७) शाश्वतधर्म मदसौर (८) विजयानन्द, लुधियाना, (९) अणुव्रत वालपरिषद् कलकत्ता, स्मारिका, (१०) उत्तरप्रदेश राज्य समिति, लखनऊ, (११) पायोनियर क्लव, गोहाटी, (१२) साधना साप्ताहिक पूना, (१३) महावीर समाज, जोधपुर (स्मारिका)। (१४) सम्यग्ज्ञान प्रचारक मडल, जयपुर से स्वाध्याय-स्मारिका, (१५) जैनभारती, दिल्ली, (१६) अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर से महावीर . आधुनिक युग के सदर्भ मे, (१७) तुलसी कन्यामडल, ग्वालियर से स्मारिका।

● **लेख प्रतियोगिता**—'वर्तमान परिस्थितियो मे भ० महावीर के सिद्धान्तो की उपयोगिता' पर लेख श्री स्था० जैन युवक सघ (रजि० इन्दौर से) आमन्त्रित है। इनाम क्रमश १५१, १०१, व ५१ हैं। इसी प्रकार भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली से "महावीर का जीवन और उपदेश" विषय पर है। इनाम क्रमश २५०० रु०, १५०० रु० और १००० रु० है।

● **इन्दौर में २५०० तेले का ऐतिहासिक सकल्प**—इदौर मे विराजित मूलमुनिजी, अजितमुनि आदि साधुसाध्वीवृन्द के सान्निध्य मे २५०० तेले का सकल्प पूर्ण हुआ। एक विशाल तपोत्सव जुलूस भी निकला। इसके अतिरिक्त सामूहिक रूप से ३००० आयम्बिल भी हुए।

● **पंजाव में भ० महावीर शोधकेन्द्र**—की स्थापना हेतु पजाव वि० वि० को सरकार द्वारा ३० लाख रु० के अनुदान की स्वीकृति दी गई है।

● **इन्दौर में देशभर के जैन कार्यकर्त्ताओ का सम्मेलन**—ता० १२, १३ अक्टूबर को देशभर के जैन कार्यकर्त्ताओ का सम्मेलन श्री कस्तूरभाई लालभाई की अध्यक्षता मे हुआ। निर्वाणोत्सव-समितियो के लगभग ५०० उत्साही कार्यकर्त्ताओ ने भाग लिया। नवभारत टाइम्स के सम्पादक 'अक्षयकुमार जैन' ने बताया—दिल्ली मे २५ एकड भूमि मे महावीरवनस्थली पार्क का निर्माण, पावापुरी का डाक टिकट निर्माण आदि होगा। एक सुझाव यह आया कि तीर्थों सम्बन्धी मुकद्दमेबाजी समाप्त की जाए। मोतीलालजी सुराणा द्वारा लिखित बोधकथाकौमुदी का विमोचन सभाध्यक्ष ने किया। एक सुझाव यह भी था कि निर्वाणोत्सव के कार्यक्रमो मे युवको एव महिलाओ को भी लिया जाय। इन्दौर के कार्यकर्त्ताओ द्वारा की गई भोजन, आवास आदि की व्यवस्था की सभी ने सराहना की। नगर के पत्रकारो, समाचार पत्रो एव पुलिस व्यवस्था के प्रति आभार प्रगट किया गया।

● **श्री चन्द्रस्वामी की सफल विदेशयात्रा**—श्री चन्द्रस्वामी अमेरिका, यूरोप और अफ्रीका आदि कई राष्ट्रो मे महावीर निर्वाण-शताब्दी के उपलक्ष मे भ्रमण करके लौटे हैं। उन्होने जैन-जैनेतर सभी भारतीय लोगो से सम्पर्क किया, लोगो को भगवान् महावीर के धर्म और सस्कृति को सुरक्षित रखने की प्रेरणा दी। लन्दन मे उन्होने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'इन्टरनेशनल जैन कान्फ्रेंस' की स्थापना की, तथा सर्वधर्मसमभावकेन्द्र भी निजी मकान मे स्थापित कर दिया है। वीरायतन का एक केन्द्र भी निकट भविष्य मे वहाँ खुलने की आशा है।

● **धर्मपाल-युवको द्वारा पदयात्रा**—धर्मपाल प्रचार-प्रसार समिति के तत्त्वावधान मे भ० महावीर के २५सौवे निर्वाणोत्सव कार्यक्रम के अन्तर्गत **श्री मानव मुनिजी** के नेतृत्व मे २०० धर्मपाल नवयुवक १६ नम्बवर को पदयात्रा पर रवाना होंगे। ग्रामीण क्षेत्रो मे भ० महावीर के सिद्धान्तो का प्रचार-प्रकार करते हुए वे उन्हेल, नागदा आदि होते हुए जावरा धर्मपाल-सम्मेलन मे पहुँचेंगे।

● **१३ नवम्बर १९७४ को दीपावली का खास प्रोग्राम**—(१) सयुक्त रूप से प्रभात फेरी, (२) धर्मस्थानो मे यथाशक्ति धर्माराधना, (३) उपवास रखना, अन्न की बचत गरीबो को बाँटना, (४) उपदेशो का व्यापक प्रचार हो, (५) सभी समारोहो मे नमस्कार-मत्र, महावीराष्टक व मगलपाठ हो, (६) विद्याकेन्द्रो मे सर्वत्र महोत्सवसम्बन्धी आयोजन रखें। (७) आकाशवाणी द्वारा प्रसारण, (८) पोस्टर्स लगाना, (९) दि० १३, १४, १५ को सर्वत्र जीवहिंसा बन्द हो। (१०) सभी कत्लखानो, शराब इत्यादि की दूकानो पर शराब, मास आदि की बिक्री पर पाबदी हो, (११) होटलो मे शराब मास आदि का ३ दिन उपयोग बन्द हो, (१२) जैनध्वज सर्वत्र लगे। (१३) गरीबो को अन्न, वस्त्र, दवा, दूध एव पशु-पक्षियो को यथायोग्य आहार दिया जाय।

—०—



(भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष से प्रकाशित पुस्तको की समालोचना)

तीर्थंकर महावीर

निदेशक	लेखक
आचार्य श्रीआनन्द ऋषिजी	श्रीमधुकर मुनिजी
प्रवर्तक मुनिश्री मिश्रीमलजी	श्रीरतन मुनिजी
उपाध्याय श्रीअमर मुनिजी	श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक—
- सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा-२
- रत्न जैन पुस्तकालय, पाथर्डी (अहमदनगर)
- श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति, ब्यावर
- मुनिश्री हजारीमल स्मृति-प्रकाशन, ब्यावर
- आनन्द प्रकाशन, चिंचोडी (महाराष्ट्र)
- अमोल जैन ज्ञानालय, कल्याणस्वामी रोड, धूलिया

मूल्य—दस रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक लगभग ३०० पृष्ठो मे समाप्त होती है। इसमे भगवान् महावीर के जीवन, उनकी लोककल्याणकारी प्रवृत्तियो तथा उनके सिद्धान्तो एव उपदेशो का पाँच खण्डो मे सरस, सरल विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रथम खण्ड मे भगवान् महावीर के पूर्वभवो का समीक्षात्मक एव प्रेरणाप्रद वर्णन है। दूसरे खण्ड मे भगवान् के जन्म तथा बाल्यकाल से ले कर गृहस्थजीवन तक का भावात्मक विवेचन है। तीसरे खण्ड मे साधना के महापथ पर बढने से ले कर निर्वाणप्राप्ति तक की जीवनगाथा भाववाही शैली मे दी गई है। चतुर्थ खण्ड मे उनके तीर्थंकरजीवन की कल्याणकारी प्रवृत्तियो का सुन्दर चित्रण किया गया है। और पाँचवें खण्ड मे भगवान् महावीर द्वारा निरूपित सिद्धान्त, साधनाविधि तथा जीवनस्पर्शी शिक्षाओ का मूल एव भावानुवाद के साथ सकलन है। कुल मिला कर पाँच खण्डो मे श्रमणशिरोमणि

महावीर का जीवन और दर्शन सागोपाग ढंग से प्रस्तुत किया गया है। युग की भाषा मे भगवान् महावीर को सर्वांगपूर्ण समझने के लिए पुस्तक बहुत ही उपादेय है। सम्पादकगण पुस्तक को सजाने-सवारने मे सफल हुए है। पुस्तक का गेटअप, साज-सज्जा आकर्षक है।

भगवान् महावीर : एक अनुशीलन

लेखक—श्रीदेवेन्द्रमुनिजी शास्त्री, साहित्यरत्न, मूल्याकन—दलसुखभाई मालवणिया, प्राक्कथन—डॉ० प्रेमसुमन जैन, प्रकाशक—तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, पृष्ठसख्या ७८०, मूल्य ४०) रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक मे तीन विभाग हैं। प्रथम खण्ड मे भगवान् महावीर से पूर्वकालीन जैनपरम्परा तथा समकालीन समाज, सस्कृति एव धर्म और धर्मनायकों का प्रमाणपुरसर विस्तृत वर्णन है। दूसरे खण्ड मे भगवान् महावीर के जीवन की सहस्रमुखी साधना का सागोपाग विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसी खण्ड मे भगवान् महावीर के पूर्वभव, उनके गृहस्थजीवन, साधकजीवन, गणधरवाद, तीर्थ करजीवन एव उपदेश आदि हैं। अन्तिम परिशिष्ट-विभाग मे भगवान् महावीर के विहार, वर्षावास, आदि महत्त्वपूर्ण सन्दर्भों का विश्लेषण है। गणधर-परिचय दिया है, फिर व्यक्ति-परिचय और भौगोलिक परिचय भी, अन्त मे शब्दकोष दे कर ग्रन्थ पर कलश चढा दिया है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि लेखक ने दिगम्बर, श्वेताम्बर आचार्यों के ग्रन्थो के यत्र-तत्र प्रमाण भगवान् महावीर के जीवन के सन्दर्भ मे, उद्धृत किए है। कई स्थलो पर सुन्दर ढग से समन्वय भी किया है। इतने प्रमाण और उद्धरण का अकित करना लेखक की विशाल अध्ययनशीलता सूचित करता है। लेखक इस परिश्रम के लिए धन्यवादार्ह है। पुस्तक का मूल्य ४०) रु० खटकता है। पुस्तक का मूल्य अधिक रखने से सर्वसाधारण व्यक्ति उस पुस्तक से यथेष्ट लाभ नही उठा पाते, ऐसी पुस्तकें केवल पुस्तकालय की अलमारी की शोभा ही बढाती हैं। वैसे पुस्तक की छपाई-सफाई आकर्षक है।

वीरविभूति, खण्ड १, २, ३

लेखक—प० उदय जैन, प्रकाशक—जैन शिक्षणसघ, कानोड (उदयपुर) पृष्ठ तीनो खण्डो के ४००, मूल्य तीनो खण्डो के ६)५० प्रथम और द्वितीय खण्ड मे भगवान् महावीर के जीवन से सम्बन्धित पृष्ठ हैं।

सर्वप्रथम **'महावीर की आवश्यकता'** शीर्षक प्रकरण तो बहुत ही प्रेरणादायक है। वास्तव मे वर्तमान युग मे ऐसे महावीरो की जरूरत है, जो समाज, धर्म, राष्ट्र और जाति मे व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार, शोषण और स्वार्थ को समूल नष्ट कर सकें, समाज मे फैले हुए अन्धविश्वासो, कुरूढियो, दहेज, मृतभोज आदि गलत रिवाजो को एकदम मिटा दें। पुस्तक की भाषा सरस, सजीव है। युक्ति, और तर्क के साथ श्रद्धा का पुट सर्वत्र अद्भुत है। तृतीय खण्ड मे भगवान् महावीर के धर्म,

दर्शन, सस्कृति एव तत्वो का युक्तिसगत विश्लेषण है। **वीरविभूति** से वास्तव मे भगवान् महावीर के जीवन के उत्तमोत्तम गुणरूपी विभूतियो का दर्शन हो जाता है। लेखक इस प्रयास के लिए बधाई के पात्र हैं। पुस्तक प्रत्येक जिज्ञासु के लिए पठनीय एव मननीय है।

—मुनि नेमिचन्द्र

महावीर : सिद्धान्त और उपदेश

लेखक—उपाध्याय अमरमुनि, प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, पृष्ठ सख्या १६०, मूल्य दो रुपये मात्र। प्रस्तुत पुस्तक का यह द्वितीय सस्करण है। पुस्तक मे मुख्यतया तीन खण्ड हैं—(१) जीवनरेखा, (२) सिद्धान्त एव (३) उपदेश।

महावीर की जीवनरेखाओ मे सक्षेप मे महावीर के गृहस्थजीवन, साधक जीवन और तीर्थंकरजीवन की झाँकी दी गई है। द्वितीय खण्ड मे महावीर के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तो—अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त, समन्वय, कर्मवाद आदि पर हृदयस्पर्शी विवेचन है। और तृतीय खण्ड मे भगवान् महावीर के उपदेशो का हिन्दी-अनुवाद-सहित सकलन किया गया है। इस छोटी-सी पुस्तक मे गागर मे सागर भरने का स्तुत्य प्रयास है। पुस्तक की भाषा और शैली मे रोचकता, प्रवाह और पूर्वापरसगति है। सचमुच, उपाध्यायश्रीजी की इस पुस्तक को पढ कर भगवान् महावीर को समझने मे कोई कठिनाई किसी भी धर्म, दर्शन या मत के अग्रगामी के लिए नही होगी।

पुस्तक की साज-सज्जा, तथा छपाई-सफाई आकर्षक है।

—मुनि वसन्तविजय

तीर्थंकर भगवान् महावीर

लेखक प० पद्मचन्द्र शास्त्री प्रकाशक—श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति,
४८ सीतलामाता बाजार, इन्दौर

पृष्ठ सख्या—११५ मूल्य—आठ रुपए।

यह पुस्तक मुनिश्री विद्यानन्दजी की प्रेरणा से प्रकाशनसमिति के सप्तम पुष्प के रूप मे, जून १९७४ मे पाठको के सामने आई है। आरम्भ के १६ पृष्ठो मे जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान् आदिनाथ से ले कर भगवान् महावीर तक की तीर्थङ्करपरम्परा का सक्षिप्त उल्लेख है। इसके बाद ५४ पृष्ठो मे ढाई हजार वर्ष पूर्व की सामाजिक और धार्मिक स्थिति का ज्ञान कराते हुए भगवान् के गर्भ मे आने से ले कर केवलज्ञानप्राप्ति तक का क्रमवार वर्णन है। तत्पश्चात् ३२ पृष्ठो मे भगवान् के विहार, समवसरण और परिनिर्वाण का सरस वर्णन है। पुस्तक की सामग्री जुटाने मे जो परिश्रम किया गया है, वह सराहनीय है। आवरण आकर्षक है और कागज बढिया तथा छपाई सुन्दर है। भीतर भगवान का जो चित्र दिया गया है, वह अति मनोज्ञ और नयनाभिराम है। यदि पुस्तक को शीर्षक देकर विभिन्न खण्डो मे विभाजित कर दिया जाता और आरम्भ मे विषयानुक्रमणिका जोड दी जाती तो और अच्छा होता। पुस्तक पठनीय है।

—प्रतापचन्द्र जैन, आगरा

अभिनन्दन

एवं

शुभ कामनाएँ

व्यक्ति, परिवार, समाज, संस्थान एवं व्यापारिक प्रतिष्ठान

भगवान् महावीर के पच्चीससौवें निर्वाणवर्ष के

उपलक्ष में हम उनके चरणों में श्रद्धापूर्वक

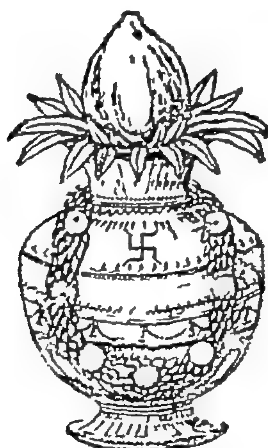
पुष्पांजलि अर्पित करते हैं—





सदा अप्रमत्त और सावधान रह कर, असत्य को त्याग कर, हितकारी सत्य वचन ही बोलना चाहिए। इस तरह सत्य बोलना बडा कठिन होता है।

—महावीर



भगवान् महावीर स्वामी के २५००वें निर्वाणवर्ष के
शुभ अवसर पर हम उनके चरणों में हार्दिक
श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं !

साथ ही उनके विश्वकल्याणकारी सिद्धातों का प्रचार-
प्रसार करने मे प्रयत्नशील **वीरायतन** की प्रगति
शीघ्रातिशीघ्र हो, यही शुभाकाँक्षा है।

—पदमचंद जैन

—प्रेमचंद जैन

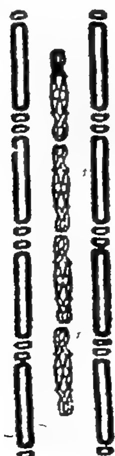


से हु पन्नाणमते बुद्धे,
आरंभोवरए सम्ममेयंति पासह

जिसने हिंसा करना छोड़ दिया ; वही समझदार है, वही ज्ञानी है इस बात को बिलकुल ठीक समझो।









जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्य, सफला जंति राइओ ।।

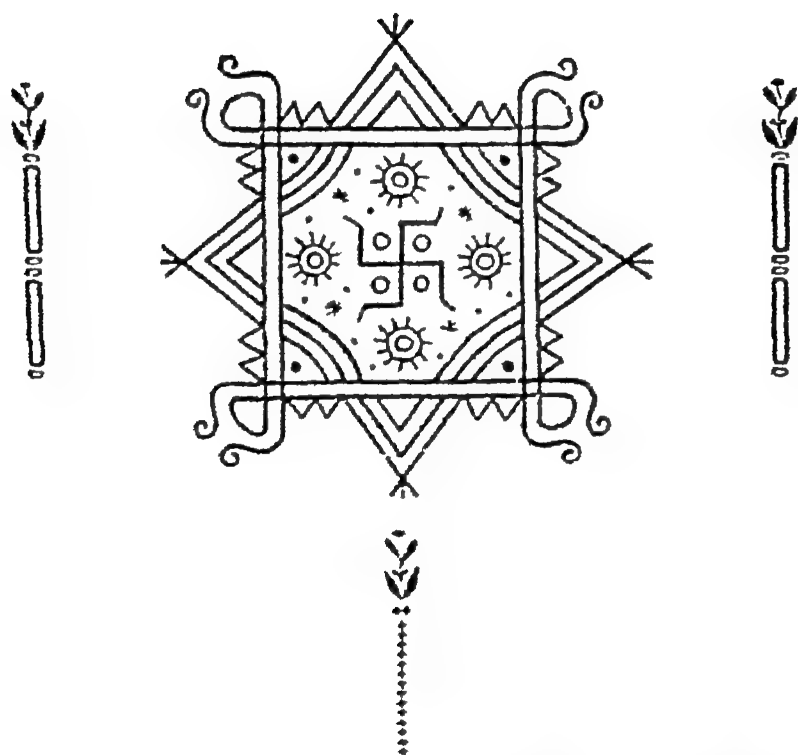
जो जो रात और दिन बीत जाते है, वे फिर कभी लौट कर नही आते । जो मनुष्य धर्म करता है, उसके ये रात और दिन सफल हो जाते हैं ।

—भगवान् महावीर





'सोने और चादी के कैलाश के समान असंख्य पर्वत हो; फिर भी लोभी मनुष्य की उनमे जरा भी तृप्ति नही होती ; क्योकि इच्छा आकाश के समान अनन्त है।'



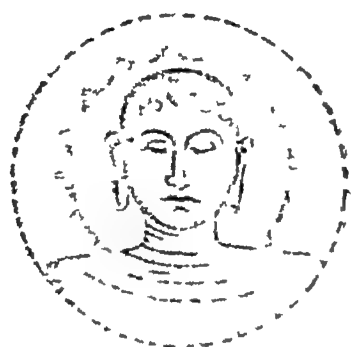
लोहस्सेस अणुप्फासो, मन्ने अन्नयरामवि ।
जे सिया सन्निहीकामे, गिही पव्वइए न से ॥

संग्रह करना भीतरी लोभ की झलक है। इसलिए जो साधक मर्यादा विरुद्ध कुछ भी संग्रह करना चाहता है, वह गृहस्थ है, अनगार नहीं।



'[illegible] से, अज्ञान और मोह
[illegible] राग और द्वेष के क्षय से,
[illegible] सुख-स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करता है।'

'[illegible]rough all pervading light of knowledge, through [illegible] of ignorance and attachment and through [illegible] of passion and animosity human soul can attain all-blissful *moksha.*'



वीरायतन का एक महत्वपूर्ण अग—

ब्राह्मीकला-सदन : एक परिचय

कु० निर्मला गाँधी, कु० शोभना जैन

जन-मन मे उद्भूत होने वाली भावनाओ को चित्रित करना, साकार रूप देना कला है। चित्र एव वस्तु के माध्यम से कलाकार जो भावो को अभिव्यक्त करता है, वही कला है। कला मे वस्तु की नही, भावो की, विचारो की एव कल्पना की प्रधानता है। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र मे कला का अधिक महत्व है। बालक चित्र के माध्यम से उसमे निहित भावो, विचारो एव चिन्तन को जल्दी पकड लेता है। इसलिए आधुनिक शिक्षापद्धति मे प्राथमिक अध्ययन के लिए कला को स्थान दिया गया है।

जन-जीवन मे सास्कृतिक, धार्मिक एव आध्यात्मिक सस्कारो को जागृत करने के लिए दर्शनाचार्या साध्वी चन्दनाजी ने राजगृह मे **'ब्राह्मीकला-सदन'** की स्थापना की है। उसका उद्देश्य है—चित्रकला के द्वारा जैन-सस्कृति का प्रचार एव प्रसार करना। इसके लिए प्राचीन कला-कृतियो का सग्रह करना, नवीन चित्रो का निर्माण करना और उनमे इलेक्ट्रिक फिटिंग करा कर उनमे निहित भावो को सक्रिय रूप से अभिव्यक्ति देना। इस तरह की एक सौ पैनल तैयार करवाना, जिनमें इलेक्ट्रिक फिटिंग की जा सके। इसमे लगभग एक लाख का खर्च आएगा। एक हजार रुपया देने वाले व्यक्ति का नाम उस पैनल पर दिया जाएगा।

इसके लिए एक वडा हाल वनाने की भी योजना है। उसका खर्च भी एक लाख रुपया आएगा। ५१ हजार रुपये का दान देने वाले व्यक्ति का उस हाल पर नाम दिया जाएगा। १०१ रुपया दे कर कोई भी व्यक्ति इसका सदस्य वन सकता है। विज्ञापन एव टिकटो का विक्रय करके भी अर्थ-सग्रह करने की योजना है। अब तक लगभग १० हजार रुपये का सहयोग मिल चुका है। उसकी सूची अलग से दे रहे हैं।

'ब्राह्मीकला-सदन' की निम्न सदस्याएँ हैं—

अध्यक्ष : श्रीमती प्रेमवती जैन, लोहामण्डी, आगरा,

उपाध्यक्ष श्रीमती निर्मला झाटकिया, वम्वई,

सेक्रेट्री . कु० निर्मला गाधी और कु० शोभना जैन, राजगृह,

सदस्या कु० चम्पा टाटिया, श्रीमती कुशलवहन, श्रीमती हीरावहन गाधी, श्रीमती रमावहन कोठारी, श्रीमती चन्द्रावहन हेमाणी, श्रीमती ज्योतिवहन शाह, श्रीमती पुष्पावहन शाह, श्रीमती नीलम भीमाणी, कलकत्ता, श्रीमती सुशीलावहन, श्रीमती हसुवहन शाह, वम्वई, श्रीमती प्रभावती कर्णावट, राजगृह।

ब्राह्मीकला-सदन, राजगृह (नालन्दा)

को प्राप्त सहयोग

	नाम	रुपये
१	श्रीमती प्रेमवती जैन, लोहामण्डी, आगरा,	१५००
२.	वीरायतन वालिका सघ, राजगृह के सौजन्य से,	१३००
३	श्रीमल्ली-भगवती महिलामण्डल, वम्बई के सौजन्य से (इसकी स्थापना साध्वीरत्न सुमतिकुवरजी ने की थी। वहनो मे धार्मिक एव आध्यात्मिक जागृति का अच्छा कार्य कर रही है—यह सस्था।)	१०००
४	श्री सुमति-महिलामण्डल, कलकत्ता के सौजन्य से (वहनो मे धार्मिक शिक्षा एव अध्यात्म-साधना की ज्योति जगाने हेतु दर्शनाचार्या साध्वी चन्दनाजी ने इसकी स्थापना की। इस दिशा मे यह वहुत अच्छा कार्य कर रही है।)	१०००
५	डालचन्दजी तातेड, हनुमानगढ (राजस्थान)	५०१
६	श्री चन्द्रभान रूपचन्द डाकले, श्रीरामपुर (अहमदनगर, महाराष्ट्र)	५००
७	श्री सरदार जसवन्तसिंह, भटिण्डा	५००
८	श्रीमती लज्जावती जैन (धर्मपत्नी भोजराज जैन)	५००
९	श्री दिव्याजी (अमेरिका)	५००
१०	श्री आत्माराम जैन, एडवोकेट, हनुमानगढ (राजस्थान)	२५१
११	श्री नानकमल छोगमल जैन, हनुमानगढ़ (राजस्थान)	२५१
१२	श्री भारत टेप कम्पनी, लुधियाना	२५०
१३	श्री नत्यूराम गोलछा, अवोहर	२५०
१४	श्री महावीरप्रसाद नेवेटिया, अवोहर	२५०
१५	नैनसुख लालचन्द नवलखा, पूना (महाराष्ट्र)	२५०
१६.	श्री कस्तूरचन्द जैन, जमुनानगर, हरियाणा	१०१
१७	श्री पवनकुमार जैन, जयपुर (राजस्थान)	१०१
		कुल जोड—९००५

सम्पर्कसूत्र . ब्राह्मी-कलासदन
मैन रोड
पो०—राजगृह (नालन्दा-विहार)



'जहा संखम्मि पयं, निहियं दुहओ वि विरायइ ।
एवं बहुस्सुए भिक्खू, धम्मो कित्ती तहा सुयं ।।

A milk put into a shell shines with a doubled brilliancy So do the piety, fame and knowledge of a very learned monk.





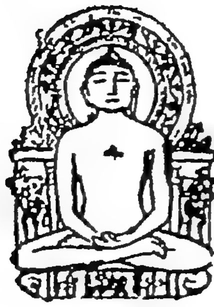
कम्मुणा बम्मणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥

By one's action one becomes Brahmana or Kshattriya, or a Vaishya or a Shudra



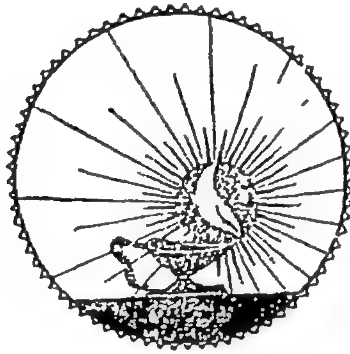
आयं न कुज्जा, इह जीवियट्ठा, असज्जमाणो य परिव्वएज्जा ।
निसम्मभासी य विणीय गिद्धि, हिसन्निय वा न कह करेज्जा ॥

He should not expose himself to guilt by his desire for life, but he should wander about without any attachment Speaking after due consideration, and combating his worldly desires, he should do nothing that involves injury of living beings



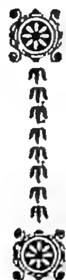
तम्हा एएसिं कम्माणं, अणुभागं वियाणिया ।
एएसिं संवरे चेव, खवणे य जए बुहो ॥

Therefore a wise man should know the different Subdivisions of these *Karmas* and should exert himself to prevent and destroy them.



तत्थिमं पढमं ठाणं महावीरेण देसियं
अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो ॥

The first item among them as proclaimed by Mahavira is complete rational non-injury which is characterized by a self-restraint with regard to all living organisms.





'अलोले न रसे गिद्धे, जिब्भादंते अमुच्छिए।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी ॥'

A great sage should not eat for the shake of the pleasant taste of the food but for the sustenance of life, being not dainty nor eager for foodfare , restraining his tongue, and being without cupidity.



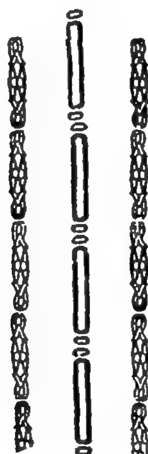
भ० महावीर का

प्रवचन



सधए साहुधम्म च, पावधम्मं निराकरे ।
उवहाणवीरिए भिक्खू, कोह माणं न पत्थए ॥

He acquires good qualities, and leaves off bad qulities, a monk, who vigorously practises austerities, avoids anger and pride



किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही ज्ञानी होने का सार है। अहिंसा सिद्धान्त ही सर्वश्रेष्ठ है; विज्ञान केवल इतना ही है।

—भगवान् महावीर



भगवान् महावीर स्वामी के २५००वें निर्वाण वर्ष पर

हमारी हार्दिक श्रद्धांजलि !



To

SHRI BRAHMI KALA SADAN

From :

M/s Agencies & Suppliers (p) Ltd.

Kirkend Bazar,
P.O —Kusunda
Distt —Dhanbad (Bihar)

श्रमण भगवान् महावीर

की

पच्चीसवीं निर्वाण-शताब्दी

की स्मृति में

वीरायतन, राजगृही

की प्रगति के लिए

हार्दिक शुभ कामनाएँ



आत्मानन्द जैन सभा

जगाधरी (हरियाणा)

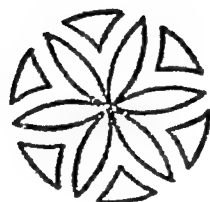


भगवान
महावीर
ने कहा है

पच्छा वि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमर भवणाई ।
जेसिं पिओ तवो संजमो य, खंति अ बंभचेरंच ।।

जो ढलती हुई उम्र मे भी संयम के मार्ग पर चल पड़ते है, और तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य को प्रिय समझकर उनका आचरण करते है, वे भी शीघ्र ही अमरत्व को प्राप्त हो जाते हैं ।





हीरालाल जैन, जिनेन्द्रा जैन

आत्मभवन, आत्मनगर

लुधियाना (पंजाव)



भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाणशताब्दी के
उपलक्ष्य में श्रद्धांजलि अर्पित

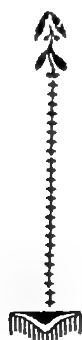




छुट्टनलाल धन्नालाल भंसाली
जयपुर-३, दिल्ली—६

'एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मोक्खो'

धर्म का मूल विनय है, और मोक्ष उसका अन्तिम फल है।



नेमीचन्द बैद
एव समस्त परिवार
पीतलियो का चौक, जौहरी बाजार
जयपुर-३०२००३



वीरायतन बालिका संघ

महाश्रमण भगवान् महावीर के चरणो में वीरायतन
बालिका सघ का कोटि-कोटि वन्दन !

वीरायतन बालिका सघ पूज्या साध्वी श्रीचदनाजी दर्शनाचार्या की प्रेरणा से सस्थापित एक सेवाभावी सस्था है। इसका उद्देश्य वीरायतन के माध्यम से भगवान महावीर के सिद्धान्तो का जनजीवन मे प्रचार करना और वीरायतन के कार्यो मे सहयोग देना है।

अव तक इस सगठन ने एव कलकत्ता के यूनिट ने भारत के विभिन्न प्रान्तो मे यात्रा की है एव काम किया है। कोई भी समझदार सेवाभावी लडकी इस सगठन की सदस्या वन सकती है। इसका वार्षिक शुल्क ५) है । सदस्या को पहले वीरायतन के मिशन मे प्रशिक्षित किया जाता हैं। तत्पश्चात् उससे कुछ सदाचार-सकल्प कराया जाता है । फिर उसे वीरायतन की प्रवत्ति मे नियुक्त किया जाता है।

कु० निर्मला जैन
अध्यक्ष, वीरायतन बालिका संघ,

शोभना जैन
मंत्री, वीरायतन बालिका संघ

मैनरोड
पो०—राजगृह, जि०-नालंदा
(बिहार)

'खमावणयाए पल्हायणभाव जणयइ'
क्षमापना से आत्मा मे प्रसन्नता की अनुभूति होती है।

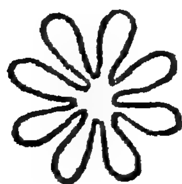




नो अत्ताणं आसाएज्जा, नो परं आसाएज्जा

न अपनी अवहेलना करो, न दूसरो की

—भगवान् महावीर



गामे वा अदुवा रण्णे

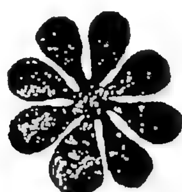
धर्म गाँव मे भी हो सकता है, और जंगल में भी।
वस्तुत. धर्म अन्तरात्मा मे होता है। —भगवान् महावीर





'विणए ठविज्ज अप्पाणमिच्छंतो हियमप्पणो'

आत्मा का हित चाहने वाला साधक अपने आपको विनय-सदाचार मे स्थिर करे।



आनन्द केमिकल्स

२६/१०४ बिरहाना रोड

कानपुर (उ०प्र०)



'अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा निरट्ठाणि उ वज्जए'

अर्थयुक्त (सारभूत) बातें ही ग्रहण करो, फिजूल बातो को छोड़ दो।



शुभ कामनाओं सहित—

नजरे हसन

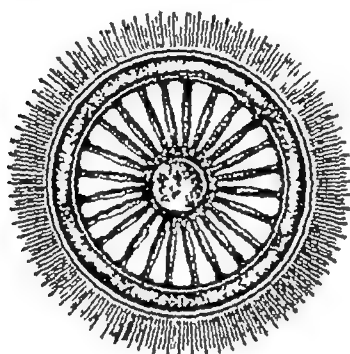
११/१५७ ग्वालटोली

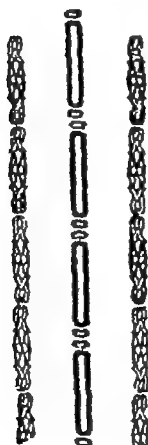
 कानपुर (उ० प्र०) 



थोवाहारो थोवभणिओ य, जो होइ थोवनिद्दो य ।
थोवोवहि-उवगरणे, तस्स हु देवा पणमंति ।।

जो साधक अल्पाहारी, अल्पभाषी, अल्पशायी, अल्पपरिग्रही-सीमित सामग्री वाला है, उसे देवता भी प्रणाम करते हैं ।





शुभकामनाओं सहित—

श्री गुमानमल उमरावमल

सोंथली वालो का रास्ता

जयपुर (राजस्थान)

अणोहंतरा एए नो य ओहं तरित्तए ।
अतीरंगमा एए नो य तीरं गमित्तए ॥
अपारंगमा एए नो य पारं गमित्तए ।

जो वासना के प्रवाह को नही तैर पाए है, वे -ससारप्रवाह को नही तैर सकते ।

जो इन्द्रियजन्य कामभोगो को पार कर तट पर नही पहुँचे है, वे ससारसागर के तट पर नही पहुँच सकते ।

जो रागद्वेप को पार नही कर पाए है, वे संसारसमुद्र से पार नही हो सकते ।









समग्र विश्व को जो समभाव से देखता है, वह न किसी का प्रिय करता है और न किसी का अप्रिय। अर्थात् समदर्शी अपने-पराये की भेदबुद्धि से पर होता है।

'He who looks at the world with perfect impartiality and equanimity, neither favours nor disfavours anybody In other words, he transcends the petty differences of self and non-self.'

उवसमेण हणे कोह माण मद्दवया जिणे।

मायमज्जवभावेण लोभं संतोसओ जिणे।।

—दशवैकालिक-८।

भगवान् महावीर ने कहा है—

क्रोध को क्षमा से
मान को विनय से
कपट को सरलता से
लोभ को सतोष से
जीत कर सुखी बनो।

●



जल में पद्म की तरह निर्मल प्रभु वीर के चरणों में
शत शत वंदना !

●

पदमचन्द कास्टिया

हल्दियों का रास्ता

जोहरी बाजार

जयपुर-३

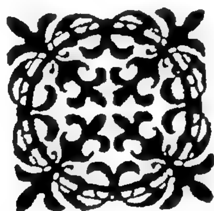
फोन आफिस . ७६६८२
निवास ६५३६३

टेलीग्राम-'कास्टिया'



'भले ही नग्न रहे, मास-मास भर का उपवास (अनशन) करे, और शरीर को कृश एवं क्षीण कर डाले, लेकिन अंदर मे जो दंभ रखता है, वह जन्म-मरण के अनन्त चक्र मे भटकता ही रहता है।'

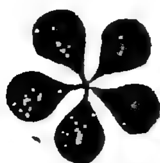
'One may go unclad, or keep fasts for months together, or emaciate himself through discipline and austerities, yet it is possible that his ego may continue to persist through the cycle of births and deaths'





जरामरणवेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तम ।।

बुढापा और मरण के महाप्रवाह मे डूबते हुए प्राणियों के लिए धर्म ही द्वीप है, प्रतिष्ठा=आधार है, गति है और उत्तम शरण है।



दीपपर्व के अवसर पर
अन्तर्हृदय के दीप जला कर
विश्वदीप भ० महावीर के
चरणों में कोटि कोटि वन्दना



सरोरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चई नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, ज तरंति महेसिणो ॥

शरीर को नाव कहा है, आत्मा उसका नाविक कहलाता है। ससार को समुद्र बतलाया है, जिस ससारसागर को महर्षिजन पार करते है।





एगो अहमंसि, न मे अत्थि कोई,
न वाहमवि कस्स वि।
एवं से एगागिणमेव,
अप्पाणं समभिजाणिज्जा ।।

मैं अकेला हूँ। मेरा कोई नही है; और न मैं ही किसी का हूँ। इस प्रकार साधक अपने को अकेला ही समझे।



किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही ज्ञानी होने का सार है। अहिंसा सिद्धान्त ही सर्वश्रेष्ठ है; विज्ञान केवल इतना ही है।

—भगवान् महावीर



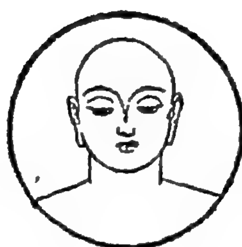




जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ ॥

जो जो रात और दिन बीत जाते हैं, वे फिर कभी लौट कर नही आते। जो मनुष्य धर्म करता है, उसके ये रात और दिन सफल हो जाते हैं।

—भगवान् महावीर



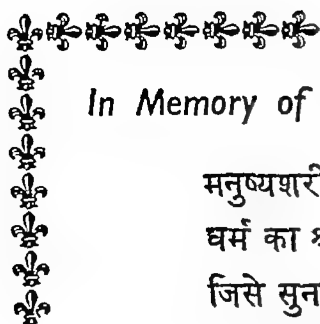


भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाणशताब्दी का पवित्र दिवस सबके लिए मंगलकारी हो !

सादर अभिनन्दन

निर्वाण-शताब्दी पर वीर प्रभु तेरी,
पावन हो रहा विश्व का कण-कण !
दीपावली की शुभ अमृतवेला में,
प्रभु तेरे ही गुण गाए प्रति जन-जन !
हे दयालु कृपालु त्रिशलानन्दन,
स्वीकार करो तुम मम अभिनन्दन !

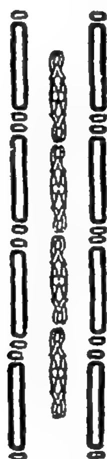


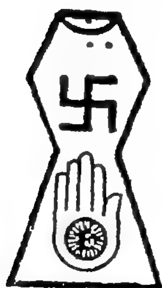


In Memory of Shri Jhaverchand Panachand Mehta

मनुष्यशरीर प्राप्त होने पर भी
धर्म का श्रवण दुर्लभ हैं ;
जिसे सुन कर जीव तप,
क्षमा और अहिंसा को प्राप्त करते हैं ।

'Even in human life it is not easy to hear religious preachings through which man learns to practise penance, forgiveness and *ahimsa*'





Shri M. J. Mehta

3, Allemby Road

Calcutta-20







'विश्व के समस्त प्राणियो को
चिरकाल मे भी मनुष्यजन्म
की प्राप्ति दुर्लभ है। कर्मों का
विपाक अत्यन्त तीव्र है।
इसलिए हे गौतम ! समयमात्र
का भी प्रमाद मत कर।'



'All creatures of the world cannot get human life even in the course of eternity *Karmas* are very powerful. Therefore, O Gautam, don't have any illusions even about time'



SHRI GIRDHARLAL JASANI,
TARABEN JASANI

36, B, DR. RAJENDRA ROAD;
CALCUTTA-20


अष्टमगल









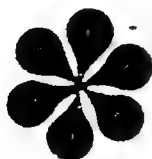
'ऐसा सत्य बोलना चाहिए, जो
हित, मित और ग्राह्य हो।'

'Speak the truth that is beneficial, sweet, and acceptable to all'



'समाधि (सुख) देने वाला
उसी प्रकार की समाधि
(सुख) पाता है।'

One, who gives 'the kind of happiness to others, receives the same in return."



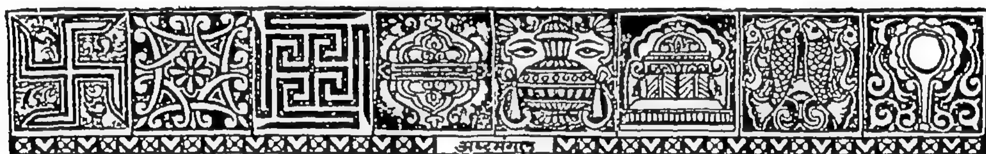
'नरदेव ! एक धर्म ही रक्षा करने वाला है।
उसके सिवाय विश्व मे मनुष्य का त्राता कोई नही है।'

'Religion is the only saviour of man nothing else can provide shelter to man in the world'



प्रिय (अच्छा) करने वाले और प्रिय वचन बोलने वाले अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने में अवश्य सफल होते है।'

'Those who do noble deeds and speak sweet words are sure to succeed in achieving the goal of their life.'

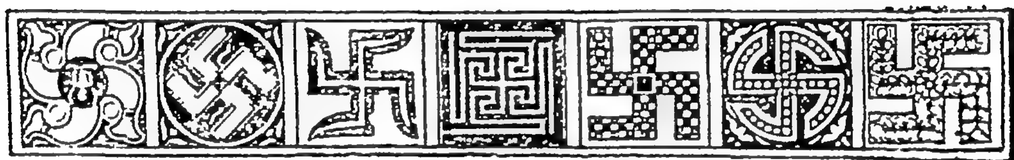


'हर कही हर किसी वस्तु मे मन को मत लगा बैठिए।'

'Don't give away your heart to everything everywhere'

करोडों जन्मों के सचित कर्मो को साधक तपस्या के द्वारा क्षीण कर देता है ।'

'Through hard penance an ascetic can liberate himself of all his *Karmas* accumulated through millions of lives'.



'असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति करनी चाहिए ।'

भगवान् महावीर का

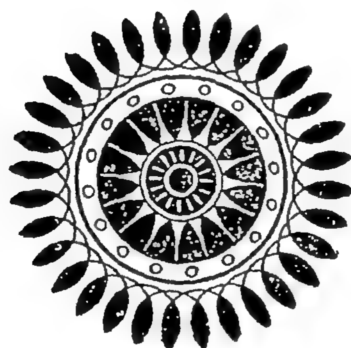
प्रवचन



सामाइयमाहु तस्स जं जो अप्पाणं भएण दंसए ।

समभाव उसी को रह सकता है, जो अपने को हर किसी भय से मुक्त रखता है ।





धम्मस्स मूलं विणय वदंति, धम्मो य मूलं खलु सोग्गाइए।

धर्म का मूल विनय है और विनय का मूल सद्गति है।



२५००वें

निर्वाण महोत्सव पर



भगवान् महावीर

के प्रति

श्रद्धासुमन

इन्दरजीत सिंह

१३३/८२२ किदवई नगर

एम ब्लॉक

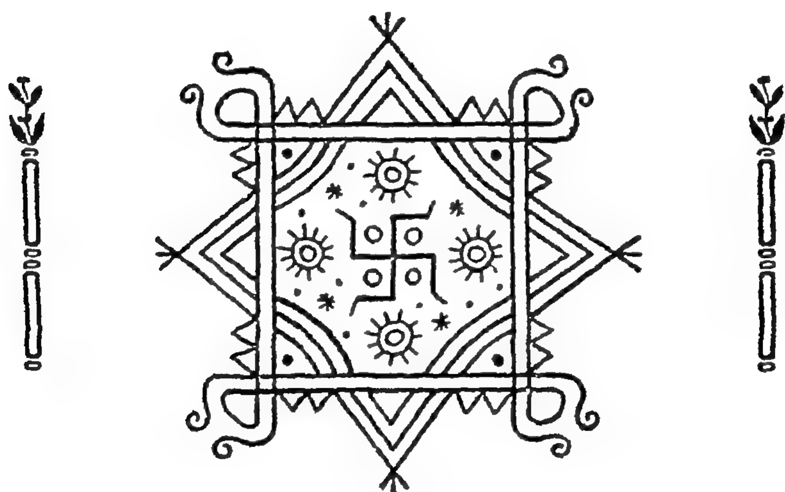
कानपुर (उ० प्र०)

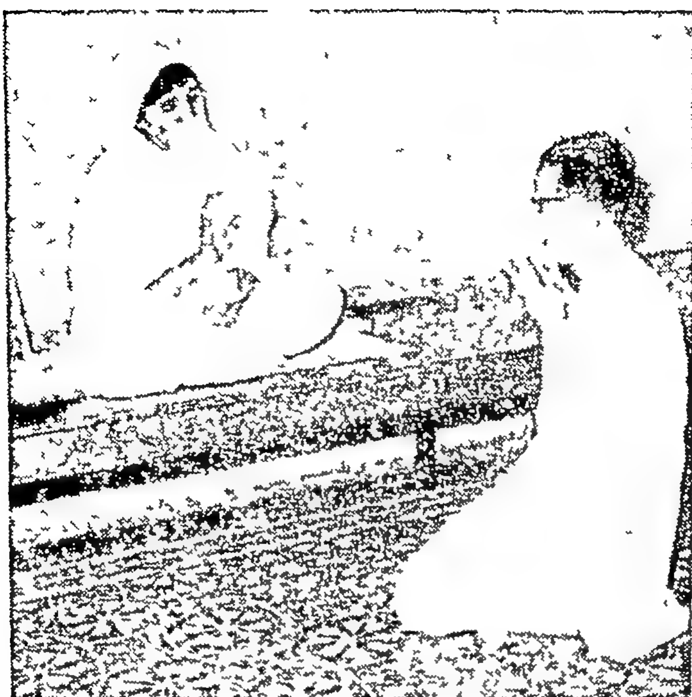
तीर्थंकर महावीर

ने कहा–

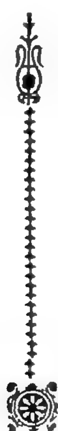
एगमवि मायी कट्टु आलोएज्जा
जाव पडिवज्जेज्जा अत्थि तस्स आराहणा

प्रमादवश हुए कपटाचरण के प्रति पश्चात्ताप करके जो सरल हृदय हो जाता है, वह धर्म का आराधक है।





गुरुदेव तुम्हे नमस्कार बार-बार है !





अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई ।
थंभा कोहा पमाएणं रोगेणालस्सएण वा ।।

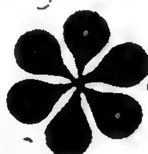
अहंकार, क्रोध, प्रमाद (विषयासक्ति), रोग और आलस्य, इन पांच कारणो से व्यक्ति शिक्षा नही प्राप्त कर सकता ।

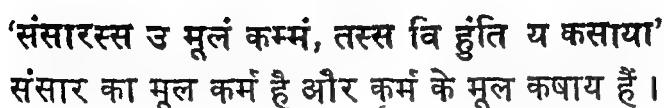


पुरुष तू ही स्वयं अपना मित्र है, तू बाह्य जगत् मे मित्र क्यो ढूंढता है ?



जो व्यक्ति प्रमादी-गाफिल है, उसे सर्वत्र भय है। अप्रमत्त और सतर्क रहने वाले के लिए कही भी भय नही।





'संसारस्स उ मूलं कम्मं, तस्स वि हुंति य कसाया'
संसार का मूल कर्म है और कर्म के मूल कषाय हैं।



भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण-शताब्दी
पर हमारी हार्दिक मंगलकामना



भगवान् महावीर स्वामी की पच्चीसवीं निर्वाण–
शताब्दी पर शुभकामनाओं सहित



उन्नति, अभिवृद्धि, उपयोगिता, जनसहयोग एवं
जनसेवा पर अविलम्बित

श्री महावीर जैन पुस्तकालय, हाथरस

पथ मे काटे विछे हुए हैं,
विजली गिरती हो ऊपर से !
वीर विहंसता, चलता जाए,
दृष्टि न भटके मंजिल पर से

—उपाध्याय अमरमुनि



शुभ कामनाओं सहित—

श्री सुन्दर-सत्संग-भवन : हाथरस

आगरा रोड

हाथरस (उ०प्र०)

प्रवन्धक
शकुन्तलादेवी जैन

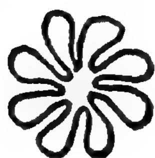
महाश्रमण भगवान् महावीर के चरणों में

उनकी २५वीं निर्वाण-शताब्दी

के

अवसर पर

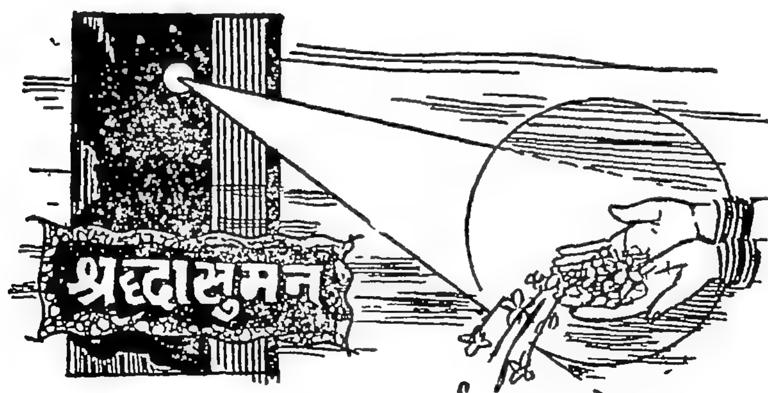
श्रद्धांजलि अर्पित



भूपतभाई कामानी

कलकत्ता

भगवान् महावीर के चरणों में



जयंतीलाल बदानी

कलकत्ता




भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण-शताब्दी के
उपलक्ष में श्रद्धांजलि समर्पित है






'मनुष्य जन्म से नही, कर्म से महान् वनता है।'

—भगवान् महावीर

भगवान् महावीर स्वामी की पच्चीसवी निर्वाण-शताब्दी के शुभ अवसर पर हम अपने ग्राहकों व शुभचिंतको का हार्दिक अभिनन्दन करते है—







स्व० श्री रामलालजी जैन

[मे०के०डी० रामलाल एण्ड क० दिल्ली]



श्रद्धा-पुष्प

यह ठीक है कि जिसने जन्म लिया है, उसका मरण अवश्यम्भावी है। प्रकृति के इस अटल-विधान का आज तक कोई परिवर्तन नही कर पाया। परन्तु कुछ ऐसी धर्मनिष्ठ आत्माएँ होती हैं, जिनके प्रभावशील व्यक्तित्व की अमिट छाप समाज के हृदय पर तब भी बनी रह जाती है, जब वे असार ससार को छोड कर किसी अन्य लोक मे चले जाते है। श्री रामलाल जैन ऐसे ही प्रभावशील एव धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे, जिनका प्रभावशील व्यक्तित्व समाज के लिये सदा अविस्मरणीय रहेगा। पाकिस्तान बनने से पूर्व जब आप लाहौर मे रह रहे थे, तभी से समाज-सेवा के कार्यों मे आप अग्रणी रहे। आप पदलोलुपता से दूर रह कर अपने कर्त्तव्य की पुण्यप्रेरणा से प्रेरित हो कर एक मौनसाधक के रूप मे सेवा के पुनीत कार्यों मे लीन रहते थे, परन्तु आपकी सेवा सदा सबके लिए आदर्श बनी रही है और आज भी है।

आपके औदार्य और दानशीलता की चर्चा आज भी देहली के जैन-जगत् की वाणी का प्रमुख स्वर है। एस०एस० जैन महासभा पजाब (उत्तरी-भारत) के निमन्त्रण पर आप जब चण्डीगढ आए थे, उस समय का आपका उदारता से भरा दान-परायणता से सम्पन्न एक-एक शब्द आज भी हमारे कानो मे गूज रहा है।

२७ अगस्त १६७४ को जैसे ही आपके स्वर्गवास का समाचार प्राप्त हुआ तभी हम सब शोकविह्वल हो गए। कर्म-विधान के समक्ष सबने घुटने टेक दिये। आज हम उन्हीं की स्मृति मे शासनेश प्रभु महावीर का ध्यान करते हुए हार्दिक प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी स्वर्गीय आत्मा को चिरशान्ति प्रदान करें और उनके परिवार को उनके आदर्शों के अनुरूप चलने की प्रेरणा दें, उनके अपूर्ण कार्यों को पूरा करने की भावना एव उनके असह्य वियोग को सहन करने की क्षमता प्रदान करें।

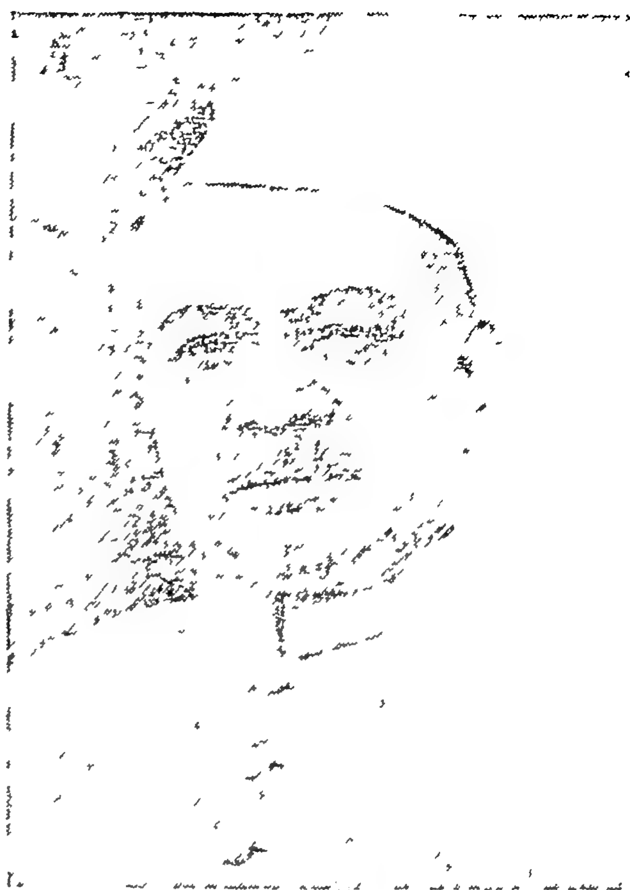
— शोक-विह्वल —

भोजराज जैन प्रधान,
हीरालाल जैन महामन्त्री
श्री महावीर जैन सघ, पजाब।

टी० आर० जैन प्रधान,
मूलराज जैन महामन्त्री
एस० एस० जैन सभा पजाब [उत्तरी भारत]

स्व लाला कुंजलाल जी कविश्री जी के शब्दो मे सच्चे जैन एव सच्चे श्रावक थे। उनका जीवन धर्म, समाज एव राष्ट्र की सेवा के लिए समर्पित था। जैन समाज मे शिक्षाप्रचार के लिए वे प्रारम्भ से प्रयत्नशील रहे। वे श्रीमहावीर जैन हाईस्कूल, नई सडक देहली के २० वर्ष तक उपाध्यक्ष रहे। सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा की कार्यकारिणी के सदस्य रह कर साहित्यप्रचार मे सदा प्रेरणा देते रहे।

व्यापारिक क्षेत्र मे भी उनका वहुत अच्छा सम्मान था। सदर वाजार व्यापार एसोसिएशन के मत्री तथा श्रेडवॉल मेन्युफेक्चरिंग ऐसोसिएशन के पहले मन्त्री फिर अध्यक्ष पद पर रहकर उन्होंने व्यापार मे ईमानदारी एव सच्चाई की प्रतिष्ठा की।



स्व लाला कुंजलाल जी ओसवाल

जैन समाज के विद्यार्थियो को शिक्षा के लिए सहयोग, गरीव भाइयो को रोजगार एव पीडितो की चिकित्सा आदि उनकी सेवा के मुख्य कार्य थे।

जीवन के अन्तिम क्षणो मे उन्होंने अपने पूज्य माता-पिता की स्मृति मे 'श्री वासीराम लीलादेवी जैन चैरिटेविल ट्रस्ट' की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य है, शिक्षा, चिकित्सा एव सार्धामभाइयो की सेवा के लिए सहयोग करना। ट्रस्ट की सम्पत्ति वर्तमान मे लगभग ८ लाख रु० के मूल्य की है।

स्व लाला कुंजलालजी के उच्च आदर्श एव सुन्दर सस्कार आज उनके सुपुत्रो—श्री शीतलप्रसाद जी एव श्री देवेन्द्रकुमार जी तथा सुपुत्रियो श्रीमती शातिदेवी एव श्रीमती कमलादेवी के जीवन मे भी साक्षात् देखे जाते हैं।

श्रमणशिरोमणि भ० महावीर के आप परम भक्त थे। आपकी अगाध श्रद्धा भ० महावीर के सिद्धान्तो और उपदेशो पर रही। आज भ० महावीर की २५वी निर्वाण शताव्दी के उपलक्ष्य मे उनके और उनके समस्त परिवार की ओर से श्रद्धाजलि समर्पित

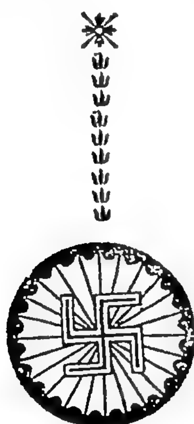
श्री वासीराम लीलादेवी जैन चैरिटेविल ट्रस्ट देहली

तिविहे भगवया धम्मे पण्णत्ते, तंजहा—
सुअहिज्जिए, सुज्झाइए, सुतवस्सिए।
जया सुअहिज्जियं भवइ, तया सुज्झाइयं भवई
जया सुज्झाइय भवइ, तया सुतवस्सिय भवई ।।
से सुअहिज्जिए, सुज्झाइए, सुतवस्सिए
सुयक्खाएणं भगवया धम्मे पन्नते ।।

—स्थानाग सूत्रम्—२९६ सू०



भगवान् ने तीन प्रकार से सयुक्त मार्ग को धर्म कहा है। उस वस्तु का भलीभाँति अध्ययन करना, उसका भलीभाँति ध्यान करना तथा उसके लिए भलीभाँति तप करना। पहले किसी पदार्थ का सम्यक् प्रकार से अध्ययन किया जाता है, तब उसका ध्यान तो होता ही है; और अच्छी तरह उसके सभी पहलुओ पर विचार करने के बाद उसके लिए कष्ट सह कर प्राणप्रण से जुटने से तपस्या भी हो जाती है।





शुभ कामनाओ सहित—

बहादुरचन्द विद्यारतन जैन

पो०— हनुमानगढ़

जि०—गगानगर

(राजस्थान)



कोहं च माणं च तहेव माय, लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा।
एयाणि वंता अरहा महेसी, न कुव्वई पावं न कारवेइ ॥

क्रोध, मान, माया और लोभ, ये चार अन्तरात्मा के भयकर दोष हैं, इनका पूर्णत त्याग करने वाले अर्हन्त महर्षि न स्वयं पाप करते है, और न दूसरो से करवाते हैं।







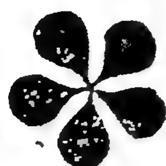
डहरे य पाणे वुड्ढे य पाणे, ते अत्तओ पासइ सव्वलोए ।
उव्वेहई लोगमिण महंतं, बुद्धोऽ पमत्तेसु परिव्वएज्जा ।।

जो ससार के सब प्राणियों को आत्मवत् देखता है। संसार को अशाश्वत समझता है। और अप्रमत्तभाव से संयम मे रत रहता है, वही मोक्ष का अधिकारी है।



सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अपमत्तस्स नत्थि भयं ।

जो व्यक्ति प्रमादी है, उसे सर्वत्र भय है । अप्रमत्त और सतर्क के लिए कही भय नही है ।



जे अणण्णारामे से अणंतदंसी ।

जो साधक मोक्ष के सिवाय कही रुचि नही रखता, वही अटल श्रद्धा वाला माना गया है।



नाणं नरस्स सारं, सारो वि नाणस्स होइ सम्मत्तं ।

ज्ञान मानवता का सार है, लेकिन ज्ञान का भी सार है—
सम्यक्त्व—सच्ची आत्मश्रद्धा ।



'से सुयं च अज्झत्थं च मे, बधपमोक्खो अज्झत्थमेव' ।

मैंने सुना है, और अनुभव किया है, कि बन्ध और मोक्ष
तुम्हारी आत्मा पर ही निर्भर है ।







इदिएहिं गिलायंतो, समियं आहरे मुणी ।
तहा वि से अगरहे, अचले से समाहिए ।।

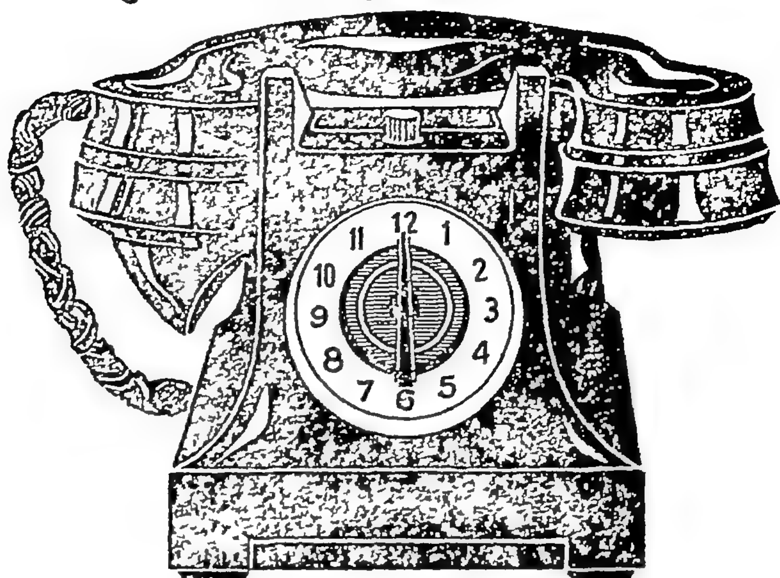
शरीर और इन्द्रियो के क्लान्त होने पर भी मुनि अन्तर्मन में समभाव (स्थिरता) रखे। इधर-उधर गति एव हलचल करता हुआ भी साधक निन्द्य नही है, यदि वह अन्तरग मे अविचल एवं समाहित है तो !



भ० महावीर की २५वी निर्वाण-शताब्दी के अवसर पर

शुभ कामनाओ सहित—

अनिल फोन समय की वचत के लिए सहायक



विशेषज्ञ—प्राइवेट टेलीफोन, अन्य टेलीफोन, स्टैण्ड, डायल लोक, फोनोरेस्ट तथा टेलीफोन पार्ट्स इत्यादि।

हैड ऑफिस—**अनिल इंडस्ट्रीज** कसेरट वाजार, आगरा-३ फोन ७४८७९

ब्रांच ऑफिस—**अनिल इंडस्ट्रीज**, वम्वई-२६ फोन ३५२३२६

अहमदावाद, राजकोट, जयपुर, कानपुर, पटना, श्रीनगर, मारगाओ मे हमारे वितरक हैं।

भ० महावीर के चरणो में उनकी २५वीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर शत शत वन्दन !

तथा **वीरायतन** की प्रगति के लिए शुभकामना



कल्याणदास जैन (भूतपूर्व नगरप्रमुख)

आगरा

हजारीलाल कल्याणदास

लोहामण्डी आगरा-२

फोन 72887

‘धीरो ! मुहुत्तमपि णो पमायए,
वओ अच्चेइ जोव्वणं च।’

धीर ! एक मुहूर्त (क्षण) का भी प्रमाद मत कर।
तेरी आयु बीत रही है, यौवन ढल रहा है।





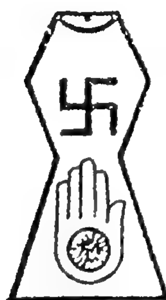
पुढो छंदा इह माणवा, पुढो दुक्खं पवेइयं ।

संसार में लोग भिन्न-भिन्न अभिप्राय वाले होते हैं ।
अपना-अपना दुःख सबको स्वयं ही भोगना पड़ता है ।

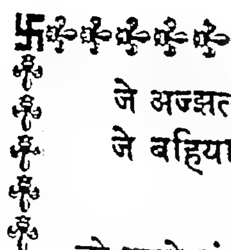


न य पावपरिक्खेवी, न य मित्तेसु कुप्पई।
अप्पियस्साऽवि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासई॥

सुशिक्षित व्यक्ति न किसी पर दोषारोपण करता है और न किन्ही परिचितो पर कुपित ही होता है। और तो क्या मित्र से मतभेद होने पर परोक्ष मे उसकी भलाई की ही वात करता है।







जे अज्झत्थं जाणइ से बहिया जाणइ ।
जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ ।
एयं तुलमन्नेसि

जो अपने अंदर (अपने सुख-दुख की अनुभूति) को जानता है,
वह बाहर (दूसरो में सुख-दुख की अनुभूति) को भी जानता है।
जो बाहर को जानता है वह अंदर को भी जानता है ।
इस प्रकार दोनो को, स्व और पर को एक तुला पर रखना चाहिए।



तीर्थंकर महावीर का

प्रवचन



"जं इच्छासि अप्पणतो, जं च न इच्छसि अप्पणतो।
त इच्छ परस्स वि, एत्तियगं जिणसासणयं ॥"

जो अपने लिये चाहते हो, उसे दूसरो के लिए चाहना चाहिए।
जो अपने लिए नही चाहते, वह दूसरो के लिए भी नही चाहना चाहिए।
बस यही, इतना ही जिनशासन का सार है।



वियाणिया अप्पगमप्पएणं
जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ।

जो अपने को स्वयं अपनी अनुभूति से जान कर राग-द्वेष के विषम प्रसगो मे भी सम रहता है । इधर-उधर विचलित नही होता, वह महनीय है ।



'संवुज्झमाणे उ नरे मइयं, पावाउ अप्पाण निवट्टएज्जा ।
हिंसप्पसूआइं दुहाइ मत्ता, वेराणुवंधीणि महब्भयाणि ॥

स्वय दीपक होने पर वुद्धिमान व्यक्ति हिंसकभाव से होने वाले दुखों की कल्पना से परिचित हो कर वुरे कर्मों को स्वतः छोड़ देगा ।






"जरा जा वन पीडेइ, वाही जा वन वड्ढइ ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥"

जब तक बुढ़ापा आता नही है, जब तक व्याधियों का जोर बढ़ता नही हैं, जब तक इन्द्रियाँ (कर्तृत्वशक्ति) क्षीण नही होती; तभी तक बुद्धिमान को, जो भी धर्माचरण करना हो, कर लेना चाहिए।



महाश्रमण भगवान् महावीर के चरणों में
समस्त बडेर-परिवार का कोटि-कोटि वन्दन !



पूनमचन्द बडेर

बडेर भवन
नथमलजी का चौक, जौहरी बाजार
जयपुर-३

बलं थामं च पेहाए सद्धामारुग्गमप्पणो
खेतं कालं च विन्नाय तहप्पाणं निउंजए ।

अपना मनोबल, शारीरिक शक्ति, श्रद्धा, स्वास्थ्य, क्षेत्र और काल को ठीक तरह से परख कर ही अपने को किसी भी सत्कार्य मे साधक नियोजित करे।

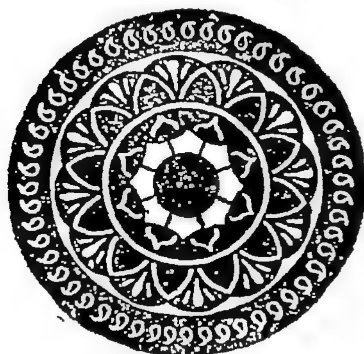








जल में पद्म की तरह निर्मल प्रभु वीर के चरणों में
शत शत वंदना !



सुराणा चेरिटेबिल ट्रस्ट

हनुमान का रास्ता, जौहरी बाजार
जयपुर-३

फोन ७२८०४

वियाणिया अप्पगमप्पएणं
जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ।

जो अपने को स्वयं अपनी अनुभूति से जान कर राग-द्वेष के विषम प्रसगो मे भी सम रहता है । इधर-उधर विचलित नही होता, वही महनीय है ।



'संवुज्झमाणे उ नरे मइयं, पावाउ अप्पाण निवट्टएज्जा ।
हिंसप्पसूआइं दुहाइ मत्ता, वेराणुवंधीणि महब्भयाणि ॥

स्वय दीपक होने पर वुद्धिमान व्यक्ति हिंसकभाव से होने वाले दुखों की कल्पना से परिचित हो कर वुरे कर्मों को स्वत छोड़ देगा ।



ए परायिज्जति'
और शक्तिहीन (निर्वीय) पराजित



